नियोजन :
देश और विदेश में

ए० बी० भट्टाचार्य्या, एम० ए०
अर्थशास्त्र विभाग,
आगरा कॉलेज, आगरा

रतन प्रकाशन मन्दिर
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
आगरा : देहली : मेरठ : कानपुर : गोरखपुर : इन्दौर

१९६१] [मूल्य ११.२५

पूजनीया माताजी को सादर समर्पित

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक मुख्य रूप से मेरी Planning at Home and Abroad का अनुवाद है। कुछ अध्याय, अनुवाद-काल मे बदल दिए गए हैं एव कुछ को परिवर्तित किया गया है। कुछ अध्याय नए जोडे गए है। इस प्रकार इस बात की पूरी चेष्टा की गई है कि यह विभिन्न वर्ग के छात्र-छात्राओ के लिये अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सके। प्रतियोगितामूलक परीक्षाओ के विद्यार्थी एव साधारण पाठक भी इसे उपयोगी पायेंगे।

यह पुस्तक पूर्ण मौलिकता का दावा नही कर सकती क्योकि मैंने विभिन्न पुस्तको, रिपोर्टो, पत्र-पत्रिकाओ, एव लेखो से सहायता ली है। मेरी ओर से इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया है कि सभी जगह References दिये जायें, किन्तु मेरी भूल से या अनुवादको की भूल से यदि रह गये हो, तो मुझे उसके लिए खेद है। मैं उन समस्त लेखको एव प्रकाशको का आभारी हूँ जिनकी 'विषय वस्तु" का उपयोग इस पुस्तक मे किया गया है।

भारत मे सोवियत सघ, चीन गणराज्य, सयुक्त राज्य अमेरिका की Embassies एव ग्रेट ब्रिटेन के High Commission के प्रति मैं विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापन करना चाहता हूँ—जिन्होने अपने देशो की आर्थिक स्थिति के विषय मे मुझे उपयोगी साहित्य भेजा एव उनके प्रकाशन की आज्ञा प्रदान की।

इस पुस्तक का अनुवाद सर्व श्री सुखराम सिंह, एम० ए० (१२ अध्याय), जयवीर सिंह, चौहान, एम० ए० एव लक्ष्मीकान्त चतुर्वेदी ने किया है। समस्त अध्यायो का सशोधन मेरे मित्र श्री राममूर्ति शर्मा, एम० ए०, 'साहित्यरत्न' द्वारा किया गया है। समस्त अनुवादको को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। श्री लक्ष्मीकात चतुर्वेदी ने मेरे साथ धैर्यपूर्वक काम करके अ-अनुवादित अध्यायो के लिखने मे सहायता की है, मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। मेरे मित्र, प्रो० पूर्णचन्द्र मित्रा (गवर्नमेंट हमीदिया कॉलेज, भोपाल) ने कुछ सुझाव भेजे थे जिनके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ। मेरे सबसे छोटे भाई प्रदीप कुमार भट्टाचार्य्या के प्रति "कुछ न करने के लिए" आभारी हूँ। समस्त पाण्डुलिपि को सशोधित करने, कही-कही फिर से अनुवाद करने एव पुन लिखने के लिए मैं अपने मित्र श्री राममूर्ति शर्मा के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ। वास्तविक बात तो यह है कि यदि वह पिछले ३–४ महीनो से अथक परिश्रम न करते होते तो यह पुस्तक कभी भी तैयार नही हो पाती।

श्री पदमचन्द जैन, रतन प्रकाशन मन्दिर (प्रकाशक) एव प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस के कर्मचारियो के प्रति मैं आभारी हूँ। उन्होने बड़े परिश्रम से पुस्तक को छापा है। इस प्रेस के मैनेजर श्री बी० एम० मेहरा जी एव समस्त प्रूफ रीडरों के सहयोग के लिये आभारी हूँ। मुद्रण मे यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

मुझे आशा है कि अध्यापक-बन्धु एव छात्र-छात्राएँ इसे उपयोगी पायेंगे एव अपनायेंगे। त्रुटियो के विषय मे अवगत करा देने पर आगे मैं उन्हे दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।

अर्थशास्त्र विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा

—ए० बी० भट्टाचार्य्या

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग

नियोजन के सिद्धान्त

द्वितीय भाग

भारतीय नियोजन

तृतीय भाग

विदेशों में नियोजन एवं आर्थिक व्यवस्था

प्रथम भाग

नियोजन के सिद्धान्त: भारतीय नियोजन के सन्दर्भ में

विषय-प्रवेश
(Introductory)

१—आर्थिक नियोजन का अर्थ तथा परिभाषायें
(Meaning and Definition of Economic Planning)

देश की आर्थिक व्यवस्था (Economic Order) में नियोजन के समावेश का मुख्य उद्देश्य राज्य के उत्पादन एवं वितरण पर नियन्त्रण रखना, राष्ट्रीय आय की वृद्धि करना, रहन सहन के स्तर को ऊँचा करना, जनता को आर्थिक विकास के लिये अधिकतम सुअवसर प्रदान करना तथा राष्ट्र के साधनों एवं शक्तियों का अधिक से अधिक उपयोग करना है।

"यह आर्थिक सगठन की एक योजना है। इसमें व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामूहिक योजनाओं का समावेश होता है। ये सब योजनायें एक ही आर्थिक सगठन की समानस्तरीय इकाई (Co ordinate units) मान ली जाती हैं, जिससे सभी प्राप्त साधनों का उपयोग करके उत्पादन तथा राष्ट्र में अधिक *कल्याण एवं सन्तुष्टि प्राप्त* हो सके। ऐसा करने से कुछ व्यक्ति, सस्थायें एवं वर्ग असन्तुष्ट भी हो सकते हैं।"[1]

राष्ट्रीय नियोजन समिति (The National Planning Committee) ने नियोजन की निम्नलिखित परिभाषा दी है :—

"लोकतन्त्रात्मक सरकार के नियोजन मे एकीकरण (Co-ordination) होता है जिसमें राष्ट्र के प्रतिनिधि उपभोग, उत्पादन, अनुसन्धान, व्यापार एवं आय के वितरण के लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित करते हैं। ऐसी योजना केवल आर्थिक स्थिति तथा रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि

1 "It is a scheme of economic organisation in which individual family and institutional plans are treated as subordinate and co-ordinate units of one single economic system for the purpose of utilising all the available resources to achieve maximum efficiency in production and increased welfare and satisfaction to the nation, even at the risk of dissatisfaction to some individuals, institutions and sections of the community." (*Economic Planning in India*—C. B Memoria. p 1.)

एच० लेवी (H. Levy) की पहुँच महत्वपूर्ण है। नियोजन, जैसा कि हम जानते हैं, मुख्यत. तीन उद्देश्यो को लेकर चलता है—देश के आर्थिक जीवन मे स्थायित्व, उत्पादन तथा वितरण पर कुशलतापूर्वक नियन्त्रण तथा जनसमूह का उत्थान। एच० लेवी के मतानुसार योजना की सफलता के लिये उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है, किन्तु उसकी रूपरेखा क्या होनी चाहिए, इसको स्पष्ट करने मे वह असफल रहे हैं। केवल 'स्वेच्छापूर्वक कार्य, अदृश्य तथा अनियन्त्रित' कह देना ही पर्याप्त नही है।

आर्थिक नियोजन की एक दूसरी परिभाषा डा० डाल्टन (Dr. Dalton) ने इस तरह दी है—*"आर्थिक नियोजन का एक व्यापक अर्थ है, इसके अधिकारियो का अपने चुने हुए उद्देश्यो को अपने विस्तृत साधनों द्वारा कार्यान्वित करना।'* [1]

जैसाकि परिभाषा से प्रतीत होता है, डाल्टन अपनी परिभाषा को बहुत स्पष्ट नही कर पाये है। अधिक साधन सम्पन्न कोई भी समुदाय, राज्य एव वर्ग हो सकता है, लेकिन उनमे से योजना किसे बनानी है ? कार्य तथा लक्ष्य इनके विभिन्न हैं, लेकिन यह कैसे जाना जाय कि कौनसा कार्य विशेष कार्य मे लाना है तथा उसके क्या परिणाम है ? क्या योजना कोई निश्चित लाभ प्राप्त करने के ध्येय से बनाई जाती है ? ये कुछ प्रमुख प्रश्न हैं जिनका उत्तर देने मे डाल्टन का परिभाषा असमर्थ है। इसलिये यह परिभाषा अपूर्ण है।

प्रो० रौबिन्स (Prof. Robbins) ने नियोजन की दो तरह से व्याख्या की है—

१—"वास्तव मे देखा जाय तो सम्पूर्ण आर्थिक जीवन ही योजना से भरा रहता है, योजना बनाने का अर्थ वायदे और उद्देश्य से कार्य करना तथा पहुंच करना है। आर्थिक प्रकरण मे चुनाव का अत्यधिक महत्त्व है।"

२—' आर्थिक नियोजन इस युग की अचूक औषध है। जन हितकारी राज्य के आदर्श को जानने का आर्थिक नियोजन ही एकमात्र साधन है।' [2]

रौबिन्स की आर्थिक नियोजन की परिभाषा व्यावहारिक, पर्याप्त एव पूर्ण है। आर्थिक नियोजन के उद्देश्य के विषय मे तो दो राय नहीं हो सकती। इसका तो एक

---

1 "Economic planning, in its widest sense, is deliberate direction, by persons in charge of large resources of economic activity towards chosen ends" (H Dalton—*Practical Socialism*, Britain, (1935) p 243)

2 (i) "Strictly speaking all economic life involves planning to plan is to act with a promise, a purpose to choo e, and choice is the essence of economic activity"

(ii) "Economic planning is a grand pancea of our age Economic planning is only a means of realising the ideal of a Welfare State" (L Robbins—*Economic Planning and International Order*, (1938), p 3)

ही उद्देश्य है—'आर्थिक नियोजन कल्याणकारी राज्य के आदर्श को जानने का साधन है।' नियोजन के क्षेत्र तथा अधिकार पर रौबिन्स ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। व्यक्ति तथा राज्य दोनों ही 'कल्याणकारी राज्य' के आदर्श को उद्देश्य बनाकर नियोजन कर सकते हैं। परन्तु दोनों की पहुँच (Approach) में बहुत अन्तर है। पूँजीवादी नियोजन का मुख्य उद्देश्य निजी लाभ होना है तथा जनता के कल्याण का ध्येय गौण रहता है। लेकिन समाजवादी नियोजन मे रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने का ही केवल एकमात्र ध्येय होता है। रौबिन्स ने नियोजन के स्वरूप की ओर कोई संकेत नहीं किया।

इसके अतिरिक्त कुछ और भी अर्थशास्त्री हैं जो उपरोक्त परिभाषाओं से सहमत नहीं हैं। उन्होंने आर्थिक नियोजन की विभिन्न तरीकों से व्याख्या की है—

(अ) "नियोजन बहुत सी समितियों का एक दूसरे के सहयोग से एक निश्चित स्वीकृत लक्ष्य (Accepted end) के लिये कार्य करना है।"[1]

(ब) "आर्थिक नियोजन का ध्येय समाज के सभी सदस्यों के स्तर को ऊँचा करना है।"[2]

(स) "उत्पादन तथा वितरण का एक ऐसा आदर्श रूप जिसमे माँग एव पूर्ति मे बहतर सन्तुलन स्थापित किया जा सके।"[3]

इनमें से एक भी आर्थिक नियोजन के मूल तत्व को तथा उसकी ठीक परिभाषा को स्पष्ट नहीं कर सका है। लेखक आर्थिक नियोजन के अर्थ एव ध्येय के बीच मे कुछ उद्भ्रान्त से प्रतीत होते हैं। उन्होने आर्थिक नियोजन की आवश्यकता तथा ध्येय के माध्यम से उसकी परिभाषा दी है, जिसे पूर्णतः ठीक नहीं कहा जा सकता।

प्रो० जॉन जीविक्स (Prof. John Jewkes) के विचार मे नियोजन का अर्थ है, "केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था इस बात को स्पष्ट करती है कि राज्य तथा उपभोक्ता किस व्यवसाय को करना चाहते है। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति

---

1 "Planning may be defined as the working of a number of organizations in conjuction with one another for some consciously accepted end"

2 'The object of economic planning is the achievement and retention of a high standard of living for all the members of the society"

3 "The working of production and distribution on a pre conceived pattern and the rehabilitation of the existing system of such a plan with a view to secure a better adjustment between demand and supply conditions"

के विनाश द्वारा राष्ट्र को आत्म निर्भर होने को प्रेरित करती है।"[1] इस परिभाषा की स्पष्टता के विषय मे हमे कोई सन्देह नही, लेकिन यह नियोजन के सम्पूर्ण अर्थ को स्पष्ट करने मे असमर्थ है, इसीलिए अपूर्ण है। एक अन्य स्थान पर प्रो० जीविक्स ने कहा है, "आर्थिक नियोजन का विचार राष्ट्रों के आर्थिक प्रयासो मे उसी तीव्रता से फैल रहा है जिस तीव्रता मे जगल मे आग फैल जाती है। ...... "आज से ५० वर्ष बाद आर्थिक नियोजन का सिद्धान्त उसी प्रकार निराधार और आकस्मिक समझा जायगा जैसा कि कुछ काल पूर्व ब्रिटेन मे खाद्य सकट के समय लाल मछलियों के समूह का पता लगना। इसी प्रकार जब सभी देश उन्नत हो जायेंगे तो नियोजन महत्वहीन हो जायगा।[2]

भिन्न भिन्न विद्वान् अर्ध शताब्दी से आर्थिक नियोजन की विभिन्न परिभाषायें देते आ रहे है। उनमें से सर्वश्रेष्ठ का चुनना बडा ही कठिन है। इसका वास्तविक कारण यह है कि जो कुछ भी आर्थिक प्रक्रिया कार्यान्वित की जाती है उसे योजनाबद्ध पहले किया जाता है।

"योजना रहित आर्थिक व्यवस्था कभी भी अस्तित्व मे नही आ सकती। हर आर्थिक व्यवस्था के लिए एक योजना की आवश्यकता होती है।"

प्रो० विलहेम केलहेउ (Prof. Wilbelm Keilhau) ने आर्थिक नियोजन की निम्नलिखित परिभाषायें दी है :—

(अ) "आर्थिक व्यवस्था कुछ निश्चित प्रयोजनो की पूर्ति के लिये नियोजित प्रक्रिया है। हर आर्थिक कार्य मे नियोजन आवश्यक है। आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त केवल मानव के कुछ विशेष उद्देश्यो तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ये अर्थशास्त्र के सभी सिद्धान्तो से सम्बन्धित हैं।"[3]

1 "The Centrally Planned Economy implies the state determination of investment and its distribution, of occupation, of consumers' choice. It involves progressively the destruction of private property and it leads to national self-sufficiency." (J. Jewkes—*Ordeal by Planning*. (1948), p X (Introduction)

2 "Fashions in economic thinking are notoriously infectious and fickle They run through communities with the speed of forest-fires The current mania for comprehensive economic planning by the state may well appear, half a century hence, as just another of the red herrings which fate throws across the forward march of free people" (*Ibid*, pp 1–2)

3. "Economy consists in a totality of planned efforts to realise certain purposes Planning is essential in every activity of economic character. The theory of economic planning does not deal only with some special forms of human societies, but with a certain important part of every economy. It belongs to the general theory of economics" (W. Keilhau—*Principles of Private and Public Planning*, pp. 16–17.)

(व) "योजना सहायक ध्येयो तथा प्रस्तावनाओ (Suggestions) का एक सगठन है, जोकि एक दार्शनिक ढग से एकत्रित होकर एक प्रधान लक्ष्य की ओर बढाती है। सभी दिशाओं मे जहाँ कि प्रधान उद्देश्यो मे आर्थिक लक्षण एक ही क्यो न हो, हमे आर्थिक योजना मे पूरा करना पडता है। इसीलिये आर्थिक योजना के सिद्धान्त के दो प्रमुख प्रयोजन हैं—एक, प्रधान उद्देश्यो की व्याख्या, तथा दूसरा, व्यक्ति और वर्ग इनको किस तरह कार्यान्वित करे।"[1]

(स) "नियोजन पूर्व निश्चित उद्देश्या को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।"[2]

(द) "आर्थिक नियोजन नियोजित प्रक्रियायें है, जिनसे भविष्य मे उन्नति, प्राप्ति, बचत तथा समृद्धि की सम्भावना के साथ साथ मानव कुछ आर्थिक क्रियाओ मे प्रेरित होता है अथवा पहले से अधिक अपने को अच्छा साधन सम्पन्न बनाने का प्रयत्न करता है और नियोजित प्रक्रिया ही अन्य आर्थिक प्रक्रियाओ को सुरक्षा, सहायता तथा प्रोत्साहन देती है।"[3]

वि० केलहेड की ऊपर दी हुई परिभाषाओ मे से केवल अन्तिम को छोडकर बाकी सभी, कुछ हद तक, भ्रमात्मक है। नियोजन के अर्थ तथा उद्देश्य को स्पष्ट करने मे वह सफल नही हुए। उन्होने नियोजन के उद्देश्य तथा उसकी रूपरेखा पर अनुचित बल दिया है। फिर भी उनकी अन्तिम परिभाषा पर्याप्त सीमा तक उचित तथा ठीक है। उसमे वे नियोजन की परिभाषा तथा अर्थ को स्पष्ट कर पाए है। यह परिभाषा आर्थिक नियोजन के विस्तार पर प्रकाश डालती है।

किसी वर्णनात्मक विषय के अध्ययन मे, वह भी विशेषकर अर्थशास्त्र म बहुत

1. 'A Plan is a totality of subordinate purpose resolutions and executive resolutions, all serving the same supreme purpose and being linked together in a systematical and rational way In all cases, where the supreme purpose is of an economic character, we have to do with economic plans A theory of economic planning has, therefore, two main objects to discuss the primary or supreme economic purposes and to describe how individuals or groups of individuals plan in order to realise these purposes" (*Ibid*, p 26)

2 'Planning makes up one of the two main forms of economic thinking in pre time" (*Ibid*, p. 48)

3 'Economics are planned activities which create, promote, acquire, preserve or secure future usefulness as well as planned activities which enable human beings to do economic work or to do it better than before, and planned activities which organise, protect support or assist other economic activities" (*Ibid*, p 42)

सी बाधायें है। यही कारण है कि नियोजन की परिभाषा के विषय मे विद्वानो के मत एक नही है। ऊटन ने ठीक ही लिखा है "छः अर्थशास्त्रियों के सात मत होते है।"[1]

आर्थिक नियोजन के विषय मे भी यह कथन बिलकुल सत्य है क्योंकि वह अर्थशास्त्र का ही एक अग है। अर्थशास्त्रियो के पास वाद विवाद के लिये बहुत सामग्री है। "नियोजन के विषय मे भी वाद-विवाद के लिये बहुत तथ्य है। बहुत द्वन्द्वात्मक विचारो के होने के कारण एक साधारण व्यक्ति तो इस द्वन्द्व के समूह मे गोते लगाता रह जायगा तथा कभी भी उभर कर नही आसकेगा अर्थात् एक निष्कर्ष पर नही पहुँच पायेगा।"[2]

विभिन्न विद्वानो के विचारो मे भिन्नता और पारस्परिक मतभेद का यह कारण है कि नियोजन का कार्य सूक्ष्म और कठिन होता है। इसकी सफलता केवल प्रतिवादों के स्थायित्व तथा एकीकरण, जो कि विभिन्न क्षेत्रो के निर्माण के लिये एक दूसरे से सम्बन्धित है, पर ही निर्भर नहीं बल्कि स्थानीय आत्म बल तथा मस्तिष्क की उर्वरा शक्ति पर निर्भर है, जोकि जनता में ऐसी प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न होगी। लेकिन बड़े खेद का विषय है कि *नियोजित कार्यो के विषय मे अभी स्पष्ट स्वीकार नहीं* किया जाता है कि अनियोजित प्रयास की तुलना मे नियोजित व्यवस्था अधिक सफल होती है।

इस तरह आर्थिक नियोजन किसी व्यक्ति, समाज तथा राज्य को सुसगठित तथा स्वतन्त्र और सुसम्बन्धित प्रक्रिया है, जो जन जीवन की उन्नति के लिए, रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने के लिए एव राष्ट्र के साधनों और शक्तियो का समुचित उपयोग करके देशवासियो का आर्थिक स्थिति मे उन्नति करने के लिए बनाया जाता है। इसमे समय के तत्व का समावेश भी आवश्यक है।[3]

आर्थिक नियोजन के अर्थ तथा परिभाषा में मतभेद अब भी समाप्त नहीं हो पाया है। यह कथन, "नियोजन भी समाजवाद की तरह अधिक पारिभाषित विषय

---

1. "Wherever there are six economists, there are seven opinions" (Mrs B Wootton—*Lament for economics*)

2 "There is a lot of glib talk about planning So many conflicting views have been expressed and all of them seem to have so much validity that the 'average man' in this realm is bewildered and lost in trying to unravel the snarl of crossed lines and mixed motives"

3 Thus, Economic Planning may be defined as a co-ordinated, organised effort by an individual, society or state to attain the objectives of the amelioration of the masses, raising the standard of living and increasing national income per capita through maximum and most useful utilisation of nation's productive resources. It also contains a time element for its implementation (*Planning at Home & Abroad*—A. B. Bhattacharya, p. 7.)

है।"[1] अब तक सत्य लगता है। लेकिन इससे निराश न होकर अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ना चाहिये "अर्थशास्त्री प्रत्येक बात पर असहमत रहता है। अब लगता है कि वह अपने को पहचानने में भी असहमत है।"[2]

२—अनियोजित आर्थिक व्यवस्था की बुराइयां

(Evils of an Unplanned Economy)

आर्थिक नियोजन न तो भारत के लिए और न संसार के लिए ही नया विषय है। लेकिन फिर भी इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता है कि कुछ दशाब्दी (Decades) पहले इसको इतनी प्रधानता नहीं दी गई थी, जितनी कि आज दी जा रही है। वास्तव में राष्ट्रों के आर्थिक विकास में इसने एक नया मार्ग दिखाया है; विशेष कर रूस की तथा हाल ही में चीन की योजनाओं की सफलता ने इसको एक नया बल मिल गया है। नियोजन आर्थिक ढांचे की बुराइयों को दूर करने के लिए तथा राष्ट्र के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। आजकल हमारे देश में बहुत-सी आर्थिक बुराइयां तथा विषमतायें विद्यमान हैं। नियोजकों को सबसे पहले देश के वर्तमान आर्थिक ढांचे में जो बुराइयां तथा कुरीतियां व्याप्त हैं, उनका समाधान करना है।

यह बड़े खेद का विषय है कि "अधिकतर देशों में उत्पादन के साधनों पर समाज के एक वर्ग विशेष का एकाधिकार है—पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। ग्रामों की आत्म-निर्भरता, सूद की दर तथा लगान अधिक हो जाने के कारण समाप्त हो चुकी है। बेरोजगारी के बढ़ जाने से मानव जाति पीड़ित है"[3] इन्हीं कारणों से जनता ने संघर्ष प्रारम्भ कर दिया है। "नियोजन, नियोजित मितव्ययिता तथा आर्थिक ढंग जो कि उन्हें उन्नति के अवसर देंगे—यह सब शोषित जनता को

---

1. "Planning like Socialism, is a much overworked expression." (B. C. Ghosh—*Planning for India*, p. 2.)

2. "Economists disagree on everything Now we hear that they even disagree on their own identity" (Wilhelm Keilhau—*Principles of Private and Public Planning*, (1951), p. 40.)

3. "Sources of production are being monopolized by one class of people—the capitalists, which exploit the others—the labourers The old village-self-sufficiency has broken down and ryots suffer from increased rents and higher rates of interest. Unemployment prevails which means in terms of human suffering." (*Fundamentals of Economics*—J. K Mehta and others)

नियोजन की माँग करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे है। श्रमिक उद्योगो मे अपना भाग चाहता है, न कि सम्पूर्ण उद्योग का अपना बनाना चाहता है।'[1]

द्वितीय महायुद्ध के समय मे जबकि अनियोजित अर्थ-व्यवस्था की बुराइयाँ लोगो को दृष्टिगोचर हुई तथा उन्हे कठिनाइयो का सामना करना पडा, तभी से उनके मस्तिष्क मे योजना का विचार घर कर गया। युद्ध के दिनो मे तथा उसके पश्चात् लडाका देशो ने अपने उत्पादन के सम्पूर्ण साधनो को युद्ध विषयक सामग्री निर्माण करने मे लगा दिया था—यह जानते हुए भी कि उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए बनाई हुई वस्तुएँ बहुत कम हैं। इसी ने युद्ध कालीन नियन्त्रण को जन्म दिया और साथ साथ राशनिंग, वस्तुओ की दुर्लभता तथा चोरबाजारी को प्रोत्साहित करते हुए साधारण व्यक्तियो को सकट मे डाल दिया। इसके साथ साथ मूल्यो का बढ जाना भी लोगो को योजना की ओर बढाने मे सहायक सिद्ध हुआ। पचवर्षीय योजनाओ ने, जिनके द्वारा देश की राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का तीव्रगति से हर क्षेत्र मे विकास हुआ, इस सन्देह को दूर कर दिया।

२ अर्थशास्त्रियो का कथन है कि नियोजन बेरोजगारी मे फैली हुई व्याकुलता तथा आपत्ति को यदि पूरी तरह मे दूर न कर सका तो कम अवश्य कर देगा। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि वह अनियोजित मितव्ययिता की, बढी हुई कीमतो से सघर्ष कर उसकी कुरीतियो को जड मे उखाड देगा तथा रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने के लिये बहुतो मे एक सघ बनायेगा, जिससे अधिक से अधिक उपभोग की वस्तुएँ उत्पन्न की जा सकें। इसमें देश का सामूहिक आर्थिक विकास शीघ्र से शीघ्र सम्भव हो सकेगा।

डा० कुरैशी (Dr Qureshi) ने अपनी पुस्तक 'स्टट एण्ड इकोनोमिक लाइफ' (*State and Economic Life*) म बिल्कुल ठीक कहा है, "आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योकि एक दूसरे की सहायता के बिना किसी का कार्य नहीं चल सकता। इस तरह हम किसी देश का अधिक भला तब ही कर सकेंगे जबकि हम सम्पूर्ण देश को ध्यान मे रखकर योजना बनायें न कि केवल उद्योगो के लिए ही योजना बनाय और फिर धीरे धीरे सम्पूर्ण विश्व की योजना को जन्म देंगे।"[2]

---

1 "To cry out for Planning, for a planned economy and financial system that will give him the chance of getting on with his job He demands planning even if it be somewhat doubious sort for his own industry is not for industry as a whole" (*Ibid*)

2 "The doctrine of self sufficiency is unpracticable And there is dependence of one upon another. Thus, we try to make the best out of a country we plan not only for this industry or that, but for the country as a whole, and gradually we plan for the entire world"

हमारा देश तो युगो से 'सादा जीवन उच्च विचार' अर्थात् अपनी 'आवश्यकताओं को अधिक से अधिक कम किया जाय' यह सन्देश देता चला आ रहा है। अपने स्वास्थ्य को कैसे ठीक रखा जाय यह पूछने हम डाक्टर के पास कभी नही जायेगे जब तक कि बीमार न पड़ें और डाक्टर के पास जाने को विवश न हो जायें। यही दशा हमारे आर्थिक नियोजन की भी है। अब हम योजनायें इसलिए बना रहे है कि इसके बिना कार्य चलना बहुत ही कठिन हो गया है।

प्रो० आर० वी० राव (Prof R. V. Rao) ने अपनी *'इकोनोमिक प्लानिंग इन इण्डिया' (Economic Planning in India)* मे सन् १९४५ में ही लिखा था कि "नियोजन के लिए हम उस समय ही सोचने है जबकि आर्थिक परिस्थितियाँ हमे इसके लिये विवश कर देती है। हमारे आर्थिक जीवन मे जब कुछ असुविधायें आती है तभी हम नियोजन की सोचते हैं, या जब शक्तियां तथा साधनों को ध्यान मे रखते हुए उत्पादन बहुत ही कम हो। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने प्रसन्न होकर अपने असीम उपहार हमे दे डाले है, लेकिन मानव अपने आर्थिक विकास के लिए उनसे सम्भावित लाभ उठाने मे असमर्थ है। इसीलिए भारत अपने साधनों मे सम्पन्न होते हुए भी निर्धन है। अत हमे कच्चे माल का निर्यात न करके अपने देश मे ही उत्पादन को प्रोत्साहन देना चाहिए। यदि हम कच्चा माल निर्यात करते हैं तो इसका अर्थ है हम रोजगार का निर्यात कर बेरोजगारी का आयात करते है। संक्षेप मे हमारा ध्येय, अपने साधनो का अधिक से अधिक उपयोग करके जनता को खुशहाल बनाने, रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने तथा उचित समय मे आत्म निर्भर बनाने का होना चाहिए।

'इस देश के आर्थिक विकास पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो प्रत्येक व्यक्ति का यही कथन होगा कि आर्थिक नियोजन के विकास की नीति ही दोषपूर्ण थी। यह भी सत्य है कि देश मे आर्थिक जीवन के भविष्य की योजना उद्योगों के स्थापनार्थ ही अधिक समझी जानी चाहिए जो कि केवल उपभोक्ताओं की भोजनादि की आवश्यकता को ही नहीं बल्कि आर्थिक सुविधा प्रदान करेंगे तथा अपनी राष्ट्रीय मितव्ययिता को पहले से भी विस्तृत आश्रय देंगे।'[1]

अनियोजित मितव्ययिता की दूसरी दुर्बलता स्वतन्त्र जोखिम का अस्तित्व है। इससे उत्पादन तथा वितरण को ऐसे ढंग से संचालित या नियन्त्रित नहीं किया जाता

1 Considering the history of economic development in this country, one has to remark that there was lack of policy in regard to the economic development of our country It has been truely said that the future planning of the economic life of the country must be directed to the establishment of industries which will not only cater to the demand for consumers' goods but also for capital goods and provide a broader basis for our National Economy"

जिससे समूचे समाज का उत्थान हो। 'बात साधारण है कि यह नियन्त्रण दृश्य तथा अदृश्य हो सकता है। अदृश्य नियन्त्रण जो बाजार मे प्रचलित होता है, वह स्वतन्त्र जोखिम उठाने वाले योद्धाओ के हाथ का हथियार बन जाता है। दृष्टिगोचर होने वाला नियन्त्रण जिसे राज्य सचालित करता है वह नियोजन के विधायकों का विषय होता है।' इस तरह नियोजन जोखिम उठाने वाले ढग को समाप्त कर देश की मितव्ययिता का हर तरह से—आर्थिक ढगो या तरीको मे विकास सम्भव बनाता है।

३—आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त का जन्म
(Growth of the Idea of Economic Planning)

अपने आदर्शो तथा विचारो मे मानव सबसे अधिक परिवर्तनशील है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज मे सदैव विकास चाहता है। आदिम युग मे उसका ज्ञान सीमित था। इस कारण वह किसी समाज की स्थापना नहीं कर सकता था। बाद मे ज्ञान वृद्धि के साथ साथ समाज की उन्नति प्रारम्भ हुई तथा सभ्यता का विकास हुआ। इतिहासकार तथा अन्य विद्वानो का कथन है कि पैलीओलिथिक (Palaeolithic),मैसोलिथिक (Mesolithic) आदि युग मे सभ्यता का थोडा प्रसार था। वास्तविक सभ्यता का प्रसार नीओलिथिक (Neolithic) युग के अन्तिम दिनो से शिशु रूप में प्रारम्भ हुआ था।

व्यक्तिगत उत्पादन तथा उपभोग के आदर्श सामूहिक प्रयासो तथा प्राप्तियों के द्वारा धीरे-धीरे एक दूसरे का स्थान लेने गये। कालान्तर मे मनुष्य ने अपने उपयोग तथा कल्याण के लिए अधिक से अधिक परिश्रम कर अधिक से अधिक उत्पादन किया। 'व्यक्तिवाद' के पश्चात 'वर्गवाद' का जन्म हुआ। सभ्यता के प्रसार से 'उद्योगवाद', 'स्वतन्त्र व्यापार' तथा 'पूँजीवाद' का जन्म हुआ। इस समय के पश्चात् ही औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसमे व्यापारिक शिक्षाओ से प्रभावित होकर राज्य ने भी हस्तक्षेप किया। औद्योगिक क्रान्ति के आने से एकाधिपत्य को आश्रय मिला तथा राज्य के हस्तक्षेप की अवहेलना कर स्वतन्त्र मितव्ययिता एव जोखिम को बढावा मिला। डेविड ह्यूम (David Hume) एव एडम स्मिथ (Adam Smith) तथा बाद के उपयोगितावादियो ने भी इस विषय को प्रोत्साहित किया। प्रथम महायुद्ध के छिड जाने तक, व्यक्तिवाद का साम्राज्य था।

उन्नीसवी सदी के पूँजीवाद की मुख्य विशेषतायें यह थी: व्यक्तिगत लाभ पर अधिक बल देना, स्पर्द्धा, 'गला-काट-स्पर्द्धा', क्रूरता, आर्थिक तथा अनार्थिक प्रतिस्पर्द्धा, आय को कुछ साझीदारो मे ही बाँटना, पारस्परिक सगठन ऐसे करना ताकि सदैव वे श्रमिक-वर्ग का शोषण कर सकें, व्यक्तिगत सम्पत्ति का होना एव स्वतन्त्रतापूर्वक जोखिम को अपने हाथ मे रखना। तत्पश्चात पूँजीवाद मे एक और

बुराई आगई—उन्होने दुर्बलो तथा निर्धनो का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। इससे विभिन्न 'वर्गों' मे द्वेष की भावना जागृत हो गई।

मजदूरो ने शोषण से बचने के लिए सघ बनाना आरम्भ कर दिया। जर्मनी तथा अन्य योरोपीय देशो मे सघो की सफलता म उसके प्रवर्तक बढे तथा उन्होने उसके क्षेत्र को विस्तृत किया। दुर्बल तथा निधनो का पूँजीवादियो मे अकेले सघर्ष करना नितान्त असम्भव था। कला तथा शिक्षा के तीव्र विकास द्वारा मानवीय आदर्शो तथा उत्पादन के साधनो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। सम्पूर्ण राष्ट्र मिलकर अनियन्त्रित शोषण का विरोध करने लगे। फलस्वरूप, बहुत से देशो मे राज्य को हस्तक्षेप करना पडा। अत निर्धनो को शोषण से बचाने, पूँजी पर नियन्त्रण रखने तथा पूँजीवाद के अवगुणो को दूर करने के कार्यो को राज्य ने अपने हाथ मे ले लिया।

पूँजीवाद के अवगुण, आदर्शों के परिवर्तन, राज्य के हस्तक्षेप का लाभ तथा रूस के केन्द्रीय नियोजन की अद्भुत सफलता ने राज्य को नियोजन के लिए फिर प्रोत्साहित किया। विशेषकर, पिछडे देशो ने सोच लिया कि उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का केवल एक ही रास्ता है और वह है केन्द्रीय नियोजन के सिद्धान्तो को अपनाना। इसी से उनकी उन्नति सम्भव है। किसी अन्य प्रकार से नही। यही नवीन भावना बडी तीव्र गति से देश मे केन्द्रीय नियोजन को फैला रही है। उन देशो मे भी जहा राज्य ने केन्द्रीय योजना नहीं बनाई है, साधारण नियोजन उत्पादन, उपभोग तथा वितरण सभी क्षेत्रो मे दृष्टिगोचर होता है। राज्य का हस्तक्षेप तो आज का मुख्य नारा है। भारत म अग्रजो के आगमन से पूर्व पूँजीवाद अस्तित्व मे नहीं था। बाद मे उद्योग धधो के विकास के साथ, भारत मे पूँजीवाद अपने सभी अवगुणो के साथ प्रविष्ट हुआ। युद्ध के पश्चात् देश की मितव्ययिता को आर्थिक नियोजन द्वारा सगठित करने के प्रयास किये गये। अब आर्थिक उन्नति के लिए केन्द्रीय योजनाएँ काम म लाई जा रही है।

४—नियोजन की आवश्यकता क्यों होती है ?

(Why Planning ?)

यह आर्थिक नियोजन का युग है। हर देश मे आर्थिक नियोजन किसी न किसी रूप मे जन्म ले रहा है। इस सम्बन्ध म एच० मौरीसन (H Morrison) ने ठीक ही कहा है, "व्यक्तिगत पूँजीवाद की पुरानी पैतृक तथा अनियन्त्रित स्पर्द्धा पुरानी पड चुकी है। प्रत्येक व्यक्ति को नये आदर्श तथा दृष्टिकोण के अनुसार अपने को मोडना पडेगा।"[1] यही नहीं, आज के युग मे आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तो को अपनाने के अनेक कारण है, जिनम से कुछ इस प्रकार हैं -

1. "The old paternal system of private capitalism and uncontrolled competition are out of date, and everyone has to adjust his outlook and ideal to the new outlook"—H Morrison

१—अनहस्तक्षेप (Laissez Faire) की पुरानी प्रणाली को दूर करना, जिसमें निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं :—

(अ) कुछ मनुष्यों के हाथों में पूँजी के संचित होने से धन के वितरण में विषमता होती है।

(ब) श्रमिकों, निर्धनों तथा दुर्बलों का शोषण होना।

(स) अनार्थिक स्पर्द्धा से धन का अपव्यय होना तथा एकाधिकार का जन्म।

(द) मानव का तनिक भी ध्यान न कर लाभ के सिद्धान्त पर बल दिया जाना।

(य) व्यवसाय-चक्र (Trade Cycle) प्रणाली को यह नहीं रोक सकती।

२—अनियोजित अर्थव्यवस्था को दूर करना क्योंकि उसमें निम्नलिखित दोष है :—

(अ) अधिक-उत्पादन (Over-production) तथा कम-उत्पादन (Under-production) की सम्भावना।

(ब) प्राकृतिक साधनों का त्रुटिपूर्ण शोषण तथा दुरुपयोग।

(स) समाज में विभिन्न समस्याओं का जन्म तथा उपभोग की वस्तुओं का अभाव।

३—"केवल नियोजन ही पूँजीवाद के अवगुणों को दूर करने की एक आशा है।"[1] नियोजित अर्थव्यवस्था में जिस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से उत्पत्ति होती है उसी प्रकार सुव्यवस्थित रूप से उसका वितरण भी होता है।

४—नियोजित अर्थव्यवस्था सदैव विस्तृत तथा व्यापक होती है। नियोजित अर्थव्यवस्था में एक पक्षीय तथा असन्तुलित आर्थिक उन्नति की बिलकुल भी सम्भावना नहीं होती है। 'अनियोजित तथा स्पर्द्धापूर्ण प्रणाली में विनियोग बिना सोचे समझे किया जाता है तथा उत्पादन आवश्यकता से कम या अधिक होता है। प्रायः वे किसी एक वस्तु के उत्पादन के एक छोटे भाग को नियन्त्रित करते हैं। इसलिए सम्पूर्ण उत्पत्ति के विषय में ज्ञान की उनमें कमी रहती है, जिसमें सम्पूर्ण उत्पत्ति के आर्थिक परिणामों को वे नहीं जान सकते। केवल केन्द्रीय संगठन ही इसका अनुमान लगा सकता है, एक व्यक्ति नहीं। प्रतिस्पर्द्धा में संलग्न उत्पादक समस्त उत्पत्ति का सही सही अनुमान नहीं लगा सकते।'

५—डर्बिन (E. F. M. Durbin) के अनुसार केवल एक केन्द्रीय संस्था ही पहले से यह पता लगा सकती है कि कच्चे माल का निःशेष हो रहा है, प्राकृतिक

1. "Planning alone provides a hope and the means of remedying the ill-effects of capitalism."—E. F. M. Durbin.

साधनो का अपव्यय हो रहा है, सौन्दर्य, स्वास्थ्य और मानव जीवन का विनाश हो रहा है—जिसके विषय मे उन साहसियो द्वारा जानकारी सम्भव नहीं होती जो भविष्य के बारे मे सोच व समझकर योजना नहीं बनाते।" (*Problems of Economic Planning*, pp. 50 51.)।

६—नियोजन के अधिकारी अपना योजनाओ द्वारा सभी नागरिको को, विशेषकर श्रमिका को पर्याप्त मात्रा मे प्रोत्साहन देत हैं। इस प्रकार के प्रोत्साहन अनियोजित राज्य मे कभी प्राप्त नहीं किय जा सकते।

७—आर्थिक मदी तथा दो महायुद्धो ने मनुष्य के विचारा को नियोजन के अनुकूल बना दिया है—जो सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए, श्रम तथा पूँजी दोनो के कार्यो म परिवर्तन करते हैं। कुछ राष्ट्र सम्पूर्ण समाज एव राष्ट्र के कल्याण को सोच रह है। उन्होंने सरकारी कर्मचारियो की एक सेना तैयार कर ली है, जो साधारण मानव जीवन को सुधारने की कला से परिचित हैं। उन्होने सभी वर्गो को सिखा दिया है कि वर्ग-विद्वेष को समाप्त कर दिया जाय—जिसमे उन्हे सफलता मिली है, और सफलता ही एकता की भावना को जन्म देती है।

८—सक्षेप मे, नियोजन अनियोजित अर्थव्यवस्था के सभी अवगुणो को दूर करता है।

५—आर्थिक नियोजन से हानिया
(Disadvantages of Economic Planning)

१—स्वतन्त्रता का लोप—"व्यक्तिवादियो की दृष्टि मे राज्य के हर कार्य का विस्तार व्यक्ति की स्वतन्त्रता मे बाधक है और जो अपनी स्वतन्त्रता को खोकर अपनी आर्थिक उन्नति की आशा राज्य से करते है वे ऐसे ही मूर्ख हैं जैसे, कोई मारे जाने के डर मे आत्महत्या कर ले। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा आर्थिक नियोजन अर्थ मे बिलकुल भिन्न है क्योकि नियोजित अर्थव्यवस्था म बहुमुखी लाभ का गुण विद्यमान होना है तथा नियोजन का ध्येय ही व्यक्ति, वर्ग तथा समाज को अधिक से अधिक लाभ देना है।"[1]

---

1 "Individualists say that every extension of state activity is a nail in the coffin of individual freedom. And tho e who wish the state to provide for their economic needs at the cost of their freedom are like fools who are so afraid of being murdered that they commit suicide That individual freedom and economic planning are contradictions in terms because under a planned economy plurality of interests is evil and planning aims to eliminate the 'interaction of all the numerous private interests' of the individuals, groups or classes .. . "

२—केन्द्रीय नियोजन मानव को स्पर्द्धा तथा विभिन्न लाभो से वंचित रखता है। "राज्य को विभिन्न क्षेत्रो मे न्यायकर्ता न समझकर एकता को उत्पन्न करने वाला समझा जाना चाहिये, जिसमे विभिन्न प्रकार के लाभो की बात बिलकुल ही दूर रहगी। इसलिये विरोध को स्वतन्त्र राज्यो मे वैधानिक कार्य समझा जाता है तथा परतन्त्रो मे राजद्रोह।"

३—आर्थिक नियोजन के विरोध मे एक और आरोप है। "जब किसी नियोजक का पता लगाया जाय तो तानाशाह दिखाई देगा क्योकि नियोजक योजना को व्यक्तियो पर लागू न करके व्यक्तियो को योजना पर लागू करता है।"

४—ग्रट्रूड विलियम्स (Gertrude Williams) ने लिखा है, "सरकार की इच्छानुसार कार्य करके स्वर्ग प्राप्ति की अपेक्षा—एक स्वतन्त्रता, जिसके लिये हममे से बहुत मे मृत्यु का आलिंगन करना चाहेगे या इच्छापूर्वक खाई मे राक्षस से मिलना ठीक समझेंगे।"[1] इससे सिद्ध होता है कि व्यक्ति राज्य नियन्त्रण का अधिक से अधिक लाभ कभी भी नही उठा सकता। इसलिये राज्य नियोजन स्वतन्त्र व्यापार से सदैव कम लाभदायक है।

५—नियोजन मे नियामक सरकारी कर्मचारी होते है, इसलिये वे कभी भी ऐसे उत्साह से, मन लगाकर तथा साहसपूर्वक कार्य नही करते जैसा कि व्यक्ति स्वतन्त्र-व्यापार प्रणाली मे करते है। परिणामस्वरूप, स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था से इसमे कम सफलता मिल पाती है।

६—केन्द्रीय नियोजन के विरोध मे एक मुख्य आरोप यह है कि नियोजन के अधिकारी प्राकृतिक साधनो और शक्तियो के उत्पादन का अनुमान लगाने मे नितान्त असफल रहते है। यह दोष स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे नही होता।

७—राज्य नियोजित प्रणाली मे लक्ष्य तथा प्राप्तियो की ओर बढने मे जनता सहयोग नही देती है।

८—राज्य अपने नियोजन मे दृढ नही रहता।

प्रोफेसर हेएक (Prof Hayek) का नियोजन के अवगुणो के विषय मे मत[2]।

(१) "सम्पूर्ण नियोजन उत्साह तथा स्वेच्छापूर्वक लागू करना चाहिये ताकि कानून का भय न रह जाय।"

---

1. "One of the freedoms for which most of us would be prepared to die in the last ditch is the right to go to the devil in our own way, rather than to paradise by government way."

2. *Road to Serfdom*—Hayek., diff. chapters.

(ii) "उपभोक्ता की सत्ता, व्यावसायिक स्वातन्त्र्य एव स्वतन्त्र नैतिक न्याय से वचित होंगे।"

(iii) "सम्पत्ति का लोप होना—तानाशाही राजनैतिक सत्ता द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति का हनन होना है।"

(iv) "लोकतन्त्र के विरोध म की हुई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बुरे से बुरे व्यक्ति सत्ताधारी बनते हैं, सत्ताधारी दल अपने विरोधियों को अपनी सत्ता के बल पर विभिन्न प्रकार की यातनायें देकर अपनी ओर मोडने के लिये विवश करता है। इस प्रकार समूहवाद का उत्थान मनुष्यो म बुरी भावनाओं को फैलाता है।"

(v) "योजना को कायान्वित करने से नागरिको को नैतिक न्याय मिलने से वचित होना पडता है, जिसके कारण विचार स्वातन्त्र्य तथा वाह्य बातें व्यर्थ पैर पटकती रह जाती हैं।"

(vi) "सत्ताधारियो की विजय से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सम्भावना बिलकुल दूर भाग जाती है।[1]

प्रो० मिजेन तथा वैवर (Prof Mises and Max Waber) ने आर्थिक नियोजन का विरोध करते हुए लिखा है, "समाजवादी अर्थव्यवस्था म बाजार के नियन्त्रण एव मूल्या के निर्धारण की कोई विधि नहा है तथा उत्पादन के साधनों के महत्त्व का ठीक ठीक अनुमान लगाने की कोई सम्भावना नहीं है। विशेष तौर से उत्पादन के साधनो का, जब तक वे बाजार में नही आ जायें, सही मूल्य

1 Prof Hayek's views (*Road to Serfdom*, diff. chapters) —

(i) "The all embracing plan must be enforced by arbitrary administrative decision so the rule of Law will disappear "

(ii) "Consumers' sovereignty, the free choice of occupation and right to independent moral judgment must all be sacrificed "

(iii) "The disappearance of property leads to the direct determination of the individual's wealth and status by the dictatorial political power "

(iv) "The reaction against democracy brings the worst people into power, with the concentration camp and the torture chamber as their favourite instruments of government, and the growth of collectivism releases the inflames of the evil passions of the people "

(v) "In order to make the plan work, all citizens must be coerced or deceived into making the same moral judgment, so that freedom of thought and objective science must be stamped out "

(vi) "With the conquest of authoritarian rule, the possibility of a moral life disappears "

निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि नियोजित अर्थ व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व ही नहीं होना है—तो उत्पत्ति के साधनों का सच्चा बाजार कैसे सम्भव हो सकता है ?[1] कुछ भी हों, यह सब सिद्धान्त पक्षपातपूर्ण है। हम पूर्णतया इन मतों से सहमत नहीं हो सकते ।

८—नियोजन की विशेषतायें

(Characteristics of Planning)

डरबिन (E F M. Durbin) की राय में नियोजन की प्रमुख विशेषता यह है, "नियोजन विभिन्न उद्योगों के स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाले दृष्टिकोण को तनिक भी प्रोत्साहित नहीं करता है। नियोजन भविष्य के विषय में कोई निश्चित दृढ़ सिद्धान्त नहीं बताता है न बताने चाहिए। विस्तारपूर्वक भावी मानवीय इच्छाओं, कलात्मक आविष्कार, सुरक्षा तथा खुशहाली का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसी योजनाओं का बनाना मूर्खता है जो समाज की आवश्यकताओं को तथा परिवर्तनों को ध्यान में रखकर शीघ्र हो परिवर्तित नहीं की जा सकती। फिर नियोजन की वास्तविक विशेषता क्या है और कहाँ है ? सर्वसाधारण की नवीन योजनाओं पर विचार किया जाय तो कह सकते हैं कि नियोजन इकाइयों के विस्तार को विस्तृत करने का तथा उसके परिणामस्वरूप उसके क्षेत्र को व्यापक करने का प्रबन्ध है। यह आर्थिक निर्णयों के समय पर ही किया जाता है।"[2]

---

1. "Within a socialistic economy there is no provision for market control of the process of price formation and, therefore, no possibility of accurate evaluation of the force of production Particularly, it is impossible to determine accurately the price of the means of production, since this can be worked out only in the market, whereas under a planned economy, with no private ownership of capital there is no market for the means of production."

2. "Planning does not, in the least imply the existence of a plan in the sense of an arbitrary plan for different industries Planning does not, and should not imply any dogmatism about the future. It is not possible to tell in detail what will happen to human tastes, to technical invention, to general standard of security and well being. It would, therefore, be foolish in the extreme to lay down plans which could not be amended quickly in the light of changing social requirements. Where then is the true characteristic of planning .the element common to all the forms of new control we regard as planning is the extension of the size of unit of management and the consequent enlargement of the field surveyed when economic decisions are made."

योजना को सफल बनाने के लिए, उसम अस्थिरता (Dynamicity) तथा लचीलेपन (Flexibility) के तत्वा का समावेश करना चाहिए। डा० बालकृष्ण ने नियोजन की प्रणाली (Planning Techniques) पर विचार करते हुए संकेत किया था, 'नियोजन एक अस्थिर सिद्धान्त है। केवल लक्ष्यो एव विनियोगो के विषय मे यह स्थिर (Static) है लक्ष्या को प्राप्त करने के लिए, उपाया के प्रयोग के साथ, नियोजन की अस्थिरताओं के सुदृढ अध्ययन को भी अपनाना चाहिए। नियोजन के बचन के साथ कीमत के तत्व म परिवतन होना आवश्यक है, तथा, क्रम के अभाव मे, अथ व्यवस्था के विभिन्न खण्डा मे, वे प्रसाधना क मुसगठित रूप पर विपरीत प्रभाव डालगे।'[1] श्री नेहरू ने भी राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) मे भाषण देने के अवसर पर इगित किया था कि, 'नियोजन, वास्तव मे, एक लगातार जारी रहने वाला सिद्धान्त है नियोजन का अथ केवल वस्तुओ के उत्पादन म प्राथमिकता देना ही नही है। यह विस्तृत एव गम्भीर विषय है— नियोजन की प्रथम बात यह है कि उसमे गतव्य अर्थात् मजिल की एव निश्चित रूपरेखा होती है। इस रूपरेखा की दृढ होने की आवश्यकता है।[2]

नियोजन को व्यापक एव पूण बनाने के लिए दीघकालीन नियोजन की व्यवस्था होनी चाहिए। इसम अल्पकालीन योजनायें भी सम्मिलित होनी चाहिए। नियोजन, यदि वह मनगढन्त इमारत नही है, तो उसे दीघकालोन सिद्धान्त होना चाहिए जिसे दीर्घकालीन नियोजन कहते है। सोवियत सघ चीन सयुक्त अरब गणराज्य, भारत एव पाकिस्तान आदि सभी देशो मे दीघकालीन नियोजन है। इसमे भी केवल एक मात्र योजना ही नही होनी चाहिए वास्तव मे आर्थिक नियोजन की सम्पूर्ण प्रणाली को

---

1 'Planning is a dynamic process To think merely in terms of targets and investments is purely a static approach with the implementation of the measures to reach targets a concurrent study of the dynamics of planning should be undertaken Factor prices are bound to undergo a change with the impact of planning and in the absence of regimentation, they would exert an adverse influence on the allocation of resources among different segments of economy" (*Planning Technique and the Indian Plan frame* Dr R Balkrishna, *Commerce*, Annual Number, Dec 1955 P A —28)

2 'Planning of course, is a continuous process Planning does not mean merely giving priorities to things It is something wider and deeper, the first thing about planning is to have a definite picture of where we are going This picture need not to be very rigid" (*Planning and Development*—Speeches of Shri Nehru Speech delivered at the N D C Meeting on Nov 9, 1954 (Govt of India Publication, P 15)

कई समय अथवा योजनाओं में विभक्त कर देना चाहिए। जैसे भारत की पंचवर्षीय योजना वार्षिक योजनाओं के आधार पर संचालित होती है। विस्तृत योजनायें विस्तृत दृष्टिकोणों एवं उद्देश्यों की ओर संकेत करती हैं, तथा अल्पकालीन योजनायें साधारण ढंग से संचालित की जाती हैं। हमारी योजनाओं में स्पष्टतः इस बात का संकेत है कि लम्बी-श्रेणी (Long-range), छोटी-छोटी श्रेणियों के समुदाय से बनती है अर्थात् बड़ी योजना लघु योजनाओं (वार्षिक योजनाओं) का समूह मात्र होती है।[1]

---

1. *Second five year plan—Govt. of India, pp. 18-19.*

नोट—'योजनाओं की विशेषतायें', अध्याय १३ में भी है।

अध्याय २

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
(Objectives of Economic Planning)

१—सामान्य सिद्धान्त
(General Theory)

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न हो सकते हैं। मुख्यतया, यह निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास करता है :—

(१) आर्थिक जीवन मे स्थायित्व।

(२) उत्पादन में कुशलता।

(३) वितरण मे समानता।

इसके विपरीत कैलहेउ (W. Keilhau) का कहना है कि नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्न आठ बातों का समावेश होना चाहिए[1] :—

(क) भविष्य की आवश्यकताओं का स्वरूप जिनको कि हम सन्तुष्ट करना चाहते हैं।

(ख) समय, जबकि आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करनी होगी।

(ग) वस्तु सामग्री तथा व्यक्तिगत सेवायें जो कि आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिये आवश्यक है।

(a) "The nature of the future want which we wish to satisfy.
(b) The time, when the want will have to be satisfied
(c) The material goods and personal service required to satisfy the want
(d) An appropriate method for producing, acquiring or securing the required goods and services
(e) The probable sacrifices for the achievement of the intended results
(f) The calculated balance, according to a personal or social standard, between intended results and probable sacrifice
(g) The resolution to carry out the activities under consideration or to give them up.
(h) If the resolution is positive, an appropriate plan for its execution." —W Keilhau.

(घ) आवश्यक सामग्री तथा सेवाओं को उत्पन्न करने, प्राप्त करने तथा लाभ उठाने की उचित प्रणाली।

(ङ) वाञ्छित परिणामों की प्राप्ति के लिए सम्भावित बलिदान।

(च) वाञ्छित परिणामों तथा सम्भावित बलिदानों के बीच व्यक्तिगत अथवा सामाजिक स्तर के अनुसार अनुमानित सन्तुलन।

(छ) किये जाने वाले कार्यों या उनको छोड़ देने की प्रस्तावना पर विचार।

(ज) यदि प्रस्तावना स्वीकृत हो जाती है तो उसको कार्यान्वित करने के लिए उचित योजना का निर्माण।

बी०सी० घोष के कथनानुसार आर्थिक नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं[1]:—

(१) "नियोजन सामाजिक उद्देश्य से उत्पादन तथा वितरण का अल्पकालीन ही नहीं बल्कि दीर्घकालीन साधन है।

(२) "मनुष्यों के रहन सहन के स्तर की उन्नति के साथ-साथ पूर्णरूप से रोजगार मिलने का प्रबन्ध करता है।

(३) देश का औद्योगीकरण करना है।"

कुछ अन्य विद्वान् आर्थिक नियोजन के वर्तमान उद्देश्यों से सन्तुष्ट नहीं हैं। आर० वी० राव का मत है कि "पूर्ण नियोजित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ है, आर्थिक क्रियाओं के पूर्ण क्षेत्र पर नियन्त्रण रखना अर्थात् उत्पत्ति, उपभोग, वितरण एवं द्रव्य आदि पर नियन्त्रण रखना।"[2]

प्रो० वाडिया तथा मर्चेंट के विचार से नियोजन का अर्थ है, "मनुष्यों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना, आर्थिक साधनों का समुचित उपयोग करके उनका बहुमुखी विकास करना, सुखी एवं समृद्ध जीवन की सम्भावना को बढ़ाना, देश में यातायात के साधनों का समुचित प्रबन्ध करना, गृह उद्योग-धन्धों को विकसित

---

1. (a) '*Planning, as we shall understand it, means production* and distribution with social purpose—not only for a short period, but also for a long period.

(b) "The attainment of full employment as well as the progressive improvement in the standard of living of the people.

(c) Industrialization of the country."—B. C. Ghosh

(2) "A full fledged planned economy would mean complete control over the entire field of economic activity—production, consumption, distribution, money etc."—R. V. Rao.

करना, ग्राम्य जीवन को समृद्ध बनाना तथा अधिक विस्तृत बाजारो का निर्माण करना ।"[1]

प्रो० आर्देशीर दलाल ने भी लिखा है कि "नियोजन का उद्देश्य उत्पादन का अधिक से अधिक सम्भव सीमा तक विकास करना तथा सर्वसाधारण के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना ।"

साधारणतया सभी प्रकार के नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—

(क) आर्थिक नियोजन, पूर्व-निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये, नियोजकों का पूर्व निश्चित तथा सामूहिक प्रयास होता है। लक्ष्य तथा उद्देश्य नियोजनाधिकारियों द्वारा निश्चित किये जाते हैं। उनको निश्चित करते समय वे देश में फैली हुई कुरीतियों, आर्थिक बुराइयों, देश की आर्थिक दशा तथा विकास की आवश्यकताओं आदि को ध्यान मे रखते है।

(ख) आर्थिक नियोजन का ध्येय उत्पत्ति व्यय को सम्भावित सीमा तक कम करना है। यह एक अन्य उद्देश्य है जिसका लक्ष्य कम कीमत से अधिक उत्पादन करना तथा उपभोग को बढाते हुए रहन सहन के स्तर को ऊँचा करना है। उत्पादन की क्षमता के विषय मे भी नियोजक द्वारा पहले ही निश्चय कर लिया जाता है।

(ग) सभी वस्तुओ, सेवाओं तथा अवसरो की माँग एव पूर्ति मे पहले से अच्छा सन्तुलन करना। साथ ही साथ इसके द्वारा अनियोजित अर्थव्यवस्था के अवगुणों को दूर कर दिया जाता है। जब तक माँग तथा पूर्ति मे समुचित सतुलन स्थापित नही होता है तब तक नियोजन के अधिकारी आय की असमानता का दूर करने मे, रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने मे, तथा समुचित अवसर प्रदान करने मे असफल रहेंगे।

२—नियोजन के विरोधी उद्देश्य

(Rival objectives in Planning)[2]

अधिक उत्पादन अथवा अधिक रोजगार (More output or more employment ?)·

सर डेनिस रौबर्टसन (Sir Dennis Robertson) ने बिल्कुल ठीक कहा है, "आर्थिक उत्थान को प्राप्त करने की विशेष आवश्यकता उपभोग के त्याग से ही केवल

1 "To raise the standard of living of people, to bring to them by a many sided improvement of economic resources, the possibilities of a riches and fuller life, to provide improved transport facilities within the country, to develop our domestic industries, to provide amenities to rural life and to create larger home markets."

2. Rival Objectives of Planning—Ashok Mehta (*Faces of Planning*, Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India, pp. 57—67.)

सम्बन्धित नही है बल्कि व्यवस्थित दिनचर्या मे क्रियाशील रूप से कार्य करने का परामर्श है—जो अधिक कठिन है।"[1] नियोजन के प्रत्येक क्षेत्र मे हमे इन सम्भव परिवर्तनो पर विचार करना होता है। उदाहरणार्थ, जब कभी हम बेकारी के पहलू, अथवा इससे भी अधिक, आर्थिक विकास पर रोजगार के दृष्टिकोण से विचार करते है, तो यह स्मरण रखना आवश्यक हो जाता है कि यह व्यवस्थित जीवन की लय तथा कार्य मे पर्याप्त परिवर्तन लाता है। बेरोजगार अथवा अपूर्ण रोजगार वाले व्यक्तियो की शक्ति को विकास के लिये एकत्रित कर देना है। पचवर्षीय योजनाओ का मौलिक रूप देखा जाय तो प्रतीत होगा कि उनमे लाखो ही हल्के कार्यो की वृद्धि की प्रस्तावना की गई है। यह अतिरिक्त रोजगार की प्रस्तावना है, स्थानापन्न नही। परम्परागत दोषपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक स्वरूप के विद्यमान होने के कारण, छिपे हुए एव पक्षपात से उत्पन्न बेरोजगारी के कारण तथा जनसख्या मे द्रुतगति से वृद्धि होने के कारण, योजना निर्मित अतिरिक्त कार्य बेरोजगारी की समस्या को समूल नष्ट करने के लिए कम पड गये हैं। इस प्रकार, हमारी योजनाओ मे प्रस्तावित लाखो अतिरिक्त हल्के कार्यो के उत्पन्न होने के बावजूद भी ऐसी सम्भावना की जाती है कि सन् १९५६ से सन् १९६१ मे बेरोजगारी और अधिक हो जायगी।

प्रो० सी० एन० वकील (Prof. C N. Vakil) ने भी सकेत किया है—"छिपे हुए बेरोजगार की समस्या का मुख्य कारण यह है कि नियोजित अर्थ-व्यवस्था जनसख्या की बढती हुई गति को ध्यान मे रखकर उसके अनुपात से व्यय अथवा लागत नही लगाती है।"[2] इस प्रकार योजना मे जो लागत अथवा विनियोग रक्खा गया है, हमे उसमे दुगने के लिए सोचना चाहिए। यदि बडे एव भारी उद्योगो पर अधिक बल दिया जाता है तो उसमे उद्योगो मे अभिनवीकरण की स्थापना से, उत्पत्ति मे प्रायोगिक परिवर्तनो के कारण, एव पूँजीवादी उत्पत्ति के सिद्धान्तो के ग्रहण करने से, अधिक बेरोजगारी उत्पन्न होना आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत, यदि छोटी मात्रा के उद्योग एव श्रमिक प्रमुख (labour intensive) उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया जाता है तो वे देश की तीव्र आर्थिक उन्नति मे बाधक ही साबित होगे। इसलिए, दोनो सिद्धान्तो का मिश्रण

---

1 "The sacrifice necessary to achieve economic growth consists not only in passive abstinence from consumption, but in something which is much harder namely, consent to being disturbed in established routine of life and work "—Sir Dennis Roberston.

2. "The problem of disguised unemployment arises because the economy does not step up the rate of investment above that of population growth."—Prof. C. N. Vakil.

ही एक ऐसा मार्ग है जिसमे देश की आर्थिक उन्नति की प्रगति में बिना किसी बाधा के अधिक रोजगार को शक्तियो का विकास होना सम्भव हो सकता है। यह भी कहा जाता है कि 'विकास स्वय ही बेरोजगार को बढावा देता है।' आर्थिक विकास के परिवर्तनो के साथ जैसे ही परम्परागत सामाजिक सगठन समाप्त होते है तो छिपा हुआ बेरोजगार स्पष्ट हो जाता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा पारिवारिक दृढता का जैसे ही अलग अलग होना आरम्भ हो जाता है तो अधिक मे अधिक ग्रामीण व्यक्ति रोजगार की खोज मे निकल पडते है।'

के० एन० राज—की भी राय है कि, "कम विकसित अर्थव्यवस्था मे रोजगार की समस्या क्रमश. बढती ही रहती है। क्योंकि, आर्थिक विकास की प्रगति के साथ तथा इसके फलस्वरूप शारीरिक एव मानसिक वातावरण मे परिवर्तनो के आने से, पुराने सामाजिक सगठन के शेष व्यक्तियो से आशा की जा सकती है कि वे अपने फालतू श्रम को कार्य मे लगाऐं।" इस प्रकार, सम्पूर्ण बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है।

प्रो० आर० नर्क्स (Prof Ragnes Nurske) ने पूँजी निर्माण के लिए देहाती क्षेत्रो मे अतिरिक्त देहाती श्रम के लिए अधिक अवसर प्रदान करने का दृढतापूर्वक प्रस्ताव किया है। उन्होने कहा है, "फालतू समय पूँजी एकत्र करने का मौलिक साधन है। कृषि मे अधिक सख्या म सलग्न कृषक समुदाय के लिए फालतू समय से आमदनी करने का अवसर पहले से ही विद्यमान है। इस फालतू श्रम के द्वारा पूँजी के निर्माण के लिए वर्तमान कार्य पद्धति मे विशेष परिवर्तन करने की आवश्यकता नही है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा, अपने समय के कुछ अश को पूँजी वाले कार्य म प्रयुक्त करके ही प्राप्त किया जा सकता।'

३—समाज सेवा या उद्योग ?

(Social Service or Industry ?)

अशोक मेहता ने ठीक ही कहा है, "यह सम्भव है कि सर्वाधिक लाभकारी लागत प्रणाली लोगों के हित का उत्थान करने के लिये उत्तम होगी। स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मकानो की सुव्यवस्था का प्रबन्ध करने का तात्पर्य है उनको अच्छा नागरिक बनाना और इसलिए इससे यह आशा की जा सकती है कि इस प्रकार अच्छे कर्मचारी उत्पन्न होंगे।" श्री नेहरू ने इस दशा का नाम 'व्यक्तियो की लागत' (Investment in masses) दिया है। प्रतिदिन की औसत Calories intake की साधारण व्याख्या से सिद्ध होगा कि अन्य कारणों के साथ साथ हमारे श्रमिकों मे अकुशलता,

सुस्ती, अनुपस्थिता, रोग, शीघ्र थकान आने की भावना विशेषरूप से विद्यमान है।[1]

प्रो० हैरी लेबिंस्टीन (Prof. Harrey Leibenstein) ने अपनी 'Economic Backwardness and Economic Growth' नामक पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर लिखा है, "Calorie intake एव उत्पत्ति मे सम्बन्ध १९४२ तथा १९४५ के मध्य जर्मनी मे Krant एवं Mulles ने बहुत से अध्ययनों द्वारा बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाया है।" जो बात अच्छे एव सन्तुलित भोजन के लिये सत्य है वही बहुत कुछ सामाजिक हित के अन्य विषयो—शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरजन की सुविधाये, मकान आदि मे भी बिलकुल सत्य है। लाइल डब्ल्यू० शैनन (Lyle W Shannon) के विचार मे "आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए एव आर्थिक दृष्टि मे उन्नत देशो की आर्थिक प्रगति की भिन्न भिन्न दरे, कृषि-प्रधान राष्ट्रो को औद्योगिक राष्ट्रो मे परिवर्तित करने के लिए साक्षरता तथा शिक्षा के प्रसार के महत्त्व की ओर सकेत करती है।[2]

४—केन्द्रीय लक्ष्य
(Central Objective)

नियोजन आयोग ने पचवर्षीय योजनाओ के उद्देश्यो पर प्रकाश डालते हुए योजना के निम्नलिखित केन्द्रीय उद्देश्य बतलाये है :—

नियोजन का केन्द्रीय उद्देश्य रहन सहन के स्तर को ऊँचा करना, सर्व-साधारण को अधिक सम्पन्न व समृद्ध बनाना, सबको सुअवसर प्रदान करके उन्हे अधिक धनी बनाना तथा जीवन के सभी पहलुओ को उन्नत बनाना है। इसलिए यह दोनो ही उद्देश्यो की ओर सकेत करता है।

१—देश मे प्राप्त उत्पत्ति के भौतिक तथा मानवीय साधनो का संतुलित ढंग से कार्य मे लगाना ताकि अधिक मे अधिक वस्तुओं का उत्पादन हो सके।

२—आय की असमानता को दूर किया जाय एव सबको सुअवसर प्रदान किया जाय।

प्रारम्भिक अवस्था मे अधिक उत्पादन के नियोजन पर अधिक बल दिया जाता है। प्रारम्भ मे सामाजिक तथा आर्थिक स्वरूप मे परिवर्तन लाने के लिए आर्थिक क्रियाओ को प्रोत्साहन देना उचित नहीं है। रचनात्मक कार्य स्वयं ही

---

1. Calorie intake (Average) in under-developed areas=2100 per day.
   Calorie intake (Average) in middle income Areas=2200-2800 ,,
   Calorie intake (Average) in advance countries=Above 3000 ,,
2. L. W. Shannon, '*Under Developed Area*' P. 113.

यह सत्य है कि भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् राजा तथा उनकी विशाल सम्पत्ति का वैभव अतीत की बात बनकर रह गये हैं और उनकी रियासत छीन ली गई हैं लेकिन आय तथा धन को असमानता आज भी हमारे देश मे बडे रूप से व्याप्त है।

ग्राम्य तथा शहर के समाज, सभ्यता तथा आर्थिक परिस्थितियों की पूर्व व्यापक विषमताओं ने भी असमानता का जन्म दिया है। यह अन्तर हमारी आर्थिक प्रणाली के दोष से उत्पन्न हुआ है। कृषि तथा ग्रामीण शिल्प पर अत्यन्त निर्भर रहना तथा उनसे आज के उद्योगों की अपेक्षा बहुत कम उत्पादन होना भी असमानता का मूल कारण है। इस असन्तुलन तथा हमारे आर्थिक स्वरूप के बदलने के लिए पच-वर्षीय योजनाओं को जन्म दिया गया है। जैसे सविधान ने राजनैतिक तथा सामाजिक असमानताओं को दूर करने के प्रयत्न किये हैं उसी भाँति आर्थिक नियोजन भी आय तथा धन की असमानताओं को दूर करेगा।

आर्थिक असमानता को दूर करने मे मुख्य बाधा स्वय असमानता है। क्योंकि यदि असमानता का विनाश करने एव सबको भाज्य सामग्री में उचित भाग मिलने का आश्वासन देने वाली विधि अपनाई जाय तो रोटी छोटी होती जायेगी। तात्पर्य यह है कि पूर्व व्यापक असमानता को यदि किसी भी आवश्यक वस्तु के खण्ड करके दूर किया जाय तो एक दूसरी असमानता की समस्या और सम्मुख आयेगी तथा इससे तनिक भी लाभ नही होगा। इसलिए 'आश्वासन दिलाना आवश्यक है।'

८—समानता की ओर

(Towards Equality)

यदि 'बुराई के कारणों को नष्ट कर दिया जाय तो बुराई स्वय नष्ट हो जाती है।' इसलिए हमारे देश मे आर्थिक असमानता न्यून करने एव आर्थिक समानता की ओर अग्रसर होने के लिए निम्नलिखित उपाय बताए गये हैं तथा उनका अनुसरण किया गया है एव किया जा रहा है :—

(क) कम्पनी कानून मे सुधार करना एव उद्योगो के स्वामित्व तथा नियन्त्रण के एकत्रीकरण को समाप्त करना।

(ख) इम्पीरियल बैंक और जीवन बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करना, जिनमे कि समाज की बहुत बडी बचत का भाग एकत्रित है।

(ग) आर्थिक सघ की स्थापना, जिसमे उद्योगो—और विशेषकर नवीन व्यापारियों को सुविधा दिये जाने का इन सघो मे प्रबन्ध होना।

(घ) उद्योगो का राष्ट्रीयकरण—समाजवादी अर्थ व्यवस्था की स्थापना के लिए यह परमावश्यक है कि राष्ट्र के समस्त प्रमुख उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर दिया

जाय। देश की आर्थिक असमानता को दूर करने का और औद्योगिक उन्नति प्राप्त करने का केवल यही एक उपाय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के प्रयास में भारत के समस्त उद्योगों को स्वामित्व और नियन्त्रण की दृष्टि से इन तीन भागो मे विभाजित किया गया है—सार्वजनिक क्षेत्र, सार्वजनिक तथा निजीक्षेत्र एव निजीक्षेत्र। सरकार का लक्ष्य अन्तिम रूप से समस्त उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करना है।

(ङ) विकेन्द्रीकरण—सहकारी प्रथा के अन्तर्गत लघु और कुटीर उद्योगो का सगठन करके।

(च) कृषि और कृषि-सम्बन्धी उद्योग-धन्धो की उन्नति करना। कृषि-सम्बन्धी कानून म सुधार करके, सामुदायिक विकास कार्यों की उन्नति द्वारा और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओ मे विस्तार करके।

(छ) आर्थिक असमानता को कम करने के उद्देश्य को ध्यान मे रखकर एक सुव्यवस्थित कर प्रणाली को अपनाया गया है। स्वतन्त्रता से पहले की कर-नीति मे सुधार के साथ साथ 'एस्टेट ड्यूटी' और 'कैपीटल गेन्स टैक्स' लगाए गए हैं।

(ज) अधिकतम आय की सीमा को कम करके और न्यूनतम आय की सीमा को बढाकर भी असमानता को दूर किया जा रहा है।

(झ) कृषि उत्पत्ति मे वृद्धि, शिक्षा और रोजगार के अधिक सुअवसर और उद्योगो का विकास इस उद्देश्य से हो रहे है, जिससे आय की असमानता दूर हो सके।

९—समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना

(The Attainment of a Socialistic Pattern of Society)

समाज का समाजवादी रूप—इसका उद्गम तथा अर्थ :

सन् १९४८ मे अवादी (Avadi) मे स्वीकृत हुए आर्थिक नीति के प्रस्ताव (Economic Policy Resolution) का उद्देश्य था—"देश के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में विकास करना, देश मे अधिक वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति करना, जीवन-स्तर को ऊँचा बनाना और रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करना—जिससे दस साल की अवधि मे सम्पूर्ण रोजगार का लक्ष्य पूरा हो सके।" प्रस्ताव मे आगे कहा गया था कि "राष्ट्र का ध्येय हितकारी राज्य की स्थापना तथा समाजवादी आर्थिक समाज की स्थापना करना है। यह केवल राष्ट्रीय आय मे वृद्धि और अधिक उत्पत्ति एवं रोजगार के अवसर उत्पन्न करके प्राप्त हो सकते हैं।"

प्रस्ताव मे यह भी बताया गया था कि समाजवादी समाज की स्थापना मे "राज्य, नियोजन तथा विकास के कार्य मे आवश्यक रूप से एक महत्त्वपूर्ण कार्य करेगा।" राज्य बडे पैमाने पर योजनायें बनाने का प्रयत्न करेगा। इसके अन्तर्गत राज्य, शक्ति, यातायात के साधन और अन्य बातो के विकास मे सहयोग प्रदान करेगा और देश की आर्थिक विषमताओ को दूर करेगा। समाजवादी ढग के समाज की विशेषतायें निम्न हैं[1]:—

(क) समाजवादी समाज की प्रणाली का मूल उद्देश्य एक ऐसे सामाजिक तथा आर्थिक क्रम की स्थापना है, जिसके अन्तगत समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सुअवसर समान रूप से मिले।

(ख) इस प्रकार का समाज जाति पाँति, धर्म और स्त्री-पुरुष के भेदभाव तथा आर्थिक असमानता के अन्तर को दूर करे।

(ग) राज्य, राष्ट्रहित के उद्देश्य से उत्पत्ति के साधनो का नियन्त्रण अपने हाथ मे ले।

(घ) समाज आर्थिक प्रणाली का एक ऐसे ढग से सगठन करे जिससे राष्ट्र की सम्पत्ति केवल कुछ ही व्यक्तियो के हाथो मे एकत्रित न हो जाय। क्योंकि इससे देश की जनता को हानि होती है।

(ङ) देश की सम्पत्ति मे वृद्धि करने के लिए और उत्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि करने के लिए सुव्यवस्थित प्रयास करना।

(च) राष्ट्रीय आय को समान रूप से वितरित करना और इसके द्वारा आर्थिक विषमताओ को दूर करना।

(छ) इस प्रकार का सामाजिक तथा आर्थिक निर्माण शान्तिपूर्वक एव लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर हो।

समाजवादी ढग के समाज के सात सिद्धान्त[2]:

(१) प्रथम सिद्धान्त के अनुसार नागरिको को पूर्ण रोजगार तथा कार्य करने का अधिकार मिलना है। समाजवादी ढग के समाज की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है जबकि देश के कार्य के उपयुक्त सभी व्यक्तियो को कार्य करने का सुअवसर मिले।

(२) समाजवादी ढग के समाज का दूसरा सिद्धान्त राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिक से अधिक उत्पादन बढाना है। समाजवादी ढग के समाज की स्थापनार्थ योग्य

1. *Socialistic Pattern of Society*—Shriman Narayan, A I C C, New Delhi.

2. *Ibid.*

नागरिकों को योग्यतानुसार व्यवसाय और रोजगार दिलाना ही पर्याप्त नहीं है साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि आर्थिक जीवन को एक ऐसे ढग से सगठित किया जाय जिसस उपभोक्ता की वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हो और रहन सहन का स्तर ऊँचा हो सके ।

(३) इसका तीसरा सिद्धान्त यह है कि राष्ट्र विभिन्न क्षेत्रो मे अधिक से अधिक आत्मनिर्भर हो जाय ।

(४) समाजवादी ढग के समाज का चौथा मौलिक उद्देश्य सामाजिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्त करना है । कोई समाज उस समय तक सही रूप से समाजवादी नहीं कहा जा सकता है जब तक कि इसके सगठन मे सामाजिक एकता तथा न्याय न हो । आर्थिक असमानता तथा अन्याय को दूर करने के साथ साथ भारतीय समाज मे अधिक से अधिक समानता लाना भी बहुत आवश्यक है ।

(५) *समाजवादी ढग के समाज की स्थापना शान्तिपूर्ण, अहिंसात्मक* और प्रजातन्त्रात्मक प्रणालियों को अपनाकर होनी चाहिए । ससार के समाजवादी और साम्यवादी राष्ट्रो ने समाजवाद की स्थापना वर्ग सघर्ष, हिंसात्मक प्रणाली और गृह-युद्ध को अपनाकर की है । पर भारत का ऐसा कोई विचार नहीं है कि वह इन समाजवादी या साम्यवादी राष्ट्रो की पद्धति का अनुकरण करे । प्रथम और द्वितीय योजनाएँ इन्हीं आधारों पर आधारित है ।

(६) इसका छठवां मूल उद्देश्य ग्राम पचायता तथा सहकारी उद्योगो की स्थापना करके आर्थिक तथा राजनैतिक शक्तियो का विकेन्द्रीकरण करना है ।

(७) समाजवादी ढग के समाज को स्थापना का अतिम लक्ष्य यह है कि देश के सबसे निर्धन वर्ग का सर्वाधिक लाभ या सुविधायें राज्य द्वारा प्रदान की जायें । भारत म समाजवादी ढग के समाज को स्थापना इसीलिए हो रही है जिससे देश की साधारण जनता जो अत्यधिक गरीब है—को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके ।

समाजवादी ढग का समाज तथा भारतीय योजनायें[1] (Socialistic Pattern and Indian Plans)

भारत की पचवर्षीय योजनाओ के निर्माताओ ने नियोजन के अन्तर्गत समाजवादी ढग के समाज की स्थापना पर बल प्रदान किया है । भौतिक कल्याण मे वृद्धि या जीवन स्तर म उन्नति ही नियोजन का एकमात्र ध्येय नहीं होना । यदि किसी समाज को अपने अधिकतर समय और कार्य के घण्टो को जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओ को उत्पन्न करने म ही व्यतीत करना पडे तो वह जीवन के उच्च आदर्शों की प्राप्ति कैसे कर सकेगा ? आर्थिक विकास का तात्पर्य राष्ट्र की उत्पादन

1 Second Five Year Plan, Government of India, 1956

शक्ति को विस्तृत करना तथा एक ऐसे वातावरण को उत्पन्न कर देना है, जिसमें उत्पादन और विकास के क्षेत्रो का विस्तार हो सके।

अविकसित देशों का लक्ष्य केवल यही नहीं होता कि देश मे आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जाय, बल्कि उन सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं में इस प्रकार का परिवर्तन लाना होता है, जिससे देश की आर्थिक उन्नति द्रुतगति से हो एवं जीवन के उच्च आदर्श भी प्राप्त हो सकें।

इन महत्ताओं तथा मूल उद्देश्यो को 'समाजवादी ढग के समाज' शब्दो मे समावेश किया गया है। विकास के मूल सिद्धान्त को निर्धारित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका वास्तविक अर्थ व्यक्तिगत लाभ न होकर सामाजिक लाभ है। विकास की प्रणाली मे सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्ध इस प्रकार नियोजित होने चाहिए जिससे कि राष्ट्रीय आय तथा रोजगार मे केवल समुचित वृद्धि ही न हो, बल्कि विभिन्न वर्गो मे आय तथा सम्पत्ति के वितरण मे भी समानता आ जाय। उत्पादन, वितरण, उपभोग तथा नियोजन के मूल सिद्धान्तों का निर्णय नियोजको द्वारा सामाजिक उन्नति के उद्देश्य से किया जाना चाहिए। नियोजन के द्वारा एक ओर दरिद्र वर्ग को अधिकतम लाभ प्राप्त होना चाहिए और दूसरी ओर, राष्ट्र मे सम्पत्ति तथा आय का समान वितरण होना चाहिए।

कुछ मुख्य उद्योगो मे, जिनमे बड़ी मात्रा मे उत्पत्ति होती है तथा उत्पत्ति की नवीनतम प्रणाली अपनाई जाती है, उत्पादन-कार्य पर नियन्त्रण होना चाहिए। इन क्षेत्रों मे विकास का उत्तरदायित्व मुख्यतया राज्य का होगा, तथा नवोदित इकाइयों को भी राज्य सचालन के अन्तर्गत आना पड़ेगा। प्रबन्ध मे जनता का पूर्ण या आंशिक स्वामित्व, नियन्त्रण अथवा सहयोग उन क्षेत्रो मे विशेषत: जिनमे शिल्प सम्बन्धी उत्पत्ति प्रणाली, आर्थिक शक्ति तथा धन के एकत्रीकरण पर आवश्यक है, बल देती है। उन क्षेत्रों में जहा व्यक्तिगत उद्योग राज्य की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकते, उन क्षेत्रो मे सार्वजनिक और अर्ध सार्वजनिक साधनों का उपभोग आवश्यक है। शेष आर्थिक क्षेत्रो मे एक ऐसी आर्थिक प्रणाली को अपनाना चाहिए जिसमे साहसी एकाकी या सहकारिता के आधार पर वस्तु और सेवाओं की उत्पत्ति के लिए पूँजी का विनियोग कर सकें।

१०—कल्याणकारी राज्य की स्थापना

(The Attainment of a Welfare State)

भारतीय योजना का एक अन्य उद्देश्य देश मे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना भी है। कल्याणकारी राज्य राष्ट्र निवासियों को जीवन की प्रारम्भिक

आवश्यकताओं, जैसे खाद्य पदार्थ, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं को प्रदान करने की शपथ ग्रहण करता है। कल्याणकारी राज्य द्वारा वृद्ध, अपाहिज, अनाथ और बेरोजगार मनुष्यों की सहायता की जाती है।

टी० डब्ल्यू केन्ट (T. W. Kent) ने इसकी परिभाषा इस तरह दी है, "वह राज्य जो अपने नागरिकों को अनेक सामाजिक सुविधाएँ प्रदान करता है। इनमे से प्रथम लक्ष्य नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना है। यदि वह अपनी साधारण आय से किसी प्रकार वंचित रह जाता है तो राज्य उसको सहायता करता है।"

डा० अब्राहम (Dr. Abraham) के अनुसार, "कल्याणकारी राज्य एक ऐसा राज्य होता है, जिसमे सरकार आर्थिक शक्तियों को अपने हाथ में इसलिए ले लेती है ताकि वह देश के आर्थिक प्रयासों को नियन्त्रित कर सके और देश की सम्पत्ति और आय का देशवासियों में समान वितरण कर सके। इसी के साथ साथ उसका यह भी कार्य होता है कि वह जनता की वास्तविक आय को बढाने का प्रयास करे।"

कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त भारत के लिए नवीन है। सन् १९४७ के बाद मे भारत एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की चेष्टा कर रहा है तथा दलितवर्ग की युग पुरानी बाधाओं को दूर करने, आय की असमानता को कम करने तथा राज्य की आय, सम्पत्ति और सामाजिक न्याय मे समानता लाने का प्रयास कर रहा है। आर्थिक विषमतायें हमारे देश में सदियों से फैली हुई हैं। इसका मूल कारण अँग्रेजों की दोषपूर्ण आर्थिक नीति तथा आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez faire Policy) का अस्तित्व है। श्री अशोक मेहता ने अनुमान लगाया है कि भारत में ३० बडे उद्योगपतियों ने अपने "सहयोगियों के सहयोग से भारत की आर्थिक स्थिति और उद्योगों पर अधिकार कर रखा है।"

लोकतन्त्र को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि आर्थिक असमानता और निर्धनों का शोषण शीघ्रातिशीघ्र रोक दिया जाय। क्योंकि देश की जनता कितनी भी अशिक्षित तथा दलित क्यों न हो आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक यातनाओं को दीर्घकाल तक सहन नहीं करेगी। आइन्स्टाइन (Einstein) का कथन, "भूखा मनुष्य अच्छा राजनैतिक सलाहकार नहीं होता है" आज की तथा भविष्य की परिस्थितियों मे भी बिल्कुल सत्य ही सिद्ध होगा। Ann Van Wynen Thomas का कथन इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है, "भूखे व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं होते हैं। जिस किसी ने कभी भी भूख का अनुभव किया है वही दूसरों की भी अपनी तरह चिन्ता करता है। भूखे आदमियों मे स्वतन्त्रता की या अन्य बात करना उचित नहीं है।

भूखे मे सम्पर्क स्थापित करने का सबसे अच्छा तथा केवल एक ही ढग है कि उसे भोजन कराये जायें। दूसरी ओर, स्वतन्त्रता को समानता भरे पेट पर भ्रम या इन्द्रजाल होगी।"

नियोजन आयोग ने कल्याणकारी राज्य के लिए आर्थिक नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्य बताये है :—

"वर्तमान सामाजिक व आर्थिक निर्माण कार्य मे आर्थिक क्रियाओ (Econom c Act vity) को पुनः व्यवस्थित करने को समस्या नही है, बल्कि निर्माण-कार्य को इस प्रकार सगठित करना है ताकि मूल आवश्यकताये (Fundamental Urges)—स्वतः ही कार्य करने का अधिकार, पर्याप्त आय का अधिकार, शिक्षा प्राप्ति का अधिकार तथा वृद्धावस्था, बीमारी एव अन्य आपत्तियों के विरुद्ध बीमा या सुरक्षित रहने का अधिकार आदि पूरी कर सके।"

हमारे सविधान मे लोकतन्त्र के अन्तर्गत एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने का उल्लेख है। हमारे सविधान के तृतीय भाग की धाराओ से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जायगा कि—

१—"राज्य के अन्तर्गत किसी कार्यालय मे नियुक्ति, रोजगार आदि के विषयो मे सभी नागरिको को समानता होगी।"

२—"सभी नागरिको को सम्पत्ति अर्जित करने, उसे रखने या उनको बेचने का पूर्ण अधिकार होगा।"

३—"मानव व्यापार (Traffic in Human beings), भिक्षा व्यापार अथवा किसी से जबर्दस्ती काम लेना निषिद्ध होगा।"

(हमारे सविधान का चतुर्थ खण्ड) राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principals of State Policy) का उल्लेख करके कल्याणकारी राज्य का एक सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करता है :—

(क) सभी नागरिकों—स्त्री तथा पुरुषों को अपनी पर्याप्त जीविका (L velihood) अर्जन करने का समान अधिकार होगा।

(ख) समाज के भौतिक साधनो के स्वामित्व तथा नियन्त्रण को इस प्रकार वितरण करना जिससे सर्वसाधारण का कल्याण हो सके।

(ग) आर्थिक प्रणाली की व्यवस्था इस प्रकार की जाय ताकि सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन कुछ हो व्यक्तियो मे एकत्रित होकर सर्वसाधारण का अपकार न कर सकें।

(घ) बच्चे तथा नवयुवको को शोषण से बचाया जायगा।

(ङ) *स्त्री तथा पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था* होगी।

(च) स्त्री और पुरुष मजदूरों की शक्ति और स्वास्थ्य का क्षय न हो पाए और बच्चों का (जो मजदूरी करते हैं) शोषण न हो सके।

११—कल्याणकारी राज्य की स्थापनार्थ ग्रहण किये हुए उपाय
(Measures adopted to Attain a Welfare State)

जब से राज्य ने समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था तथा कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्तों को अपनाया है, तभी से राज्य ने इन्हें प्रयोग में लाने के लिए असंख्य प्रभावशाली कदम उठाये हैं। राज्य ने देश में फैली आय की असमानता एवं सम्पत्ति की असमानता को दूर करने के लिए तथा द्रुत औद्योगीकरण को प्रभावित करने के लिए राज्य उद्योगों की स्थापना की है। समाज में उत्पादन, उपभोग तथा वितरण की समानता लाने के लिए राज्य द्वारा बहुत से कानून, प्रस्ताव तथा बिल प्रस्तुत किये गये हैं।

सन् १९४८ में फैक्ट्री कानून पास किया गया (जिसमें बाद में कुछ सुधार भी हुए)। इसके अनुसार कारखानों में कार्य करने की पहले से अच्छी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना—काम के घण्टे कम करना, स्वच्छता का प्रबन्ध, प्रकाश, रोशनदान, विश्रामगृह, कैन्टीन, मनोरंजन के साधन इत्यादि जुटाना। बहुत-से मालिकों की शोषण वाली नीति को रोकना। इसके अनुसार मजदूरों को कम से कम समय कार्य करना पड़ेगा किन्तु अधिक से अधिक पारिश्रमिक प्राप्त हो सकेगा, जिससे वे अपने रहन सहन के स्तर को ऊंचा कर सकें। उनके रहने के लिए आवास का प्रबन्ध भी धीरे धीरे किया जाना है।

मजदूरों की राज्य बीमा योजना (Employees' State Insurance Scheme) भी देश में लागू कर दी गई है, जिससे मजदूरों को निम्नलिखित मुख्य लाभ प्राप्त होंगे —

१—स्वास्थ्य सम्बन्धी सहायता। २—अपाहिज अवस्था में सहायता। ३—निर्भरता स्थिति में सहायता। ४—बीमारी की अवस्था में सहायता, और ५—प्रसूति सहायता (Maternity Benefit)।

सामाजिक एकता एवं मानवजाति में समानता लाने के लिए भिन्न भिन्न कानून बनाये गये हैं, विशेषकर समाज की असमानता तथा छूआछूत के द्वारा उत्पन्न बुराई से बचने के कानूनों का निर्माण हुआ है।

इम्पीरियल बैंक और देशस्थित जीवन-बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण इसलिए किया गया है कि उनमें पर्याप्त मात्रा में पूँजी प्राप्त हो सके—जिससे

सामाजिक लाभ के उद्देश्य से उद्योगों की स्थापना हो सके। इम्पीरियल बैंक और जीवन-बीमा कम्पनियों में साधारण जनता की छोटी-छोटी बचतें एकत्रित थी। इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण इसलिए भी किया गया कि वह छोटी छोटी औद्योगिक संस्थाओं एवं सहकारी संस्थाओं को अधिक आर्थिक सहायता प्रदान कर सके।

राज्य ने सदियों से चली आ रही देहातियों, विशेषकर कृषकों की आपत्तियों, कठिनाइयों तथा यातनाओं को दूर करने के लिए कुछ उपाय अपनाये हैं तथा कुछ कानून बनाये हैं, उनमें से मुख्य यह हैं :—मालगुजारी कानून, जमींदारी प्रथा का अन्त, बिखरी हुई भूमि की चकबन्दी, सहकारी कृषि-प्रणाली का प्रारम्भ करना, सामुदायिक विकास योजनाओं की स्थापना, विकास खण्डों की स्थापना तथा अत्यधिक व्याज की दर को रोकने का कानून (Usarious Interest Act) आदि।

इनके अतिरिक्त न्यूनतम और अधिकतम आय की सीमा बांधना, कैपीटल गेन्स टैक्स (Capital Gains Tax), एस्टेट ड्यूटी, भारी और प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, फाइनेंस कौरपोरेशन की स्थापना और बहुत से राज्य उद्योगों की स्थापना आदि कल्याणकारी राज्य के आदर्शों के अनुसार अपनाये गये है, ताकि राष्ट्र के समस्त नागरिकों को अधिकतम लाभ और सुख-सुविधा प्राप्त हो सके। भारत में प्रथम, द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनायें इसी आदर्श को सामने रखकर बनाई गई हैं, और कार्यान्वित हो रही हैं। यह आशा की जाती है कि भविष्य में इस प्रकार के अन्य और भी बहुत-से कदम उठाए जायेंगे, जिनमें भारत में एक आदर्श कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सकेगी।

नियोजन और रोजगार
(Planning and Employment)

१—विषय-प्रवेश
(Introductory)

सभी आर्थिक नियोजनों का आदर्श पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना है। गैलेन (Galen) ने शायद सबसे पहले इस सत्य की व्याख्या की थी, "रोजगार की प्राप्ति प्राकृतिक औषध है जो मानवीय प्रसन्नता के लिए आवश्यक है।"[1] यह कथन शत प्रतिशत सत्य है।

पूर्ण रोजगार के सिद्धान्त का वर्णन और उसकी परिभाषा विभिन्न प्रकार से की गई हैं। पूर्ण रोजगार, "वह परिस्थिति होती है जिसमे रिक्त स्थानो की सख्या बेकार मनुष्यों की सख्या से देखने मे कम न हो ताकि यदि एक व्यक्ति किसी भी समय एक काम को छोडकर दूसरे काम को प्राप्त करने का प्रयास करे तो उसमे वह सफल हो जाय।" सर विलियम बैवरेज (Sir William Beveridge) ने पूर्ण रोजगार की परिभाषा इस प्रकार की है, "वह दशा जिसमे रिक्त स्थानों की सख्या बेकार आदमियो से अधिक हो।" उसने लिखा था कि इसका यह भी अर्थ है, "ठीक मजदूरी की दर पर कार्यो की सख्या इस प्रकार हो कि बेकार व्यक्ति सरलता से उन्हे प्राप्त कर ले। परिणामस्वरूप, एक काम के छूटने मे और दूसरे को पाने म कम से कम समय लगे।"[2]

पूर्ण रोजगार के सिद्धान्त मे किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। पूर्ण रोजगार का अर्थ है कि 'बेकार परन्तु कार्य के योग्य व्यक्तियों को रोजगार का अवसर इस शर्त पर प्रदान करना कि वह भिन्न परिस्थितियों म कार्य करने को सहमत हो।' लीग ऑफ नेशन्स (A League of Nations Committee) ने सन् १६१६ मे ही कहा था, "बेकार व्यक्ति वह है जो मजदूरी के लिए काम की तलाश मे हो तथा अपनी क्षमता एव योग्यतानुसार काम पाने मे असफल रहा हो।" यह विचार बहुत सीमा तक पीगू (Prof A. C. Pigou) के विचारो से मिलता जुलता है—"दिये हुए कार्य

1 'Employment is Nature's Physician and essential to uman happiness" —Gallen
2. "Full employment in a freee society." —Sir W Beveridge.

की परिस्थिति, कार्यों के घण्टे और मजदूरी की दर पर किसी उद्योग में कार्य के इच्छुकों और जिनको इस उद्योग में कार्य मिलता है, उनके अन्तर को उस उद्योग में फैली हुई बेरोजगारी कहते हैं।[1]

बेकारी की समस्या को विभिन्न विद्वानों और अर्थशास्त्रियों ने अनेक ढंग से वर्गीकरण किया है। उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं :—

१—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष बेरोजगारी। २—मौसमी बेरोजगारी। ३—आवर्तक बेरोजगारी। ४—साधारण बेरोजगारी। ५—प्रौद्योगिक पद्धति के परिवर्तनस्वरूप उत्पन्न बेरोजगारी। ६—अपूर्ण रोजगार। ७—कृषि-सम्बन्धी बेरोजगारी, और ८—शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी।

बेरोजगारी के भी बहुत-से कारण होते हैं। यह विभिन्न राज्यों, समाज, वातावरण तथा मनुष्यों में भिन्न प्रकार की होती है। विभिन्न विद्वानों के बताये हुए बेरोजगारी के सिद्धान्तों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है :—

(अ) किसी उद्योग में निर्मित वस्तुओं की बहुत काल तक माँग में कमी रहना।

(ब) दुर्निर्देशित माँग (Misdirected demand)।

(स) 'श्रम-बाजार' का असफल संगठन या काम का कम होना तथा रोजगार (Labour market) की खोज में आदमियों का अधिक होना।

(द) कृषि सम्बन्धी धन्धों पर अधिक दबाव।

(य) उत्पादन में अन्वेषणों का न होना और उत्पत्ति की प्रणालियों में परिवर्तन न होना।

(र) यातायात, सम्वादवाहन तथा बिक्री के कार्यों की सुविधाओं में कमी।

(ल) व्यापार चक्र को रोकने में असफलता।

(व) दोषपूर्ण शिक्षा तथा प्रशासन प्रणाली का होना।

(श) कृषि तथा उद्योगों के उत्पादन में उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होना।

२—बेरोजगारी दूर करने के विभिन्न उपाय

(अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन)

समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन अवधि को ध्यान में रखकर इनके भिन्न भिन्न उपाय बताये हैं। उनमें से कुछ केवल सैद्धान्तिक और आदर्श रूप से ही ठीक हैं जबकि अन्य विद्वानों ने एक निश्चित कार्यक्रम का उल्लेख किया है। बृजगोपाल गुप्ता ने "A Treatise on Employment" में बेरोजगारी को दूर करने के लिए निम्नलिखित आठ सुझाव दिये हैं[2] :—

1 Prof A C Pigou, '*Unemployment.*' *(1916)*
2. Brij Gopal Gupta– *A Treatise on Employment.* (Ch. IX P. 34)

(१) सूचना तथा निर्णय के लिए नियोजन।

(२) पूर्ण रोजगार की नीति अपनाने के लिये जनता का सहयोग।

(३) पर्याप्त मात्रा का विनियोग—जिसमे जनता को विनियोग करने का सुअवसर मिले।

(४) निजी उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करना।

(५) उपभोग को प्रोत्साहन देना।

(६) मूल्य मे एकाधिकार की स्थापना का विरोध।

(७) विदेशी व्यापार में वृद्धि तथा विदेशी विनियोग-नीति को बढावा देना।

(८) बेरोजगारी को दूर करने के लिये ऐसा ही प्रयास करना जैसा कि युद्ध-सङ्कट को दूर करने के लिये किया जाता है।

नियोजन आयोग ने बेकारी से मुक्ति पाने के लिए निम्नलिखित ११ सिफारिशें की है[1] :—

(१) व्यक्तियो तथा छोटे छोटे वर्गों को छोटे छोटे उद्योग तथा व्यापार स्थापित करने के लिए राज्य के सहायता-कानून के अन्तर्गत सहायता प्रदान करना।

(२) जिन क्षेत्रो में मानव शक्ति की कमी अभी विद्यमान है उन क्षेत्रो मे प्रशिक्षण सुविधाओ को विस्तृत करना। बहुत सी ऐसी दिशायें है, जिनमे अभी प्रशिक्षण की कमी विद्यमान है—जो पचवर्षीय योजनाओं की सफलता मे बाधा डालती हैं। प्रशिक्षण सुविधाओ के विस्तार से योजना का कार्य सरल हो जायगा और अर्द्ध-शिक्षित श्रमिको को रोजगार मिल जायगा।

(३) कुटीर उद्योग धन्धो एव छोटी मात्रा के उद्योग धन्धो के उत्पादित माल को राज्य, सरकारी सस्थाओ और अन्य सस्थाओं द्वारा खरीदा जाना, जिससे इन उत्पादको को प्रोत्साहन मिले।

(४) स्वायत्त शासन (नगरपालिका आदि) के अधिकारियो को व्यक्तिगत शिक्षण सस्थाओ तथा स्वेच्छापूर्वक स्थापित सस्थाओ की स्थापना मे तथा नगरो मे वयस्क शिक्षा केन्द्र (Adult Education Centre) खोलने मे सहायता करनी चाहिए। देहात मे 'एक अध्यापक स्कूल' खोलकर रोजगार बढाने में प्रोत्साहन देना चाहिए।

(५) राष्ट्रीय विस्तार सेवा (National Extens on Service) के कार्य को स्वय इसके उत्थान के लिये साहस पूर्वक चलाना चाहिए ताकि यह देहाती अर्थ-व्यवस्था की उन्नति मे तथा शिक्षित वर्ग को बेकारी की समस्या को दूर करने मे अधिक मे अधिक मौलिक तथा तत्कालीन सहायता कर सके।

---

1. Recommendations made by the Planning Commission, Govt. of India.

(६) सडको के यातायात का विकास होना चाहिए। वर्तमान अनुज्ञप्ति नीति (Licens ng Policies) का पुन: परीक्षण इस दृष्टि से किया जाय कि सडक यातायात का विकास हो, वह भी विशेषकर गैरसरकारी क्षेत्र मे हो।

(७) नगरो मे स्थित गदी वस्तियो को हटाकर कम आय वाले वर्ग के लिए निवास स्थान के निर्माण की योजना बनाना—अर्थात् उनके लिए नये मकानो का बनाना।

(८) व्यक्तिगत रूप से मकान बनाने के कार्य को प्रोत्साहन देना।

(९) शरणार्थियो की नगर बसाने वाली योजना मे नियोजित सहायता देना।

(१०) शक्ति की विकास योजनायें जो व्यक्तिगत पूँजी से प्रारम्भ की जायें उनको प्रोत्साहन देना। आज भी बहुत से उन्नत नगरो मे शक्ति की कमी है जोकि व्यवसाय एव रोजगार तथा उद्योगो के विकास मे बहुत ही बाधक है। राज्यो की सरकार शक्ति की दशा का अध्ययन विभिन्न क्षेत्रो में कर सकती है। पचवर्षीय योजनाओ मे शक्ति की कमी को दूर करने वाले उपाय सम्मिलित नही किये गए हैं। आगे के लिए भी यह आवश्यक है कि ऐसे प्रस्ताव भेजे जायें, जिनमे स्पष्टतः इस बात का उल्लेख किया जाय कि उनमे व्यक्तिगत पूँजी की मात्रा कितनी होगी।

(११) नियोजन आयोग का अन्तिम सुझाव यह है, "उन स्थानों पर शिक्षण-शिविर खोले जायें जहाँ सरकार के प्रयत्न के लिए कार्य के सुअवसर विद्यमान हैं।" उदाहरणार्थ, विकास योजनायें, सडक निर्माण-कार्यक्रम, भूमि सुधारक तथा वन लगाने और भूमि-क्षरण को रोकने के कार्य और सहकारी आधार पर भूमि का पुनर्सङ्गठन व विकास इत्यादि।

प्रथम योजना मे रोजगार के सुअवसर (Employment Opportunities in the First Plan)[1]

प्रथम पचवर्षीय योजना के मूल उद्देश्यो मे से एक उद्देश्य यह भी था कि रोजगार को विस्तृत किया जाय तथा जनता के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाया जाय। उसमे देहाती क्षेत्र पर अधिक बल दिया जाय। इसका कारण यह था कि वहाँ की बेरोजगारी की समस्या बडी गम्भीर तथा भयङ्कर थी। नियोजन आयोग ने प्रथम योजना मे देहाती बेरोजगार की समस्या कम करने के लिए निम्नलिखित प्रस्तावित सुझाव दिये थे—छोटे-बडे सिंचाई के कार्यों का विकास करना। नियोजन आयोग ने शहरी क्षेत्र के लिए द्रुत औद्योगीकरण, नवीन रोजगारो का निर्माण और शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन लाने के सुझाव दिये थे।

1. *प्रथम पचवर्षीय योजना*, भारत सरकार।

प्रथम योजना मे नियोजन के समय (१९५१-५६) मे सम्भावित अतिरिक्त रोजगार के निम्नलिखित अनुमानित आँकडो का विवरण था :—

श्रेणी	रोजगार मे अतिरिक्त वृद्धि ।
(१) उद्योग (लघु उद्योग समेत)	४ लाख प्रतिवर्ष
(२) सिंचाई तथा शक्ति की बडी योजनायें	७½ लाख प्रतिवर्ष
(३) कृषि	२३ लाख प्रतिवर्ष
(क) अतिरिक्त सींचे हुए क्षेत्र के कारण	१४ लाख प्रतिवर्ष
(ख) तालाबो इत्यादि की मरम्मत आदि से	१½ लाख प्रतिवर्ष
(ग) भूमि को पुनः कृषि-योग्य बनाने से	७½ लाख प्रतिवर्ष
(४) मकान तथा निर्माण कार्य	१ लाख प्रतिवर्ष
(५) सडक (सुरक्षित रखना तथा विकास करना)	२ लाख प्रतिवर्ष
(६) कुटीर उद्योग धन्धे	२० लाख प्रतिवर्ष
	इसके अतिरिक्त ३६ लाख को पूर्ण रोजगार मिलेगा ।
(७) अन्य तथा स्थानीय कार्य	इसमे रोजगार बढेगा लेकिन उसका अनुमान लगाना सम्भव नही है ।
(८) शिक्षितो के लिए रोजगार	इस पर उचित बल नही दिया गया ।

द्वितीय और तृतीय योजनाओ मे रोजगार-सम्भावनाए[1] :

आर्थिक विकास की योजना का ध्येय प्राप्त साधनो का उपयोग इस प्रकार करना होता है जिससे उत्पादन की उन्नति की दर अधिक से अधिक हो जाय। वास्तव मे यह एक लम्बी अवधि का कार्य (Long term task) है। दीर्घकाल मे पूर्ण रोजगार की नीति से आर्थिक विकास मे कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। अब यह मान लिया जाता है कि बेरोजगारी की समस्या विशेषकर हमारी सी अविकसित आर्थिक व्यवस्था मे बडी मात्रा के विकास से ही दूर हो सकती है।

३—समस्या का आकार तथा प्रकार

(Size & Nature of the Problem)

रोजगार के निर्माण की सुविधाओ के क्षेत्र मे आगामी वर्षों मे जिन तथ्यो का ध्यान रखना है वे तीन प्रकार के हैं :—

(१) नगरो तथा ग्रामो मे जो वर्तमान बेकार लोग हैं उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करना।

(२) श्रम क्षेत्र मे जो नये श्रमिक प्रविष्ट होगे उनके लिए रोजगार की

1. *द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनायें*—भारत सरकार।

व्यवस्था करना। यह अनुमान किया गया है कि प्रतिवर्ष २ मिलियन अतिरिक्त श्रमिक इन क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।

(३) कृषि तथा घरेलू व्यवसायों, जिनमें अर्द्ध-बेकारी है, उनके लिए पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन सामूहिक रूप से ही नहीं होना चाहिए बल्कि शहरों और देहाती क्षेत्रों में जो स्थिति विद्यमान है उसके विश्लेषण किये हुए रूप में होना चाहिए। इसलिए देश के विभिन्न प्रदेशों में इसके परिमाण (Magnitude) का लेखा (Account) नगरों तथा देहाती क्षेत्रों में रखना आवश्यक है। शिक्षितों में फैली हुई बेरोजगारी को साधारण बेरोजगारी से अलग कर देना चाहिए।

बेरोजगारी को दूर करने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनमें से कुछ इस सम्बन्ध में हैं कि बेरोजगारी के आकार प्रकार और कारणों का जानना कठिन होता है। कुछ इस कारण से कि भारत में किसी भी विषय पर पूर्ण एवं सही आँकड़े प्राप्त नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त इस कारण से भी कि रोजगार-दफ्तरों में ठीक प्रकार से कार्य नहीं होता।

योजना के प्रारम्भिक काल से ही, नये कार्यों का विस्तार होने पर भी, देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। रोजगार-दफ्तर के आकड़ों के अनुसार सन् १९५१ में ३·२७ लाख बेरोजगार उनके रजिस्टरों में दर्ज थे। यह मात्रा १९५३ में ५·२२ लाख हो गई और सन् १९५६ तक ७·०५ लाख तक पहुँच गई। इस परिस्थिति में अभी सुधार नहीं हो पाया है। नेशनल सैम्पिल सर्वे (National Sample Survey) ने सन् १९५४ में यह अनुमान लगाया था कि शहरी क्षेत्रों में २·२४ मिलियन बेरोजगार थे। टी० एन० कृष्णन् ने अनुमान लगाया था कि सन् १९५३ में १·५७ मिलियन एवं १९५५ में २·५८ मिलियन बेरोजगार थे। नियोजन आयोग ने सन् १९५६ में बेरोजगारों की संख्या २·५४ मिलियन बताई थी। उसी साल विलफ्रेड मैलेनबोम (W. Malenbaum) ने यह संख्या २·५ मिलियन बताई थी, और उसी वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन (I. L. O) ने भारत में बेरोजगारों की संख्या ३ से लेकर ३·५ मिलियन बताई थी।

देहात में पूर्ण रोजगार और अर्द्ध-रोजगार में अन्तर करना बड़ा कठिन है। इन क्षेत्रों में रोजगार देने के लिए केवल काम की मात्रा को बढ़ाने तथा बहुत-से अर्द्ध-रोजगार वालों की आय में वृद्धि करना नहीं है बल्कि पूर्ण समय के रोजगार की सुविधाओं की एक निश्चित संख्या का निर्माण करना है। इस विषय में कृषि में लगे हुए भूमिहीन मजदूरों के विषय में विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

द्वितीय योजनाकाल मे श्रम के क्षेत्र मे १० मिलियन नवीन श्रमिको के प्रवेश का अनुमान लगाया गया है। इस संख्या मे से शहरी श्रमिको की अनुमानित सख्या ३ ८ मिलियन को निकाल दिया जाय तो देहाती नवीन प्रविष्ट श्रमिको की अनुमानित शक्ति १९५६–६१ मे लगभग ६·२ मिलियन के होगी।

निम्नलिखित तालिका यह प्रकट करती है कि इस काल मे पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त कार्यों को सख्या मे किस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए :

		(मिलियन)	
	नगरो मे	देहात मे	योग
१—श्रम-क्षेत्र में प्रवेश करने वाले नये श्रमिको के लिए	३·८	६ २	१०·०
२—पुराने रोजगारवालो को	२ ५	२·८	५·३
योग	६·३	९·०	१५·३

यदि रोजगार की सुविधाओ का निर्माण उपर्युक्त क्रम मे सम्भव भी बना दिया जाय तो भी अर्द्ध-रोजगार की समस्या का हल पूरा नही हो सकेगा।

प्रणाली का चुनाव (Choice of Technique) :

वर्तमान बेरोजगारी के परिमाण पर विचार करते हुए और श्रमिको की सख्या की वृद्धि की दर को देखते हुए यह आशा रखना कि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे पूर्ण रोजगार मिल जायगा, गलत होगा। यह लक्ष्य एक नियोजित प्रयासो के क्रम द्वारा जो कि द्वितीय योजना के पश्चात् समाप्त हो जायगा, पूरा हो सकेगा। इस कार्य को शीघ्र पूरा करने के लिए और लम्बे समय तक की योजनाओ को सफल बनाने के लिए योजना मे उन प्रयासो को सम्मिलित करना पडेगा जिनसे नये रोजगारो की स्थापना हो।

आवश्यकता से अधिक मात्रा मे प्राप्त श्रमिको की सख्या से सम्बन्धित अर्थ-व्यवस्था मे श्रम-प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली को साधारण रूप से प्रोत्साहन देना स्वाभाविक तथा वाञ्छनीय है। किसी किसी मामले में चुनाव का प्रश्न ही नही उठता है। उदाहरणार्थ, भारी उद्योगो मे चुनाव का प्रश्न नही होता है या उन उद्योगो की प्रारम्भिक अवस्था मे जिनमे आगे चलकर अधिक रोजगार की सम्भावना होगी। कृषि-क्षेत्र मे यन्त्रीकरण (Mechanisation) केवल कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे ही होगा। इन पाँच वर्षों मे रोजगार प्रणाली को सडक-निर्माण, गृह-निर्माण और रेलवे के क्षेत्रों मे ऐसा ही बनाए रखना होगा जैसा कि अब है। पूँजी प्रमुख उत्पत्ति-प्रणाली के प्रयोग मे दुगुनी हानि निम्न रूप मे उत्पन्न हो सकती है :—

(अ) श्रमिको का कार्य से हटाया जाना—जो हर हालत मे रोकना है ।

(ब) पूँजी प्रमुख उत्पत्ति मे श्रमिको का स्थान पूँजी द्वारा ले लिया जाता है, जिसको हर हालत में रोकना है ।

द्वितीय योजना मे रोजगार-वृद्धि का अनुमान (Employment Potentiality in Second Plan) :

अनुमानित अतिरिक्त रोजगार

(सख्या लाखो मे)

(१)	निर्माण	२१·००
	(अ) कृषि तथा सामुदायिक विकास	२ ६६
	(ब) सिंचाई तथा शक्ति	३·७२
	(स) उद्योग तथा खनिज पदार्थ (कुटीर तथा लघु उद्योगो समेत)	४·०३
	(द) यातायात तथा सवाहन (रेलवे सहित)	१·२७
	(य) सामाजिक सेवायें	६·६८
	(र) अन्य (सरकारी नौकरियो सहित)	२ ३४
(२)	सिंचाई तथा शक्ति	५१
(३)	रेलवे	२·५३
(४)	अन्य यातायात तथा सवाद-वाहन के साधन	१·८०
(५)	उद्योग तथा खनिज पदार्थ	७·५०
(६)	लघु तथा कुटीर उद्योग-धधे	४·५०
(७)	वन-विभाग, मछली पकडने का व्यवसाय, राष्ट्रीय विकास सेवा तथा सहायक योजनायें	४·१३
(८)	शिक्षा	३·१०
(९)	स्वास्थ्य	१·१६
(१०)	अन्य सामाजिक सेवायें	१·४२
(११)	सरकारी नौकरियां	४·३४
	१ से ११ तक का योग=	५१·९९
(१२)	अन्य व्यापार, वाणिज्य आदि समेत योग का ५२%	२७·०४
	कुल योग	७९·०३
		या ८०·०० लाख

प्रत्येक क्षेत्र मे योजना की रोजगार-शक्ति का अन्दाज लगाना ही पर्याप्त नही है । रोजगार के क्षेत्रीय वितरण को जानने का भी प्रयास किया जायेगा । विशेष रूप से उस क्षेत्र का ध्यान रखा जायगा जहां पूर्ण-बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी

अधिक मात्रा मे है। सरकार निम्नलिखित प्रणालियो को अपनाकर रोजगार मे वृद्धि कर सकती है :—

(१) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को अधिकतम मात्रा मे बेरोजगार वाले क्षेत्र मे स्थापित करना।

(२) स्थानीय (बेरोजगार वाले क्षेत्र के) व्यवसाइयो और उद्योगपतियो को कम से कम ब्याज की दर पर सरकार की ओर से ऋण प्रदान करना।

(३) सार्वजनिक ठेके के कुछ प्रतिशत कार्यों को इन बेरोजगार वाले मनुष्यो के लिए सुरक्षित रखना।

(४) सरकार की ओर से अन्य ऐसी आर्थिक प्रणालियो को अपनाना जिनसे अधिक बेरोजगार वाले क्षेत्रो मे निजी पूँजीवाले उद्योगो की अधिक स्थापना हो।

शिक्षितो मे बेरोजगारी (Educated Unemployed) :

रोजगार दफ्तर मे लिखे शिक्षितो का प्रतिशत वितरण[1]

वर्ष	मैट्रिक	इण्टर	ग्रेजुएट	योग	घरेलू तथा अकुशल नौकरी की खोज मे समस्त योग का प्रतिशत
१	२	३	४	५	६
१९५३	७६·७	१०·६	१२·७	१००	५२·२६
१९५४	७६·६	११·६	११·८	१००	५१·४३
१९५५	७६·८	१०·९	१२·३	१००	५२·८६

शिक्षितो की बेरोजगारी देश की साधारण बेरोजगारी का एक अग है। भारतवर्ष मे साधारण और शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी के कारण यह रहे हैं कि शिक्षा प्रणाली मे सुधार नही किया गया है एव देश का आर्थिक विकास इस तीव्रता से नही हुआ जिस तीव्रता से श्रमिक वर्ग की वृद्धि हुई। फिर भी, साधारण बेरोजगारी से शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी के निम्नलिखित कारणो से भिन्नता है :—

(१) जनता का ऐसा विश्वास है कि शिक्षा पर किए गए विनियोग के बदले मे उनको अच्छी नौकरी मिल जानी चाहिए।

---

1 Statistics relating to the *National Employment Service* (Unpublished), Directorate General of Resettlement and Employment, Government of India, 1957.

(२) शिक्षित स्वाभाविक रूप से ही अपनी शिक्षानुसार नौकरी की तलाश करता है—जिसके कारण विभिन्न प्रकार के रोजगारो और उनके लिए प्रार्थियो की पूर्ति मे असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है ।

(३) शिक्षितों मे 'सफेद पोश' नौकरी ढूँढने का रोग सा लग गया है । वे चाहते है कि उन्हे शारीरिक परिश्रम न करना पडे ।

योजना का लक्ष्य शिक्षितों मे बेरोजगारी को कम करना है । इसीलिए, १६५५ मे एक अध्ययन समिति Study Group) भी बनाई गई थी । समिति ने अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि आगामी पाच वर्षों मे १४ ५ लाख शिक्षित व्यक्ति श्रम क्षेत्र (Labour Force) मे प्रवेश करेंगे । समिति ने शिक्षित बेरोजगारो की सख्या ५·५ लाख रखी थी । समिति के अनुसार आगामी ५ वर्षों मे जिस समस्या को हल करना है वह यह है कि इस वर्ग के लिए कम स कम दो मिलियन कार्यो (Job) का निर्माण करना । समिति ने यह भी अनुमान लगाया था कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की योजनायें जो कि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सम्मिलित है, केवल एक मिलियन कार्य ही निर्माण कर सकेंगी । अन्य २·४ लाख शिक्षित व्यक्ति इन पाँच वर्षों मे अवकाश ग्रहण करने वाले लोगो के स्थानो पर रोजगार प्राप्त करेंगे । इसके अतिरिक्त *दो लाख व्यक्तियो को इस काल मे निजी क्षेत्रों के उद्योगों मे कार्य मिल सकेगा ।* बाकी बेरोजगारों की अवस्था मे द्वितीय योजना काल मे किसी प्रकार के सुधार की सम्भावना नही है ।

४—तृतीय योजना में रोजगार की सम्भावनाये

(Employment Potentiality In the Third Plan)

तृतीय योजना मे होने वाले विनियोग के आकार तथा आदर्श को ध्यान मे रखते हुए, हम इस समय यह अनुमान लगा सकते हैं कि इसके द्वारा ३·५ मिलियन *अतिरिक्त रोजगार कृषि क्षेत्र मे तथा १०·५ मिलियन अतिरिक्त रोजगार अन्य क्षेत्रों* मे उत्पन्न होगा । साथ ही साथ कृषि, छोटे उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र मे जिनको अर्द्ध-रोजगार प्राप्त है, उनको पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सकेगा । कुछ भी हो, जिस सीमा तक यह रोजगार उत्पन्न होगा, उसका परिमाण अभी से नहीं बताया जा सकता है । इस प्रकार, तृतीय योजना काल मे रोजगार की परिस्थितियाँ और अधिक खराब न हो जायें, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लगभग एक मिलियन अधिक रोजगार उत्पन्न करना होगा ।

इसलिए ऐसे उद्योगो मे, जिनके लिए कि कम मात्रा मे प्राप्त वस्तुओ, विशिष्ट कुशल मजदूरो अथवा विदेशी *मुद्रा की आवश्यकता नही होगी,* उत्पादक-प्रतिरिक्त-

रोजगार उत्पन्न करने के लिए आगामी कार्यक्रम पर विचार कर लेना आवश्यक है। इसके लिए अनेक दिशाओं मे कार्य करने की आवश्यकता होगी, जिनमें से कुछ यह है :—

(१) द्वितीय योजना के पूरे हो जाने पर लगभग १६,००० कस्बा तथा गाँवों मे विद्युत पहुँच जायगी और आशा है कि तृतीय योजना के पूरे हो जाने पर यह सख्या ३४,००० से भी अधिक बढ जायगी। उस समय तक ५,००० से २०,००० तक की जनसख्या वाले सभी छोटे कस्बा मे विद्युत् पहुँच जाने की आशा है। विद्युत का प्रयोग होने से, छोटे उद्योगो का विकास करने का यह जो लाभप्रद अवसर प्राप्त होगा, उसका पूरा पूरा लाभ उठाना होगा। यदि शिल्पकारो तथा आत्म नियोजित मजदूरो को प्राविधिक प्रशिक्षण की सुविधायें यथावसर (शीघ्र ही) तथा काफी मात्रा मे मिल जायें तो यह कार्य बहुत सरल हो जायगा।

(२) तृतीय योजना के कार्यक्रमो मे इस बात का क्रमानुसार हिसाब लगाने का प्रस्ताव रखा गया है कि बडे उद्योगो के उत्पादन का किस प्रकार विकेन्द्रीकरण किया जाय ताकि उत्पादन का काफी भाग छोटे या घरेलू उद्योगो को प्राप्त हो जाय।

(३) ग्रामीण क्षेत्रो मे, जहाँ तक सम्भव हो, उपयुक्त एव प्रगतिशील उद्योगों की स्थापना होनी चाहिए और ऐसे कदम उठाने चाहिए जिससे गाँव अपने निकटवर्ती शहरी क्षेत्रो की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ को पूरा कर सकें।

(४) योजनाओ मे मशीनो के उपयोग को सीमित करके शारीरिक परिश्रम के क्षेत्र का बढाया जाना सम्भव है। यह उस सीमा तक होना चाहिए जहाँ तक कि निर्माण के समय और कीमत की दृष्टि से काफी मात्रा मे लाभ होता हो। अलग-अलग योजनाओ पर विचार करते समय इस ओर पूरा पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

(५) बेरोजगारी की समस्या पर पूरे देश अथवा बडे खण्ड—जैसे प्रदेश (राज्य)—के रूप मे विचार किया जाता है। बेरोजगारी की समस्या का क्षेत्रीय अथवा जिला स्तरीय धरातल पर, निकट से अध्ययन करने का (सम्पर्क बनाने का) प्रयत्न नही किया गया है। प्रत्येक जिले मे कृषि, सिंचाई, शक्ति, ग्रामीण तथा छोटे उद्योग, यातायात तथा समाज सेवाओ से सम्बन्धित विकास के कार्यक्रम हैं। इन कार्यक्रमो का उद्देश्य यह है कि जिले की आर्थिक क्रियाओ का स्तर उन्नत हो और उत्पादन मे सामान्यतः वृद्धि हो। इनके द्वारा प्रत्यक्ष रोजगार तो मिलेगा ही साथ ही साथ अनेक कार्यक्रमो का उद्देश्य यह भी है कि हर एक किसान या शिल्पी अथवा छोटे साहसियों और सहकारी सस्थाओ तथा ऐसे ही अन्य सगठनो को कार्य करने के लिए प्रोत्साहन मिले। इन कार्यक्रमों का यदि पूरा पूरा लाभ उठाया गया तो जिला

एव क्षेत्रीय स्तर पर कार्य के लिए अधिक सम्भावनायें वढ सकती हैं । यह सब स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्यों मे उचित सुधार और विकास करके ही, हा सकेगा । प्रादेशिक सरकारो को यह सुझाव दिया गया है कि वेरोजगारी की समस्या को, जिलो के अनुसार विभाजित कर लेना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो जिले तथा क्षेत्रो की योजनायें वनाकर इनको प्रत्यक्ष रूप से हल कर लेना चाहिए।

उत्पादन कार्यों के लिए अभी वहुत क्षेत्र है जैसे (जातीय)। स्थानीय आवश्य कताओं को पूरा करने के लिए ये कार्य किये जा सकते है :—सिचाई के साधनों को उन्नत वनाना, भूमि का साफ करना, भूमिक्षरण को रोकने के लिए खेतो के चारो ओर ऊँची मेड वनाना, वृक्षो का अधिक सख्या मे लगाया जाना, गाँवों मे नयी सडको का निर्माण तथा पुरानी सडको का सुधार करना और सारी वस्ती के लिये झोपडियाँ तथा गोदाम वनाना, आदि ऐसे काम है जिन्हे करके लाभ उठाया जा सकता है। इन स्थानीय कामो को कम खर्च मे वाजार दर से भी कम, गुजारे मान की मजदूरी देकर कराया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि ½ मिलियन नये मजदूरो का प्रवन्ध करना है तो इस ढग से अतिरिक्त कीमत १२·५ करोड रु० प्रतिवर्ष की हो सकती है। इस प्रकार के कार्य योजना को अवधि मे उत्पादन को वढाने मे भी मदद कर सकते हैं और योजना की आर्थिक दृष्टि से मदद भी की जा सकती है। यदि यह स्कीम (व्यवस्था) सफल हो गई तो उत्पादन-कार्यों को उन्नत बनाने के लिए सुविधाऐं प्रदान करना सम्भव होगा, जिनकी कि तलाश मे ग्रामीण क्षेत्रो के व्यक्ति बहुत वडी सख्या मे हैं।[1]

---

1. *तीसरी पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा)*—भारत सरकार

निम्नतम जीवन-स्तर की प्राप्ति
(Implementation of Minimum Standard)

१—विषय-प्रवेश
(Introductory)

"रहन सहन के स्तर मे किसी प्रकार की उन्नति राष्ट्रीय आय पर निर्भर होती है। राष्ट्रीय आय को बढाने का मुख्य उपाय द्रुत ढग से औद्योगीकरण करना है।"[1] हमारे देश मे औद्योगीकरण बेरोजगारी के शीघ्र विनाश के लिए तथा कृषि सम्बन्धी उद्योगों के दवाव को हटाने के लिए और भी अधिक आवश्यक हैं।

भारत के विषय मे यह अति दुःख तथा खेद का विषय है कि यद्यपि भारत एक धनी देश है किन्तु भारतीय निर्धन हैं। भारत मे पर्याप्त मात्रा में साधन, शक्ति के स्रोत, मानव शक्ति, कच्चा माल, विस्तृत कृषि-योग्य भूमि, वन, खनिज-पदार्थ तथा जल विद्युत शक्ति के होने के बावजूद भी भारत निर्धन है। इस कारण, निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि देश मे समुचित आर्थिक तथा सामाजिक सगठन की कमी है। केवल समुचित सामाजिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक सगठन ही हमे वर्तमान भयानक निर्धनता से मुक्ति प्रदान कर सकता है।

सर्वसम्मति से यह स्वीकार कर लिया गया है कि हमारी निर्धनता केवल आर्थिक ही नहीं—बल्कि नैतिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक भी है। यदि इसको अधिक व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाय तो हम यह पायेंगे कि जीवन के उच्च आदर्श, जैसे, सदाचार (Virtue), ईमानदारी (Honesty), नैतिकता (Morality) आदि गुण, जब पेट खाली होता है तो रखे रह जाते हैं।

निर्धनता के पापी घेरे मे, जिसमे अपूर्ण भोजन, मानसिक अवःपतन, शारीरिक दुर्बलता, रोग और रोग को रोकने के प्रबन्ध का अभाव, अशिक्षा, साधारण तथा व्यावसायिक शिक्षा की कमी, अकुशलता, कम उत्पादन, कम पारिश्रमिक आदि बातों का अस्तित्व ही निर्धनता की ओर ले जाता है तथा रहन सहन के स्तर को नीचा करता है। आज की हमारी सबसे बडी समस्या कम उत्पादन (Under-production) है। राष्ट्रीय लाभाश की वृद्धि के बिना श्रमिकों, उपभोक्ताओं, समस्त जनता एव पूँजी की बढी हुई माँग पूरी नही हो सकती।

1. *Planning for India*—B. C. Ghosh, Chapter III, P. 26.

·०३५; सन् १८६५ मे ०४५; सन् १६२१-२२ मे ·०७१ सन् १६२५-२६ मे ·०८३ सन् १६४४-४५ मे ·०६४ ; सन् १६२५-२६ मे अमरीकी डौलर का भारतीय मुद्रा मे जो मूल्य था उसी को अन्तर्राष्ट्रीय इकाई कहा गया था। इन आकडो से प्रकट होता है कि हमारे देश मे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष राष्ट्रीय आय बहुत कम है। इसमे भी अधिक खेद का विषय यह है कि यह तीव्र गति से नही बढ रही है। कुछ सीमा तक यह स्थिर है। राष्ट्रीय आय की स्थिरता के कारण देश का आर्थिक विकास भी स्थिर हो गया है।

राष्ट्रीय आय समिति (National Income Committee), १६५१-५४, के निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय हैं :—

१—देश की राष्ट्रीय आय १६४८ ५१ मे निम्न प्रकार थी :—

वर्ष	जनसख्या (मिलियन मे)	१६४८ ४६ की कीमतो के अनुसार (करोड)	राष्ट्रीय आय वर्तमान कीमत (करोड)	१६४८ ४६ के कीमतो के अनुसार प्रति व्यक्ति आय	वर्तमान कीमत के आधार पर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आय
१६४८-४६	३५० ३८	८६५०	८६५०	२४६·६	२४६·६
१६४६ ५०	३५४·८२	८८२०	६०१०	२४८·६	२५३·६
१६५०-५१	३५६·३३	८८५०	६५३०	२४६·३	२६५·२

२—(क) कृषि, जिसमे कि कार्य करने वाली सख्या का ७२ ४ प्रतिशत भाग समाहित था, समस्त राष्ट्रीय आय का ५१ ३ प्रतिशत भाग प्राप्त होता था।

(ख) कार्य करने वाली सख्या का १० ६% भाग जोकि खानो मे, उद्योगो मे तथा लघु उद्योगो मे सलग्न था, उसको समस्त राष्ट्रीय आय का १६·१ प्रतिशत भाग प्राप्त होता था।

(ग) व्यापार, यातायात एव सवादवाहन के साधनो मे कार्य करने वाली सख्या का ७·७ भाग व्यस्त था जिसको कि समस्त राष्ट्रीय आय का १७·७ भाग प्राप्त होता था।

(घ) अन्य नौकरियो मे, जिनमे कार्य करने वाली सख्या का ६·३ प्रतिशत भाग था, इसको समस्त राष्ट्रीय आय का १५·१ प्रतिशत भाग प्राप्त होता था।

३—राष्ट्रीय आय का उत्पत्ति के आकार द्वारा साहस का इस प्रकार वर्गीकरण किया गया था—

(i) लघु उद्योग—जिनमे कृषि और गृह उद्योग भी सम्मिलित थे—मे ६२६० करोड रु० लगे हुए थे।

(ii) बडी मात्रा की उत्पत्ति मे १०२० करोड रु० लगे थे।

(iii) अन्य में लगी पूँजी—महत्त्वहीन (Non-significant)

४—इस समिति ने कार्य करने वाली सख्या का कुल योग १४३,२२१,००० अथवा कुल जनसख्या का ४० प्रतिशत के लगभग रक्खा। इस जनसख्या का सन् १६५१ मे विभिन्न आर्थिक क्रियाओ मे प्रतिशत वितरण निम्न प्रकार था :—

(क) कृषि, पशु पालन, तथा तत्सम्बन्धी क्रियायें ७१'८, (ख) वन विभाग ०'२, (ग) मत्स्य-विभाग ०'४, (घ) खनिज ०'५, (ङ) कारखाने २'१, (च) छोटे साहस ८'०, (छ) सगठित बैंक तथा बीमा ०'१ (ज) सवादवाहन '०१ (झ) रेलवे ८'०, (ञ) व्यापार तथा यातायात ६'७, (ट) व्यवसाय तथा स्वतन्त्र कला ४ ५, (ठ) सरकारी नौकरियाँ २'७, (ड) घरेलू नौकरियाँ २ १।

राष्ट्रीय आय की वृद्धि के लिए राज्य तथा देशवासियो दोनों को अगलिखित कदम उठाने हैं। विभिन्न प्रतिनिधियो मे परस्पर समुचित एकीकरण (Co-ordination) तथा सहयोग (Co-operation) अपेक्षित है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्न लिखित कदम उठाने हैं :—

१—देश के प्राकृतिक साधनो का समुचित तथा सन्तुलित उपयोग। प्राकृतिक साधनों का अनुचित तथा असन्तुलित उपयोग देश की अर्थव्यवस्था मे विपरीत परिणाम उत्पन्न करेगा। प्राकृतिक साधनों का बिना विचारे तथा निर्दयता पूर्ण शोषण करने से यह साधन सदैव के लिए लुप्त हो जायेंगे और राष्ट्र को बहुत समय तक कोई लाभ प्राप्त न हो सकेगा। इसके विपरीत, अनुचित तथा अपर्याप्त उपयोग राष्ट्रीय आय को चरम सीमा तक पहुँचाने मे असमर्थ रहेगा। इस प्रकार प्राकृतिक साधनो के उपयोग का सबसे अच्छा व एकमात्र ढग देश की आवश्यकताओं तथा सम्भावनाओ को दृष्टि मे रखते हुए उनका नियोजित, नियन्त्रित, सन्तुलित तथा एकीकृत (Co-ordinated) रूप से उपयोग करना है।

२—*राष्ट्रीय बचत का नियोजित विकास, राष्ट्रीय आय की वृद्धि का दूसरा* पूर्व प्रयोजनीय (Pre-requisite) साधन है। राष्ट्रीय आय की वृद्धि तथा विस्तार का नियोजन, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे व्यक्तियों तथा व्यक्तिगत साहसियो तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राज्य द्वारा निर्मित होता है। नियोजनाधिकारी कोई भी हो लेकिन ध्येय, राष्ट्रीय आय की प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति वृद्धि होनी चाहिए। अव्यवस्थित अथवा अनियोजित आर्थिक व्यवस्था पुरानी बात हो चुकी है, इसलिए

देश मे रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने के लिए नियोजित अर्थव्यवस्था होनी चाहिए।

३—देश के विभिन्न आय प्रयास (Income Pursuits) मे समुचित एकीकरण (Co-ordination) स्थापित होना चाहिए। देश मे वर्तमान अति 'कृषिकरण' (Over Agriculturisation) की नीति को त्याग देना चाहिए तथा उसके स्थान पर विभिन्न प्रकार के कार्यो तथा नौकरियो मे सन्तुलित सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए।

४—राष्ट्रीय आय की वृद्धि के लिए अन्य कदम यह उठाना है जिससे कि सभी नवीन प्रकार के उद्योगो का प्रारम्भ तथा वर्तमान उद्योगो के आकार मे विस्तार हो। इस क्षेत्र मे हमे यह बात ध्यान मे रखनी है कि बेरोजगारी तथा देश मे बढती हुई जनसख्या की समस्याओ का सामना करने के लिए हम असमर्थ हैं। इसके लिए देश मे उत्पत्ति की श्रम प्रमुख प्रणाली (Labour-Intensive Methods) के द्वारा तथा वर्तमान परिस्थितियो पर विचार कर देश मे औद्योगीकरण करना होगा। यह देश मे बढती हुई बेरोजगारी की समस्या को भी हल कर सकेगा।

५—जनसख्या की तीव्र तथा असन्तुलित वृद्धि पर प्रतिबन्ध। यह एक उलझी हुई तथा जटिल समस्या है, जिसे बडी दृढता एव साहस से हल करना है। इस सम्बन्ध मे नियोजन आयोग के दिये हुए प्रस्ताव प्रशसनीय तथा व्यावहारिक दोनो ही है।

६—उत्पत्ति के साधनो मे औद्योगिक एव आकार सम्बन्धी परिवर्तनो का समावेश।

७—आय के उन नवीन साधनो को प्रयोग मे लाना, जो बहुत दिनो से उपेक्षित थे।

२—प्रथम योजना और राष्ट्रीय आय[1]

(First Plan & The National Income)

प्रथम पचवर्षीय योजना मे कहा गया था कि भारत की राष्ट्रीय आय जो १६५०-५१ मे ६५३० करोड थी वह १६६७-६८ मे सतत प्रयासो (Continuity of efforts) द्वारा दूनी हो जायगी। उन्होंने योजनाकाल (१६५१ ५६) मे राष्ट्रीय आय की १२ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान लगाया था। यह बडी प्रशसा तथा प्रसन्नता की बात है कि यह लक्ष्य पूरा हो गया। वास्तव मे प्रथम योजनाकाल मे राष्ट्रीय आय मे १७·५ प्रतिशत वृद्धि हुई।

1. *Review of the First Five Year Plan*—Planning Commission (1957), Ch., 1, pp. 7-8

निम्नलिखित तालिका में उपरोक्त परिणाम प्रतिशत के रूप मे और विशिष्ट खण्डो मे प्राप्ति के रूप मे प्रदर्शित किये गये है :—

वास्तविक राष्ट्रीय-उत्पादन (१९४८–४९ की कीमतो मे)

मदे/श्रेणी १	१९५०–५१ २	१९५१–५२ ३	१९५२–५३ ४	१९५३–५४ ५	१९५४–५५ ६	१९५५–५६[1] ७	कॉलम दो पर कॉलम ७ मे प्रतिशत वृद्धि ८
१—कृषि, पशुपालन तथा तत्सम्बन्धी क्रियायें (रु० सौ करोड)	४३ ४	४४'४	४६'०	४०'८	५०'३	४९'८	१४'७
२—खानें, कारखाने—बड़े तथा छोटे एव गृह उद्योग (रु० सौ करोड)	१४ ८	१५ २	१५ ८	१६ ५	१७'०	१७'५	१८'२
३—व्यापार, यातायात एव सवाद वाहन के साधन (रु० सौ करोड)	१६'६	१७'३	१७ ९	१८'३	१९ १	१९'७	१८'६
४ - अन्य नौकरियाँ (रु० सौ करोड)	१३ ९	१४'३	१५ ०	१५ ७	१६ ६	१७'२	२३'७
५—राष्ट्र की वास्तविक उत्पत्ति-व्यय के आधार पर (Net Domestic Product at Factor Cost) (,,)	८८'७	९१'२	९४ ७	१००'३	१०२'८	१०४'२	१७ ५
६—प्रति-व्यक्ति प्रति वर्ष आय (रु०)	२४६'३	२५० १	२५६ ६	२६८'७	२७१'९	२७२'१	१०'५
७—जनसख्या (करोडो मे)	३५ ९३२	३६ ३३५	३६'८६७	३७'३२८	३७'८०८	३८'३००	६'६

1. Provisional.

योजना के ५ वर्ष समाप्त होने पर राष्ट्रीय आय मे लगभग १७·५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। योजनाकाल मे सभी प्रयासो मे वृद्धि होने से महत्वपूर्ण सफलतायें प्राप्त हुई हैं। यद्यपि राष्ट्रीय आय की दर मे सन्तोषजनक वृद्धि हुई है फिर भी राष्ट्रीय आय मे समान रूप से वृद्धि नही हो रही है।

३—द्वितीय पंचवर्षीय योजना और राष्ट्रीय आय[1]

(National Income and the Second Plan)

प्रथम योजनाकाल मे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय की वृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति के फलस्वरूप द्वितीय पचवर्षीय योजना के विधायको (Drafters) ने प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय की और अधिक वृद्धि के लिए बल दिया। राष्ट्रीय आय की वृद्धि विभिन्न क्षेत्रो के कुल विकास मे प्रतिविम्बित होती है। प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की सम्भावना निम्नलिखित तालिका मे प्रदर्शित की गई है :—

उद्योगो द्वारा राष्ट्रीय उत्पत्ति
(National Product by Industrial Origin)

विषय/श्रेणी	१९५२ ५३ के मूल्यो पर आधारित स० करोड रु० मे (Rs Crores at 1952 53 Prices)			प्रतिशत वृद्धि % Increase during	
	१९५० ५१	१९५५ ५६	१९६०-६१	१९५१ ५६	१९५६ ६१
१—कृषि एव सम्बन्धित अन्य प्रयास	४४५०	५२३०	६१७०	१८	१८
२—खनिज	८०	९५	१५०	१९	५९
३—कारखाने	५९०	८४०	१३८०	४३	६४
४—निर्माण	१८०	२२०	२९५	२२	३४
५—छोटे उद्योग	७४०	८४०	१०८५	१४	३०
६—व्यापार, यातायात एव सन्देशवाहन	१६५०	१८५५	२२००	१४	२२
७—व्यवसाय एव नौकरियाँ	१४२०	१७००	२१००	२०	२३
८—कुल राष्ट्रीय उत्पादन	९११०	१०८००	१३४८०	१८	२५
९—प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय रु० मे	२५३	२८१	३३१	११	१८

1 *Second Five year Plan*, Govt. of India, 1956

नियोजन आयोग ने आगे यह भी कहा है कि राष्ट्रीय आय आर्थिक विकासों द्वारा सन् १९६७ ६८ तक दुगुनी हो जायगी और प्रति-व्यक्ति प्रति-वर्ष आय १९७३-७४ तक दुगनी हो जायगी।

राष्ट्रीय आय और विनियोग में वृद्धि (१९५१-७६)
(१९५२ ५३ के मूल्यों पर आधारित)

विषय	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चतुर्थ योजना	पाँचवी योजना
	१९५१ ५६	१९५६-६१	१९६१-६६	१९६६ ७१	१९७१ ७६
१	२	३	४	५	६
१—राष्ट्रीय आय अवधि के अन्त मे (करोड रु० म)।	१०,८००	१३,४८०	१७,२६०	२१,६८०	२७,२७०
२—कुल वास्तविक विनियोग (करोड रु० मे)	३,१००	६,२००	६,६००	१४,८००	२०,७००
३—अवधि के अन्त में विनियोग राष्ट्रीय आय के प्रतिशत रूप मे।	७·३	१०·७	१३·७	१६·०	१७०
४—अवधि के अन्त मे जन-सख्या (मिलियन मे)।	३८४	४०८	४३४	४६५	५००
५—पूंजी उत्पत्ति मे वृद्धि।	१·८ : १	२ ३ १	२·६ : १	३·४ : १	३·७ : १
६—अवधि के अन्त मे प्रति व्यक्ति प्रति-वर्ष आय।	२८१	३३१	३९६	४६६	५४६

४—तृतीय पंचवर्षीय योजना और राष्ट्रीय आय में वृद्धि
(Third Plan and the National Income)

तृतीय पचवर्षीय योजना मे देश की राष्ट्रीय आय मे ६ प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि होगी और ५ प्रतिशत से कम तो यह किसी भी दशा मे नही होगी। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के बिना जनता की निर्धनता की समस्याओं का सामना नही हो सकता। क्योंकि देश की जनसख्या मे १८% प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है इसलिए राष्ट्रीय आय मे वास्तविक वृद्धि लगभग ४% प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति के हिसाब से होगी। यह साधारण लक्ष्य तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि के लिए विनियोग मे ११% से अधिक वृद्धि की आशा करेगा। (जोकि हाल ही मे विदेशों की सहायता से तथा अपनी विदेशी मुद्रा के वापस होने से १४ से १५ प्रतिशत तक पहुँच गया है।)

इस विषय मे यह आवश्यक है कि योजना एक लम्बे समय के लिए बनाई जाय। चतुर्थ योजना मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि का लक्ष्य ८ प्रतिशत प्रतिवर्ष होना चाहिए जिससे कि प्रति व्यक्ति की प्रतिवर्ष आय, १५ वर्षो मे लगभग दुगुनी हो जाय। समाज की बचत को केवल इस दर पर स्थिर करके ही देश विनियोग के लक्ष्य को पूरा कर सकता है।[1]

८—बृहत् औद्योगीकरण की ओर[2]

(Towards Greater Industrialisation)

औद्योगिक क्रान्ति के बहुत समय पूर्व ही भारत ससार की औद्योगिक कर्मशाला (Industrial Workshop) माना जाता था। कुशल दस्तकारो का हाथ का बना हुआ देशी वस्त्र, छीट, मलमल, पत्थर, लकडी, तथा हाथी दाँत की शिल्पकारी सम्पूर्ण ससार मे प्रसिद्ध थी।

अँग्रेजो के भारत आने से इनका विनाश हुआ। इसके पश्चात् उपभोग की वस्तुये तथा भारी उद्योग कुछ सीमा तक देश मे पनपे।

अग्रेजो के समय मे औद्योगीकरण की कोई राष्ट्रीय नीति नही थी और न राष्ट्रीय आधार पर उद्योगो के विकास के लिए कोई प्रयास ही किया गया था। परिणामस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सुव्यवस्थित और सुदृढ उद्योगो मे भी पतन के चिह्न दिखाई देने लगे। इसका कारण यह था कि सन् १९३९ ४५ मे औद्योगिक औजारो से अत्यधिक काम लिया गया था जिसके कारण वे नष्ट प्राय हो चुके थे। केवल यही नही था बल्कि सन् १९४७ मे देश की बदली हुई परिस्थिति के कारण आर्थिक एकता समाप्त हो गयी। इस प्रकार सन् १९४७ मे, जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो हमारे उद्योगो को एक विषम परिस्थिति का सामना करना पडा। कच्चा माल कम था इसलिए उत्पादन की मात्रा बडी मन्थर गति मे बढ सकी। आवश्यक वस्तुओ का मूल्य भी अन्य वस्तुओ की भाँति बहुत ऊँचा हो गया था।

उस समय की पुकार 'अधिक उत्पादन' की थी। उत्पादन के सभी क्षेत्रो मे सगठन से कार्य करने के लिए उद्योगो के विकास की एक निश्चित नीति आवश्यक थी। फलत. सन् १९४८ मे सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की, जिसमे मिश्रित अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया गया। इस नीति के अनुसार उद्योगो का विभाजन तीन श्रेणियो मे—विनियोग, स्वामित्व तथा नियन्त्रण की दृष्टि मे—किया गया।

1. *Report of the Congress Planning Sub-committee*

2 *Towards Greater Industrialisation*, Govt of India, Feb. 1957, से सहायता ली गई है।

(क) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग ।

(ख) सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्योग ।

(ग) निजी क्षेत्र के उद्योग ।

यह भी निर्णय किया गया था कि कुछ क्षेत्रो मे राज्य केवल नवीन उद्योगो की ही स्थापना करे तथा १० वर्ष तक स्थापित वर्तमान उद्योगो को ऐसे ही बना रहने दे। शेष निजी क्षेत्र के लिए छोड दिया गया। औद्योगिक नीति की सभी दिशाओ के उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए, सरकार ने एक उचित प्रणाली का प्रचलन किया और सन् १९५१ मे इस उद्देश्य से इण्डस्ट्रीज डवलपमेन्ट एण्ड रेगूलेशन एक्ट, १९५१ (Industries Development and Regulation Act, 1951) पास किया, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक शक्ति उपार्जन कर ली।

देश मे औद्योगीकरण की गति को तीव्र करने की आवश्यकता को व्यापक रूप से अनुभव किया गया। लेकिन प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण के समय, दुर्भाग्यवश हमारे समक्ष इससे अधिक आवश्यक कुछ और समस्यायें थी। इसलिए उद्योगो के विकास के लिए तथा खनिज पदार्थों का सही उपयोग करने के लिए कुल विनियोग का केवल ७% प्रदान किया जा सका। इस प्रकार औद्योगिक विकास की महत्त्वाकाक्षा पूरी न हो सकी। प्रथम पचवर्षीय योजना म उत्पादन का लक्ष्य निजी क्षेत्र मे ४१% उद्योगो की वृद्धि थी तथा बहुत बडी सख्या की वृद्धि सार्वजनिक क्षेत्र मे होनी थी। योजनाकाल मे औद्योगिक वृद्धि ६१% के लगभग हो सकी।

६—द्वितीय पंचवर्षीय योजना : औद्योगीकरण के लिए एक बड़ा कदम

(Second Five Year Plan : A great step towards Industrialisation)

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे उद्योगो, खनिज पदार्थों तथा यातायात के विकास पर विशेष बल दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो का विनियोग द्वितीय योजना में १८.५ प्रतिशत बढ गया। मौलिक उद्योगो (Basic Industries) के विकास के लिए उद्योगो तथा खनिज साधनो पर किया जाने वाला प्रस्तावित कुल विनियोग ६९० करोड रु० था। व्यक्तिगत उद्योगो के विकासार्थ निजी क्षेत्र मे (कुल ७२० करोड रु० का विनियोग होना था) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को विस्तृत करने के लिए प्रथम पचवर्षीय योजना के ५० प्रतिशत विनियोग के स्थान पर द्वितीय योजना मे ६१ प्रतिशत विनियोग होगा। द्वितीय योजना का लक्ष्य भारी तथा मौलिक, उपभोग उद्योग, छोटी मात्रा तथा कुटीर उद्योगो मे

Libr

सन्तुलित विकास करना है जिससे कम से कम उपद्रव एव बिना कठिनाई के समाजवादी समाज की स्थापना की जा सकें। इससे स्पष्ट है कि उत्पादक तथा पूँजी निर्माण करने वाली वस्तुएँ बडी मात्रा के उद्योगो द्वारा बनाई जानी चाहिए एव उपभोक्ता की वस्तुयें अधिकतर लघु तथा कुटीर उद्योगो मे बनानी चाहिए।

क्या हमारे देश के औद्योगिक विकास एव हमे प्राप्य वस्तुओ तथा सेवाओ पर द्वितीय योजना के प्रभाव को ज्ञात करना आसान है ? निम्नलिखित कुछ तथ्यो से द्वितीय योजना की विशालता का स्वरूप ज्ञात हो सकता है। औद्योगिक उत्पादन (सम्पूर्ण) सन् १६५१ की तुलना मे ६४% बढेगा। उत्पादक वस्तुओ (Producer goods) मे ७३% की वृद्धि होगी और कारखानो मे बनाई हुई उपभोग की वस्तुओ (*Factory Produced Consumers goods*) मे १८% वृद्धि होगी। इस योजना के परिणामस्वरूप हम कृत्रिम खाद और रेल के इजिन की उत्पत्ति मे स्वावलम्बी बन सकेंगे और मोटर स्प्रिट तथा फर्नेस (Furnace) के लिए तेल की उत्पत्ति मे अपनी आवश्यकता की मात्रा को पार कर जायेंगे। अब से ३ मिलियन टन अधिक फौलाद २२ मिलियन टन अधिक कोयला और प्राय ६ मिलियन टन सीमेन्ट अधिक उत्पन्न हो सकेगा। चार आधुनिक जहाज, १८०० रेल के डिब्बे, एल्कोहोल के ६ मिलियन गैलन अधिक उत्पत्ति और मिट्टी के तेल का ४ मिलियन टन शोध कार्य होगा।

उपभोग की वस्तुओं के उद्योगो म सूती कारखानो के उत्पादन मे २५% की वृद्धि होगी। चीनी के उत्पादन मे ३५ प्रतिशत, वनस्पति तेल मे ३१ प्रतिशत तथा कागज और पट्टे मे १०० प्रतिशत वृद्धि होगी। इस प्रकार हम योजनाकाल मे पर्याप्त मात्रा म सूती वस्त्र, चीनी, कागज, सीमेण्ट, कृषि-सम्बन्धी वस्तुयें और सडक बनाने वाली मशीन उत्पन्न करने मे समर्थ हो सकेंगे। मोटर गाडियो के उद्योग मे कार तथा ट्रक की उत्पत्ति मे ८०% वृद्धि होगी। रासायनिक उद्योग का विकास होगा। *सोडा का उत्पादन तिगुना तथा कास्टिक सोडा का १०० प्रतिशत होगा।* खनिज पदार्थों के उत्पादन मे ५८ प्रतिशत की वृद्धि होगी। देश के लिए आवश्यक कीटाणु नाशक वस्तुएँ पूर्ण मात्रा मे उत्पन्न होगी। उद्योगो के विकास मे बडे उद्योगो के साथ साथ छोटे उद्योगो तथा गृह उद्योगो के विकास पर भी समान महत्त्व प्रदान किया जायगा।

द्वितीय और तृतीय योजना के अन्त तक भी हम इगलेण्ड, अमेरिका तथा रूस जैसे उन्नत देशों के बराबर औद्योगिक विकास नही कर सकेंगे। यह सर्वविदित है कि इन देशों ने आधुनिक स्तर तक पहुँचने तथा उत्पादन को बढाने मे काफी समय लिया है। इसलिए आगामी पाँच वर्षों मे ही पूर्ण नवीन भारत बनने की आशा

करना व्यर्थ है और न औद्योगिक ढाँचे की सम्पूर्ण बुराइयो को दूर करने की ही आशा की जा सकती है। द्वितीय और तृतीय योजनायें सही रास्ते की ओर केवल एक कदम है। वास्तव मे कुछ योजनाओ के पश्चात् ही हम पूर्ण सन्तुलित तथा परिवर्तनशील औद्योगिक ढाँचे के स्थापनार्थ आगे बढ सक्ते है। सतत प्रयासो से हम नवीन और खुशहाली के लक्ष्य को प्राप्त कर सक्ते है।

७—खाद्य प्रबन्ध
(Provision for food)

सभी मानवीय आवश्यकताओ मे अन्न की आवश्यकता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। समुचित एव सतुलित विकास के लिए मानव को अच्छा तथा शक्तिदायक भोजन आवश्यक है। यह हमारी आर्थिक व्यवस्था का दुर्भाग्य है कि आवश्यकता से अधिक कृषि होने के वावजूद भी हम अन्न को न्यूनतम आवश्यकता को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। डा० राधाकमल मुखर्जी ने सन् १९३५ मे लिखा था, "भारत की समस्त जनसख्या, जो ४८ मिलियन है, उसके लिए अन्न की कमी है। प्रत्येक मनुष्य की प्रतिदिन की खुराक औसत ४२३ कैलरी (Calories) की कमी है।"[1] जनसख्या की तीव्र वृद्धि की तुलना मे अन्न की पूर्ति की दर मे प्रतिवर्ष ह्रास हो रहा है। यदि इसे रोकने के विशेष उपाय नही किये गये तो आगामी वर्षो मे इसमे और ह्रास होने की पूरी सम्भावना है।

डा० बी० सी० गुहा (Dr. B. C. Guha)[2] ने एक हिसाब तैयार करके यह बताया है कि औसत रूप से प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन के भोजन से २८०० कैलोरी प्राप्त होनी चाहिए जिसके लिए निम्नलिखित खाद्य पदार्थ का उपभोग प्रतिदिन होना चाहिए :—

चावल (Unmilled or lightly milled Rice)—	१० औंस
गेहूँ	६ ,,
दाल	४ ,,
अण्डे	१ या दो
चीनी	२ औंस
दूध तथा दूध की बनी वस्तुएँ	१० ,,
मछली और गोश्त	४ ,,
बिना पत्तीदार सब्जी	५ ,,

1. "India has now fallen short of food for 48 millions of her average men. The average deficit is 423 calories in each man's daily ration"—Dr. Radha Kamal Mukharjee

2. *Planning for Nutrition*—Science & Culture, March, 1944.

हरी पत्तीदार सब्जी	५ औंस
चर्बी तथा तेल	२ ,,
फल	३ ,,

इस खुराक का साधारणतौर से व्यय प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ३ रु० है। इस प्रकार यह व्यय ९० रु० प्रतिमास होता है, जो कि औसत परिवार के लिए प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए यह कथन सत्य है कि "अन्न के विषय मे भी हम पिछड़े हुए हैं," जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

कुछ देशों मे भोजन से प्रति-व्यक्ति शक्ति और कैलोरी की वार्षिक प्राप्ति

Statement showing Annual per-capita energy and food contents in some countries ·

(Source *Eastern Economist*, Annual Number, 1950)

देश	कैलोरीज (Calories)			कुल प्रोटीन (Total protein)			पशु प्रोटीन (Animal protein)		
	युद्ध से पूर्व	१९४८-४९	१९४९-५०	युद्ध से पूर्व	१९४८-४९	१९४९-५०	युद्ध से पूर्व	१९४८-४९	१९४९-५०
फ्रास	२,८३०	२,६६०	२,६६०	९८	८६	९७	३६	३६	४१
पश्चिमी जर्मनी	२,९६०	२,५३०	२,६६०	८३	८१	७६	४०	२७	३३
इटली	२,५१०	२,३५०	२,३७०	८२	७५	७५	२०	१६	२०
	३,२२०	२,९७०	३ ११०	९१	१०१	१०२	५१	५२	५६
	३,१२०	३,०७०	३,२००	९५	९५	९४	५६	५६	६०
इग्लैंड	३,१००	३,०४०	३,०८०	८२	८६	९१	४५	४३	४६
कनाडा	३,०७०	३,०६०	३,१३०	८५	९२	९३	४८	५६	५६
सयुक्त राज्य अमेरिका	३,१५०	३,१३०	३,१७०	८६	९०	९१	५०	६०	६०
आस्ट्रेलिया	३,०००	३,२१०	३,२१०	१०३	९७	९८	६७	६६	६७
न्यूजीलैण्ड	३,२६०	३,१३०	३,४००	९६	९४	१०१	६४	६३	६६
लका	२,१९०	१,९७०	२,०१०	५५	४३	४४	१६	११	११
चीन	२,२३०	२,१७०	२,०२०	७१	६६	६२	६	५	५
भारत	१,९७०	१,६२०	१,७००	५६	४२	४३	८	६	६
हिन्द चीन	१,८६०	१,४६०	१,५६०	४५	३५	३७	८	५	५
इन्डोनेशिया	२,०४०	१,७६०	१,८८०	४६	४१	४२	५	५	५
जापान	२,१८०	२,०५०	२,१००	६४	५०	५३	१०	८	८
मिश्र	२,४५०	२,४६०	२,३६०	७४	७२	७०	९	१०	१०
टर्की	२,५६०	२,५५०	२,३४०	७८	८०	७४	१२	१८	१७

"अमेरिका मे औसत व्यक्ति के कैलरीज के उपभोग का परिमाण, ३१७० एव इंग्लैण्ड मे ३०८० है; लेकिन भारत मे यह केवल १७०० है। प्रोटीन के उपभोग की हालत और भी खराब है। इस प्रकार हम अपनी खाद्य की आवश्यकताओ की सतुष्टि मे बहुत ही पीछे हैं। यही कारण है कि भारतीय नागरिक सामान्य रूप से दुर्बल, अकुशल, अवसादग्रस्त और प्रेरणाहीन होते है। खाद्य की कमी के कारण ही औसत रूप से भारतीयो को जीवित रहने की दर नीची है।[1]

पचवर्षीय योजनाओ मे यह उल्लेख किया गया है कि कृषि की योजना बढती हुई जनसख्या को पर्याप्त भोजन तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था को आवश्यक कच्चा माल प्रदान कर सकेगी। सन् १९६०-६१ मे आधुनिक उपभोग की दर से अन्न की ७०·५ मिलियन टन की प्रतिवर्ष आवश्यकता होगी। सन् १९६१ तक के उपभोग की दर मे वृद्धि का अनुमान प्रति वयस्क १८·३ औस है जिसके फलस्वरूप सन् १९६१ तक कुल आवश्यकता का अनुमान ७५ लाख टन होगा। आगामी योजना के पाँच वर्षो मे अन्न के उत्पादन मे १० लाख टन की वृद्धि होगी। कैलरीज मे प्रति वयस्क का प्रतिदिन का उपभोग आजकल २२०० है जिसकी कि १९६०-६१ तक २४५० होने की आशा की जाती है। जब कि यह मात्रा कम से कम ३००० कैलरीज होनी चाहिए।[2]

८—वस्त्र
(Clothing)

भोजन के पश्चात् हमारी अगली आवश्यक आवश्यकता वस्त्र है।[3] हम प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति उपभोग किये हुए वस्त्र के परिमाण से प्रति व्यक्ति को कपडे की सतुष्टि को माप सकते है। प्रति व्यक्ति का वार्षिक कपडे के उपभोग का अनुमान ९·७ गज आता है। औसत मे इस देश के एक व्यक्ति को एक वर्ष मे भी दो धोती प्राप्त नही होती और बहुत से इससे भी बुरी दशा मे हैं। वस्त्रो के उपभोग के विषय मे भारत की स्थिति सुधरने की अपेक्षा गिरती जारही है। युद्ध से पूर्व प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष कपडे का उपभोग १६ गज था, जो सन् १९४८ ई० मे १४·५ गज, सन् १९४९ मे मे १२·६ गज और सन् १९५० मे केवल ९·७ गज ही रह गया। इंग्लैण्ड मे कपडे

1. *Economic Basis of Higher Standard of Living*—T. P Khaitan Lecture of Calcutta University, delivered by B. T. Thakur, Aug. 1952, p. 7.

2. *Second Five Year Plan*—pp. 259-60.

3. *Economic Basis of Higher Standard of Living*—T. P. Khaitan Lecture of Calcutta University, delivered by B T. Thakur, Aug. '52, pp. 7-8.

की प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति उपभोग की औसत ४० गज से भी अधिक है तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की ६४ गज से भी अधिक है, यानी हमारे देश से ६ गुनी अधिक है। इसके अतिरिक्त इन देशो के निवासी सूती कपडो के साथ साथ गर्म, रैशमी तथा रेयन आदि कपडो का भी बहुत मात्रा मे उपभोग करते हैं।

कुछ देशो का प्रति-व्यक्ति प्रति-वर्ष सूती कपडे के उपभोग का साधारण अनुमान

वर्ष	स० राज्य अमेरिका[1] (गज)	इंग्लैंड[1] (गज)	भारत[2] (गज)
सन् १६४८	६५ ४	३७ ६	१४·५
सन् १६४६	५६·३	३६·८	१२ ६
सन् १६५०	६४·८	४१ ५	६·७

हमारे देश के प्रति व्यक्ति कपडे के उपभोग को बढाने के लिये एव कम से कम आवश्यकता की पूर्ति के लिए, हमारी राष्ट्रीय योजनाओ मे भरसक प्रयत्न किये जा रहे है।

रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने तथा जोवन को अच्छे ढग से व्यतीत करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई, आवास, आमोद प्रमोद, सामाजिक सेवाओ और आवश्यक वैभव को प्राप्त करने के लिए बहुत हो अच्छे प्रबन्ध होने चाहिए। यह सन्तोष की बात है कि जब मे हमने राष्ट्रीय नियोजन प्रारम्भ किया है, जनता को उपर्युक्त बातो मे बहुत सी सुविधाएँ दी जा रही है। सरकार, विभिन्न वर्ग एव साधारण जनता द्वारा सामूहिक रूप से इस बात का प्रयास होना चाहिये कि देश वासियो को जीवन की अधिकतम सुविधाये सरलता से प्राप्त हो सकें और उनका साधारण जीवन स्तर ऊँचा हो सके।

---

1. *Commerce*, Annual Number, 1951, p 1151.
2. *Monthly Statistics of the U. N* for Nov , 1951.

नियोजन तथा मूल्य-निर्धारण
(Planning And the Price Mechanism)

१—उद्योग का नियन्त्रण एवं मूल्य
(Control of Industry and Price)

बाजार पर नियन्त्रण तथा मूल्य-निर्धारण केन्द्रीय नियोजन के आवश्यक पहलू है। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे ये इतने सत्य नही होते। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे हर उद्योग को, उसकी सामर्थ्य के अनुसार उत्पादन का अधिकार होता है तथा बाजार की स्थिति के अनुसार अथवा माँग और पूर्ति के हिसाब से मूल्य-निर्धारण करने का अधिकार होता है। केन्द्रीय नियोजन मूल्य-निर्धारण के मौलिक सिद्धान्तो मे विश्वास नही रखता। अगर नियोजनाधिकारी आवश्यक समझें तो नियन्त्रण को कई प्रकार मे लागू कर सकते हैं। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के नियोजक तथा उसके समर्थक हर बात मे असहमत हो सकते हैं लेकिन वह इस बात पर सहमत हैं कि देश को धनी औद्योगिक एव कुशल बनाने के लिए पूर्ण आर्थिक स्थायित्व होना चाहिए।

राष्ट्र की आर्थिक मुक्ति के लिए योजना हो या न हो ? प्रतिदिन के जीवन के विभिन्न पहलुओ का यदि वर्गीकृत अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि हमारे जीवन मे नियोजन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सदैव विद्यमान है। यदि एक पर्दा लगाना हो तो हम सोचते है कि वह किस प्रकार का, किस रंग का तथा कितना बडा एवं किस कीमत का हो ? यही नियोजन है। यदि भोजन बनाना हो तो यह सोचा जाता है कि कैसा खाना बनाया जाय, कितने परिमाण मे तथा कितने व्यक्तियो के लिए हो ? यह भी नियोजन की बात है। तो हम इस बात को क्यो मानलें कि स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में नियोजन नहीं हो सकता ? जब कोई साहसी कोई उद्योग प्रारम्भ करता है तो उसे (अथवा उसके कर्मचारियो को) स्थिति, लगने वाली पूँजी, यातायात एव बाजार की सुविधाएँ, कच्चे माल और श्रम की प्राप्ति तथा लाभ की संभावनाओ आदि के विषय मे विचार करना पड़ता है। यह नियोजन है।

इस सम्बन्ध मे केन्द्रीय नियोजनाधिकारियो का यह दावा कि केवल वे ही आर्थिक स्थायित्व (Economic Stability) की परवाह करते हैं, पूर्णतः सत्य नही ह। यदि राज्य इस ओर पूर्ण रूप से सतर्क रह कि स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था से नागरिको की कोई हानि न हो पाए तो स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था से किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी।

१६वी सदी के प्रारम्भ मे सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति ने हस्तक्षेप न करने की नीति के समर्थन मे निम्नलिखित वक्तव्य दिया था, "इन सभी आशीर्वादो के अतिरिक्त हमे सुखी और खुशहाल बनाने के लिये और क्या आवश्यक है ? एक बात की और आवश्यकता है वह है ... .. बुद्धिमान तथा मितव्ययी सरकार, जोकि मनुष्यो को एक दूसरे से हानि पहुँचाने से बचाती है तथा उन्हे अपने निजी उद्योगो की उन्नति तथा मजदूरो के परिश्रम को उनकी इच्छानुसार सचालित करने के लिए स्वतन्त्र करती है।" अमरीका मे दीर्घकाल से स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था का प्रचलन है लेकिन क्या इससे अमरीका के निवासियो का रहन सहन का स्तर उन देशो के नागरिको म निम्न है जहाँ कि केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था विद्यमान है ? इसका मुख्य कारण यह है कि सयुक्त राज्य अमरीका की सरकार इस ओर सतर्क दृष्टि रखती है।

स्वतन्त्र बचत मे बधनहीन (Unfettered) स्पर्द्धा (Competition) होनी है। स्पर्द्धा दुर्बल तथा अकुशल उत्पादको को बाजार से हटाने के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह उद्योगो को तीव्रगति से उत्पादन करने के लिए एव कम कीमत पर उत्पादन करने के लिये प्रोत्साहित करती है। 'योग्य ही जीवित रहे' (Survival of the fittest) का सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है। केन्द्रीय नियोजन तथा नियन्त्रण मे ऐसा सदैव नही होता है। वहाँ स्पर्द्धा के लिये कोई स्थान नहीं होता। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे इस बात का भय सदैव बना रहता है कि स्पर्द्धा कही 'प्रतियोगी' (Competitive) के स्थान पर 'गला काट' (Cut-throat) न बन जाय। उस परिस्थिति मे इस बात का भय बना रहता है कि शक्तिशाली इकाइयाँ दुर्बलो को समूल नष्ट करके एक प्रकार का समूल एकाधिकार (Monopoly), द्वि अधिकार (Duopoly) तथा कुछो का अधिकार (Oligopoly) या सघ आदि का निर्माण न कर, जिससे वे आगे चलकर कीमतो मे वृद्धि कर सकें। इसमे उपभोक्ताओं को लाभ के स्थान पर हानि अधिक होती है। केवल ऐसी ही परिस्थिति मे राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह आर्थिक स्थायित्व को बनाय रखने के लिए नियन्त्रण-पद्धति को अपनाये।

क्या राज्य हस्तक्षेप करता है ? यदि करता है तो क्या वह राज्य के नियोजन का एक अंग नही है ? प्रारम्भिक भय इस बात का है कि राज्य को उपभोक्ताओं के शोषण को रोकने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए या नही ? यदि करना चाहिए तो किस प्रकार ? यह दो प्रकार से हो सकता है '—'कीमत पर नियन्त्रण की स्थापना करके, तथा प्रतियोगी बाजार की स्थापना करके'—जिससे एकाधिकार आदि की कठिनाइया दूर हो सकें। परन्तु यह भी राज्य नियोजन के प्रभावशाली कदम हैं।[1]

स्वतन्त्र साहस केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था पर एक और श्रेष्ठता का दावा करता है। यह औद्योगिक इकाइयों के आर्थिक ध्येयो तथा नियन्त्रण की कुशलता के विषय म होता है। हर साहसी को राज्य की तुलना मे धन सम्बन्धी आपत्तियों का अधिक सामना करना पडता है। पूजी का अभाव उनको अपने आर्थिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए साधनो को सन्तुलित रूप से विनियोग करने को विवश कर देता है। इस प्रकार उनका लक्ष्य पूंजी का कम विनियोग करके अधिक उत्पादन करना होता है। उनको विनियोग करने मे मितव्ययी बनना पडता है तथा विनियोग करने के लिए अच्छे से अच्छा तरीका एव उद्योग चुनना पडता है।

इस उद्देश्य तथा लाभ प्राप्त करने के लक्ष्य के लिए वे अपने उद्योगो को कुशल तथा प्रभावशाली ढग से व्यवस्थित करने के लिए अत्यधिक सचेष्ट रहते हैं। वे कठिन प्रतियोगिता, पूंजी का अभाव, ऊंची दरो पर करो का लगना, श्रमिक सघो द्वारा उत्पन्न कठिनाइयो आदि का सामना करते हुए भी अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। इन सब कामो के लिए उन्हे अधिक शक्ति, समय, श्रम और पूंजी की कुशलता पर सघन एकाग्रता, पहले से सघ बनाना और उद्योगो का कुशल प्रबन्ध करना पडता है।

राज्य उद्योगो मे स्वभावत इस बचत का अभाव होता है। इसका मूल कारण यह है कि वे लाभ की दृष्टि से नही चलाये जाते। उन्हे स्पर्द्धा का सामना नही करना पडता है और यदि वे उन्नति भी करें तो कर्मचारीगण को कोई लाभ नही होता है। यह बात आशिक रूप से सत्य है, लेकिन पूर्णतया ठीक नही। केन्द्रीय

---

1 "These are doubted when the Government is 'Capitalist' in nature and principles As the government, in that case, has to take the side of the capitalists, it becomes very difficult to check monopolistic tendencies in the methods mentioned above Indirect efforts at increasing the purchasing power artificially and raising the standards—are adhered to in that case with some degree of success"

नियोजित उद्योगों वाले देशों के विश्लेषण मे प्रतीत होता है कि यह दावा सत्य नहीं है। इस क्षेत्र में उद्योग से प्राप्त करने का दृष्टिकोण मूल्यों को नीचा बनाये रखने के लिए सहायक है। फिर भी पूँजीपतियों का यह दावा कि इस क्षेत्र के मुकाबले स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था अच्छी है, अभी तक विद्यमान है।

सभी देशों के संविधान अपने नागरिकों को आर्थिक स्थायित्व, व्यापार की स्वतन्त्रता, रोजगार तथा व्यवसायों की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। यहाँ फिर यह प्रश्न उठता है कि जब राज्य ने व्यापार की स्वतन्त्रता, उद्योग एवं व्यवसायों की स्वतन्त्रता प्रदान की है तो वह उद्योगों के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करके इस अधिकार का अपहरण क्यों करता है ? नागरिक अपनी आजीविका के साधनों मे स्वतन्त्र होना चाहिए। इस क्षेत्र मे राज्य का 'अनाधिकार प्रवेश' व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर 'अनाधिकार हस्तक्षेप' होगा। इस क्षेत्र मे राज्य केवल प्रतिरक्षा उद्योगों पर नियन्त्रण अपना सकता है क्योंकि इनमे व्यक्तिगत पूँजी नहीं लगी होती है।

उद्योगों के क्षेत्र मे, पूँजीवाद पर नियन्त्रण रखने के लिए नियोजन को अपनाना पड़ता है। निम्नलिखित कारणों का अस्तित्व पूँजीवाद पर नियन्त्रण रखने के लिए आवश्यक होता है :—

(क) आय तथा वितरण में समानता बनाए रखना।

(ख) श्रमिकों को शारीरिक परिश्रम के लिए अच्छी मजदूरी देना।

(ग) उद्योगों के अनुचित विस्तार को रोकना जो कभी अधिक उत्पादन, धन के एकत्रीकरण तथा एकाधिकार की स्थापना करता है।

(घ) लाभ का लक्ष्य एवं जनता के शोषण पर प्रतिबन्ध।

(ङ) रहन सहन के स्तर को ऊँचा करने के उपायों को अपनाना।

(च) मूल्यों पर नियन्त्रण रखना।

पूँजीवाद के विरुद्ध ये सभी आरोप सत्य नहीं हैं और न य किसी देश की आर्थिक शक्तियों पर राज्य के पूर्ण नियन्त्रण के आधार है। आज भी संसार के बहुत-से उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए देशों ने नागरिकों के स्तर को बिना गिराये ही पूँजीवाद को अपने देशों मे बनाए रखा है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, इंग्लैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी जर्मनी आदि कुछ इसके उदाहरण है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि पूँजीवाद पूर्णतया लाभकारी है। उग्र ढंग के पूँजीवाद और अधिक से अधिक शोषण वाले पूँजीवाद का सभी देशों मे समूल नाश या उसका पूर्ण विरोध होना चाहिए। लेकिन जब यह देशों के लिए लाभदायक हो तो इसको बने ही नहीं रहने देना चाहिए बल्कि राज्य को उसको समुचित सहायता भी करनी चाहिए। पूँजीवाद के दोष 'पूँजीवाद' से अलग किये जा सकते है। इसलिए केवल उसके दोष ही दूर करने चाहिए।

इस प्रकार हम देखते है कि आर्थिक नियोजन सभी देशो के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। लेकिन यह कहना कि यह हमेशा केन्द्रीय नियोजन ही हो, गलत है। प्रत्येक देश मे आर्थिक नियोजन चाहे वह किसी भी प्रकार का हो आर्थिक कठिनाइयो को दूर करने और आर्थिक क्षेत्र मे प्रगति तथा स्थिरता लाने के लिए आवश्यक होता है। इस नियोजन का स्वरूप देश की आर्थिक स्थिति और देश मे विद्यमान आर्थिक प्रणाली पर निर्भर होता है। प्रत्येक देश के लिए चाहे वहा केन्द्रीय नियोजन हो अथवा स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था उद्योगो पर नियन्त्रण, मुद्रा-प्रसार और मुद्रा सकुचन पर नियन्त्रण, मूल्यो का सही निर्धारण, एकाधिकार का स्थापित न होना, आय और सम्पत्ति का समान वितरण और देश मे एक ढगपूर्ण वित्तीय-नीति का अपनाना आवश्यक होता है।

२—'स्वतन्त्र बनाम नियोजित उत्पादन तथा मूल्य'

(Free Vs. Planned Production and Price)

इस बात को हर आदमी मानता है कि सन्तुलित आर्थिक विकास तथा बाजार-कला के स्थायित्व (Stability of market-mechanism) के लिए मूल्यो पर नियन्त्रण होना चाहिए। लेकिन प्रश्न इस बात का है कि मूल्यो पर नियन्त्रण कौन रखे ? उत्पादक, वितरक, उपभोक्ता अथवा राज्य ?

उत्पादक के दो मुख्य ध्येय इस प्रकार हैं—अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना एव अधिकतम उत्पत्ति। इससे अति उत्पादन का भय सदा बना रहता है। यदि साहसी के अनुमान तथा हिसाब गलत हो जायँ तो माँग तथा पूर्ति के पारस्परिक सम्बन्ध मे असन्तुलन हो जाता है। जिसके फलस्वरूप कम उत्पादन अथवा अति उत्पादन हो सकता है। कम उत्पादन या अति उत्पादन दोनो मे कुछ दोष होते है। अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादक दूसरे उत्पादको से स्पर्द्धा करेगा और अन्त मे एकाधिकार स्थापित कर लेगा। यदि वह एकाधिकार स्थापित कर लेता है तो उसकी वस्तुओं के मूल्यो का निर्धारण न तो माँग एव पूर्ति की शक्तियों द्वारा होगा, न वस्तुओं के उत्पादन व्यय से और न बाजार की स्पर्द्धा से बल्कि ऐसे समय मे वह अपनी वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण स्वयं करेगा—जिससे प्राय. उपभोक्ताओं को कष्ट होता है।

इस प्रणाली मे 'बनावटी अभाव की उत्पत्ति' एक दूसरा भय और होता है। यह उत्पादक अथवा वितरक द्वारा एक असीमित अवधि तक मूल्यों को बढाने के उद्देश्य से होता है, जिससे उपभोक्ताओं को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब तक इन बुराइयों को दूर नही किया जाता तब तक सामाजिक तथा आर्थिक समानता नही आ सकती।

नियोजित अर्थव्यवस्था के समर्थकों[1] का कहना है कि पूँजीवादी व्यापार-जगत में हर चीज व्यापारिक गोपनीयता के आवरण में छिपी रहती है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के समर्थकों का कहना है कि "पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अस्तित्व में देश का आर्थिक ढाँचा ग्रस्त व्यस्त हो जाता है और देश में एक आर्थिक विषमता उत्पन्न हो जाती है। उत्पादकों और वितरकों के सामने केवल एक ही मार्ग प्रदर्शक होता है—वस्तुओं का मूल्य। यदि मूल्य में वृद्धि होती है तो सभी उत्पादक लाभ के लालच से अधिकतम उत्पत्ति करने लगते है, जिससे अति उत्पत्ति की स्थिति आ जाती है। ... फिर मन्दी आने के कारण उत्पत्ति कम हो जाती है, बेरोजगारी फैलती है, लोगों को वस्तुएँ प्राप्त करने में कठिनता होती है। इस प्रकार इन देशों में व्यवसाय चक्र तीव्रता से चलता रहता है ... बाजार मूल्य में स्थिरता या सन्तुलन लाने के साहसियों के समस्त प्रयास असफल हो जाते हैं ...।" (*Planning in the Soviet Union*—S. G Strumilin, 1957 p 3.)

रूस का दावा है कि उनकी राष्ट्रीय नियोजन समिति द्वारा जो नियोजन-प्रणाली बनाई और अपनाई गई है उसने रूस में एक ऐसी अर्थव्यवस्था को सफल रूप दिया है जिसमे व्यापारिक चक्र, मन्दी, आर्थिक सकट, मूल्यों का भीषण उतार-चढ़ाव समाप्त हो गया है। (*Ibid*, p. 3)

३—स्वतन्त्र वितरण बनाम राज्य का व्यापार एवं मूल्य
(Free Distribution Vs State Trading and Prices)

स्वतन्त्र वितरण की अर्थव्यवस्था मे भी सभी वस्तुओं के वितरण का कार्य उत्पादकों, थोक व्यापारियों तथा खेरीज में बेचने वालों द्वारा पूरा किया जाता है। वे बिक्री की विभिन्न प्रकार की रीतियों का प्रयोग करते है। स्वतन्त्र वितरण में ये वितरक ही समान तथा अच्छे वितरण के लिए उत्तरदायी होते हैं।

सभी वस्तुओं की कीमत, एक उचित सीमा तक, वितरण की प्रकृति पर निर्भर होती है। यदि वितरण पूर्ण तथा सन्तुलित है तो कीमतें साधारण तथा स्थिर होती हैं। इसके अभाव में कीमतें असाधारण और असन्तुलित होती हैं तथा कीमतों में तनिक भी स्थायित्व नहीं होता है। इसलिए वितरण सुव्यवस्थित होना चाहिए।

1. *Planning in the Soviet Union*, Academician S. G Strumilin, pp. 2-3.

वितरकों के मुख्य उद्देश्य दो होते हैं—अधिकतम बिक्री और अधिकतम लाभ। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वितरक कभी कभी असाधु उपाय अपनाते हैं, जैसे कृत्रिम उपाय से वस्तुओं की कमी उत्पन्न करना, चोरी से वस्तुओं का अपने पास बड़ी मात्रा मे संचय करना या वस्तु के मूल्य मे अत्यधिक वृद्धि करना। यदि उन्हीं वस्तुओं की पूर्ति इन वितरकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा सम्भव होती है तो इनके बेईमानी के सभी प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। परन्तु, यदि इनकी पूर्ति अन्य वर्गों द्वारा सम्भव नहीं होती तो उपभोक्ता को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। व्यावहारिक जीवन म उपभोक्ताओं को इन परिस्थितियों में तब तक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं जब तक कि इन परिस्थितियों मे राज्य का हस्तक्षेप न हो।

जो कुछ देशी वस्तुओं के विषय मे सत्य है, वही आयात निर्यात की हुई वस्तुओं के विषय मे सत्य है, यदि वितरक चाहे तो आयात निर्यात की वस्तुओं मे चोरबाजारी की अधिक सम्भावना है—क्योंकि इस क्षेत्र मे, बढ़ती कीमतों को रोकने, कीमतों के अस्थायित्व को रोकने अथवा उपभोक्ताओं के शोषण को रोकने मे राज्य को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति मे राज्य के लिए केवल एक ही मार्ग शेष रहता है—वस्तुओं के आयात निर्यात मे राज्य का नियन्त्रण।

कुछ भी हो, हम इस सत्य को नहीं झुठला सकते कि स्वतन्त्र वितरण के कार्य (राज्य की तुलना मे) अधिक कुशल होते हैं अर्थात् राज्य वितरण कार्यों के स्वतन्त्र वितरण स कम कुशलतापूर्वक निर्वाह कर पाता है। स्वतन्त्र वितरण म लोग अधिक लगन से, उत्साह से, अनुभव से, तथा लाभ के उद्देश्य से कार्य करते है। ऐसा राज्य नियंत्रित व्यापार से नहीं हो पाता है। अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि के कारण वितरक व्यापार की भली भाति व्यवस्था कर सकते हैं तथा कीमतों मे अधिक स्थायित्व एव वितरण मे अधिक समानता ला सकते है।

स्वतन्त्र वितरण का एक बड़ा लाभ और है। स्पर्द्धा के होने तथा 'सीमान्त वितरक' के अस्तित्व के कारण वितरक माल जमा करने, माल रखने, बनावटी अभाव की उत्पत्ति करने एव वस्तुओं की मनमानी कीमतों को बढाने के बहुत कम अवसर आते हैं। ऐसे समय में उपभोक्ता को दो तरह से लाभ होता है—वस्तुयें शीघ्र मिल जाती हैं और कम कीमत देनी पड़ती है।

४—प्रतिस्पर्द्धीय बनाम नियन्त्रित कीमत

(Competitive Vs Controlled Price)

प्रतिस्पर्द्धीय कीमत का अर्थ है कि माँग एव पूर्ति की शक्तियों के प्रभाव से

कीमत का निर्धारण अर्थात् प्रतिस्पर्द्धीय शक्तियो (मांग और पूर्ति) मे जहां सन्तुलन स्थापित हो जाय वही कीमतों का निर्धारण होगा। यह कीमतो के निर्धारण का आर्थिक सिद्धान्त है। अधिकतर परिस्थितियो मे कीमते इसी प्रकार निर्धारित की जाती हैं। इसमे बहुत-से लाभ होते हैं—जैसे, प्रतिस्पर्द्धा के परिणामस्वरूप कीमतो का कम हो जाना, औद्योगिक इकाइयो का अपनी उत्पत्ति की प्रणालियो को उन्नत करने को इच्छुक तथा सतर्क रहना। इस प्रणाली मे कीमत, उत्पत्ति की सीमान्त कीमत के बराबर होती है, बाजार मे केवल एक ही कीमत का प्रसार होता है, कीमतो मे कोई अन्तर नही हो सकता है एव इन साधारण परिस्थितियो मे एकाधिकार की स्थापना नहीं हो सकती।

कीमतो का निर्धारण जब मांग और पूर्ति की शक्तियो की पारस्परिक प्रतिक्रिया से नही होता तभी उस मूल्य को नियन्त्रित करने के लिए उत्पादक या राज्य को कदम उठाना पडता है। प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप छोटी इकाइयाँ यदि बाजार मे हट जायें और बडे उद्योगपति एकाधिकार की स्थापना करके कीमतो को एक अनुचित सीमा तक बढा दें तो नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। दूसरे, यदि उत्पत्ति केवल एक सगठन या व्यक्ति के अधीन होती है, और वह कीमतों मे स्वेच्छा से अन्तर लाते रहे तो नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। तीसरे, यदि अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के ध्येय से, कृत्रिम अभाव उत्पन्न करके कीमतें बढा दी जायें तो नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। चौथे, वस्तुओं—विशेषकर आवश्यक वस्तुओ की कमी या अभाव हो तो उपभोक्ताओ के समक्ष अधिक मूल्य देने के सिवाय कोई दूसरा मार्ग नही होता है। इसलिए भी नियन्त्रण अधिकारियो के लिए, कीमत कम करने और सन्तुलित वितरण करने के लिए नियन्त्रण करना आवश्यक हो जाता है। पाँचवे, आयात की हुई वस्तु मे व्यापारियों को अनुचित कीमत बढाने के लिए बहुत अवसर मिलते हैं, जिससे नियन्त्रण करने या व्यापार को प्रारम्भ करने के लिए राज्य विवश हो जाता है। छठे, कभी कभी मुद्रा प्रसार के कारण अनुचित बढी हुई कीमतो को रोकने के उद्देश्य से नियन्त्रण करना आवश्यक होता है।

प्रतिस्पर्द्धीय (Competitive) कीमत कला (Price Mechanism) के समर्थकों का कहना है :—

(१) प्रत्यक्ष नियन्त्रण लागू करना (Imposition of direct control) सविधान की धाराओं के प्रतिकूल है। हमारे सविधान ने स्वतन्त्र व्यापार को स्वतन्त्रता प्रदान की है। जिसमे स्वतन्त्र रूप से मूल्य निर्धारण करना भी सम्मिलित है। प्रत्यक्ष नियन्त्रण इस धारा के प्रतिकूल है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह बात याद रखनी चाहिए कि नियन्त्रण कीमतो में स्थायित्व लाने के लिए किया

जाता है न कि व्यापारियों के व्यापार सम्बन्धी अधिकारों को समाप्त करने के लिए। नियन्त्रण, उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के दृष्टिकोण से जब आवश्यक समझे जाते हैं लागू किये जाते हैं।

(२) यदि नियन्त्रण पूर्ण नहीं होते है तो उत्पादकों, उपभोक्ताओं तथा श्रमिकों को इससे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उत्पादक लाभ प्राप्त करने के ध्येय से कार्य करते हैं। यदि यह लाभ प्रत्यक्ष नियन्त्रण से कम कर दिया जाय या समाप्त कर दिया जाता है तो वे अपनी पूँजी का विनियोग किन्हीं अन्य उद्योगों में करते है। इससे कुछ कठिनाइयाँ तथा उलझनें उत्पन्न होती हैं। उपभोक्ताओं को, अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए, स्थायी कीमतों पर वस्तुओं तथा सेवाओं की सदैव आवश्यकता होती है। यदि उत्पत्ति की मात्रा में परिवर्तन होते रहे तो पूर्ति और कीमतों में कोई स्थिरता नहीं रह पाती है। ऐसी परिस्थिति में श्रमिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान या एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जाने के कारण कठिनाइयाँ होंगी।

लेकिन यह बहुत दिन तक नहीं चल सकता। उत्पादक वर्ग को उत्पत्ति प्रारम्भ करने से पूर्व, बड़ा भारी विनियोग करना पड़ता है। इसलिए उनके लिए यह आसान नहीं है कि अपनी पूँजी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर या एक उद्योग से दूसरे उद्योग में बदल सकें। उत्पत्ति के प्रारम्भिक काल में कुछ मात्रा में परिवर्तन करने के पश्चात्, उत्पादन का स्थायित्व सामान्य पूर्ति के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को अधिक समय तक हानि नहीं उठानी पड़ती है। श्रमिकों की गतिशीलता से कुछ लाभ होता है, विशेषकर यह उनको कम मजदूरी के कार्यों को छोड़कर अधिक वेतन वाले मजदूरों के कार्य प्रदान करने में सहायक होते है।

(३) नियन्त्रण लागू करने से समय, शक्ति तथा धन व्यर्थ जाता है, जिसकी स्वतन्त्र बाजार में आवश्यकता नहीं होती है। राज्य को, नियन्त्रण लागू करने तथा उसे प्रभावशाली ढंग से सचालित करने के लिए एक सुव्यवस्थित और सुसगठित शासन की व्यवस्था करनी पड़ती है।

नियन्त्रण-प्रणाली के अधिक खर्चे को जानते हुए भी, आवश्यकता पड़ने पर, प्रत्येक देश में इसे लागू किया जाता है। राज्य का कार्य केवल 'एक व्यक्ति समूह' की ही उन्नति के अवसर प्रदान करना नहीं है बल्कि जनता को अधिकतम सुविधायें और लाभ प्रदान करना है। इस प्रकार नियन्त्रण आवश्यक रूप से "कीमत-प्रणाली के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की तुलना में बेढंगा (Clumsy) अकुशल तथा बर्बादी वाला (Wasteful) नहीं होता है।" यदि नियन्त्रण उचित ढंग से व्यवस्थित,

सुसचालित तथा सुशासित हो एव उसे जनता के कल्याण तथा लाभ की दृष्टि से प्रारम्भ किया जाय तो यह अच्छा होता है। इनके अतिरिक्त नियन्त्रण इसलिए भी स्थापित किया जाना है कि आयात की मात्रा मे कमी हो, निर्यात की मात्रा मे वृद्धि हो और विदेशी मुद्रा की बचत हो सके।

योजना आयोग के अनुसार[1] योजना के सदभ मे वित्तीय साधनो को एकत्र और सगठित करके आर्थिक नीति की इतिश्री नही हो जाती बल्कि नीति का उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह योजना की आवश्यकताओं के अनुसार उपभोग को प्रोत्साहित करे और वास्तविक साधनो का उपयोग करे। योजना केवल उन कार्यो की सूची नही है, जो हमे करने है, बल्कि योजना मे एक नीति होती है जिसके अनुसार ये कार्य सम्पन्न किए जाते है। मोटे तौर पर दो काय पद्धतियाँ है और उन दोनो का इस्तमाल किया जाना चाहिए। प्रथम आर्थिक क्रिया को वित्त नीति के माध्यम से पूरी तरह नियन्त्रित करना और द्वितीय, आयात और निर्यात नियन्त्रण, उद्योगों और व्यवसायो को लाइसन्स देना, मूल्य नियन्त्रण और नियमन आदि उपाय जो अर्थव्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र की या उप क्षेत्र की आर्थिक क्रिया को प्रभावित और नियमित करते है। व्यापक योजना मे जिसका उद्देश्य विनियोग मे यथेष्ट वृद्धि करना और प्राथमिकता की योजना पर अमल करना होता है, इन दोनो तरह के नियन्त्रणो की जरूरत पडती है।

विकासशील अर्थव्यवस्था म वित्त और अर्थ के क्षेत्र मे सरकार की बुनियादी प्रवृत्ति अनिवार्यत प्रसारणात्मक होती है। अतएव मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति को नियमित करने की मुख्य समस्या सामने आती है अल्प विकसित अर्थव्यवस्था मे साधन कम होते है जिनसे बहुत सी आवश्यक और आकस्मिक जरूरतो की पूर्ति करनी होती है। हो सकता है कि कृषि उत्पादन लक्ष्य मे कम हो या इस तरह की दूसरी कठिनाइयाँ पैदा हो जायँ। लेकिन ऐसा तो नही किया जा सकता कि जरा सी दिक्कत पडते ही विकास कार्यक्रम को रोक दिया जाय या धीमा कर दिया जाय। किसी हद तक जोखिम उठाना ही पडेगा। इसका मतलब यह हुआ कि मौका पडते ही आवश्यकतानुसार वस्तुओ पर नियन्त्रण लगाने के लिए तैयार रहा जाय। इन उपायो की सफलता के लिए पहले से ही अनुकूल वातावरण तैयार किया जाना चाहिए।

---

1. द्वितीय पचवर्षीय योजना, (सक्षिप्त) १९५६ योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ—१८।

'५—कर, द्रव्य का नियन्त्रण तथा कीमतें

(Taxation, Control of Money and Prices)

कर मुख्य रूप से सरकारी राजस्व में वृद्धि करने, देश की आर्थिक असमानता को दूर करने, मुद्रा-प्रसार की कठिनाइयों को दूर करने एवं दरिद्रवर्ग को अधिक सुविधायें प्रदान करने के उद्देश्य से लगाए जाते हैं। कर-प्रणाली द्वारा देश की आर्थिक विषमताओं को दूर करने के साथ साथ देश की वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य भी नियन्त्रित होता है। कर विभिन्न प्रकार से लगाए जा सकते हैं, जैसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में, मूल्य पर या मात्रा पर। इसी प्रकार, कर विभिन्न प्रकार के भी हो सकते हैं जैसे निश्चित दर कर, ऊर्ध्वगामी कर, प्रगतिशील कर, अधोगामी कर आदि। प्रत्येक देश में इस बात की चेष्टा की जाती है कि कर प्रणाली को एक ऐसा सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया जाय जिससे देश में मुद्रा प्रसार रुक जाये और मूल्यों में स्वतः नियन्त्रण स्थापित हो जाय। भारत में भी इस बात का प्रयत्न किया गया है कि कर-प्रणाली में सुधार करके मूल्यों पर नियन्त्रण रखा जाय।

नियोजन आयोग[1] के अनुसार भारत में टैक्सों के वर्तमान ढाँचे की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनके द्वारा आबादी का अपेक्षाकृत बहुत कम भाग प्रभावित होता है। टैक्स द्वारा होने वाली कुल आमदनी का लगभग २८% प्रत्यक्ष करों द्वारा प्राप्त होता है जिसका प्रभाव श्रमिकों की आबादी के एक प्रतिशत के लगभग आधे पर ही प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। लगभग १७% आमदनी आयात करों द्वारा होती है ''' दूसरी ओर लगान से '' '''टैक्सों की कुल आमदनी का लगभग ८% वसूल होता है।

टैक्सों की यह सीमित दर राष्ट्रीय आमदनी में सरकार को टैक्स से प्राप्त आमदनी के छोटे अनुपात के लिये जिम्मेदार है। इसी के कारण टैक्सों की वर्तमान दर अधिक प्रतीत होती है। इससे दोनों ही तरह सार्वजनिक बचतों की सीमा में बाधा पहुँचती है। '''परन्तु आयोजन की आरम्भिक अवस्थाओं में प्रोग्राम के आकार और वित्त के साधनों का निश्चय इस बात को देखते हुए करना होगा कि शासन और राज्य-कर सम्बन्धी वर्तमान यन्त्र के द्वारा तथा वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे की सीमाओं के अन्दर क्या करना व्यावहारिक होगा। इसलिये जबकि भारत में टैक्स-नीति का उद्देश्य यह होना चाहिये कि टैक्स की आमदनी के स्तर को इस प्रकार से बढ़ाया जाय कि विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके,

1. पहली पंचवर्षीय योजना (जनता संस्करण), योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ, २८-२९।

हमे उन सामाजिक और आर्थिक ढाँचो के अनुकूल भी इस नीति को बनाये रखना होगा जिनके अन्तर्गत विकास का आरम्भ हुआ है।

हमारे नियोजको ने इस बात पर भी बल दिया है[1] कि योजना मे जिस सन्तुलन को प्राप्त करना है, वह वास्तविक और वित्तीय दोनो ही रूपो मे होना चाहिए। उत्पादन के क्रम मे मुद्रा के रूप मे आय का जन्म होता है, और मुद्रा की माँग पर सम्भरित वस्तुओ की खपत होती है। अतः यह बात महत्वपूर्ण है कि मुद्रा के रूप मे प्राप्त आय के व्यय को इस प्रकार नियमित किया जाये जिससे उपभोग्य वस्तुओं की माँग और पूर्ति के बीच, बचतो और विनियोग के बीच तथा वैदेशिक अर्जन और भुगतान के बीच सन्तुलन बना रहे। ...... माँग और पूर्ति का सामजस्य ऐसा हो जिससे भौतिक साधनो का पूरा लाभ तो उठाया जा सके, पर मूल्य के ढाचे मे कोई बडा या असन्तुलित परिवर्तन न हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कीमतो को नियन्त्रित रखने के लिये यह आवश्यक है कि वित्तीय-व्यवस्था सुव्यवस्थित हो और कर प्रणाली भी देश मे उन्नत प्रकार की हो।

६—बढ़ती हुई, गिरती हुई अथवा स्थायी कीमतो में कौनसी सब से अच्छी है ?

(Are Rising, Falling or Steady Prices the Best ?)[2]

बढती हुई, गिरती हुई तथा स्थायी कीमतो के समर्थक विद्यमान है। कुछ यह कहते हैं कि,

१—बढती हुई कीमतें—यदि उनमे वृद्धि धीरे धीरे हो—देश के लिए बहुत लाभदायक होती हैं क्योंकि ऐसी परिस्थितियो मे उत्पादको को लाभ होने के कारण देश मे नये नये उद्योगो की स्थापना होती है, कच्चे माल की अधिक खपत होती है, राष्ट्र के प्राकृतिक साधनो का समुचित शोषण होता है, श्रमिको को रोजगार मिलने मे सुविधा होती है, सरकार को करो के रूप मे अधिक राजस्व प्राप्त होता है और देश के औद्योगिक विकास द्वारा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है।

२—कुछ अन्य व्यक्तियो का यह कहना है कि जब देश मे वस्तुओ और सेवाओ की कीमतें धीरे-धीरे गिरती हैं तो देश को लाभ प्राप्त होता है क्योंकि

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (सक्षिप्त), योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ—७।
2. *Outlines of Economics*, M. Sen, Vol II, (1933), pp. 51–53.

ऐसी परिस्थितियों मे उत्पादको को अपनी उत्पत्ति की मात्रा को निश्चित करने के लिए काफी समय मिल जाता है और वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य मे कमी आ जाने के कारण जनता का उपभोग का स्तर ऊँचा हो जाता है।

३—अधिकतर अर्थशास्त्री (जिनमे कैसेल, कीन्स, हौट्रे आदि प्रमुख है) यह मानते है कि किसी भी देश के लिए न तो बढती हुई कीमतें अच्छी होती हैं और न गिरती हुई कीमतें। वास्तव में यदि किसी देश को सुव्यवस्थित रूप से आर्थिक विकास करना हो तो उसके लिए यह आवश्यक होगा कि वह अपने देश मे वस्तुओं और सेवाओं की कीमतो मे स्थिरता बनाय रखे। कीमतो मे स्थिरता रहने म बाजार, उत्पत्ति और वितरण की अनिश्चितता सदा के लिए लुप्त हो जाती है और देश मे व्यापार और विनिमय सुचारु रूप से चलता है—न किसी वर्ग को अत्यधिक हानि हो पाती है और न किसी वर्ग को लाभ। इस प्रकार हम दृढता से यह कह सकते है कि कीमतो मे स्थिरता रहने से उत्पादकों, उपभोक्ताओं, सरकार, व्यापारी वर्ग आदि सभी को लाभ रहता है।

प्रो० रोबर्टसन (Prof. Robertson) का मत है, " ······यदि हमारे सामने चुनाव करने की सुविधा हो तो आवश्यक रूप से हम 'मूल्य में स्थिरता' को ही चुनेंगे ··· · ।"[1]

प्रो० सैलिग्मैन (Prof. Seligman) का मत है, "बढती तथा घटती हुई कीमतो के कारण कीमतो मे असन्तुलन उत्पन्न होता है जिससे उत्पादक, व्यापारी और नागरिको को कठिनाई होती है। इसके कारण किसी एक वर्ग को अत्यधिक लाभ या हानि हो सकती है। वास्तव मे बढी हुई कीमत या कम कीमत हानिकारक नही होती बल्कि बढती हुई कीमत और घटती हुई कीमत हानिकारक होती हैं। ··· · देश के मूल्य-स्तर मे स्थिरता होनी चाहिए।"[2]

कीन्स (Keynes) के विचार इस विषय मे इस प्रकार हैं,—"कीमतो मे स्थिरता 'गोल्ड स्टैंडर्ड' (Gold Standard) से लाने का प्रयास नही करना चाहिए बल्कि नियन्त्रित 'पेपर स्टैंडर्ड' (Paper Standard) द्वारा ······ देश की केन्द्रीय बैंक और सरकार द्वारा इस मुद्रा की मात्रा पर नियन्त्रण होना चाहिए ताकि कीमतों मे, उत्पत्ति की मात्रा मे, व्यापार और रोजगार की मात्रा मे स्थिरता बनी रहे।"[3]

---

1. Robertson. —*'Money'* p. 140
2. Seligman—*Principles.* (Re-quoted from *"Outlines of Economics."*—M. Sen Vol. II, P. 52)
3. Keynes.—*General Theory.*

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देश के आर्थिक विकास के लिए या योजना को सफल बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि वस्तुओ और सेवाओ की कीमतो मे स्थिरता बनी रहे क्योकि ऐसी परिस्थिति मे राज्य के समस्त नागरिको को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। सरकार, उत्पादक, उपभोक्ता, व्यापारी, श्रमिक, साहसी और यहाँ तक कि देश की साधारण जनता द्वारा भी इस बात की चेष्टा होनी चाहिए कि देश मे विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ के मूल्य-स्तर मे स्थिरता बनी रहे।

आर्थिक नियोजन के पूर्व-प्रयोजन तथा प्रभाव उत्पन्न करने के साधन

(Pre Requisites and Levers of Economic Planning)

विशेष रूप से भारतीय योजना के संदर्भ में

(With Special reference to Indian plans)

१—सांख्यिकीय आँकड़े और सूचनायें

(Statistical Data and Informations)

सफल आर्थिक नियोजन के लिए सांख्यिकी सम्बन्धी स्वीकृत आँकड़ो तथा सूचनाओं का प्रयोजन बहुत ही आवश्यक है। "आर्थिक नियोजन एक जटिल कार्य है, जिसमे आधार, सिद्धान्त, प्राथमिकतायें, लक्ष्य, तत्व, आर्थिक पहलुओं की व्याख्या की जाय · · नियोजकों को मौलिक सिद्धान्त को व्यवस्थित करना पड़ता है जिस पर कि नियोजन का रूप और आकार आधारित होता है।[1] उसे उद्देश्यो, रोजगार, प्राथमिकताओ, विनियोग, व्यय प्रणाली एव उत्पत्ति-लक्ष्य आदि से सम्बन्धित बहुत सी बातो पर नियोजन की रूपरेखा बनाने के लिए विचार करना पड़ता है। नियोजन को एक अच्छे रहन सहन के स्तर को प्राप्त करने का उपाय बताना होता है, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने की प्रणाली का उपाय बताना होता है, एव एक प्रगतिशील कर को अपनाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। इन उद्देश्यो की पूर्ति मे उन्हे साख्यिकीय एव सूचना की आवश्यकता पड़ती है। यदि ठीक तथा पर्याप्त स्वीकृत आँकड़े प्राप्त है तो आर्थिक नियोजक का कार्य अधिक आसान हो जाता है। इसके अभाव मे नियोजक को कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है।

प्रथम योजना के निर्माण काल[2] मे साख्यिकीय एव आँकडो सम्बन्धी बहुत-सी कठिनाइयाँ थी। इनमे से कुछ निम्नलिखित थी :—

१—साख्यिकीय सस्थाओ का अभाव।

२—विभिन्न विषयो पर क्षेत्रीय अनुसन्धान का अभाव।

---

1. *Statistics Papers* —A. B Bhattacharya

2. *Second Five Year Plan*, Govt. of India, (1956) Chapter XII, pp 246-254.

३—विशिष्ट क्षेत्रो मे बचत, विनियोग, आय, उद्योग सम्बन्धी एव प्रादेशिक विकास सम्बन्धी आकडो की कमी।

इनके अतिरिक्त देश मे जो साख्यिकीय आँकडे उपलब्ध थे, वे ठीक और सशोधित नही थे। साख्यिकीय आकडो के प्रकाशन एव व्यवहार का प्रबन्ध भी आवश्यकतानुसार एव समयानुकूल नही था, जिससे प्रथम पचवर्षीय योजना के विधायको को काफी कठिनाइयो का सामना करना पडा था।

पहली पचवर्षीय योजना की अवधि मे, साख्यिकीय सामग्री एकत्र करने और उसका विश्लेषण करने वाले सगठनो और सस्थाओ को काफी सुदृढ किया गया है। १९४९ मे केन्द्रीय साख्यिकीय एकक और राष्ट्रीय आय समिति की स्थापना, १९५० मे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का प्रारम्भ और १९५१ मे केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन की स्थापना और भारतीय साख्यिकीय सस्था का कार्य साख्यिकीय की दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम हैं। भारतीय साख्यिकीय सस्था के कार्यो का भी विस्तार हुआ है। औद्योगिक मामलो मे केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन का राज्य साख्यिकीय मण्डलो से निकट सम्पर्क रहता है और वह समन्वयात्मक सस्था के रूप मे कार्य करता है।

साख्यिकीय कार्य पद्धति के क्रमश व्यापक रूप मे विकास से दूसरी और तीसरी पचवर्षीय योजनाओ के निर्माण मे सहायता मिली है। १९५४ मे केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन मे योजना सम्बन्धी साख्यिकीय कार्य से सम्बन्धित एक विशेष शाखा खोली गई है। भारतीय साख्यिकीय सस्था और केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन ने सयुक्त रूप मे योजना सम्बन्धी औद्योगिक अध्ययन का कार्य हाथ मे लिया और अनेक विषयो पर अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया। इसके बाद ही मार्च, १९५५ मे योजना की एक रूपरेखा तैयार की गयी जिसमे दूसरी पचवर्षीय योजना के लिए सुझावो का मसविदा था।

योजना निर्माण के साथ साथ मशीनो, सामग्री और श्रम की माँग और पूर्ति का लगातार सतुलित रखने का अनिवार्य कार्य करना होगा। चालू और आगामी योजनाओ के निर्माण के लिए साख्यिकीय सूचना की और अधिक आवश्यकता होगी। साथ ही वित्तीय और भौतिक दृष्टि से योजना के सचालन का मूल्याकन करते रहने की आवश्यकता पडेगी और आवश्यक समायोजन के लिए इस सूचना का प्रयोग करना होगा। इसलिए साख्यिकीय पद्धति से निरन्तर अनिवार्य रूप मे सूचना मिलनी चाहिए। इसका उद्देश्य केन्द्र और राज्यो के कार्यों को समन्वित करना है। केन्द्र के केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन मे योजना सम्बन्धी कार्यो के निरीक्षण के लिए एक योजना विभाग की स्थापना की गई है। योजना आयोग ने राज्य सरकारो को सुझाव दिया है कि वे राज्य के साख्यिकीय मडलो को राज्य के योजना सम्बन्धी साख्यिकीय कार्यों

का उत्तरदायित्व लें। केन्द्रीय और राज्यीय सांख्यिकीय संस्थाओं को सुदृढ़ किया जा रहा है। जिले के लिए जिला सांख्यिकीय एजेन्सियाँ भी स्थापित की गई हैं। योजना आयोग का विचार है कि वह माँग और पूर्ति के भौतिक सम्बन्धों पर होने वाले औद्योगिक और सांख्यिकीय कार्य को मजबूत और व्यापक बना देगा। दूसरे शब्दों में योजना से सम्बन्धित विनियोग, रोजी रोजगार और आय, पण्यों और जनशक्ति के संतुलन और योजना संचालन विषयक शोध सम्बन्धी अध्ययन कार्यों को बढ़ाया जायगा। भारतीय सांख्यिकीय संस्था में होने वाले सम्बन्धित कार्यों और भविष्य की योजना रचना की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा। इस क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने के लिए यह निर्णय किया गया है कि योजना आयोग, वित्त मन्त्रालय के आर्थिक मामलों का विभाग, केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन और भारतीय सांख्यिकीय संस्था के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त समिति बनाई जाय।[1]

२—उद्देश्यों का निर्धारण

(Determination of Objectives)

भारत में आयोजना का केन्द्रीय उद्देश्य जनता के जीवन के स्तर को ऊँचा उठाना और उनके लिए एक अधिक समृद्धशाली और विविधतापूर्ण जीवन के लिए अवसर प्रदान करना है। इसलिए आयोजन का लक्ष्य एक ओर तो यह होना चाहिए कि समाज में प्राप्त जन और सम्पत्ति के साधनों का और अधिक प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जाय जिससे उन साधनों के द्वारा सामग्री और सेवा की अधिक से अधिक प्राप्ति हो और दूसरी ओर आमदनी, धन और अवसर में असमानतायें कम हों। अगर किसी प्रोग्राम का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना होगा तो उसका परिणाम यह हो सकता है कि कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में ज्यादा धन पड़ जाय और जनता अपनी गरीबी की वर्तमान दशा में ही बनी रहे और इस प्रकार उस प्रोग्राम को अधिक बड़े सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में असफलता मिले। दूसरी ओर, अगर वर्तमान धन की दुबारा बाँट ही की जाती है तो उसमें समाज के कुछ वर्गों के हितों की हानि होगी और शेष वर्गों की दशा में कोई विशेष सुधार नहीं होगा। इसलिए हमारा प्रोग्राम दुहरा होना चाहिए जिसमें कि उत्पादन तत्काल बढ़े और असमानतायें कम हों। प्रोग्राम के दोनों पक्ष एक दूसरे पर असर डालते हैं। यह निश्चय करना कि किस हद तक किसी एक दिशा में आगे बढ़ना, दूसरी दिशा में आगे बढ़ने के लिए रास्ता साफ कर सकता है, एक बड़े ही नाजुक निर्णय का सामना है। जबकि हमें आरम्भिक अवस्थाओं

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, (संक्षिप्त) १९५६, योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ, ९५–९६।

मे अधिक उत्पादन सम्बन्धी कोशिशो पर जोर देना होगा, क्योकि इसके बिना किसी प्रकार की उन्नति सम्भव ही नही है। हमारा आयोजन प्रारम्भिक व्यवस्थाओ मे मौजूदा सामाजिक और आर्थिक ढाचे के अन्दर आर्थिक क्रियाशीलता को बढावा देने तक ही सीमित न रहना चाहिए। हमे तो उस ढाचे को फिर से ऐसा बनाना है जिससे कि समाज के सभी लोगो के लिये क्रमश रोजी-रोजगार, शिक्षा, बीमारी तथा अन्य असमर्थताओ के विरुद्ध सुरक्षा और सम्बन्धित आमदनी का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जा सके।[1]

हमारे समाज के मूल उद्देश्य क्या है, इसका सार इधर 'समाजवादी ढग की समाज व्यवस्था' के वाक्यांश द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मोटे तौर पर इसके माने यह हैं कि आगे बढने का रास्ता चुनते समय सारे समाज की बात सोचेंगे किसी वर्ग या व्यक्ति के लाभ की नही, और विकास-पद्धति और सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धो का विधान कुछ इस तरह निर्धारित करेंगे कि न सिर्फ राष्ट्रीय आय और सम्पत्ति की विषमता घटती ही चली जाये, बल्कि आर्थिक उन्नति मे समाज के वह वर्ग विशेष रूप से लाभान्वित हो जो अपेक्षाकृत कम सम्पन्न है। चारो ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य हो और गरीब से गरीब मनुष्य को भी अपनी जिन्दगी सफल बनाने का पर्याप्त अवसर मिले।

ऐसी परिस्थितियो की स्थापना के लिए राज्य को भी अपने ऊपर भारी जिम्मेदारियाँ लेनी पडती हैं। उद्योगो के सार्वजनिक क्षेत्र को तेजी से बढाना होता है। सार्वजनिक और निजी, दोनो ही क्षेत्रो मे पूँजी कहाँ, कितनी और किस तरह लगे, इसकी देखरेख करने की जिम्मेदारी बहुत हद तक राज्य को अपनानी होती है, और विकास के ऐसे काम उठाने होते हैं, जिन्हे निजी क्षेत्र या तो उठा नही सकता या उठाना नही चाहता। कुछ बडे-बडे नये उद्योग धन्धो की, जिनके लिए आधुनिक शिल्पविधि का ज्ञान, बडे पैमाने पर उत्पादन और साधनो के आवटन और नियन्त्रण का एकाधिकार अपेक्षित हो, जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य को ही उठानी होगी। ऐसे क्षेत्रो मे जहा औद्योगिक कारणो से आर्थिक सत्ता और सम्पदा का सचयन एक विशेष व्यक्ति या वर्ग के हाथ मे हो जाने की सम्भावना हो, आशिक या पूर्ण रूप से सार्वजनिक स्वामित्व और प्रबन्ध पर सार्वजनिक नियन्त्रण या हिस्से-दारी आम तौर से आवश्यक हो जाती है। निजी क्षेत्र को भी बहुत काम करना होगा, लेकिन समूची योजना के दायरे मे रहकर। विकासशील अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक और निजी, दोनो ही क्षेत्रो को साथ-साथ उन्नति करने का अवसर मिल सकता है, लेकिन स्पष्ट है, अगर आर्थिक उन्नति निश्चित गति से की जानी है और उसमे व्यापक सामाजिक उद्देश्यो को पूरा करना है तो सार्वजनिक

---

1 पहली पंच वर्षीय योजना, (भारत सरकार), जनता सस्करण, योजना कमीशन, पृष्ठ ७३।

क्षेत्र न सिर्फ बढाना होगा वलिक निजी क्षेत्र से ज्यादा तेजी से और ज्यादा आगे तक बढाना होगा ।[1]

द्वितीय एव तृतीय योजनाओं का उद्देश्य :

लोकतन्त्र और समानता के आधार पर प्रगति करना ही हमारा मुख्य उद्देश्य हैं।

इस व्यापक दृष्टि को ध्यान मे रखकर निम्न उद्देश्य प्राप्त करने के लिए द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजनायें वनाई गई हैं —

(१) राष्ट्रीय आय म इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो ,

(२) मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण ,

(३) रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार और ,

(४) आय और सम्पत्ति की विषमताओ का निराकरण और आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण ।

ये उद्देश्य परस्पर सम्बद्ध हैं और उन्हे सन्तुलित ढग से चल कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

रहन-सहन का निम्न या स्थिर स्तर वेरोजगारी और कम-रोजगारी, कुछ हद तक औसत और अधिकतम आय का अन्तर, यह सब उस आधारभूत अल्पविकास के ही लक्षण हैं जो मुख्यत खेती पर आधारित अर्थव्यवस्था की विशेषता है। इस प्रकार द्रुत औद्योगीकरण और आर्थिक व्यवस्था का विविधतापूर्ण होना विकास का प्रशस्त मार्ग है । पर यदि हमे काफी तेजी से औद्योगीकरण करना है, तो लोहा और इस्पात, लोहेतर धातुएँ, कोयला, सीमेन्ट जैसे मूल उद्योगो और मशीन तैयार करने वाले उद्योगो का द्रुत विकास करना पड़ेगा । साधनो के विनियोग के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमे न केवल तत्कालिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो वरन् हमारी वढती हुई आवश्यकताओ की भी पूर्ति होती रहे ।[2]

देश मे औद्योगीकरण

दूसरी योजना मे औद्योगीकरण को, विशेषत भारी और मूल उद्योगो के विकास को, उच्च प्राथमिकता दी गई है । औद्योगिक और खनिज पदार्थों के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को व्यापक वनाने की व्यवस्था की गई है। इन कार्यक्रमो को पूरा करने का मुख्य उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार पर है । इन कार्यक्रमो के लिए

---

1 (संक्षिप्त) द्वितीय पचवर्षीय योजना, १९५६, योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ ११—१२

2 (संक्षिप्त) द्वितीय पचवर्षीय योजना, १९५६, योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ ११—१२

अपार धन की आवश्यकता होगी। इसके अलावा सरकार के वर्तमान सगठन सम्बन्धी तथा प्रशासक कर्मचारी वर्ग को मजबूत किया जाना चाहिए और शीघ्र निर्णय करने तथा उन्हे कार्यान्वित करने के लिए उचित ढग अपनाये जाने चाहिए। सम्भव है कि भारी उद्योग, तेल की खोज और कोयले के विकास कार्यक्रमो का आकार और बढाना पडे। आणविक शक्ति के विकास के साथ अन्य कार्यक्रम भी शुरू किये जायेगे। आणविक शक्ति के विकास के लिए उत्पादन के साधनो मे तेजी से वृद्धि करना और ईधन एव शक्ति के साधन उपलब्ध करना परमावश्यक है। दूसरी योजना के लक्ष्य प्रभावोत्पादक है, लेकिन यह याद रखना होगा कि उन्हे सिद्ध करने के लिए अपेक्षाकृत बहुत अधिक धन और समुचित सगठन की आवश्यकता पडेगी।

योजनाकाल मे सार्वजनिक और निजी, दोनो क्षत्रो को विकसित करके सेवाओ और वस्तुओ का उत्पादन बढाया जायगा। दोनो क्षत्रो को एक साथ मिल जुल कर काम करना होगा। दोनो क्षत्र एक सम्पूर्ण व्यवस्था के अग समझे जायँगे क्योकि योजना की प्रगति दोनो क्षत्रो के समान और सतुलित विकास पर निर्भर है। निजी क्षेत्र के विकास की प्रवृत्तियो पर सरकार समुचित नियमो के द्वारा अकुश रख सकती है और उसे ऐसा करना ही होगा।[1]

३—प्राथमिकताओं एवँ लक्ष्यों का निर्धारण

(Fixation of Priorities and Targets)

नियोजन का सार सभी क्षेत्रो का एक साथ विकास होना है। जब कि किसी समाज के अधीन साधन (विशेषकर, भारत जैसी अविकसित आर्थिक व्यवस्था मे) सीमित हैं तो नियोजनाधिकारियो के लिए प्राथमिकताओ के अनुसार चलना आवश्यक हो जाता है। सबसे आवश्यक वस्तु को पहले ले तथा हर क्षेत्र मे साधनो से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए।

किसी योजना-विशेष मे प्राथमिकताओ के सिद्धान्त को इस प्रकार अपनाया जाता है कि अर्थव्यवस्था की परमावश्यकताओ को पहले हाथ मे लिया जाता है। लेकिन कुछ विशेष आर्थिक क्षेत्रो के दीर्घकालीन परिवर्तनो की वाछनीयता (Desirability) पर भी पहले विचार करना होता है। विकास के कार्य मे कार्यक्रम इस प्रकार का होता है कि सबसे अधिक आवश्यक वस्तुओ और सेवाओ की प्राप्ति का प्रयास सबसे पहले होता है और इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओ की प्राप्ति का प्रयास उनकी तीव्रता के अनुसार होता है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे प्राथमिकता के विषय मे उल्लेख किया गया था कि 'तात्कालिक पांच वर्षों मे सबसे ऊँची प्राथमिकता हमे खेतीबाडी को, जिसके अतर्गत सिचाई और बिजली भी आ जाते हैं, देनी होगी। हम जिन योजनाओ को हाथ

---

1 (सक्षिप्ति द्वितीय पंचवर्षीय योजना, १९५६, योजना आयोग,भारत सरकार, पृष्ठ—१३

मे ले चुके हैं उनकी पूर्ति पर जोर देना कुछ हद तक इसी बात की ओर सकेत करता है। लेकिन इसके अलावा भी यह जाहिर है कि अनाज और उद्योगो के लिए जरूरी कच्चे माल का उत्पादन काफी बढाए बिना अन्य क्षेत्रो मे विकास की गति को तेज रखना असम्भव होगा। और अधिक विकास के लिए खाद्य और कच्चे माल का होना बहुत जरूरी है, इसलिए इन वस्तुओ के विषय मे आत्मनिर्भरता और बहुतायत की दशाओ का निर्माण होना बुनियादी बात है।"[1]

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे औद्योगीकरण को सबसे अधिक प्राथमिकता प्रदान की गई थी। इसमे इसके साथ यह भी उल्लेख किया गया था कि "...हमे सिर्फ यह नही करना है कि लोगो के रहन सहन के स्तर का उन्नयन कर दें। हमारी जिम्मेदारी यह है कि देश की अर्थव्यवस्था मे ऐसी शक्ति, ऐसी गति पैदा करे कि वह आप ही आप उत्तरोत्तर उन्नति करती जाय, देश समृद्ध होता जाय और बौद्धिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे आगे बढे। लोगो की आर्थिक अवस्था सुधारना ही हमारा साध्य नही, मूलत वह तो लोगो का जीवन भरा-पूरा और खुशहाल बनाने का साधन मात्र है।'[2]

तृतीय पचवर्षीय योजना मे कृषि और औद्योगीकरण दोनो को प्राथमिकता प्रदान की गई है। कृषि के क्षेत्र मे गहरी खेती पद्धति को अपनाकर देश को खाद्य के विषय मे आत्मनिर्भर बना देना, देश मे विभिन्न प्रकार के उद्योगो की स्थापना करना —विशेषतौर पर भारी, इस्पात और 'उत्पादक उद्योगो' की स्थापना पर अधिक बल दिया गया है। देश मे बढती हुई बेरोजगारी को दूर करने पर भी बल दिया गया है।

आर्थिक योजना के निर्माण मे लक्ष्यो का निर्धारण करना भी होता है। उचित लक्ष्यो का निर्धारण किए बिना हर क्षेत्र मे आर्थिक उन्नति सम्भव नही हो सकती और न नियोजनाधिकारी विभिन्न आर्थिक प्रयासो के विकास पर अच्छी तरह से दृष्टिपात ही कर सकते है। इसके लिए उत्पत्ति के लक्ष्यो को सभी क्षेत्रो मे निर्धारित करना होता है। लक्ष्य-निर्धारण का एक दूसरा लाभ यह है कि उत्पादक तथा विनियोगी के समक्ष हर समय एक आदर्श उपस्थित रहता है। नियोजन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उद्देश्यो, प्राथमिकताओ, सुविधाओ एव उत्पादन कार्य के लिए लक्ष्य पहले से ही निर्धारित हो।

४—योजना के लिए वित्त-व्यवस्था
(Financing the Plan)

वित्त व्यवस्था आर्थिक नियोजन की एक पूर्व-आवश्यकता है। योजना का आकार तथा स्वरूप बहुत सीमा तक धन की प्राप्ति—आन्तरिक तथा वाह्य-पर निर्भर

1. पहली पचवर्षीय योजना, (जनता संस्करण), पृष्ठ—१७
2. द्वितिय पंचवर्षीय योजना, (संक्षिप्त), पृष्ठ, १०

होती है। बडी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए बहुत धन की आवश्यकता होती है। इसलिए यदि धन कम है तो योजना मे बडे कार्यो का होना सम्भव नही हो पाएगा। आर्थिक विकास के लिए सभी पहलुओ जैसे, कृषि, विद्युतशक्ति एव सिंचाई शक्ति, प्राकृतिक साधनो का उपयोग, उद्योग, यातायात एव सवादवाहन के साधन इत्यादि के विषय मे योजनाओ का होना आवश्यक है। ये सभी धन की प्राप्ति पर निर्भर है। इसलिए आर्थिक नियोजन मे धन की प्राप्ति की बडी महत्ता है।

योजना को सफल बनाने के लिये वित्त और विदेशी विनिमय के विषय मे पहले से ही पूर्ण जानकारी विधायको के लिए बहुत आवश्यक होती है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय योजना (रूपरेखा) के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि योजना-आयोग ने इन पचवर्षीय योजनाओ का निर्माण करने से पहले वित्त और विदेशी विनिमय के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त करली थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे आयोग ने उल्लेख किया है, "योजना के लिये साधन सग्रह की समस्या पर विचार सार्वजनिक और निजी दोनो विभागो की दृष्टि से करना उचित है क्योकि एकत्रित साधनो का उपभोग यह दोनो विभाग करेगे। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि स्वदेश के वित्तीय साधनो का सग्रह करने के साथ-साथ विदेशी विनिमय की उपेक्षा न की जाय, दोनो के पर्याप्त होने पर ही योजना सफल हो सकेगी। इस समस्या का मूल रूप यह है कि स्वदेश मे ही आवश्यक साधन एकत्रित किये जा सकते हैं या नही, और यदि किये जा सकते है तो कैसे? इसमे सफलता तब हो सकती है जब कि यह ध्यान रखा जाय कि वह एक निर्धारित सीमा से आगे न बढने पाये और अपने पास वर्तमान आर्थिक तथा सामाजिक ढांचे के भीतर रहते हुए जिन साधनो, अथवा तकनीकों का प्रयोग किया जाय वे इष्ट प्रयोजन के लिये उपयुक्त हो। इसके साथ यह भी नही भूलना चाहिए कि जो देश औद्योगिक उन्नति के मार्ग पर पग बढाने लगता है उसे आरम्भ मे आवश्यक यत्रादि सामग्री विदेशो से मँगानी ही पडती है और इसी कारण उसे विदेशी विनिमय की समस्या का सामना करना, और उसे विशेष प्रयत्नो से सुलझाना पडता है।"[1]

५—सन्तुलन की समानता

(Maintaining Equality Of Balance)

आर्थिक नियोजन भिन्न-भिन्न देशो मे भिन्न-भिन्न उद्देश्यो से लागू किया जाता है। आर्थिक विकास के अनुसार ससार के देशो को आसानी से दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—उन्नत देश एव पिछडे देश। औद्योगिक एव आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशो मे नियोजन लागू करने का मुख्य उद्देश्य "आर्थिक वैभव प्राप्त करने तथा उसको बनाए रखना होता है।" लेकिन पिछडे देशो मे, जोकि आर्थिक

---

1 द्वितीय पंचवर्षीय योजना, (संक्षिप्त), अध्याय ४, पृष्ठ —३५

अवनति तथा दारिद्रय की विषमता से पीडित हैं, आर्थिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य 'रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना, प्रति-व्यक्ति प्रति-वर्ष आय को बढाना तथा हर क्षेत्र मे आर्थिक उत्थान प्राप्त करना होता है।' हमारा देश निर्धन एव आर्थिक दृष्टि से अनुन्नत होने के कारण नियोजन द्वारा आर्थिक विस्तार चाहता है।

आर्थिक विकास किस गति से होना चाहिये ? यदि हम अति-तीव्रता (Too rapid) वाली आर्थिक उत्थान की पद्धति को अपनायें, तो हमे पूँजी-प्रमुख उत्पत्ति के तरीके अपनाने पडेगे तथा आर्थिक उन्नति के तीव्र लक्ष्य को बनाये रखने की आवश्यकता होगी। इस प्रथा मे यह कठिनाइयाँ हैं - (अ) पूँजी की कमी, (ब) विशिष्ट शिक्षा प्राप्त कुशल कर्मचारियो की कमी, (स) मशीनो द्वारा उत्पादन के कारण बेरोजगार मे वृद्धि। क्या हम इन कठिनाइयो को सरलता से दूर कर सकेंगे ? प्रत्येक व्यक्ति हमारी पूँजी की कमी, कुशल एव विशिष्ट-शिक्षा प्राप्त कर्मचारियो की कमी, साधनो की कमी तथा देश मे बढते हुए बेरोजगार की स्थिति से परिचित हैं। इसलिये नियोजनाधिकारियो के लिए इस प्रकार के तीव्र गति की आर्थिक उन्नति के आदर्श को मानना केवल अनुचित ही न होगा बल्कि अवांछनीय भी होगा।

दूसरा उपाय जो शेष रहता है वह है 'मन्थर आर्थिक उन्नति' (Slow Economic Growth)। जनसख्या की वृद्धि की दर को जानते हुए यह पद्धति हमारे देश के लिए अवांछनीय है। यदि आर्थिक उन्नति की गति बहुत धीमी है तो वह देश मे बढती हुई जनसख्या की तीव्र गति से पराजित हो जायगी। अर्थात् बढती हुई जनसख्या के लिए यह पद्धति पूर्ण साधन नही जुटा पायेगी। इसलिए जहाँ तक आर्थिक उन्नति की गति का सम्बन्ध है, न यह अधिक तीव्र होनी चाहिए—जिससे हम उसके साथ-साथ कदम न बढा सकें, और न अधिक मन्थर होनी चाहिए, जिसमे हम तीव्र गति से बढती हुई जनसख्या की आवश्यकताओ को पूरा न कर सकें। आर्थिक विकास औसत गति से होना चाहिये। इसके अतिरिक्त, हर क्षेत्र के आर्थिक उत्थान एव नियोजन समय के दृष्टिकोण से सन्तुलित तथा "आर्थिक उत्थान तथा बढती हुई जनसख्या के नियन्त्रण मे" सन्तुलित होनी चाहिये।

दूसरा सन्तुलन जो नियोजनाधिकारियो को ध्यान में रखना है वह यह है कि उत्पत्ति के श्रम-प्रमुख सिद्धान्त मे अधिक रोजगार उत्पन्न करने का बहुत बडा गुण है। पूँजी-प्रमुख सिद्धान्त मे कम कीमत पर बडी मात्रा मे उत्पादन का गुण है। अपने-अपने क्षेत्रो मे दोनो ही लाभदायक हैं। हमारी दृष्टि से (अधिक रोजगार के अवसरो के साथ आर्थिक उन्नति) श्रम-प्रमुख सिद्धान्त (Labour intensive methods) सबसे अच्छा है। इस प्रणाली का दोष यह है कि यह विनियोग और उत्पादन मे वह अनुपात कभी नही ला पाता जो कि पूँजी-प्रमुख

उत्पत्ति मे सम्भव होता है। इस पर प्रो० डोमर (Domar), हैरोड (Harrod), रोबिन्सन (Robinson) आदि के भिन्न-भिन्न मत हैं।[1]

एक अन्य समानता (Equity) जो कि योजना की रूपरेखा बनाते समय योजनाधिकारियो को अपनानी चाहिए,—है पूँजी के सचय (Capital accumulation) एव आर्थिक उन्नति मे सन्तुलन। विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने इस समस्या का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से वर्णन किया है। कुछ विद्वानो की राय है कि आर्थिक उन्नति के लिए (तीव्र हो या धीमी) 'तरल पूँजी' (Liquid Capital) अधिक आवश्यक है तथा विस्तृत रूप से पूँजी के सचय की कोई आवश्यकता नही है। अपने मत के समर्थन में वे कहते है, "यदि पूँजी की अधिकता है, तो वह श्रम की पूर्ति से अधिक हो सकती है और इस परिस्थिति मे विनियोग को पूँजी के सचय से कोई लाभ प्राप्त नही हो सकेगा। क्योंकि श्रमिको की कमी के कारण उद्योग स्थापित नही हो पायेंगे।" यह केवल औद्योगिक तथा कम जनसख्या वाले देशो मे ही सत्य हो सकता है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि देश मे जितना हो सके उतना पूँजी का सचय होना चाहिए जिससे अधिक उत्पादन हो सके, रोजगार मिल सके और द्रुत आर्थिक उन्नति सम्भव हो सके। हमारे नियोजनाधिकारियो ने हमारे नियोजनो मे, इसी सिद्धान्त पर अधिक बल दिया है। इस पर विभिन्न विद्वानो का अलग-अलग मत है।[2]

"अत्यधिक पूँजी के सचय" के समर्थको का यह कहना है कि अविकसित देशो मे द्रुत एव सन्तुलित आर्थिक विकास और सम्पत्ति-आधिक्य प्राप्त करने के लिये यह पद्धति कार्यान्वित नही हो सकती। अपने दृष्टिकोण के समर्थन मे वह यह कहते हैं कि क्योंकि अविकसित देशो मे 'क्रियाशील पूँजी' (Working Capital) की कमी होती है इसलिए इन देशो मे पूँजी का सचय अधिक मात्रा मे सम्भव नही होता है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने भारतीय योजनाओ की तीव्र आलोचना की है।

उनका दृष्टिकोण सैद्धान्तिक रूप से या अन्य अविकसित देशो के लिए ठीक हो सकता है—परन्तु भारत के लिए नही। इसका कारण यह है कि भारत प्राकृतिक सम्पत्ति और अन्य साधनो मे धनी है। भारत के आर्थिक विकास के लिए केवल इस बात की आवश्यकता है कि उसकी आर्थिक सम्पत्ति का सन्तुलित रूप से सदुपयोग हो।

हमारे नियोजन के विधायको ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि नियोजनकाल मे देश म पर्याप्त मात्रा म पूँजी का सचय हो सके ताकि आर्थिक विकास का कार्य बिना किसी रुकावट के एव द्रुति गति से अग्रसर हो सके। इस विषय मे जो प्रश्न सामने उपस्थित होता है वह यह है कि क्या सार्वजनिक कोष के

1. Please see Ch 15, (Theory of Growth).
2. Please see Chapter 15

लिए एव विनियोग की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आवश्यक धन निजी बचत से प्राप्त हो सकेगा ? इस प्रश्न का उत्तर लोगो के अनेक प्रकार के निजी निश्चयो पर निर्भर करता है। उनमे से एक यह भी है कि जनता कितनी मात्रा मे बचत करती है या कर सकती है ? यदि इस प्रकार सार्वजनिक बचत और निजी बचत अधिक मात्रा में हो सके, तो पूँजी के निर्माण मे कोई बाधा उत्पन्न नही होगी। वास्तव मे इन नियोजनो के द्वारा सरकार जनता की आय को बढाने का प्रयास कर रही है, जिससे वे अधिक मात्रा में बचत कर सके, जो आगे चलकर पूँजी का रूप ग्रहण कर पाएँ।

घाटे के बजट द्वारा भी सरकार देश स्थित पूँजी की कमी को दूर करने की कोशिश कर रही है। अविकसित देशो के लिए आर्थिक उन्नति के लक्ष्य को प्राप्त करने का यह एक सरल उपाय है। इस घाटे के बजट द्वारा मौजूदा कठिनाइयाँ सरलता से दूर की जा सकती है परन्तु इस ओर सतर्क दृष्टि होनी चाहिए कि घाटे के बजट के कारण देश मे अत्यधिक मुद्रा-प्रसार न हो जाय।

कर-नीति मे सन्तुलित रूप से सुधार करने पर भी सरकार देश मे एक ऐसी आदर्श स्थिति उत्पन्न कर सकती है जिससे जनता अधिक मात्रा मे बचत कर सके और उनका प्रयोग विनियोग कार्य मे सरलता से हो सके—परन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि प्रत्येक देश मे नियोजन के प्रारम्भिक काल मे कर की दर अधिक होती है।

इनके अतिरिक्त नियोजक का लक्ष्य यह भी होता है कि प्राकृतिक सम्पत्ति का शोषण सन्तुलित रूप से एव आवश्यकतानुसार हो। उद्योग धन्धो की उन्नति हो, अधिक रोजगार के अवसर साधारण जनता को प्राप्त हो सके। व्यापार—आन्तरिक एव अन्तर्राष्ट्रीय—मे वृद्धि हो और इस प्रकार जनता की प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष आय प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष खर्च से अधिक हो ताकि इन दोनो का अन्तर बचत का रूप ग्रहण कर सके।

देश के औद्योगिक, वित्तीय एव कर सम्बन्धी नीति और बैंकिंग-प्रथा सुव्यवस्थित हो जिससे सभी व्यक्तियो को बचत करने मे एव बचत को पूँजी का रूप प्रदान करने मे कोई कठिनाई न रहे।

सोवियत सघ मे जब नियोजन व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी तो उसकी आर्थिक स्थिति हमारे देश से भी गिरी हुई थी। उसने पूँजी निर्माण के लिए उपर्युक्त सभी उपाय अपनाये थे—लेकिन, जैसे-जैसे उनके देश मे आर्थिक उन्नति होती गई और बचत के एव पूँजी निर्माण के प्राकृतिक सुयोग प्राप्त होते गये, वैसे ही वैसे इन प्रणालियो मे ढील प्रदान की जाती रही। यह आशा की जाती है कि प्रारम्भिक कठिनाइयो के पश्चात् भारत मे भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो जायगी और 'पूँजी निर्माण की समस्या' फिर 'समस्या' नहीं रह जायगी।

अध्याय ७

नियोजनकर्ता कौन हो ?
(Who is to plan ?)

१—विषय-प्रवेश
(Introductory)

कुछ दशाब्दी पूर्व अर्थशास्त्रियों के सामने प्राय यह प्रश्न आता था कि नियोजन होना चाहिए या नही ? रूस की नियोजन सम्बन्धी सफलताओं ने इस प्रश्न का उत्तर सदा के लिये दे दिया है—नियोजन आवश्यक है। इस सिद्धान्त के निश्चय हो जाने के पश्चात् एक अन्य प्रश्न हम लोगो के सामने आता है—नियोजन किसके द्वारा हो, अर्थात्, नियोजनकर्ता कौन हो ? इस अध्याय मे हम इसी प्रश्न का हल ढूँढने का प्रयास करेगे।

किसी भी देश मे आर्थिक विकास का कार्य बडी मात्रा की या छोटी मात्रा की उत्पत्ति द्वारा सम्भव हो सकता है। प्राय आर्थिक विकास के लिए छोटे और बडे दोनो ही प्रकार के उद्योगो की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार देश के उद्योग धन्धे निजी क्षेत्र मे या सार्वजनिक क्षेत्र मे हो सकते है—वास्तव मे, समाजवादी राष्ट्रो को छोड कर अन्य राष्ट्रो म प्राय निजी और सार्वजनिक दोनो ही क्षेत्र होते है। प्रायः यह देखा जाता है कि विभिन्न देशो मे प्रतिरक्षा, प्रमुख (Key) एव भारी उद्योग साधारणत सार्वजनिक क्षेत्र मे होते है और बाकी निजी क्षेत्र मे। भारत मे भी ऐसी ही स्थिति विद्यमान है।

देश का आर्थिक स्तर कैसा भी हो, उत्पत्ति की प्रणाली किसी भी प्रकार की हो, देश के उद्योग धन्धो का स्वामित्व और सचालन का भार किसी पर भी हो, देश के बहुमुखी आर्थिक विकास के लिए एक सुव्यवस्थित, सुपरिकल्पित और सन्तुलित नियोजन की आवश्यकता होती है। आर्थिक नियोजन का लक्ष्य हमारे देशवासियो का आर्थिक उत्थान एव राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना होता है। नियोजन व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय हो सकता है।

अविकसित देशो के लिए आर्थिक उन्नति प्राप्त करना या देश को समृद्धशाली बनाने का एकमात्र साधन आर्थिक नियोजन ही है। नियोजन द्वारा ही देश के प्राकृतिक साधनो का सन्तुलित शोषण और व्यवहार हो पाता है, उद्योग धन्धो की

स्थापना और विस्तार सम्भव होता है, रोजगार की सुविधायें उत्पन्न की जा सकती हैं और देश की उत्पादन शक्तियों को समेट कर आर्थिक विकास के कार्य मे जुटाया जा सकता है। नियोजन का यह कार्य व्यक्ति द्वारा, समाज द्वारा, कुछ पूँजीपतियो द्वारा या राष्ट्र द्वारा किया जा सकता है। जो भी नियोजन का कार्य इस रूप मे करे, उसी को नियोजनकर्ता कहा जायगा। विभिन्न देशो मे भी नियोजनकर्ता अलग अलग होते है, जैसे, पूँजीवादी देशो मे पूँजीपति और साहसी एव समाजवादी या साम्यवादी देशो मे राष्ट्र। कुछ देशो मे इस कार्य में राष्ट्र और साहसी दोनो ही शामिल होते हैं। इसके अनुसार राष्ट्र नियोजन बनाता है और साहसी उसके लिए निर्दिष्ट कार्य-भार सँभालते हैं।

२—व्यक्तिगत नियोजन के पक्ष में

(Case for Private Planning)

"केन्द्रीय नियोजन व्यक्तिगत अधिकार को छीन कर मनुष्य को 'शून्य' बना देता है एव आर्थिक निर्णयो को बिना सोचे समझे ग्रहण करता है—आर्थिक विकास को उत्साहित नही करता एव केवल कुछ व्यक्तियों की इच्छानुसार ही कार्य होता है—जो कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के उद्देश्य से समस्त शक्तियो को अपने हाथ मे समेट लेते हैं। यही कारण है कि केन्द्रीय नियोजन मे आर्थिक समता एव न्याय दृष्टिगोचर नही होते।" "जो केन्द्रीय नियन्त्रित अर्थव्यवस्था के निर्माण को मान्यता प्रदान करते हैं अथवा उसके निर्माण कराने के लिए कष्ट उठाते हैं, उन्हे कठिनाई तथा व्यर्थ प्रतीक्षा के सिवाय और कुछ नही मिल सकता।"

केन्द्रीय नियोजन के समर्थको पर व्यक्तिगत योजना के समर्थक और भी कडे शब्दो मे बौछारें करते है। उनका कहना है, "आर्थिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता भिन्न भिन्न नही है। कानून द्वारा ही आर्थिक स्वतन्त्रता को स्थापित किया जाता है, बनाये रखा जाता है अथवा उसको शक्ति प्रदान की जाती है।"[1] या "पूँजीवादी साहस को स्वाभाविक रूप से आर्थिक उन्नति की प्राप्ति मे इतनी अधिक सफलता मिली है कि इसमे कुछ और सुधार करने को शेष नही है।"[2] इस सत्य को अस्वीकार नही कर सकते है कि स्वतन्त्र साहस तथा केन्द्रीय नियोजन दोनो ही मे अपने-अपने कुछ गुण तथा अवगुण विद्यमान हैं।

कुछ मौलिक सिद्धान्तो (Basic decisions) का निर्णय प्रत्येक समाज को करना पडता है—जैसे, देश में अधिकतम मात्रा मे किन वस्तुओ तथा सेवाओ का उत्पादन होना चाहिए, उनकी उत्पत्ति किस प्रकार की जाय और उनके वितरण का स्वरूप क्या हो ? 'स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था' मे इसका निर्णय विभिन्न साहसियो द्वारा

---

1. *American capitalism*—Massimo Salvadori, p 11.
2. *Ordeal by Planning*—J. Jewkes, 1948, Ch. II, pp. 18-19.

स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत इनका निर्णय कीमत, माँग और लाभ को सामने रख कर किया जाता है।

प्रत्येक साहसी अपने उद्योग का विस्तार एव अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से नियोजन करता है। इस कार्य मे वह निर्मित वस्तु की माँग, उत्पत्ति की मात्रा, वस्तु के गुण, श्रमिको की मजदूरी की दर, कच्ची सामग्री की दर एव बदलती हुई उत्पादन प्रणाली को अपने सामने रखता है। इस प्रकार के नियोजन-कार्य मे उसका पिछले वर्षों का अनुभव और उद्योग सम्बन्धी ज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। बडी मात्रा के विनियोग से पहले प्रत्येक साहसी के लिए एक सन्तुलित नियोजन का निर्माण आवश्यक होता है।

पूँजीवादी देशो मे (जैसे, अमेरिका) साहसी विभिन्न उद्योगो मे उस समय तक विनियोग करते रहते हैं, जब तक कि उनसे लाभ प्राप्त होता रहता है। प्रतिस्पर्द्धा द्वारा इन देशो मे विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ की श्रेष्ठता तथा कीमत का निर्धारण होता है। स्वतन्त्र स्पर्द्धा मे उपभोक्ता-वर्ग कीमत को प्रभावित कर सकते हैं—जो केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था मे सम्भव नही होना।

पूँजीवादी राष्ट्र विभिन्न साहसियो के नियोजनो को कर-नीति, कर्जे की प्रथा और साख व्यवस्था द्वारा एक सूत्र मे सलग्न कर सकते है। समय समय पर इन राष्ट्रो द्वारा प्रमुख (Key), भारी (Heavy) और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे सलग्न बडे उद्योगो के विषय मे जानकारी के उद्देश्य से कमीशन (Commission) नियुक्त करते हैं जो राज्य को इन सस्थाओ के विषय मे रिपोर्ट (Report) देते है और आवश्यक सुधार के लिए सुझाव भी देते है। प्राय केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था मे इस प्रकार की सुविधाये प्राप्त नही हो पाती हैं।

आवश्यकता पडने पर पूँजीवादी देश साहसियो को विभिन्न प्रकार की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहायता प्रदान करते है ताकि विभिन्न उद्योग द्रुत गति से उन्नति कर सकें और इसके द्वारा देश का आर्थिक विकास भी द्रुत गति से हो सके। इन सहायताओ मे कम ब्याज की दर पर ऋण की व्यवस्था, आयात निर्यात सम्बन्धी नीति मे परिवर्तन, व्यापार-चक्र का दमन, आर्थिक क्षेत्र मे अत्यन्त परिवर्तनशीलता को रोकना, बेईमानी करने वाले उद्योगो को बन्द कर देना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना एव आवश्यक उद्योगो को सरक्षण देना प्रमुख है। केन्द्रीय नियोजित देशो मे प्राय राष्ट्र की ओर से आर्थिक विकास मे इतने क्रियाशील रूप से कार्य नही किया जाता।

समाजवादी और साम्यवादियो का यह कहना, "पूँजीवादी देशो की आर्थिक विषमता का एकमात्र कारण नियोजन का अभाव है" सर्वथा भ्रमात्मक है। इसका कारण यह है कि पूँजीवादी देशो मे भी किसी उद्योग या व्यापार की स्थापना से पूर्व साहसी द्वारा नियोजन होता है। पूँजीवादी देशो और समाजवादी या

साम्यवादी देशो के आर्थिक नियोजन मे यह अन्तर होता है कि पूर्वोक्त कार्य मे यह कार्य व्यक्तिगत साहसी से होता है और केन्द्रीय नियोजित देशो मे नियोजन का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है।

केन्द्रीय नियोजन के समर्थको का यह कहना कि "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत साहसो का एकमात्र लक्ष्य लाभ कमाना होता है" शतप्रतिशत सत्य नही है। इसमे कोई सन्देह नही कि साहसी का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना होता है, परन्तु यह कहना कि केवल यही उद्देश्य होता है, गलत है। लाभ कमाने के अतिरिक्त भी पूँजी को प्रयोग मे लाना, देश के उद्योग धन्धो को विकसित करना, देश से बेरोजगारी दूर करना, परीक्षण करना (Experimentation) आदि भी उद्देश्य होते है।

विभिन्न देशो का सविधान भी अपने नागरिको को स्वतन्त्र व्यापार का अधिकार प्रदान करता है। केन्द्रीय-नियोजन पद्धति को अपनाने का अर्थ इस अधिकार को छीनना होता है—जो अवांछनीय है। इस क्षेत्र मे पूँजीवादी देश गर्व से दावा कर सकता है कि वह नागरिको को सविधान के अनुसार ही व्यापार और आर्थिक प्रयासो मे स्वतन्त्रता प्रदान कर रहा है। केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था मे उस गुण का अभाव होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के समर्थको का यह कहना, "पूँजीवादी देशो मे बडे उत्पादक एकाधिकार की स्थापना करके वस्तुओ और सेवाओ की कीमत मे वृद्धि कर देते हैं—और इस प्रकार नागरिको का शोषण करते है" भी पूर्णतया सत्य नही है। पूँजीवादी देशो मे प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर ही वस्तुओ और सेवाओ की कीमते निर्धारित होती है। प्रत्येक उद्योग मे एकाधिकार की स्थापना भी सम्भव नही होती। इसके विपरीत, केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था मे प्रतिस्पर्द्धा न होने के कारण प्रायः वस्तुये या सेवायें अधिक मूल्य पर बिकती है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजी साहसियो द्वारा व्यवसाय और उद्योगो की स्थापना और विस्तार मे और भी बहुत से लाभ केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था की तुलना मे प्राप्त हैं। इनमे से सबसे अधिक उल्लेखनीय शायद यह है कि साहसी व्यक्तिगत अनुभव, उद्यम, कठोर परिश्रम एव एकाग्र रूप से व्यवसाय का सचालन करता है, जिसके फलस्वरूप व्यावसायिक सगठन राज्य-सगठित व्यवसायो से कहीं अच्छा होता है। सगठन की कुशलता पर ही साहसी का भविष्य निर्भर होता है।

३—केन्द्रीय आर्थिक नियोजन की आवश्यकता तथा महत्त्व

(Need and Significance of Centralised Economic Planning)

केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था का अर्थ होता है, "राष्ट्र के समस्त प्राकृतिक साधनो का केन्द्रीय नियोजन। सक्षेप मे, केन्द्रीय नियोजन और स्वतन्त्र व्यापार

प्रणाली मे क्षेत्र (scope) सम्बन्धी अन्तर होता है—यह अन्तर मौलिक सिद्धान्त के अतिरिक्त मात्रा (degree) के रूप में होता है। इस प्रणाली के लिए न तो यह आवश्यक होता है कि वह स्वतत्र व्यापार प्रणाली को समाप्त कर दे और न यह होता है कि राष्ट्र के समस्त उत्पत्ति और वितरण के अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथो मे हो। फिर भी, इस प्रथा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार इस बात को बर्दाश्त नही करती कि साहसी निजी लाभ के उद्देश्य से जनता का शोषण करे। ऐसी परिस्थिति मे राज्य सरकार द्वारा विविध प्रकार के नियन्त्रण एव पाबन्दी साहसियों पर लगाई जाती है। इस प्रकार इस पद्धति मे स्वतत्र व्यापार के सभी गुण विद्यमान होते हैं जबकि उनके सभी दोष केन्द्रीय नियोजन द्वारा दूर कर दिए जाते हैं।[1]

पूँजीवादी प्रथा मे व्यापारी और उद्योगपति किसी भी प्रकार के नियन्त्रण और पाबन्दी के बिना कार्य करते हैं। इस प्रकार वे अपने निजी लाभ के लिए दरिद्र वर्ग का शोषण करते है, जिससे समस्त समाज को हानि होती है। पूँजीवाद से उत्पन्न इस प्रकार की कठिनाइयो को दूर करने के लिए ही राज्य को नियन्त्रण करना पडता है—और कभी-कभी राज्य को व्यापार या उद्योग के क्षेत्र मे भी अवतीर्ण होना पडता है। पूँजीपतियो द्वारा मजदूरो को कम मजदूरी देना एव उनका शोषण किया जाना उतना ही पुराना है जितना कि पूँजीवाद, यही कारण था कि बहुत काल पूर्व—१५ वी शताब्दी मे—यह कहा गया था, "दरिद्र वर्ग परिश्रम करता है और धनी वग उस परिश्रम का फल प्राप्त करता है।"[2]

पूँजीवाद के अन्तर्गत रोजगार की अनिश्चितता एव कार्य की दुर्दशा एक प्रधान कारण है जिसके लिए ससार के विभिन्न राष्ट्रो के निवासी केन्द्रीय नियोजन की स्थापना चाहते है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था म 'अति-उत्पादन' एव 'कम उत्पादन' का भय सदा बना रहता है जिससे देश की आर्थिक स्थिति म स्थिरता नही आ पाती एव आर्थिक मन्दी और तेजी का भय बना रहता है। 'व्यवसाय-चक्र' के कारण रोजगार की स्थिति मे भी समता नही आ पाती। केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था मे यह कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं—जिसके कारण प्राय सभी देशो मे अब केन्द्रीय नियोजन को प्राथमिकता दी जा रही है।

पूँजीवादी प्रथा म प्रतिस्पर्द्धा का अस्तित्व होता है, जो प्राय 'अनार्थिक प्रतिस्पर्द्धा' का रूप ग्रहण करती है। इस 'अनार्थिक प्रतिस्पर्द्धा' के कारण दुर्बल उत्पादक शक्तिशाली उत्पादको के सामने नही ठहर पाते एव बडी मात्रा के उत्पादक एकाधिकार की स्थापना कर लेते हैं। इसके पश्चात् वस्तुओ एव सेवाओ के मूल्य

---

1 *A Planned Economy or Free Enterprise*—E Lipson, (1946), Appendix I, Page—314

2 On England's Commercial Policy, (15th century)

बढा देते हैं तथा उपभोक्ताओ का शोषण करते है। कभी-कभी इस प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप देश मे विषमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, कच्ची सामग्री एव निर्मित वस्तुएँ वर्वाद होती हैं एव देश का आर्थिक उत्पादन नियन्त्रण के अभाव मे असम्भव सा प्रतीत होता है। केन्द्रीय नियोजन की स्थिति मे यह सब कठिनाइयाँ प्राय सामने नही आती—इसीलिए केन्द्रीय नियोजन पर बल दिया जाता है।

उद्योगो का एकीकरण एव सम्मिश्रण (Combination) ऐसे तत्व हैं जि की उपेक्षा राज्य द्वारा नही की जा सकती। सम्मिश्रण चाहे किसी भी प्रकार का हो—इसका उद्देश्य एक ही होता है, छोटे उद्योगो को समाप्त करके 'प्राय एकाधिकार' की स्थापना करना जिससे वह उपभोक्ताओ का अधिकतम शोषण कर सके। इस परिस्थिति मे राज्य निष्क्रिय नही रह सकता, उसको क्रियाशील रूप मे *जनता और समाज के हित से इन औद्योगिक सम्मिश्रणो पर नियन्त्रण करना* आवश्यक हो जाता है।

पूँजीवाद के अन्तर्गत नियोजन का सबसे बडा दोष यह होता है कि इसमे विभिन्न उद्योगपतियो द्वारा बनाये गये सैकडो और हजारो 'नियोजन' होते हैं। इनके आकार, प्रकार, क्षेत्र, स्वभाव, उद्देश्य, लक्ष्य, प्राथमिकता आदि सभी भिन्न भिन्न होते है—और प्राय एक दूसरे के प्रतिगामी, इन सब बातो का परिणाम यह होता है कि *स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत नियन्त्रित रूप से आर्थिक उन्नति सम्भव* नही हो पाती है। केन्द्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे यह सभी अवगुण स्वत ही लुप्त हो जाते हैं।

सोवियत् सघ और चीन मे अल्पकाल मे ही जो द्रुत आर्थिक विकास हुआ है उसका केवल एक ही कारण है—समाज के हित को सामने रखकर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियोजन किया जाना। केन्द्रीय नियोजन का मुख्य लक्ष्य यही होता है कि उसके द्वारा राष्ट्र का आर्थिक विकास हो, राष्ट्र के समस्त नागरिको की प्रति व्यक्ति आमदनी मे वृद्धि हो और इस प्रकार नागरिको का जीवन स्तर ऊँचा हो जाय। उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केन्द्रीय सरकार एक सन्तुलित, सुव्यवस्थित, सुचिंतित एव विशाल नियोजन तैयार करता है। इस नियोजन की सफलता पर राष्ट्र की सफलता, नागरिको का जीवन स्तर, उनकी सुख-सुविधा एव भावी जीवन निर्भर करता है। यह सभी बातें पूँजीवाद की प्रथा मे सम्भव नही होती।

एम० जी० स्ट्रमिलिन (S G. Strumilin) ने ठीक ही कहा है, "पूँजीवाद की जो कुछ भी सफलतापदक हैं उनको अगर पलट कर देखा जाय तो उन पर 'औद्योगिक विषमता' लिखा पाया जायगा। (इसका अर्थ यह है कि स्वतन्त्र-व्यापार द्वारा आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है।) .. ..क्या यह सच नही है कि पूँजीवाद के पुजारी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लालच मे 'अति उत्पादन' करके आर्थिक भ्रान्ति

एव मदी को जन्म नही देते ?......जो स्वतत्र अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हैं उन्हें आर्थिक विषमता के लिए सदा तैयार रहना चाहिए........।"[1]

प्रो० कीन्स (Prof. Keynes) का कथन, जो उन्होने पूँजीवाद के विषय मे कहा है, अखण्डनीय है। उनके अनुसार, "आर्थिक मदी एव आर्थिक विषमता अनियन्त्रित अर्थव्यवस्था का परिणाम है।" सन्तुलित उत्पादन एव न्यायपूर्ण वितरण केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में ही सम्भव हो सकता है, क्योकि केन्द्रीय नियोजन मे ही राष्ट्र के समस्त साधनो को शामिल किया जाता है एव राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के आर्थिक उत्थान का आदर्श रखा जाता है। इसी के आधार पर केन्द्रीय नियोजन का निर्माण होता है, प्राथमिकतायें निर्धारित की जाती हैं। यही कारण हैं कि केन्द्रीय नियोजन मे असन्तुलन की कोई सम्भावना नही होती।

उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त और भी बहुत से कारण है जिनके लिए केन्द्रीय नियोजन नागरिको के लिए अधिक उपयुक्त है। केन्द्रीय नियोजन के अन्तर्गत ही आयात-निर्यात नीति का सतुलित व्यवहार सम्भव होता है। विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे भी केन्द्रीय हस्तक्षेप या कार्यवाही अधिक वाञ्छनीय है। उद्योगो की स्थापना और विकास का कार्य जब केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है तो उसमे 'मितव्ययिता' (Economy) का होना अधिक सम्भव होता है।

राष्ट्र को ही अपने समस्त नागरिको की आर्थिक दशा एव आवश्यकताओ का अधिक ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार, देश मे उपलब्ध विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक साधनो, शक्ति के साधनो, आदि का ज्ञान भी राष्ट्र को ही अधिक होता है। द्रव्य और वित्त सम्बन्धी आवश्यकतायें, उद्योग और व्यापार सम्बन्धी आवश्यकताओ तथा अन्य सभी प्रकार की आवश्यकताओ का ज्ञान भी सरकार को अधिक होता है। राज्य सरकार द्वारा नियोजन के निर्माण मे यह सभी बातें सम्मुख रखी जाती हैं जिससे केन्द्रीय नियोजन केवल एक विशाल नियोजन ही न हो बल्कि वास्तविक और आदर्श भी हो। राज्य ही समस्त राष्ट्र की भलाई चाहता है इसलिए राज्य द्वारा जिस नियोजन का निर्माण होता है वह राष्ट्र के समस्त नागरिको की भलाई के लिए होता है।

केन्द्रीय नियोजन की सफलता राष्ट्र के नागरिको पर निर्भर होती है। राष्ट्र के समस्त नागरिक यदि सरकार को विभिन्न रूप से सहयोग प्रदान न करे तो नियोजन कभी भी सफल नही हो सकता। केन्द्रीय नियोजन का उद्देश्य प्रत्येक नागरिक का आर्थिक विकास करना होता है। इसीलिए देश की जनता, साधारणतया, नियोजन को सफल बनाने मे प्रयत्नशील होती है। नियोजन की सफलता से उसको लाभ होता है और नियोजन की असफलता से उसे हानि।

साधारण जनता की तरह श्रमिक भी केन्द्रीय योजना को सफल बनाने मे भरसक प्रयास करता है क्योंकि वह केवल एक श्रमिक ही नहीं होता बल्कि एक उपभोक्ता, एक नागरिक और नियोजित क्षेत्र का एक सदस्य भी। केन्द्रीय

1 Planning in the Soviet Union —S. G Strumilin, pp I—3

नियोजन में व्यक्तिगत लाभ का प्रश्न नहीं रहता इसीलिए श्रमिक-मालिक संघर्ष की सम्भावना भी नहीं रहती। उत्पादन का कार्य सरलता से, बिना किसी हड़ताल या कठिनाई के होता है।

केन्द्रीय नियोजन में प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि नियोजन के कार्य में वह जो कुछ भी सहयोग दे रहा है वह 'राष्ट्रीय सेवा' है। इससे सभी के मन में कुछ 'गर्व' और 'देश-प्रेम' की भावना जागृत हो जाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ऐसी कोई सम्भावना कभी नहीं हो सकती। केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में समाज और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति सामूहिक रूप से होती है—पूँजीवाद की तरह व्यक्तिगत रूप से नहीं।

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के मुकाबले समूचे केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था अच्छी है। क्योंकि इसके अन्तर्गत समूचे राष्ट्र की उन्नति होती है। अविकसित देशों में, विशेषतौर पर, केन्द्रीय नियोजन केवल वाञ्छनीय ही नहीं वरिक परमावश्यक भी है। यही कारण है कि भारतवर्ष ने अपनी आर्थिक स्थिति में द्रुत और सतुलित सुधार करने के उद्देश्य से केन्द्रीय नियोजन की प्रणाली को अपनाया है।

४—भारत में केन्द्रीय नियोजन
(Central Planning In India)

भारत में प्राप्य विशाल मानवीय और भौतिक साधनों के होते हुए भी आर्थिक दृष्टिकोण से यह एक अविकसित देश है। आय तथा साधन के इस असन्तुलन का मुख्य कारण यह है कि वस्तुत भारतवर्ष का आर्थिक विकास अनियोजित रहा है। प्राचीन युगों में व्यक्ति की आवश्यकतायें अत्यधिक सीमित थी जबकि प्राप्त साधनों की मात्रा उतनी ही अधिक थी। अत तत्कालीन मानव ने नियोजन के विषय में कभी चिन्ता ही नहीं की। आगे चलकर मुगल काल में भी देश के आर्थिक विकास के नियोजन तथा सन्तुलन के लिए कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

सभवत. ब्रिटिश शासकों के सम्मुख निर्धन भारतीय जनता का शोषण करना ही एकमात्र 'नियोजन' था। उनका एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे हमारे प्राकृतिक साधनों का अधिक से अधिक शोषण करें, हमारे यहाँ के कच्चे माल को अपने देश ले जायें तथा अपने यहाँ की निर्मित वस्तुओं का भारत में आयात करें। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वे हमारे यहाँ की पूँजी, व्यवसाय तथा लाभ को तो अपने देश में ले गये और बदले में उन्होंने भारतवर्ष को बेरोजगारी, आर्थिक अवनति तथा निर्धनता ही प्रदान की। उन्होंने हमारे यहाँ के गृह-उद्योगों को भी एक प्रकार से समाप्त सा ही कर दिया।

विश्व युद्ध तथा सन् १९२८ की आर्थिक मंदी के पश्चात् देश में पुनर्निर्माण के लिए केवल सिद्धान्त रूप में आर्थिक नियोजन अवश्य किया गया, जिसके

परिणामस्वरूप नियोजन के क्षेत्र मे हमारे देश मे सुव्यवस्थित रूप मे प्रथम पच-वर्षीय योजना का समारम्भ हुआ। राष्ट्रीय आय, सामान्य जनता का जीवन स्तर तथा कृषि-उत्पादन के स्तर को ऊँचा उठाने के उद्देश्य से सन् १९५१ मे यह प्रथम पचवर्षीय योजना कार्यरूप म परिणत की गई। जनता के सामान्य जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए इस योजना ने एक नया क्षेत्र प्रदान किया। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश की भावी आर्थिक स्थिति को और भी अधिक ऊँचा उठाने के लिए मुख्य रूप से औद्योगिक विकास पर बल प्रदान किया गया। तृतीय पचवर्षीय योजना मे कृषि और उद्योग दोनो के सामूहिक विकास पर सन्तुलित, सुव्यवस्थित और सुकल्पित रूप से बल दिया गया है।

विभिन्न देशो मे निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखते हुए नियोजन का होना नितान्त आवश्यक है :—

(i) देश की सामान्य जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना एव उनके आर्थिकमान का विस्तार।

(ii) आर्थिक समृद्धि की स्थापना और उसका विस्तार तथा आर्थिक सकट को रोकना। आर्थिक समृद्धि की स्थापना और उसका विस्तार करने का उद्देश्य अविकसित देशो मे होता है। जबकि आर्थिक सकट का निवारण करने की समस्या विकसित देशो मे उठती है। भारतवर्ष एक अविकसित देश है, अत उसमे जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए राज्य-नियोजन का सिद्धान्त अपनाया जा रहा है। साराश यह है कि राज्य-नियोजन भारत के लिए नितात आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

भारतवर्ष एक निर्धन देश है, अत यहाँ की व्यक्तिगत आय पर्याप्त बचत के लिए नाकाफी है। इसके लिए विनियोग भी अल्पमात्रा मे है। यदि हम अन्य देशो की समकक्षता करने के लिये इच्छुक हैं तो यह आवश्यक है कि हम अपने देश मे विशाल योजनाओ का प्रवर्तन करें ताकि आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रो की प्रगति मे हम पीछे न रह पायें। विशाल योजनाओ की स्थापना तथा परिचालन के लिए केवल राज्य ही पूँजी लगाने मे समर्थ हो सकता है। अतः भारतवर्ष के लिये राज्य-नियोजन अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि राज्य-नियोजन प्रत्येक देश के लिये हितकर है, तथापि वह अविकसित राष्ट्रो के लिये तो एक वरदान कहा जा सकता है। रूस तथा चीन मे अत्यधिक द्रुत गति से जो आर्थिक विकास हुआ है उसका एकमात्र कारण केन्द्रीय नियोजन रहा है। हमारे देश मे गतवर्षों मे जो भी विशाल योजनाएँ पूर्णता को प्राप्त हुई हैं उनका प्रमुख आधार केन्द्रीय-नियोजन ही रहा है।

अविकसित देशो को समृद्ध तथा सम्पूर्ण बनाने के लिये केन्द्रीय नियोजन ही एकमात्र उपयुक्त साधन है। केन्द्र-नियोजित देशों ने इस बात को असदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया है कि, "राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के द्वारा ही

आर्थिक सकटो पर विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किसी को भी यह कहने का अधिकार नही है कि ये सघर्ष प्राकृतिक तथा अनिवारणीय है"[1] अथवा "एक सफल राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के लिये किसी वास्तविक प्रजातन्त्रीय सरकार के हेतु राजनैतिक वातावरण का होना एक अनिवार्य शर्त है" तथा "केन्द्रीय नियोजन मे जनता का सहयोग सहज उपलब्ध होता है।"

सक्षेप मे, इस विषय मे, हमारे निष्कर्ष निम्नलिखित है :—

(i) प्रत्येक देश मे नागरिको के सामान्य जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये नियोजन होना चाहिये।

(ii) व्यक्तिगत औद्योगिक नियोजन पूँजीवादी राष्ट्रो मे ही सम्भव है—जहाँ कि सदियो से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था विद्यमान है एव पूँजी की कोई कमी नही है।

(iii) शेष राष्ट्रो—विशेषत अविकसित राष्ट्रो मे, केन्द्रीय नियोजन का होना आवश्यक है।

अन्ततोगत्वा ससार मे केवल एक ही प्रकार का आर्थिक नियोजन स्थापित हो जायगा—और वह होगा केन्द्रीय आर्थिक नियोजन। ऐसा सिद्ध हो चुका है तथा हो भी रहा है कि यह पद्धति सर्वोत्तम है तथा आर्थिक नियोजन का अधिकार भी इसके अनुसार राज्य मे ही निहित हो जायगा।

---

1. Planning in the Soviet Union—S. G Strumilin, p 5.

आर्थिक प्रणालियाँ : (१) : (पूंजीवाद)
(Economic Systems : (I) : Capitalism)

१—पूंजीवाद का अर्थ और उसका विकास
(Meaning and Growth of Capitalism)

औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) से पहले वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति प्राय छोटी मात्रा मे होती थी। यही कारण था कि उन उत्पादन कार्यो मे उत्पत्ति के साधनो का प्रयोग कम मात्रा मे होता था जो साधारण मनुष्यो की शक्ति से बाहर नही था। इसी कारण से उस काल म विभिन्न देशो मे वस्तुओ की उत्पत्ति प्राय एकाकी-उत्पादन के रूप मे होती थी। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के बाद, जबसे उत्पत्ति के कार्य मे शक्ति (Power) और मशीनो का प्रयोग होने लगा तथा उत्पत्ति बडी मात्रा मे होने लगी तो उत्पत्ति के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए अधिक श्रम, पूजी और उत्पत्ति के अन्य साधनों की आवश्यकता होने लगी जो सबके लिए इकट्ठा करना आसान नही था। इस प्रकार धीरे धीरे सम्पत्ति और पूजी केवल कुछ ही हाथो मे एकत्रित होती रही और देश के धन का वितरण असमान होता गया। ऐसी प्रथा को, जिसम उत्पादन कार्य मे, एक या कुछ ही व्यक्तियो की पूजी प्रयुक्त होती है और जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ होता है पूजीवादी प्रथा कहते है। इस प्रथा के विकास मे स्वतन्त्र व्यापार (free trade) और हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez faire Policy) का काफी महत्त्व रहा है।

पूजीवाद के विषय म विभिन्न समयो मे और विभिन्न देशो म विद्वानो के भिन्न भिन्न मत रहते आए हैं। उनके मतो मे जो भिन्नता है वह पूजीवाद के अर्थ या परिभाषा, उसका स्वरूप या प्रकृति और उसकी विशेषताओ के सम्बन्ध मे है। यद्यपि इन सभी विद्वानो ने पूजीवाद की कुछ बातो का समान रूप से ही अध्ययन किया है फिर भी उनके दृष्टिकोणो मे अन्तर रहा है।

पूंजीवाद की परिभाषा विभिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न ढग से की है। प्रोफेसर पीगू (A C Pigou) ने पूंजीवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है, "पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वह है जिसम उत्पत्ति के भौतिक साधनो का अधिकार अथवा व्यवहार का अधिकार व्यक्तियो के पास होना है और इन साधनो का उपयोग इन अधिकारियो की आज्ञानुसार ही होना है। उनका उद्देश्य यह होता है कि इनकी सहायता से जो वस्तुएँ अथवा सेवाएँ उत्पन्न हो उनके द्वारा लाभ कमाया जाय। पूंजीवादी

अर्थव्यवस्था वह है जिसमे उत्पादक-साधनो का प्रमुख भाग पूंजीवादी उद्योगो मे लगा हुआ हो।"[1]

प्रोफेसर बेन्हम (Benham) के अनुसार 'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था 'आर्थिक तानाशाही की प्रतिविरोधी है'। पूरे उत्पादन का कोई केन्द्रीय नियोजन नही होता है। राज्य द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए लगभग स्वतन्त्र होता है। समाजवादी आर्थिक क्रियाओ का निर्धारण विभिन्न प्रकार के बहुत से व्यक्तियो एव व्यक्ति समूहो के समुचय रहित निर्णयो द्वारा होता है। क्योकि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का स्वामी (जिसमे दास-प्रथा के न होने के कारण श्रमिक भी शामिल है) उस साधन को अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग कर सकता है और अपनी आय को मनचाही गति से व्यय कर सकता है।"[2]   (अनुवाद—विजेन्द्रपालसिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, पृष्ठ—३७३)

प्रोफेसर सिडनी और वी वेब (Sidney and Beatrice Webb) ने पूँजीवाद की परिभाषा इस प्रकार की है, "पूंजीवाद या पूंजीवादी प्रणाली अथवा यदि हम चाहे तो पूँजीवादी सभ्यता से हमारा अभिप्राय औद्योगिक और वैज्ञानिक सस्थाओ के विकास की उस अवस्था से है जिसमे अधिकाश श्रमिको के पास उत्पत्ति के साधनो का स्वामित्व इस प्रकार नही होता है कि वे मजदूर वर्ग म गिने जाते हैं और जिनका जीवनवाद, जिनकी सुरक्षा और जिनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता राष्ट्र के छोटे से ही जनसमूह की इच्छा पर निर्भर होते है, अर्थात् उन लोगो पर जो अपने वैधानिक स्वामित्व द्वारा भूमि, मशीनरी और समाज की श्रमशक्ति के मालिक होते हैं और

---

1 'A Capitalist industry is one in which the material instruments of production are owned or hired by private persons and are operated at their orders with a view to selling at a profit *the goods and services that they help to produce* A *Capitalist eco*nomy or Capitalist System is engaged in Capitalist industry"— A C Pigou *Socialism Vs Capitalism*

2 "A Capitalist economy is the antitl esis of an economic *dictatorship There is no central planning of production as a whole* Subject to the limitations imposed by the state every body is more or less free to do what he likes The Economic activities of the Community are determined by the appaienlty uncoordinated decisions of a multitude of different persons since each owner of a factor of production (*including workers, who in the absence of* slavery—own their own labour) is free to use it as he pleases, and to dispose of its earnings as he wishes " Benham

Economics, P 155

उसके सगठन पर नियन्त्रण रखते हैं तथा ऐसा करने मे उनका उद्देश्य निजी तथा व्यक्तिगत लाभ कमाना होता है।"[1]

(अनुवाद—निजयेन्द्रपालसिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, पृष्ठ—३७४)

इसके अतिरिक्त भी पूंजीवाद की और बहुत-सी परिभाषायें विभिन्न विद्वानो द्वारा दी गई है, जिनमे से कुछ अनुवादित रूप म (B. Tandon तथा M. D. Tandon, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, भाग १, पृष्ठ—२३९) इस प्रकार हैं

कुछ विद्वानो के अनुसार, "पूंजीवाद उस अर्थव्यवस्था को कहते हैं जिसमे वैयक्तिक सम्पत्ति पाई जाती है और मनुष्य कृत पूंजी तथा प्राकृतिक साधनो की निजी लाभ म उपयोगिता है।" इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अर्थशास्त्रियो का कहना है कि, 'पूंजीवाद का अर्थ उद्योग के विकास मे उस स्थिति से है जिसमे कि काम करने वालो का समुदाय उत्पादन के यन्त्रो के स्वामित्व से इस प्रकार परे हो जाता है कि वे इस प्रकार के श्रमिक बन जाते है कि उनका निर्वाह तथा निजी-स्वतन्त्रता उस राष्ट्र के उन थोडे से व्यक्तियो की इच्छा पर निर्भर रहता है जो भूमि, पूंजी और श्रम-शक्ति के स्वामी हैं और उनके प्रबन्ध का नियन्त्रण अपने निजी लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं।" कुछ अन्य अर्थशास्त्रियो का कहना है कि, "पूंजीवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसम माल का उत्पादन तथा वितरण व्यक्तियो या समूहो द्वारा होता है जो अपने सग्रहित धन के भण्डार का उपयोग अपने लिए अधिक धन कमाने के हेतु करते है।"

२—पूंजीवाद के मुख्य लक्षण और दोष

पूंजीवादी प्रथा मे कुछ विशेषताएँ होती हैं जो साधारणतया अन्य आर्थिक प्रणाली म नही पाई जाती हैं। सामान्यतया पूंजीवाद की पहचान इन्ही विशेषताओ, लक्षणो या दोषो द्वारा होती है। वह निम्नलिखित है —

१—निजी सम्पत्ति पर स्वामित्व का अधिकार (Right of private property and the system of Inheritence)—यह पूंजीवादी प्रथा की शायद सबस अधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके द्वारा पूंजीवादी प्रथा के अन्तर्गत इस बात को स्वीकार कर लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति और इच्छा

---

1 "By the term Capitalism or the Capitalistic System or as we prefer the 'Capitalist Civilization' we mean the particular stage in the development of industry and legal institutions in which the bulk of the workers find themselves divorced from the ownership of the instruments of production in such a way as to pass into the position of wage earners whose subsistence, security and personal freedom seem dependent on the will of a relatively small proportion of the nation, namely those who own and through their legal ownership, Control the organisation of the Land, the machinery and the labour force of the Community and do so with the object of making for themselves individual and private gains"—Sidney and Beatrice Webb

नुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति की स्थापना कर सकता है जो वश-परम्परानुसार चल सकती हैं। इस प्रकार यदि किसी व्यक्ति के पास अधिक मात्रा मे धन या पूँजी हो तो वह उसका व्यवहार स्वतन्त्र रूप से और अधिक धन कमाने के लिये, सम्पत्ति बढाने के लिए या उत्पत्ति कार्य के लिए कर सकता है। उसके इस कार्य मे (जब तक कि वह देश के अहित मे न हो) सरकार, समाज या अन्य व्यक्तियो द्वारा बाधा नही डाली जा सकती। पूँजीवादी प्रथा मे प्रत्येक मनुष्य को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह अपने को अधिक खुशहाल बनाने के लिये, अधिक मात्रा मे धन कमाये या सम्पत्ति का निर्माण करे।

वास्तव मे निर्बाध-व्यापार और हस्तक्षेप न करने की नीति (laissez faire system) के द्वारा ही इस विशेषता की उत्पत्ति हुई है। निर्बाध व्यापार और हस्तक्षेप न करने का हमेशा यह परिणाम होता है कि समाज मे रहने वाले विभिन्न स्तर के मनुष्यो मे, और विशेषकर विभिन्न उत्पादको मे अपनी-अपनी उन्नति के लिए पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होती है और इस प्रकार पूँजीवादी प्रथा मे सम्पत्ति केवल उन थोडे से व्यक्तियो के पास ही एकत्रित हो जाती है, जो अधिक धन कमाने मे समर्थ होते है। इस प्रकार पूँजीवादी प्रथा मे, निजी सम्पत्ति पर स्वामित्व और उसके वश-परम्परा के अनुसार चले आते रहने का परिणाम यह होना है कि देश मे धन, *सम्पत्ति और पूँजी का वितरण असमान हो जाता है। धनिक वर्ग, इस प्रथा के* अस्तित्व के कारण, और अधिक धनवान होते जाते हैं तथा निर्धन और अधिक दरिद्र।

२—प्राय सभी विद्वानो के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि उसमे विनियोग अथवा व्यवसाय की पूर्ण स्वतन्त्रता (freedom of enterprise) होती है। अर्थात् प्रत्येक उत्पादक को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वह किसी भी वस्तु या सेवा की कितनी ही मात्रा मे उत्पत्ति करे। उत्पत्ति की मात्रा का स्वरूप क्या होगा इसका निर्णय राज्य द्वारा न होकर उत्पादक की इच्छानुसार होता है। इस प्रकार साहसी वर्ग को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है कि वह किसी भी वस्तु या सेवा की उत्पत्ति अपनी इच्छानुसार करे। उत्पादक अपनी शक्ति और वस्तुओ की मांग के अनुसार उत्पादन की मात्रा का निर्णय करता है। उसके उस कार्य म दो मुख्य उद्देश्य होते हैं—अधिकतम उत्पत्ति और अधिकतम लाभ—और इन दोनो उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए ही वह वस्तु या सेवा की उत्पत्ति अपनी इच्छानुसार करता है। इसका प्राय यह परिणाम होता है कि जिस वस्तु के उत्पादन से अधिकतम लाभ हो सकता है, सभी उत्पादक उस ओर झुकते हैं और राज्य द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप न होने के कारण, अन्त तक कुछ बडे उद्योगपति ही उस क्षेत्र मे शेष रह जाते हैं और इस प्रकार प्राय एकाधिकार की स्थापना होती है, जिससे उपभोक्ताओ को हानि होती है।

३—आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic freedom) :

'इसके अन्तर्गत (अ) व्यवसायिक स्वतन्त्रता (ब) प्रसविदे करने की स्वतन्त्रता (freedom of contract) एवं (स) चुनाव की स्वतन्त्रता होती है। उपभोक्ताओं के चुनाव की स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि राज्य के नियमों का पालन करते हुए उसे अपनी आयको किसी भी प्रकार व्यय करने की स्वतन्त्रता होती है। उसे यह भी स्वतन्त्रता होती है कि वह आय के कुछ भाग को बचा ले तथा उसका (और अधिक आय प्राप्त करने के लिए) विनियोग (Investment) करे।" इस कथन का तात्पर्य यह है कि पूंजीवादी प्रथा मे सरकार की ओर से व्यय, विनियोग या उत्पत्ति पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही होता है। देश में रहने वाले समस्त नागरिक इस बात के लिये स्वतन्त्र होते हैं कि वे अपने धन का प्रयोग किसी भी रूप में करें। प्राय इसका परिणाम यह होता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे जिन मनुष्यो के पास अधिक धन होता है वह और अधिक धन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी बचत के बडे भाग को बिभिन्न वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति करने के लिए विनियोग करते हैं। इस प्रकार उन्हे अधिक लाभ प्राप्त होता है जो उनके पास पूंजी के रूप मे इकट्ठा होता जाता है। इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि देश में धन का वितरण असमान हो जाता है।

४—वर्ग सघर्ष (Class conflict)—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की एक और विशेषता वर्ग-सघर्ष की है। पूंजीवादी प्रथा मे विनियोग, उत्पत्ति या उपभोग पर किसी प्रकार का बन्धन न होने के कारण जिनके पास धन होता है वह अपने निजी लाभ के लिए उस धन का अधिकतम भाग 'अधिक उत्पत्ति' के लिये विनियोग करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि देश के धन या सम्पत्ति का एक बड़ा भाग केवल कुछ ही व्यक्तियो के हाथ में जिसको पूंजीपति वर्ग कहते हैं इकट्ठा हो जाता है। पूंजीपतियो के पास अधिक धन होने के कारण वह मजदूरो का सरलता से शोषण कर पाते हैं। इससे देश मे दो वर्ग स्थापित हो जाते हैं—पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि समाज का एक भाग 'सम्पन्न' (have) और दूसरा भाग 'असम्पन्न' (have not) हो जाता है।

इन दोनो वर्गों मे एक दूसरे के प्रति सद्भावना का अभाव हो जाता है। सम्पन्न वर्ग असम्पन्न वर्ग से दूर रहना चाहता है और उनकी यह धारणा होती है कि मजदूर वर्ग उनका जन्मजात शत्रु है। इसके विपरीत, मजदूर वर्ग यह मानता है कि पूंजीपतियों के पास जो धन है वह वास्तव मे उनका या उनके पूर्वजो का धन है, क्योंकि पूंजीपति के पास धन केवल निर्धनो के शोषण द्वारा ही इकट्ठा होता है। इस प्रकार पूंजीवादी प्रथा मे देश में वर्ग-सघर्ष उत्पन्न होता है, जो राष्ट्र के लिये हानिकारक है।

५—श्रमिकों की दुर्दशा (Sad plight of the labourers)—मजदूरी के निर्धारण मे, जब पूंजीपति और श्रमिको मे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होती है तो पूंजीपति की शक्ति अधिक होने के कारण तथा श्रम की विशेषताओ के कारण

श्रमिको को ही झुकना पडता है और मजदूरी की दर प्राय मजदूर की सीमान्त उत्पादन शक्ति से कम दर पर तय होती है। पूँजीपतियो द्वारा श्रमिको का शोषण होता है ।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे (पूँजीपतियो की प्रमुखता और अधिक क्षमता के कारण) उत्पत्ति मे श्रमिको की अपेक्षा साहसी का महत्व अधिक होता है (अधिक बनाया जाता है)। उसका परिणाम यह होता है कि उत्पत्ति मे जब कि उत्पत्ति का कार्य पूँजीवादी प्रथा के अनुसार हो रहा हो, तो श्रमिको का महत्व कम होता है। यह भी एक प्रकार का शोषण है, जिससे श्रमिको की दुर्दशा मे और वृद्धि होती है।

६—स्वार्थ-नीति (Self Interest)—पूँजीवादी प्रथा मे उत्पत्ति, विनियोग और वितरण पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने के कारण पूँजीपति वस्तु या सेवाओ की उत्पत्ति स्वार्थ-सिद्धि और अधिकतम लाभ के उद्देश्य से करता है । इस कार्य मे यदि उसे अन्य उत्पादको के साथ 'गलाकाट प्रतिस्पर्धा' (Cut throat Competition) भी करने पडे, तब भी वह न झिझकेगा। उसके सामने सिर्फ एक उद्देश्य है—निजी लाभ, जिसको वह किसी भी कीमत पर प्राप्त करना चाहता है ।

इस प्रथा के अन्तर्गत नियन्त्रण के अभाव से कभी-कभी वस्तुओ की उत्पत्ति आवश्यकता से अधिक मात्रा मे भी होती है जिससे सैकडो कठिनाइयाँ उठ खडी होती हैं। इसके अतिरिक्त उत्पादक कभी-कभी निजी लाभ के उद्देश्य से ऐसी वस्तुओ की उत्पत्ति या उनका वितरण भी करता है जो देश के लिये हानिकारक हैं।

७—अनियन्त्रित अर्थव्यवस्था (Uncontrolled Economic System)—इसके अन्तर्गत उत्पादक अधिकतर माँग की वस्तुओ का ही उत्पादन करना चाहता है। इस परिस्थिति मे उसके लिए यह सम्भव होगा कि वह उत्पत्ति की मात्रा को बढा कर वस्तु के उत्पत्ति व्यय को कम से कम कर सके । इसका कारण यह होता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ताओ को इस बात की पूर्ण आजादी (Consumers' Sovereignty) होती है कि वह जिस वस्तु को चाहे उसका उपभोग करे। सामान्य रूप से, उपभोक्ता वस्तु को कम से कम कीमत पर प्राप्त करना चाहता है। इस कारण उत्पादक की यही चेष्टा रहती है कि वह वस्तुओ की उत्पत्ति कम से कम उत्पत्ति-व्यय पर करे। इस प्रतिस्पर्द्धा मे उत्पत्ति की छोटी-छोटी इकाइयाँ समाप्त हो जाती हैं और देश मे केवल कुछ ही बडे कारखाने शेष रह जाते हैं। इस प्रकार भी वस्तुओ का वितरण केवल कुछ ही हाथो मे रह जाता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रथा मे उत्पत्ति और वितरण के अनियन्त्रित होने के कारण 'अति-उत्पादन' (Over Producton) या 'कम उत्पादन' (Under Production) की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो अवांछनीय है ।

८—प्रतिस्पर्द्धा (Competetion)—पूँजीवाद की एक विशेषता प्रतिस्पर्द्धा भी है। पूँजीवाद मे प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी लाभ के उद्देश्य से वस्तु और सेवाओं की उत्पत्ति करता है, इसलिये इसके उत्पादको के साथ प्रतिस्पर्द्धा करना आवश्यक

हो जाता है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धा का अभाव होता है; किन्तु पूँजीवाद का यह एक आवश्यक अङ्ग है। इससे लाभ भी होते हैं और हानि भी होती है। लाभ यह होता है कि वस्तु की कीमत बाजार में कम हो जाती है, और हानि यह होती है कि यदि वस्तु की उत्पत्ति केवल एक या कुछ मिले हुए उत्पादकों द्वारा होती है तो एकाधिकार या प्राय एकाधिकार की स्थापना हो जाती है जिसके फलस्वरूप आगे चल कर उपभोक्ताओं को हानि हो सकती है।

९—**समन्वय का अभाव** (Lack of Coordination)—पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में न तो केन्द्रीय निर्देशन का कोई महत्त्व होता है और न उत्पत्ति नियन्त्रित रूप से ही होती है। वास्तव में, इस प्रकार की उत्पत्ति में क्रेता या उपभोक्ता का महत्त्व प्रबल होता है। उत्पादक उन्हीं वस्तु या सेवाओं की उत्पत्ति करना चाहता है जिनकी माँग अधिक होती है। वस्तुओं की माँग उपभोक्ताओं की आवश्यकता, रुचि, आय और स्वभाव पर निर्भर करती है। इस प्रकार उत्पत्ति का अप्रत्यक्ष नियन्त्रण कीमत प्रणाली (Price mechanism) द्वारा होता है। इस प्रथा में आदर्श सामंजस्य (Ideal Order) को बनाये रखना सम्भव नहीं होता और प्राय ऐसा देखा जाता है कि पूँजीवादी उत्पत्ति व्यवस्था में समन्वय का अभाव होता है, जोकि अवांछनीय है।

१०—**प्रतियोगिता और संगठन का सह अस्तित्व** (Co-existence of competition and combination)—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की यह एक विचित्र विशेषता है। प्रतिस्पर्द्धा और संगठन दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं फिर भी इस आर्थिक प्रणाली में इन दोनों का एक सह-अस्तित्व (co-existence) है। बाजार में प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रत्येक उत्पादक प्रयत्नशील होता है। इसके लिए वह उत्पत्ति की आधुनिकतम प्रणालियों को अपना कर उत्पत्ति-व्यय को कम करना चाहता है ताकि वह दूसरों के मुकाबिले में अपनी वस्तुओं को सस्ते दामों पर बेच सके और इस प्रकार दूसरे उत्पादकों को बाजार से खदेड कर अपना प्रभुत्व जमा सके। अत उसे प्रारम्भिक स्थिति में दूसरे उत्पादकों से तीव्र प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। बड़ी मात्रा में उत्पादकों के साथ प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप छोटी मात्रा के उत्पादक बाजार से हट जाते हैं। अन्त में उस वस्तु के एक या थोड़े से बड़ी मात्रा के उत्पादक रह जाते हैं। जब यह उत्पादक यह अनुभव करते हैं कि पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से वह एक दूसरे को हटा नहीं सकते और स्वयं हानि उठा सकते हैं, तो वे आपस में संगठन (combination) करते हैं। यह औद्योगिक संगठन (Industrial Combination) विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु उनके उद्देश्य एक ही रहते हैं—अधिक लाभ कमाना।

११—**आत्मघाती प्रकृति** (Self destructive nature)—पूँजीवादी अर्थव्यवस्था आत्मघाती होती है। अर्थात् इसका विनाश इसी के द्वारा होता है। पूँजीवादी प्रथा में लाभ का उद्देश्य मुख्य होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति लाभ कमाने

के उद्देश्य से ही, पूंजी का अधिकतम विनियोग (Investment) करता है और सदा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि वह बडी से बडी मात्रा मे वस्तुओ की उत्पत्ति कम से कम उत्पत्ति-व्यय पर करे। प्रायः इसका परिणाम अति-उत्पादन (over-prduction) होता है जिससे देश मे मन्दी आ जाती है और प्राय सभी वर्ग के व्यक्तियो को हानि उठानी पडती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे नियन्त्रण का अभाव भी जनता को इस प्रणाली के खिलाफ कर देता है। किसी देश मे जैसे-जैसे पूंजीवादी प्रथा का विकास होता जाता है, वैसे ही वैसे देश का धन कुछ ही हाथो मे एकत्र हो जाता है और उनके द्वारा दरिद्र वर्ग का शोषण होने लगता है। अनियन्त्रित पूंजीवाद जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो वर्ग-सघर्ष और अधिक बढ जाता है, एव उसको समाप्त करने के लिए इन देशो म समाजवाद, मार्क्सवाद या साम्यवाद की स्थापना हो जाती है। इस प्रकार पूंजीवाद की 'समाप्ति' का कारण पूंजीवाद ही है।

१२—व्यापार-चक्र (Trade Cycle)—

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे व्यापार-चक्र अधिक तीव्रता से दृष्टिगोचर होता है। जब उत्पादकवर्ग यह अनुभव करता है कि किसी वस्तु या सेवा की माँग अधिक है या उसके उत्पादन से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है तो वह अपनी अधिकतम् पूंजी का विनियोग उस वस्तु या सेवा की उत्पत्ति मे करता है। इस प्रकार विभिन्न उत्पादको द्वारा जब उस वस्तु या सेवा की उत्पत्ति अधिकतम् मात्रा मे होने लगता है तो उसकी पूर्ति उसकी मांग से अधिक हो जाती है जिससे 'अति-उत्पादन' (Over production) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति मे उत्पादको को "मन्दी" का सामना करना पडता है।

इसके विपरीत यदि कम उत्पादन (under-production) होता है तो उपभोक्ताओ को वस्तुयें कठिनाई से प्राप्त होती है और उनके लिए उन्हे ज्यादा दाम देने पडते हैं। इस प्रकार पूंजीवादी *अर्थव्यवस्था मे 'अधिक उत्पादन'* और *'कम उत्पादन'*, 'तेजी' और 'मन्दी' (Boom and depression) का व्यापार चक्र चलता रहता है जिसका *कि देश की आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पडता है।*

१३—सामाजिक परजीविता (Social Parasitism)—

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे 'सामाजिक परजीवियो' (Social Parasites) का अस्तित्व होता है। इसका अर्थ यह है कि पूंजीवादी समाज मे बहुत से धनवान् ऐसे होते है जो किसी भी प्रकार का कार्य किये बिना ही अपना जीवन सम्पन्नता और भोगविलास में व्यतीत करते है। उनके पूर्वजो ने या तो उद्योग-धन्धे स्थापित कर गये हैं जिनकी देखभाल और व्यवस्था के लिए उन्होने *व्यवस्थापक की नियुक्ति कर रक्खी* है और इस प्रकार बिना कुछ किये ही बहुत धन पाते रहते है, जिससे वह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते रहते हैं, *या वंशपरम्परानुसार उनके पास काफी भूमि*

चली आ रही है जिसका लगान मिलता है या वह अपने नौकरो द्वारा उस भूमि पर खेती कराते हैं और उससे धन कमाते है, या उनकी कुछ अचल सम्पत्ति, मकान-दूकान आदि है जिसका किराया उनको बिना परिश्रम के प्राप्त हो जाता है । उसी प्रकार बहुत से व्यक्तियो के अधिकार मे खाने है जिनसे उन्हे निरन्तर आमदनी होती रहती है। यह सब बाते इस बात को सिद्ध करती है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे बिना कमाये भी बहुत धन प्राप्त हो सकता है। फलत इस प्रकार के व्यक्ति भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे इन बातो का अस्तित्व नही होता क्योकि उसमे बिना कार्य किए धन की प्राप्ति नही हो सकती ।

१४—धन की बर्बादी (Wastage of money)—

प्रतिस्पर्द्धा मे और अन्य उत्पादको को बाजार से हटाने के प्रयास मे बहुत धन बर्बाद होता है। इस प्रतिस्पर्द्धा के कारण (बाजार पर कब्जा करने के लिए) उत्पादको को कभी कभी उत्पत्ति-व्यय से भी कम कीमत पर वस्तुओ या सेवाओ को बेचना पडता है जिससे उन्हे हानि होती है और धन बर्बाद होता है । प्रचार और विज्ञापन पर उत्पादको को अत्यधिक खर्च करना पडता है, इससे भी धन की बर्बादी होती है। अत्यधिक विशिष्टीकरण (Specialization), उत्पत्ति की मात्रा की अत्यधिक वृद्धि, पूँजी प्रमुख-उत्पादन (Capital-intensive production) एव अभिनवीकरणो (Rationalization) की पद्धतियो के अपनाने के कारण भी धन की बर्बादी होती है। यदि यह सब धन खोज, गवेषणा, अन्वेषण और श्रमिको के सामाजिक विकास के लिए व्यय किया जाय तो उससे सभी को लाभ होगा। कभी-कभी उद्योगपतियो द्वारा एक ही प्रकार की वस्तुओ को उत्पन्न करने के लिए देश मे बहुत से कारखाने खोल दिए जाते हैं, जिनमे से बहुत से अनावश्यक होते हैं। इससे भी धन की बर्बादी होती है। समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे ऐसा कभी नही होता।

१५—सामाजिक कल्याण का अभाव (Absence of Social welfare)—

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति केवल निजी लाभ के उद्देश्य से होती है —समाज की भलाई या श्रमिको के कल्याण की दृष्टि से नही । उत्पादक उन वस्तुओ की उत्पत्ति में भी पीछे नहीं हटते जिनके उत्पादन से उन्हे तो लाभ है—परन्तु समाज को हानि है—जैसे, मादक द्रव्यो की उत्पत्ति। साहसी को श्रमिको से कोई सहानुभूति नही होती। अत वह कार्य करने के वातावरण मे, कार्य के घन्टो मे, कार्य की परिस्थितियो आदि मे कोई सुधार नही करता। उसी प्रकार श्रमिकों के मनोरजन, उनके स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा और निवास स्थानो के प्रबन्ध आदि पर उसे जितना ध्यान रखना चाहिए (एक मनुष्य और मालिक की हैसियत से) उतना ध्यान नहीं रखता। इससे श्रमिकों का आर्थिक और सामाजिक कल्याण नहीं हो पाता एव उनका जीवन स्तर भी उन्नत नही हो पाता ।

१६—पूंजीवाद का सामाजिक मूल्य (Social Costs of Capitalism)—

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था समाज को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है। उद्योगो के स्थानीयकरण से उसके आसपास का वातावरण दूषित और अस्वास्थ्यकर हो जाता है। वर्ग-सघर्ष के कारण देश की स्थिति मे निरन्तर अवनति होती जाती है—देश की शान्ति हमेशा 'हडताल' और 'तालाबन्दी' (lock-out) से भग होती रहती है। व्यापार चक्र, 'गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा' और तेजी-मन्दी के कारण देश के धन का अपव्यय होता है तथा बेरोजगारी बढती है। सामाजिक परजीवियो (Parasites) के अस्तित्व से देश मे भोगविलास की मात्रा बढती जाती है। धनी वर्ग और धनी होकर दरिद्र वर्ग का शोषण करता है। समाज के एक बडे भाग का—जो कि श्रमिक होता है, जीवन-स्तर गिरता जाता है। प्राय उपभोक्ताओ को अधिक दाम देना पडता है क्योकि इस प्रथा के अन्तर्गत एकाधिकार और व्यवसायिक सगठन के साथ ही साथ उद्योगपतियो द्वारा जानबूझ कर के कम उत्पादन भी किया जाता है, जिससे कि कीमत मे कमी न हो।

३—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के गुण
(Merits of Capitalistic Economy)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के बहुत से गुण तथा लाभ है जिनके कारण यह प्रथा अभी तक बहुत से देशो मे विद्यमान है तथा ससार के कुछ प्रमुख राष्ट्र, जो ससार भर मे बहुत खुशहाल समझे जाते हैं, इसी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं, जैसे, अमरीका ब्रिटेन, कनाडा, जर्मनी, फ्रान्स आदि। यह सब देश इस बात को सिद्ध करते हैं कि किसी भी देश की उन्नति केवल केन्द्रीय नियन्त्रण या नियोजन पर ही आधारित नही होती बल्कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत भी आर्थिक विकास सम्भव है। पूंजीवाद के कुछ प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं —

१ स्वयं संचालित (Automatic)—

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नही होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ-सिद्धि के उद्देश्य से कार्य करता है। इस प्रकार, कार्य मे उन्हे उत्साह दिलाने का प्रयत्न सरकार की ओर से आवश्यक नही होता। इसी प्रकार किस समय किस कार्य को करें, उत्पत्ति का सगठन किस रूप मे हो, उत्पत्ति की मात्रा क्या हो, उत्पत्ति कार्य के लिए पूंजी कहाँ से इकट्ठी की जाय या देश की आर्थिक अवस्था को उन्नत बनाने के लिए किन लक्ष्यो की प्राप्ति को प्राथमिकता प्रदान की जाय, यह सब कुछ ऐसे तथ्य हैं जो नियोजित अर्थव्यवस्था मे सरकार द्वारा निश्चित किये जाते है। परन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे यह सब स्वय सचालित होते हैं। इस प्रकार एक ओर इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार का कार्य सरल हो जाता है, और दूसरी ओर, व्यक्तियो को भी अधिक स्वतन्त्रता रहती है। इस

प्रथा के अन्तर्गत उत्पादक और उपभोक्ता स्वय अपना भविष्य और कार्य-पद्धति निश्चित करते है।

२—बडी मात्रा की उत्पत्ति और प्रतिस्पर्द्धा का अस्तित्व—

इसम उत्पादको को पग-पग पर प्रतिस्पर्धा करनी पडती है, इसलिए वह हमेशा इस बात के लिए सचेष्ट रहते हैं कि सम्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि हो। इससे उत्पादको को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो ही रूप से लाभ होता है। प्रत्यक्ष रूप से तो यह लाभ होता है कि वह उत्पत्ति व्यय को कम करके बाजार को अपने अधिकार मे कर सकता है जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। अप्रत्यक्ष रूप मे उसे यह लाभ होता है कि छोटे-छोटे और सीमान्त उत्पादक, जिनके पास पूँजी की कमी होती है, बाजार से हट जाते हैं और इस प्रकार उन्हे कम प्रतिद्वन्द्वियो से प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। इस प्रकार बडी मात्रा मे उत्पत्ति होने से बडी मात्रा की उत्पत्ति के सभी लाभ प्राप्त हो जाते हैं और उपभोक्ताओ को वस्तुएँ प्राय सस्ती कीमत पर मिल जाती है।

प्रतिस्पर्धा का अस्तित्व एकाधिकार या एकाधिकार की सी स्थिति को दूर कर देता है। नियन्त्रित अर्थव्यवस्था मे जबकि अधिकांश वस्तुओ की उत्पत्ति सरकार द्वारा होती है तो उसमे प्रतिस्पर्द्धा नही रहती है। अत उपभोक्ताओ का महत्त्व कम हो जाता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे प्राय उपभोक्ताओ का महत्त्व अधिक होता है क्योकि उत्पादक उन्ही की इच्छा, रुचि और माग के अनुसार वस्तुओ की उत्पत्ति और उनका वितरण करते है।

३—नमनीयता (flexibility)—

इसके अन्तर्गत उत्पत्ति निजी लाभ के उद्देश्य से की जाती है। इसलिए इस उत्पत्ति प्रणाली मे परिवर्तनशीलता अधिक होती है। उत्पत्ति के प्राय सभी साधनो की विशेषता यह होती है कि आवश्यकता पडने पर उनमें कमी अथवा वृद्धि की जा सकती है या उन्हे एक उद्योग से हटा कर दूसरे उद्योग मे भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अर्थात् उनमे प्रतिस्थापन (Substitution) सम्भव होता है। समाजवादी या साम्यवादी राष्ट्रों मे—जिनमे उत्पत्ति के समस्त साधन और उनका सगठन पूर्ण रूप से सरकार पर निर्भर होता है—यह प्रतिस्थापनशीलता प्राय काम मे नही आती क्योकि वहा उत्पत्ति लाभ के उद्देश्य से नहीं होती। राष्ट्रीय उद्योगो मे हानि होने पर भी वे वैसे ही बने रहते हैं। परन्तु पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे पूँजीपति अपने पूँजी का प्रयोग किसी एक व्यवसाय या कारखाने मे तब तक करता रहेगा जब तक उसे लाभ प्राप्त होता रहे। जब उसे लाभ प्राप्त न होगा या वह अनुभव करे कि उस पूँजी के दूसरे उद्योग मे विनियोग से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है तो वह ऐसा ही करेगा। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति के साधनो की गतिशीलता बढ जाती है और उनमे प्रतिस्थापन भी अधिक मात्रा मे होता है। इसी कारण यह

कहा जाता है कि, "पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का एक बड़ा गुण यह है कि उसमें अधिक लोचकता होती है।"

४—जोखिम उठाना (Risk taking) —

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे पूंजीपति ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना चाहता है। जिन वस्तुओ या सेवाओ की अधिक माग होती है उनके उत्पादन क्षेत्र मे पहले से ही बहुत से उत्पादक होते हैं। जिस क्षत्र मे अभी और उत्पादक नही हैं या कम हैं उस क्षेत्र मे वह अधिक जोखिम उठा कर उन वस्तुओ की उत्पत्ति मे अपनी पूंजी का विनियोग करता है। इस प्रकार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अधिक जोखिम उठाया जाता है, नये नये प्रयोग, खोज और अन्वेषण किये जाते हैं जिससे कि पूंजीपति अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके। राष्ट्र-नियोजित अर्थव्यवस्था मे प्राय. इस प्रकार का जोखिम नही उठाया जाता, जिसके कारण समाजवादी देशो मे ऐसी वस्तुओं की उत्पत्ति सदा सम्भव नही होती। पूंजीपति इस बात को मान कर चलते हैं कि 'बिना जोखिम उठाए लाभ नही हो सकता' (No risk, no gain) इसलिए भी वे जोखिम उठाते हैं, और इस प्रकार उपभोक्ताओ को वे वस्तुएं भी प्राप्त हो जाती हैं जो जोखिम उठाने के अभाव मे प्राप्त नही हो सकती थी।

५—उत्पत्ति की प्रणालियों मे उन्नति (Technological progress) —

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे अधिक जोखिम उठाया जाता है, अधिक प्रतिस्पर्द्धा होती है और उपभोक्ताओ का प्रभुत्व अधिक होता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि उत्पादक हमेशा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते है कि वह अपने कारखानो मे अन्वेषण और गवेषणा करायें, उसके आधार पर उत्पत्ति के नये-नये तरीके मालूम करें तथा उनको अपनायें। यदि उत्पादक इस कार्य मे सफल न हो सके तो उन्हे बाजार से हटना पडेगा। इस प्रकार इस बढती हुई प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप उन्हे उत्पत्ति के नये-नये तरीको को अपनाना पड़ता है जिससे वह अधिक सुन्दर, टिकाऊ और अच्छी वस्तुएँ कम से कम कीमत पर उत्पन्न कर सकें।

६—पूर्ण रूप से साधनों का उपयोग (Full utilization of resources)—

अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये पूंजीपति उत्पादन के नये तरीको को अपनाने के साथ ही साथ इस बात के लिए भी सचेष्ट रहता है कि 'अवशिष्ट पदार्थ' (Waste material) का भी उपयोग पूर्ण रूप से हो। इससे उसके लाभ की मात्रा मे वृद्धि होती है। प्राय ऐसा देखा जाता है कि राज्य नियन्त्रित अर्थव्यवस्था मे इस प्रकार के 'अवशिष्ट' पदार्थ का पूर्ण रूप से उपयोग नही होता जिससे राष्ट्र को हानि होती है, परन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे अवशिष्ट पदार्थों का पूर्ण रूप से उपयोग होता है।

७—उत्पत्ति का कार्य और उद्योगों का प्रबंध विशेषज्ञों (Specialists) द्वारा होता है—

इसमे विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की उत्पत्ति केवल उनके विशेषज्ञों द्वारा ही होती है। प्रतिस्पर्द्धा के अस्तित्व के कारण उत्पत्ति के क्षेत्र मे केवल वही टिक सकते हैं जो उस वस्तु या सेवा की उत्पत्ति मे सबसे अधिक कुशल है। इस प्रकार जब वस्तुओं और सेवाओं की उत्पत्ति केवल कुशल व्यक्तियों के द्वारा ही होती है तो प्राय उपभोक्ताओं को अच्छी और टिकाऊ वस्तुएँ कम से कम कीमत पर प्राप्त होती हैं। पूँजीपति, साहसी और प्रबन्धक अधिक काल तक एक ही कार्य को करते करते कुशल हो जाते हैं।

८—उत्पादन मे प्रोत्साहन (Incentive to Production)

पूँजीवाद के अन्तर्गत उत्पत्ति के क्रियाशील (active) साधनों को यथेष्ट उत्साह प्रदान किया जाता है। लाभ की सम्भावना साहसी को उत्साह प्रदान करती है, जिससे वह अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग करके उस वस्तु या सेवा की उत्पत्ति से अधिकतम लाभ कमाना चाहता है। केन्द्रीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था का यह सबसे बडा दोष होता है कि उसमें उत्पत्ति के संचालकों को किसी प्रकार का उत्साह प्राप्त नहीं होता जिसके कारण वह कभी भी उतने उद्यम और धैर्य से कठिन परिश्रम नहीं करते जितना कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे साहसी करता है। जो बात साहसी के लिए सत्य है वही बात प्रबन्धक और कुशल श्रमिकों के लिए भी। अच्छा फल दिखाने पर प्रबन्धक और श्रमिक दोनों के वेतन और मजदूरी की दर मे वृद्धि मालिक की ओर से कर दी जाती है जिससे उत्पत्ति कार्य मे सलग्न प्रत्येक व्यक्ति हमेशा अपनी पूर्ण शक्ति से कार्य करने के लिए इच्छुक रहता है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे वश परम्परानुसार सपत्ति के अधिकार के अस्तित्व के कारण उत्पादक अधिकतम धन कमाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ताकि वे सम्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि कर सकें और अपने वशजों के लिए उसे छोड सकें।

९—योग्यतम की विजय(Survival of the fittest)—

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित है। प्रतिस्पर्द्धा मे वही विजयी हो सकता है जो कि योग्यतम हो या सबसे अधिक बलशाली हो। सामान्य रूप से, उत्पत्ति और वितरण का कार्य जब सबसे अधिक कुशल, योग्य और बलवान व्यक्तियों के हाथ मे होता है तो उससे राष्ट्र और समाज को अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। समाजवादी और केन्द्र-नियंत्रित अर्थव्यवस्था मे इसका अभाव होता है।

१०—व्यक्तिगत देख भाल (Personal care)—

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पादक निजी लाभ के उद्देश्य से उद्योगों को स्थापित करता है और उनका सचालन करता है। इस प्रकार इस अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन का कार्य व्यक्तिगत देखभाल, उत्तरदायित्व, बुद्धिमानी एवं कुशल सचालन

के अन्तर्गत हो पाता है—जो केन्द्रीय नियोजन मे सम्भव नही होता। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पत्ति का कार्य सुचारु रूप से होता है और बडी मात्रा मे उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप वस्तुयें प्राय. कम कीमत पर उपभोक्ताओ को प्राप्त हो जाती है।

११—प्रजातंत्रात्मक रूप (Democratic Character)—

पूँजीवाद की प्रकृति और उसका स्वभाव प्रजातन्त्रात्मक होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था या केन्द्रीय नियोजन की अर्थव्यवस्था की तरह यह पूर्णरूप से सरकार द्वारा आयोजित और नियोजित नही होती है। व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतन्त्रता के कारण इस प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति और उत्पादक अपनी इच्छानुसार उत्पत्ति और वितरण कर सकता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता का महत्त्व बहुत बढ जाता है और उसका स्थान ऐसा होता है जैसा कि 'किसी राज्य मे राजा का'। जिस प्रकार राजा की इच्छानुसार कार्य होते हैं, उसी प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता की इच्छा, मांग और रुचि के अनुसार ही उत्पत्ति होती है।

अध्याय ६

आर्थिक प्रणालियाँ (२)
(Economic Systems (2)
समाजवाद, मार्क्सवाद एवं साम्यवाद
(Socialism, Marxism and Communism)

१—समाजवादी अर्थव्यवस्था का अर्थ और परिभाषा
(Meaning and definition of Socialistic Economy)

समाजवादी अर्थव्यवस्था पूँजीवाद के मुकाबले मे बहुत ही आधुनिक है। वास्तव मे पूँजीवाद के विरोध मे ही समाजवाद की स्थापना हुई है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की समस्त त्रुटियो को दूर करने का प्रयास किया गया है। पूँजीवाद मे लाभ केवल उत्पादक और वितरक को ही प्राप्त होता है, इसके विपरीत, समाजवादी अर्थव्यवस्था मे समस्त राष्ट्र की उन्नति होती है जिससे प्रत्येक नागरिक लाभान्वित होता है। मजदूरसंघवाद से लेकर साम्यवाद तक समाज वाद के अनेक रूपो का वर्णन विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा समय समय पर किया गया है। उनमे से कुछ विद्वानो का तो यह भी कहना है कि, "यदि २५ वर्ष की अवस्था तक कोई समाजवादी विचारो को न मानता हो तो यह कहा जायगा कि वह हृदयहीन है, परन्तु इस आयु के प्राप्त होने के पश्चात् भी यदि वह समाजवाद को अच्छा समझता रहे तो यह कहा जायगा कि उसमे विचार शक्ति ही नही है।"[1] समाजवाद के विभिन्न अर्थ जो कि विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा समय समय पर दिये गये है किस प्रकार की कठिनाई उत्पन्न करते हैं उसके विषय मे उल्लेख करते हुए *(Shadwell) ने कहा है, "यह (समाजवाद) सैद्धान्तिक और रचनात्मक, भौतिक और* अभौतिक, विचारात्मक, अति प्राचीन और बहुत ही आधुनिक दोनो एक ही साथ है इसका अस्तित्व एक कोरी भावना से लेकर एक ठोस रचनात्मक कार्यक्रम तक

---

1 'If one is not a socialist upto the age of twenty five, it shows that he has no heart; but if he continues to be a socialist after the age of 25, he has no head" Remark of a Swedish king, quoted by K K Dewett in *Modern Economic Theory*, p 613

फैला हुआ है, इसके विभिन्न समर्थक इसे एक ही जीवन दर्शन, एक प्रकार का धर्म, एक नैतिक नियम, एक आर्थिक प्रणाली, एक ऐतिहासिक पद्धति और एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप मे प्रस्तुत करते है, यह एक लोकप्रिय आन्दोलन तथा एक वैज्ञानिक विवेचना है, यह भूतकाल की एक टिप्पणी और भविष्य का एक दिग्दर्शन है, यह युद्ध का नारा है और युद्ध को रोकना चाहता है, यह एक हिसात्मक क्रान्ति तथा रक्तहीन क्रान्ति है, यह प्रेम और सत्यता का महाग्रथ है और घृणा तथा लालच के विरुद्ध आन्दोलन है, यह मनुष्य की भावी आशा है और सभ्यता का अन्त है, यह एक अति आकर्षक भविष्य का आरम्भ है और भयपूर्ण सकट की चेतावनी है।"[1] (परिभाषा का अनुवाद—वी पी सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, पृष्ठ—३८४)।

समाजवाद की एक और परिभाषा वेब्स (Webbs) ने दी है, जो इस प्रकार है—'आरम्भ मे इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि समाजवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमे उत्पत्ति के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व और नियन्त्रण के स्थान पर सारे समाज का स्वामित्व और नियन्त्रण होता है।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओ से ज्ञात होता है कि समाजवाद की स्थापना का मुख्य-उद्देश्य समाज तथा राष्ट्र की उन्नति करना होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की सबसे बडी विशेषता यह है कि देश की उत्पत्ति और वितरण का अधिकार समाज या राष्ट्र द्वारा नियन्त्रित होता है। ऐसा केवल समाजवादी अर्थव्यवस्था और साम्यवाद मे ही सभव होता है।

डाक्टर तुगन बरानोवस्की (Tugan-Baranowsky) के अनुसार "समाजवाद का सार यह है कि उसके अतर्गत समाज के किसी व्यक्ति का शोषण नही हो सकता है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था लाभ की प्रेरणा के आधार पर चल रही है। परन्तु

---

1 "It is both abstract and concrete, theoretical and practical, idealist and materialist, verv old and entirely modern it ranges from a mere sentiment to a precise programme of action Different advocates present it as a philosophy of life, a sort of religion, an ethical code, an economic system, a historical category, a juridical principle, it is a popular movement and a scientific analysis, an interpretation of the past and a vision of the future, a war cry and a negation of war, a violent and a gentle revolution, a gospel of love and altruism, and a compaign of hate and greed, the hope of mankind and the end of civilisation, the dawn of the millimennium and a fightful catastrophe" Shadwell

2 "The only essential feature in socialisation is that industries and services with the instrument of production which they require should not be owned by individuals and that industrial and social administration should not be organised for the purpose of obtaining private profit" Webbs

समाजवाद के अन्तर्गत उसका उद्देश्य अधिकतम कल्याण प्राप्त करना होता है।"[1] (अनुवाद अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, वी पी सिंह, पृष्ठ—३८४) इसके अतिरिक्त वैब्स (Webbs) ने समाजवादी अर्थव्यवस्था या समाजवाद की परिभाषा एक अन्य स्थान पर इस प्रकार की है, "एक समाजवादी उद्योग वह होता है जिसम उत्पत्ति के राष्ट्रीय साधनो पर सार्वजनिक सत्ता अथवा एच्छिक सघ का स्वामित्व होता है और जिसका सचालन उपज के दूसरे व्यक्तियो को बेचकर लाभ कमाने के लिए नही होता है बल्कि उन व्यक्तियो की प्रत्यक्ष सेवा के लिए होता है जिनका वह सत्ता अथवा वह सघ प्रतिनिधित्व करता है।"[2]

एच डी डिकेन्सन (H D Dickenson) ने समाजवादी अर्थव्यवस्था की परिभाषा एक अन्य ढग से दी है। उनके अनुसार, "समाजवाद समाज का एक सगठन है। जिसमे उत्पत्ति के भौतिक साधनो पर सारे समाज का स्वामित्व होता है और उनका सचालन ऐसी सस्थाओ द्वारा एक निश्चित योजना क्रम के अनुसार किया जाता है जो कि सारे समाज का प्रतिनिधित्व करती है और सारे समाज के प्रति उत्तरदायी होती है। समाज के सभी सदस्य समान अधिकारो के आधार पर ऐसे समाज द्वारा आयोजित उत्पादन के परिणामो के फलो के अधिकारी होते हैं।"[3]

लऊक्स (Louks) और (Hoot) के अनुसार "समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार की प्राकृतिक और मनुष्यकृत उत्पत्ति की वस्तुओ का जो कि बडे पैमाने के उत्पादन म उपयोग की जाती हैं स्वामित्व और प्रबन्ध व्यक्तियो को नही बल्कि सारे समाज के हाथ मे देना होता है और उद्देश्य यह होता है कि बढी हुई राष्ट्रीय आय का इस प्रकार समान वितरण हो जाय कि व्यक्ति के आर्थिक

---

1 'The essence of socialism lies in the absence of exploitation of any individual in the society The present economic system is based on the profit motive But under socialism it aims at the maximum welfare of all The production of commodities is on the basis of their utility to the community" Tugan Baranowsky

2 'A socialised industry is one in which the national instruments of production are owned by public authority or voluntary associations and operated not with a view to profiting by sale to other people, but for the direct service of those whom the authority of association represents" Webbs

3 '*Socialism is an economic organisation of society in which the material means of production are owned by the community and operated by organs representative of, and responsible to, the community according to a general plan all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned production on the basis of equal rights*' H D Dickenson, *Economics of Socialism*, p 11

उत्साह और उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता तथा उपभोग के चुनाव मे कोई विशेष हानि न होने पाये।"[1]

मोरिस (Morris) का मत भी इन अर्थशास्त्रियो से, समाजवाद के अर्थ के विषय मे मिलता है। मोरिस ने समाजवाद की परिभाषा निम्नलिखित रूप से की है, "समाजवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि सभी बडे उद्योग और सभी भूमि पर सार्वजनिक अथवा सामूहिक स्वामित्व होना चाहिए और उनका उपयोग व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सार्वजनिक हित मे होना चाहिए।"[2] (उपरोक्त सभी अनुवाद प्रोफेसर विजेन्द्रपालसिह द्वारा किया गया है अर्थशास्त्र के सिद्धान्त', बी ए प्रथम वर्ष के लिए, पृष्ठ ३८३—३८६)।

उपरोक्त परिभाषाओ और समाजवाद की विशेषताओ के विषय मे अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्री इन विषयो के बारे मे एकमत नही है। परन्तु इन परिभाषाओ से समाजवाद की विशेषताओ के कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है, जो निम्न प्रकार है —

१—देश की भूमि तथा मौलिक और भारी उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व होता है।

२—विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति साहसी के निजी लाभ के उद्देश्यो से नही होती, बल्कि समाज कल्याण और राष्ट्रहित के उद्देश्य से होती है।

३—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे केवल उन्ही वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन होता है और उतनी ही मात्रा मे जो देश के लिए आवश्यक हैं।

४—उत्पत्ति केवल उतनी ही होती है जो देश को स्वावलम्बी बना सके।

५—समाजवाद की स्थापना, वर्ग सघर्ष को दूर करने तथा अनियन्त्रित आर्थिक विषमता को नियन्त्रण रखने के लिए हुई है।

६—इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय मे द्रुत वृद्धि होती है, धन का वितरण समान होता है और नागरिको का जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

७—इस अर्थव्यवस्था मे अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा न होने के कारण आर्थिक बरबादी कम होती है।

---

1 "Socialism refers to that movement which aims at vesting in society as a whole rather than in individuals, the ownership and management of all nature made and man made producers' goods used in large scale production to the end that an increased national income may be more equally dustributed whithout materi ally destroying the individual's conomic motivations or hisfreedoms of occupational and consumption choices' —*Louks and Hoot*

2 'The important essentials of Socialism are that all the great industreis and the land should be publ cly or collectively owned, and that they should be conducted for the public good instead of for private profits' —*Morris*

८—समाजवाद का 'स्वाभाविक आधार आर्थिक नियोजन होता है।'

समाजवादी अर्थव्यवस्था के अनेक रूप है, जिनमे से मुख्य ये हैं—सामूहिकवाद या राजकीय समाजवाद, श्रमिकवाद, वैज्ञानिक समाजवाद या मार्क्सवाद, एवं कारीगर सघवाद अथवा साम्यवाद।

२—सामूहिकवाद या राजकीय समाजवाद
(Collectivism or State Socialism)

इस प्रकार की समाजवादी अर्थव्यवस्था मे एक विशेष गुण यह होता है कि, "उत्पत्ति के समस्त साधनो का राष्ट्रीयकरण होता है। राज्य द्वारा ही धन की उत्पत्ति और उसका वितरण होना है।" इस प्रकार की समाजवादी अर्थव्यवस्था मे किसी भी व्यक्ति विशेष को इस बात का अधिकार नही होता कि वह अपने निजी लाभ के उद्देश्य से किसी वस्तु या सेवा की उत्पत्ति करे। इस प्रकार *सामूहिक या सरकारी प्रयास के द्वारा की गई उत्पत्ति या वितरण से जो कुछ लाभ प्राप्त* होता है वह राष्ट्र द्वारा *जन कल्याण और राष्ट्रहित मे व्यय किया* जाता है। इससे राष्ट्र की आर्थिक स्थिति मे उन्नति शीघ्रता से सम्भव हो सकती है। राज्य तथा सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप वस्तु या सेवा के उत्पादन से पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा या साधनो की बर्बादी समाप्त हो जाती है और राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है। यद्यपि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था म भी राष्ट्रीय आय बढ सकती है किन्तु उस प्रथा मे और राजकीय समाजवादी प्रथा मे यह अन्तर होता है कि पहली प्रणाली मे धन का वितरण असमान होता है जबकि दूसरी प्रणाली मे धन का समान वितरण होता है, जिससे देश के अधिकतम नागरिको को लाभ प्राप्त होता है।

सामूहिक समाजवाद और मार्क्सवाद के समर्थको म समाजवादी अर्थव्यवस्था के स्वरूप और प्रकृति के विषय म मतभेद है। दोनो का उद्देश्य प्राय एक होते हुए भी उनकी प्रणालियो मे अन्तर है, जिसको इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है ··· "*जहाँ मार्क्सवादी-समाजवादी क्रान्ति व विद्रोह द्वारा समाजवादी-व्यवस्था की स्थापना मे विश्वास करता है वहाँ राजकीय समाजवाद वैधानिक तथा ससदीय ढगो द्वारा राज्य मत्ता प्राप्त करना चाहता है।*"

३—श्रमिकवाद या मजदूर संघवाद
(Syndicalism)

श्रमिकवादी समाजवाद, पूँजीवाद के प्रत्यक्ष विरोध के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। श्रमिक और पूँजीपतियो मे पारस्परिक सहयोग न होने के कारण और उनमे एक दूसरे के प्रति विरोधी भावना रहने के कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग को सदा दबा देने की चेष्टा करता है। उत्पत्ति कार्यो मे अधिक सख्या होने के कारण मज-

दूरो का महत्त्व बढता चला जाता है जो पूँजीपतियो के शोषण को समाप्त करके अधिकार और नियन्त्रण की शक्तियो को अपने हाथ मे कर लेना चाहते हैं। इस प्रकार पूँजीपतियो के विरोध मे वे हमेशा हडताल आदि करते हैं और साथ ही साथ प्रत्यक्ष रूप से 'हिंसात्मक' या 'तोड फोड' की प्रणाली को भी अपनाते हैं। इस प्रकार निरन्तर सघर्ष द्वारा पूँजीपतियो के अधिकार को समाप्त करके अपना अधिकार स्थापित करना चाहते है—या करते है।

श्रमिकवाद के समर्थक इसके भी विरोधी होते हैं कि पूँजीपतियो से सत्ता छीनकर देश मे एक साधारण समाजवाद' की स्थापना हो। इनका यह कहना है कि इस रूप म एक सही समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना सम्भव नही हो सकती। इसका कारण वह यह बताते हैं कि इस प्रकार के शासन मे नौकरशाही का महत्त्व बढता जाता है। शासन प्रबन्ध, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण आदि कार्यो से इन व्यक्तियो को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रूप से लाभ या हानि नही होती, इसलिए वे उत्साहपूर्वक काम नही करते है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्र को उतना लाभ नही हो पाता जितना कि होना चाहिए।

श्रमिकवाद आधुनिक काल मे बहुत अधिक लोकप्रिय नही है क्योकि जिस प्रणाली को अपना कर वह समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं वह हिंसात्मक है। हिंसात्मक प्रणालियो को अपनाने से शुरू मे पूँजीपतियो को हानि होती है किन्तु इस प्रवृत्ति के बढने से आगे चल कर देश मे रहने वाले सभी व्यक्तियो को कठिनाई का सामना करना पडता है, जो अवैध है। इसके अतिरिक्त यदि देश का शासन, उत्पत्ति और वितरण का कार्य केवल श्रमिको के हाथ मे ही हो तो भी यह समस्त कार्य सुचारु रूप से नही चल सकता—क्योकि श्रमिक न तो इतने अधिक विद्वान होते हैं कि वह शासन प्रणाली को ठीक प्रकार से चलायें न उन्हे उस काय के लिए कोई विशेष शिक्षा ही दी जाती है। फिर, श्रमिकवाद की स्थापना के पश्चात् कुछ श्रमिको या श्रमिक नेताओ को देश का शासन कार्य सँभालने के लिए कहा जाय तो उनमे भी कुछ समय बाद वही बातें पैदा हो जाती हैं जो नौकरशाही मे होती हैं, अर्थात् व्यक्तिगत रूप से उत्पत्ति या वितरण से उन्हें लाभ न होने के कारण वे उन कार्यो को उत्साहपूर्वक नही करते।

४—वैज्ञानिक समाजवाद अथवा मार्क्सवाद[1]
(Scientific Socialism or Marxism)

मार्क्सवाद उस ससार का, जिसमे हम रहते है और उस मानव समाज का, जो इस ससार का एक अग है, एक सामान्य सिद्धान्त है। मार्क्सवाद का नाम कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के नाम पर पडा है। कार्ल मार्क्स (१८१८–१८८३) ने

1 *मार्क्सवाद क्या है* ? एमिल बर्न्स (अनुवाद, ओमप्रकाश सगल) 'Peoples' Pub House Ltd, Bombay, पर आधारित।

फैड्रिक ऐंजिल्स (Fredrich Engels, १८२०–९५) के साथ मिल कर पिछली शताब्दी के मध्य और अन्तिम भाग मे इस सिद्धान्त को विकसित किया था। इसी सिद्धान्त का एक अन्य नाम वैज्ञानिक समाजवाद भी है। इन दोनो विद्वानो ने इस बात की खोज की थी कि मानव समाज का आज जो रूप पाया जाता है वह ऐसा क्यों है ? उसमे परिवर्तन क्यो होते हैं ? तथा आगे चल कर मनुष्य जाति को और क्या-क्या परिवर्तन देखने पडेंगे ? अपने अध्ययन से वे इस परिणाम पर पहुँचे, कि "यह परिवर्तन-बाह्य प्रकृति मे होने वाले परिवर्तनो की भाँत अकस्मात् नही हो जाते बल्कि कुछ विशिष्ट नियमो के अनुसार होते हैं। इस सत्य की खोज के बाद यह सम्भव हो जाता है कि मानव समाज के बारे मे एक ऐसे *वैज्ञानिक सिद्धान्त* (Scientific theory) का निरूपण किया जाय जो मनुष्य जाति के वास्तविक अनुभव पर आधारित हो, जो धार्मिक विश्वासो, वशपरम्पानुसार अहकार और वीर पूजाओं, व्यक्तिगत भावनाओ या काल्पनिक स्वप्नो के आधार पर बनी हुई, समाज के बारे मे पहले की अस्पष्ट धारणाओ (और जो आज भी हैं) से भिन्न हो।"[1]

मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त की जाँच ब्रिटेन के उस समय के पूँजीवादी समाज पर प्रयोग करके की थी। इस प्रयोग के द्वारा उन्हे यह पता लग गया कि उनका मत और उनकी खोज सही है। इसी प्रयोग के द्वारा वह इस बात को ज्ञात करने मे भी सफल हो गये कि पूँजीवाद की जड क्या है? कार्ल मार्क्स को इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के कारण बहुत ख्याति प्राप्त हुई। इस खोज के पश्चात् कार्ल मार्क्स ने एक अन्य सिद्धान्त की स्थापना की, वह यह था कि आर्थिक प्रगतियो का अध्ययन सही रूप से तभी हो सकता है जबकि उनका अध्ययन ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि पर किया जाय। कार्ल मार्क्स के यह सिद्धान्त पहले से अपने मे सम्पूर्ण और सोलह आने तैयार कोई सिद्धान्त नही है। जैसे-जैसे इतिहास की नई-नई पर्तें खुलती जा रही हैं, जैसे-जैसे मनुष्य और आधुनिक अनुभव प्राप्त करता जा रहा है वैसे ही वैसे मार्क्सवाद का भी विकास होता जा रहा है। मार्क्स और ऐंजिल्स की मृत्यु के उपरान्त इसके विकास मे सबसे महत्त्वपूर्ण योग देने का श्रेय लेनिन (V. I. Lenin) को (१८७०-१९२४,) और स्तालिन (Joseph Stalin) १८७९-१९५३, को है।

"जिस तरह हर प्रकार के विज्ञान की खोज बाह्य प्रकृति को बदलने के काम आ सकती है, उसी तरह समाज के अध्ययन से प्राप्त हुई वैज्ञानिक खोज भी समाजको बदलने के काम मे लाई जा सकती है। परन्तु, साथ ही साथ इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समाज की गति निर्धारित करने वाले सामान्य नियम भी उसी प्रकार के नियम होते है जिनसे बाह्य प्रकृति का सचालन होता है। दूसरे शब्दो मे, इन्ही सामान्य नियमो को जिनकी सत्ता सार्वभौमिक है, और जो इन्सान तथा वस्तुओ

1. मार्क्सवाद क्या है ? पृष्ठ १

दोनो ही का निर्देशन करते है मार्क्सवादी दर्शन अथवा ससार का मार्क्सवादी दृष्टि-कोण कहा जा सकता है ।"[1]

"मार्क्सवावाद इतिहास का अध्ययन इस दृष्टिकोण से करता है ताकि उन प्राकृतिक नियमो का पता लग सके जो सारे मानव के इतिहास का सचालन करते हैं और इसके लिए वह व्यक्तियो पर नही, बल्कि समूची जनता पर ध्यान देता है। जब वह आदिम समाज के युग के बाद बनने वाले जन समूहो पर नजर दौडाता है तो हर जन समूहो को कुछ ऐसे भागो मे बँटा पाता है जो समाज को विभिन्न दिशाओ मे खीच रहे हैं, और यह कि व ऐसा अपने व्यक्तिगतरूप मे नही, बल्कि वर्गो के रूप मे कर रहे हे।"[2]

इस प्रकार हम यह पाते हैं कि प्रत्येक देश मे विभिन्न समय मे भिन्न भिन्न वर्ग रहते चले आ रहे है। मार्क्सवाद की स्थापना काल मे विशेषरूप से यह वर्ग विद्यमान थे-श्रमिक वर्ग, दास वर्ग, अर्द्ध दास वर्ग, पूँजीपति वर्ग, सामन्ती वर्ग, शासक वर्ग आदि। *ग्रामीण क्षेत्रों में* प्राय किसान वर्ग और भू स्वामी वर्ग मे वर्ग सघर्ष बना रहता था जिसमे दास और अर्द्ध दास वर्ग भी प्राय सम्मिलित हो जाता था। वर्ग सघर्ष का कारण यह था कि भू-स्वामी वर्ग अपने से नीचे के वर्ग के लोगो का शोषण करते थे; उनसे अमानुषिक व्यवहार द्वारा काम कराते थे, जिसके एवज मे उन्हे प्राय कुछ भी नही देते थे।

इसी प्रकार *शहरी क्षेत्र में* भी विभिन्न वर्गो मे निरन्तर सघर्ष बना रहता था। इसमे सबसे अधिक उल्लेखनीय वर्ग-सघर्ष पूँजीपति और श्रमिको के बीच था। पूँजीपतियो की शोषण नीति से सभी परिचित हैं। पूँजीपति वर्ग श्रमिको से अत्यधिक काम लेते थे। कभी कभी तो श्रमिकों को एक दिन मे १५-१६ घण्टे तक काम करना पडता था। जिसके एवज मे पूँजीपति वर्ग उन्हे 'जीवित रहने मात्र-मजदूरी' प्रदान करता था और उस समय एक काल्पनिक सिद्धान्त 'मजदूरी का लौह सिद्धान्त' (Iron Law of wages) प्रचलित था। यह काल्पनिक सिद्धान्त उन्होने अपने लाभ के उद्देश्य से बनाया था। इसी प्रकार स्त्रियो और बच्चो से भी वह १२-१३ घण्टे तक अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण मे दुर्व्यवहार के साथ काम लेते थे। जिसके बदले मे उन्हे नाममात्र की मजदूरी प्रदान करते थे। इस कारण सभी वर्ग पूँजीपति वर्ग का विरोध करते थे।

वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) या मार्क्सवाद का एक मुख्य भाग मूल्य का सिद्धान्त (Theory of value) और 'मूल्य का श्रम-सिद्धान्त' (Labour theory of value) या 'अतिरेक श्रम' (Surplus labour) का सिद्धान्त

1 मार्क्सवाद क्या है ? एमिल बर्न्स (अनुवाद—ओमप्रकाश के सगल), पृष्ठ २
2 *Ibid* : pp 45

हैं। मार्क्स को जनप्रियता और प्राधान्यता, कुछ हद तक, इन सिद्धान्तो के कारण ही प्राप्त हुई। मार्क्स का विचार था कि "मूल्य का आदि कारण श्रम है। प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन मे लगे हुए श्रम की मात्रा द्वारा निश्चित होता है। इस सिद्धान्त को समाज के लिए आवश्यक श्रम कहा जा सकता है। मूल्य समाज के लिए आवश्यक श्रम की समय-अवधि की इकाइयो मे नापा जाता है · श्रम अवधि वह है जो किसी वस्तु को उत्पत्ति की सामान्य दशाओ के अन्तर्गत उत्पन्न करने के लिए उस समय मे प्रचलित, निपुणता और परिश्रम के साधारण अश के अनुसार आवश्यक होती है।"

पूँजी क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने अलग-अलग प्रकार से दिया है। परन्तु पूँजी के विषय मे मार्क्स का अपना ही एक अलग सिद्धान्त है। उनके अनुसार "पूँजी के शारीरिक रूप अनेक है। मशीन, मकान, कच्चा माल, ईंधन और उत्पादन के लिए आवश्यक दूसरी वस्तुएँ--ये सभी पूँजी मे शामिल हैं। उत्पादन के वास्ते मजूरी देने मे जो रकम लगती है वह भी पूँजी का ही भाग है। · ·· किन्तु अर्थशास्त्र मे पूँजी उसी को कहते है जिसका उपयोग अतिरिक्त मूल्य पैदा करने मे किया जाता है ।"[1]

ऐसी पूँजी कैसे उत्पन्न हुई ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मार्क्स ने उस सिद्धान्त का खण्डन किया है जिसके अनुसार यह बताया जाता है कि 'पूँजी की उत्पत्ति कुछ मितव्ययी व्यवसाइयो द्वारा की गई थी, जिन्होने अपने खर्चे मे हर प्रकार की कमी करके, थोडा-थोडा धन बचा कर उसको इकट्ठा किया था, जोखिम उठा कर उसका विनियोग उत्पत्ति कार्य के लिए किया था, उससे जो लाभ हुये थे उनको भी पहली रकम के साथ जोडकर उत्पत्ति काम मे विनियोग किया था और इसी प्रकार पूँजी उत्पन्न हुई थी।' कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने इतिहास का सहारा लेकर यह बताया है कि उपरोक्त धारणा बिल्कुल गलत है। उन्होने कहा कि, "पुराने इतिहास पर नजर डाली जाय तो पता चलता है कि शुरु मे पूँजी जिस तरह जमा हुई वह प्राय खुली लूट मार का तरीका था। कुछ दुस्साहसी व्यक्तियो ने अमरीका, हिन्दुस्तान और अफ्रीका से सोना आदि बहुमूल्य वस्तुएँ लूट कर बडे पैमाने मे पूँजी जमा की थी ·· सार्वजनिक स्थानो को छीन कर उन्हे पूँजीवादी फर्मो के मालिको को दिलाने के लिए 'हदबन्दी कानून' बनाये गये थे। ऐसा करके किसानो से उनकी जीविका का साधन छीन लिया गया······ सिवाय इसके कि वे किसान अपनी छीनी गई जमीन पर नये मालिक के लिए काम करे, उनके पास जिन्दा रहने का कोई तरीका बाकी नही रह गया था। पूँजी का 'प्रारम्भिक एकत्रीकरण' इसी तरह से हुआ।"[2]

---

1. मार्क्सवाद क्या है एमिल बर्न्स, अनुवादक ओम प्रकाश संगल, पृष्ठ २८
2. Ibid pp. 25—26

कार्ल मार्क्स ने आगे चलकर यह बताया कि, "पूँजी प्रारम्भिक एकत्रीकरण के स्तर पर ठहरी नही रहती," उस परिस्थिति मे प्रत्येक मनुष्य के सामने एक ही प्रश्न आता है ,वह यह कि अगर इस बात को मान भी लिया जाय कि पूँजी का प्रारम्भिक एकत्रीकरण इन लूट-मार और बेईमानी के तरीको से हुआ, तो फिर उसमे निरन्तर वृद्धि किस प्रकार सम्भव हो रही है ? इस प्रश्न के उत्तर मे कार्ल मार्क्स ने कहा कि प्रारम्भिक एकत्रीकरण के बाद पूँजी का विकास और विस्तार 'अतिरिक्त मूल्य' (Surplus value) इकट्ठा होकर हुआ है । उनके अनुसार" मजदूर के जीवन निर्वाह के लिये जितना आवश्यक है उससे ज्यादा काम लेना, और बाकी समय मे वह जो कुछ तैयार करता है उसका मूल्य अपनी जेब मे रखना, यानी, 'अतिरिक्त मूल्य' हथियाना—यह है पूँजी को बढाने का तरीका । इस अतिरिक्त मूल्य का एक भाग पूँजीपति अपने जीवन निर्वाह पर खर्च करता है, बचा हुआ भाग नई पूँजी के रूप म स्तेमाल होता है । यानी, उसे वह अपनी पुरानी पूँजी मे जोड देता है और उसकी मदद से पहले से ज्यादा मजदूरो को नौकर रखता है, और आगे उत्पादन मे पहले से अधिक 'अतिरिक्त मूल्य' हथियाने मे सफल हो जाता है । इससे फिर नई पूँजी तैयार हो जाती है और इसी प्रकार यह कभी न खत्म होने वाला क्रम चलता रहता है । ···या कहना यह चाहिए कि यह क्रम कभी खत्म न होता यदि कुछ दूसरे आर्थिक एव सामाजिक नियम काम न करने लगते । अन्त मे जाकर, सबसे बडी रुकावट वर्ग सघर्ष से ही पैदा होती है जो यदाकदा पूरी क्रिया को रोक देता है और अन्त मे पूँजीवादी उत्पादन को मिटा कर उसका अन्त ही कर देता है ।"[1]

पूँजीवाद की चरम अवस्था का उल्लेख करते हुए, जिसके कारण साम्यवादी क्रान्ति हुई—लेनिन ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे —

(१) "उत्पादन एव पूँजी का केन्द्रीयकरण इतना बढ चुका था कि एका धिकार या इजारे स्थापित हो गये थे, जिन्होने आर्थिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया था··· ।"

(२) 'बैंको की पूँजी कल कारखानो की पूँजी मे घुल मिल गई थी, और उससे महाजनी पूँजी के स्वामियो का एक छोटा सा वर्ग पैदा हो गया था । प्रत्येक देश मे इसी वर्ग का बोलबाला था······।"

(३) "विभिन्न प्रकार के माल के निर्यात के अलावा, और उससे भिन्न पूँजी के निर्यात-महत्त्व का बहुत बढ जाना · · ।"

(४) 'पूँजीपतियो के अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारी गुट बन गये थे । उन्होने दुनिया को अपने बीच बाँट लिया था· "···।"

1. Ibid, pp 26 27

(५) "सबसे बड़ी ताकतों के बीच दुनियाँ का बटवारा लगभग पूरा हो गया था (१८७६ में अफ्रीका का ११ प्रतिशत भाग यूरोपियन शक्तियों के कब्जे में था, और १९०० तक ९० प्रतिशत उनके अधिकार में चला गया था) .. ।"[1]

इन सब तथ्यों के आधार पर लेनिन ने यह निष्कर्ष निकाला था, "साम्राज्यवाद का विस्तार केवल विभिन्न साम्राज्यों द्वारा स्थापित उपनिवेशों में ही नहीं होता बल्कि उसके लिए संसार के अन्य भागों में भी प्रयास किया जाता है।" जर्मनी के नात्सी शासनकाल का तथा ब्रिटेन, अमरीका, फ्रान्स आदि पूँजीवादी देशों का उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि पूँजीपति देश अपने साम्राज्यवाद के विस्तार में सदा प्रयत्नशील रहते है।

मार्क्स ने नये समाज के निर्माण के बारे में यह बताया था कि "नये समाज का सगठन एकदम नई जमीन पर नहीं होगा। अतः ऐसे किसी समाज की बात सोचना व्यर्थ है जो स्वयं अपनी नींव पर उठा हो ... इसके विपरीत एक सचमुच का समाजवादी समाज भी पहले की सभी सामाजिक व्यवस्थाओं की भाँति ही अपने से पहले की व्यवस्था के आधार पर ही उठेगा ... सत्य बात तो यह है कि पूँजीवादी समाज के अन्दर होने वाला विकास ही समाजवाद का रास्ता तैयार करता है और इस बात की सूचना देता है कि परिवर्तन किस प्रकार का होगा। लेनिन ने भी, कार्ल मार्क्स के निम्नलिखित सिद्धान्त को अपनाया था, जिसमें कार्ल मार्क्स ने यह बतलाया था कि "हमारा काम सबसे पहले यह होगा कि व्यक्तिगत उत्पादन और व्यक्तिगत स्वामित्व को सहयोगी उत्पादन और सहयोगी स्वामित्व में बदल दे। यह काम जोर-जबरदस्ती से नहीं, बल्कि मिसाल पेश करके, और इस उद्देश्य के लिये सामाजिक सहायता पहुँचा कर ही होगा।"[2]

समाजवादी अर्थव्यवस्था किस प्रकार की हो? इसके विषय में उल्लेख करते हुए मार्क्स ने आगे बतलाया कि जब उत्पत्ति एक योजना के अनुसार होती है—जिसमें उत्पत्ति की सभी बातें राष्ट्र द्वारा और समाजहित के लिये नियन्त्रित की जाती है—तो देश में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को लाभ होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स की दृष्टि में, "समाजवाद का मतलब आर्थिक क्षेत्र में उत्पादनों के साधनों पर पूरे समाज का स्वामित्व स्थापित होना, उत्पादन शक्तियों का तेजी से उन्नति करना और उत्पादन का एक योजना के अनुसार संगठित किया जाना है . इस व्यवस्था में अति उत्पादन या कम उत्पादन कभी नहीं हो सकता .. जैसे जैसे सुनियोजित उत्पादन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उनका सुनियोजित वितरण भी बढ़ता जाता है।"[3]

1 Ibid, page, 32 35
2. लेनिन द्वारा कार्लमार्क्स और उनके सिद्धान्त में उद्धृत जिसको एमिल बर्न्स ने मार्क्सवाद क्या है? में पृष्ठ-२९ पर पुनः उद्धृत किया है।
3 Ibid, page, 59

समाजवाद किस सीमा के पश्चात् साम्यवाद (Communism) मे परिणत हो जाता है, उसका उल्लेख करते हुए मार्क्स ने कहा था कि जब समाजवादी समाज मे उत्पादन इस हद तक बढ जाता है कि सभी नागरिक अपनी आवश्यकता के अनुसार ले सकते हैं और किसी के लिए कोई चीज कम नहीं पडती तब अलग-अलग व्यक्ति कितना लेते हैं, इसे नापने, तौलने और सीमित करने मे जरा भी तथ्य नहीं रहता। जब यह अवस्था आजाती है तब उत्पादन और वितरण इस सिद्धान्त के आधार पर होता है "कि हर कोई अपनी योग्यता के मुताबिक काम करे, और अपनी जरूरत के मुताबिक ले और जब यह सम्भव हो जाता है, तभी समाजवाद साम्यवाद मे बदल जाता है।"[1]

५—साम्यवाद (Communism)[2]

वैज्ञानिक समाजवाद का उन्नत रूप साम्यवाद है। मार्क्स के अनुसार "समाजवाद वह पहली मजिल है जब उत्पादनो के साधनो पर जनता का अधिकार होता है और इसलिये मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण मिट जाता है, लेकिन सुनियोजित समाजवादी उत्पादन के द्वारा देश की पैदावार इतनी नही बढ पाती है कि हर एक को उसकी जरूरत के अनुसार मिल सके। परन्तु साम्यवाद की मजिल का अर्थ केवल इतना ही नही है कि भौतिक वस्तुयें पर्याप्त मात्रा मे मिलने लगती हैं। जिस समय मजदूर वर्ग शक्ति पर अधिकार करता है और समाजवाद की ओर बढना शुरू करता है उसी समय से लोगों के दृष्टिकोण मे भी एक परिवर्तन शुरु हो जाता है। तरह-तरह के बन्धन जो पूँजीवाद मे नागपाश जैसे दृढ प्रतीत होते है तब ढीले पडने लगते है और अन्त मे भग हो जाते हैं। शिक्षा और विकास के सब अवसर सब बच्चो के लिये समान रूप से खुल जाते हैं . .. .जाति-पाँति का फर्क जाता रहता है और शारीरिक तथा मानसिक श्रम की यह बढती हुई समानता धीरे-धीरे पूरी आबादी मे फैल जाती है। हर आदमी 'बुद्धि-जीवी' बन जाता है और 'बुद्धिजीवी' शारीरिक श्रम से भागना बन्द कर देते हैं... ......।"[3]

कार्ल मार्क्स ने जब अपने यह विचार वैज्ञानिक समाजवाद के रूप मे प्रकट किये थे तो उससे पहले उन्होने उन समाजवादी दृष्टिकोणो की आलोचना की थी जो उनसे पहले प्रचलित थे। उन समाजवादी विचारो को कार्ल मार्क्स ने 'केवल एक कल्पना' कह कर पुकारा था और उनका यह कहना था कि समाजवादी समाज की स्थापना उन प्रणालियो को अपनाकर कभी भी सम्भव नही हो सकती। इसमे कोई सदेह नही कि कार्ल मार्क्स अपने विचारो मे ठीक थे। वास्तव मे उस समय जिस समाजवाद का रूप हम रूस मे देखते हैं या चीन मे जिसका प्रचार हो रहा है उसका आधार काफी हद तक कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तो पर ही आधारित है।

1 *Ibid*, page 62
2 *Communist manifesto* (साम्यवादी घोषणा) के अनुसार
3. मार्क्सवाद क्या है ? 'एमलि बर्न्स्, अनुवाद, ओमप्रकाश संगल, पृष्ठ ६२—६३

मार्क्स और एन्जिल्स (Engels) का विचार था कि 'साम्यवाद का पहला काम श्रमिको को सगठन द्वारा ऊपर उठा कर उन्हे शासको म परिवर्तित करना है'। साम्यवादी घोषणा (Communist manifesto) मे उन्होने साम्यवाद की स्थापना की निम्नलिखित मुख्य विधियाँ बताई थी [1]

१—"भूमि मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन और भूमि के सभी लगानो को सार्वजनिक उद्देश्यो के लिये उपयोग करना।

२—'एक बहुत ही प्रगतिशील (Progressive) अथवा क्रम बद्ध शील आमदनी कर का लगाना।

३—"राष्ट्र मे जितने भी प्रकार के 'उत्तराधिकार' हो सकते है उनको समाप्त कर देना।

४—'देश को छोड जाने वाले सभी व्यक्तियो, देश के विरुद्ध काय करने वाल देशद्रोहियो और विद्रोहियो की सम्पत्ति को जब्त (confiscation) कर लेना।

५—"साख (Credit) का राज्य के हाथो मे केन्द्रीयकरण (centralization)। इसके लिए एक राष्ट्रीय बैंक (National Bank) की स्थापना करना जो साख सम्बन्धी सभी व्यवस्थाओ और तथ्यो पर अधिकार रखे तथा उसका नियत्रण करे।

६—"राष्ट्र मे स्थित विभिन्न प्रकार के सवाद-वाहन और यातायात के साधनो का केन्द्रीयकरण।

७—'राज्य मे स्थित समस्त उत्पत्ति के साधनो को अपने कब्जे मे कर लेना और उनका तथा उन कारखानो और उद्योगो का जिनकी स्थापना राज्य द्वारा हो, विकास और नियत्रण केन्द्रीय सरकार द्वारा होना। बजर भूमि को खेती योग्य बनाना और एक निश्चित सामूहिक योजना के अनुसार भूमि से सबधित सभी बातो मे समान रूप से सुधार करना।

८—"बच्चो, श्रमिको और राज्य के अन्य व्यक्तियो को नि शुल्क विभिन्न प्रकार की और आवश्यकीय शिक्षा का प्रबन्ध करना ताकि वे आगे चल कर कुशल नागरिक, कुशल श्रमिक और सुयोग्य प्रबन्धक बन सकें। आमदनी की असमानता उनकी शिक्षा मे बाधक न हो।

९—'सभी प्रकार के श्रम का समान उत्तरदायित्व और 'श्रम सेना (Labour Army) की स्थापना।"

मार्क्स ने, उस विषय पर प्रकाश डालते हुए कि वर्ग-सघर्ष किस प्रकार सम्पूर्णरूप से दूर हो सकता है और साम्यवाद की स्थापना की नींव किस प्रकार मजबूत हो सकती है कहा, "जब विकास के अन्तर्गत भेद समाप्त हो जायेंगे और सारा उत्पादन सारे राष्ट्र के एक विशाल सघ के हाथ मे केन्द्रित हो जायगा, सार्वजनिक शक्ति की राजनैतिक प्रकृति का अन्त हो जायेगा। राजनैतिक शक्ति होती

1. 'Manifesto of the Communist Party', Marx Engels *Selected Works*, Vol I, p 50 51

वास्तव मे एक वर्ग की दूसरे वर्ग को दमन करने की सगठित शक्ति होती है। यदि *श्रमिक सगठित रूप मे वर्ग-युद्ध मे भाग लेते हैं और विजयी होकर* उत्पत्ति की पुरानी दशाओ को समाप्त कर देते हैं तो वे साथ मे वर्ग विरोध की दशाओ को भी समाप्त कर देंगे। और इस प्रकार एक वर्ग के रूप मे स्वय अपने भी प्रभुत्व को समाप्त कर देंगे।"[1]

साम्यवाद की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए मार्क्स, एँजिल्स, लेनिन आदि ने निम्नलिखित मत प्रकट किए हैं —

१—"जब साम्यवादी सगठन शक्तिशाली हो जायेगा तो पूँजीपतियों को समाप्त करके शासन के अधिकार को छीना जाएगा और इस प्रकार श्रमजीवियो (Proletariat) का राज्य स्थापित किया जायगा। आरम्भ मे श्रमिको की तानाशाही (Dictatorship of the proletariat) स्थापित होगी और इस तानाशाही का उद्देश्य सभी विरोधियो एव पूँजीपतियो को समाप्त करना होगा। अन्त मे एक *वर्गहीन समाज* (Classless society) का *निर्माण किया जायेगा*। इसके पश्चात् राज्य की आवश्यकता नही रहेगी और राज्य स्वय ही समाप्त हो जावेगा।"[2]

२—"साम्यवाद का आधार अन्तर्राष्ट्रीय है तथा यह जाति, धर्म, रग और राष्ट्रीयता के भेदो को स्वीकार नही करता है।"

३—"साम्यवाद का साधारण उद्देश्य सामान्य रूप से सम्पत्ति को समाप्त करना नही है, बल्कि इसके विपरीति पूँजीपति की सम्पत्ति को समाप्त करना है जो कि वर्ग सघर्ष पर आधारित है और मुठ्ठी भर मनुष्यो को इस बात की शक्ति प्रदान करता है कि वह राष्ट्र के अन्य व्यक्तियो का शोषण कर सकें।"[3]

४—"साम्यवाद किसी भी व्यक्ति द्वारा समाज की उत्पत्ति का उपयोग *करने के अधिकार को छीनना नही चाहता। यह केवल उस शक्ति को छीनना* चाहता है जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरो के श्रम का उपयोग करता है।"

५—"साम्यवाद मे समाजीकृत उत्पादन की एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसी उत्पत्ति का विकास समाज के विभिन्न वर्गों के भेद को स्वय मिटा देगा ......।"[4]

६—"साम्यवाद मे स्त्रियो को नीची दृष्टि से नही देखा जाता। न यह समझा जाता है कि वे समाज के प्रत्यक्ष क्षेत्र मे योग नही दे सकती। इस बात की विशेष व्यवस्था की जाती है कि वे बिना किसी कठिनाई के कार्य कर सकें।"[5]

---

1. *Karl Marx & F Engels, 'Manifesto of the Communist Party'*— Marx Engels Selected Wo ks, Vol I, p 51
2. (हिन्दी में अनुवाद—डा० पी० सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, भाग १, पष्ठ ३६१
3. Marx Engels Selected Works, Vol I, p 45
4. Ibid p 47
5. F Engels *'Socialism—Utopian and Scientific'*

७—"साम्यवाद के अन्तर्गत जातियों के बीच खड़ी हुई दीवारें गिर जाती हैं। समाजवादी समाज में कोई 'पराधीन जाति' नहीं होती।"[1]

८—'इस प्रथा के अन्तर्गत जनतंत्र का केवल यह अर्थ नहीं रहता कि पार्लियामेंट में कौन प्रतिनिधि बन कर जाय और उसके लिए ....लोगों से वोट मांगे जायें। जनतंत्र का अर्थ अब यह हो जाता है कि प्रत्येक कारखाने में, प्रत्येक मुहल्ले में, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नर-नारी स्वयं अपने देश के भविष्य का निर्माण करते हैं।"[2]

९—"शहर और देहात का फर्क मिटने लगता है। "[3]

१०—साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी बात यह होती है कि "पूँजीवाद से उत्पन्न स्वार्थपरता और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के बदले लोगों में एक सच्चा सामाजिक दृष्टिकोण और समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना पैदा होती है... ..इस समाज में स्त्री-पुरुषों का सिवा इसके और कोई दृष्टिकोण नहीं होता कि समाज के विकास में वे अधिक से अधिक योग दें।"[4]

साम्यवाद के आलोचकों ने इस प्रथा की अत्यन्त निन्दा की है। उनके अनुसार साम्यवाद की निम्नलिखित त्रुटियाँ हैं :—

१—साम्यवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लोप हो जाता है।

२—साम्यवाद के अन्तर्गत मनुष्यों को अपनी इच्छानुसार आजीविका के साधन को चुनने की इजाजत नहीं होती। राष्ट्र जिस व्यक्ति को जिस प्रकार की शिक्षा या कार्य प्रदान करना चाहे उसमें व्यक्ति को इस बात की स्वतन्त्रता नहीं होती कि वह उसकी अवहेलना कर सके।

३—साम्यवाद के आलोचकों का यह भी कहना है कि साम्यवाद की स्थापना से तानाशाही (dictatorship) की स्थापना हो जाती है।

४—साम्यवादी प्रथा के विरोध में यह भी कहा जाता है कि इस प्रथा में सैनिकीकरण (Regimentation) हो जाता है जिससे मानव जीवन को उच्चतम् मूल्य (Higher ends of life) की समाप्ति हो जाती है।

५—साम्यवाद में एक दोष यह भी बताया जाता है कि इसके चरम-स्थिति पर पहुँच जाने पर परिवार का बन्धन और धर्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

६—अन्य प्रकार की समाजवादी व्यवस्थायें
(Other Types of Socialistic Order)

(अ) रूसी साम्यवाद अथवा बोलशेविज्म (Russian Socialism or Bolshovism) सन् १९१७ में जार (Czar) के विरुद्ध रूस में क्रान्ति हुई थी उसके

1. मार्क्सवाद क्या है-एमिल बर्न्स, अनुवाद- ओमप्रकाश संगल, पृष्ठ ६३.
2. Ibid, 63,
3. Ibid
4. Ibid, 64

पश्चात् वहाँ पर एक साम्यवादी अर्थव्यवस्था या साम्यवादी समाज की स्थापना हुई जिसको बोल्शेविज्म कहते हैं। इस क्रान्ति के पश्चात् जब देश की शासन सत्ता जार के हाथ से हट कर श्रमजीवियो (Proletariat) के हाथ मे आई तो उन्होने सबसे पहले भूमि का राष्ट्रीयकरण किया। इसके अन्तर्गत भूमि किसानो के पास ही बनी रही और वह उसी पर फसल करते रहे परन्तु उसका स्वामित्व राष्ट्र के हाथ मे हो गया। उस समय उन्हे अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त समस्त उपज को राष्ट्र को वेचना पडता था। सन् १६१६ तक रूस मे, साम्यवादी प्रथा के अन्तर्गत समस्त खानो, कारखानो, उद्योग धधो, सडको, यातायात तथा सवादवादन के साधनो, बैंक, बीमा वाणिज्य और अतर्राष्ट्रीय व्यापार आदि का राष्ट्रीयकरण हो गया था। इस प्रकार धीरे-धीरे रूस प्रगति करता रहा और साम्यवादी सिद्धान्तो को अपने राष्ट्र म लागू करता रहा। इसी के अनुसार ससार मे सबसे पहले रूस ने आर्थिक नियोजन की नीव डाली। इन आर्थिक नियोजनो के आधार पर रूस ने इतनी प्रगति की है कि उसका स्थान ससार के उन्नत देशो में शिखर श्रेणी मे है।

(ब) अराजकतावाद (Anarchism)—इस आर्थिक प्रणाली की उत्पत्ति साम्यवाद से ही हुई। सबसे पहले इस सिद्धान्त को प्रिंस क्रोपाटकिन (Kropotkin) न प्रतिपादित किया था, "अराजकतावाद का साधारण अर्थ व्यवस्थाहीनता (disorder) अथवा सत्ताहीनता (Lack of authority) होता है। परन्तु, आर्थिक दर्शन के रूप मे अराजकतावाद बिल्कुल ही अलग चीज है। इसके अनुसार अराजकतावाद केवल समाजवाद मे राज्य अथवा शासन के अभाव को सूचित करता है।" इसकी स्थापना का आधार क्रान्ति है। इस प्रथा को मानने वाले व्यक्तियो का यह कहना है कि इसके द्वारा एक वर्गहीन और सघर्ष-रहित समाज की स्थापना हो जाती है क्योकि "क्रान्ति मानव समाज का सगठन कर देती है।"

इसके अतिरिक्त समाजवाद के कुछ अन्य रूप भी हैं

(स) फैबियन समाजवाद (Fabian Socialism),

(द) राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism),

(च) नात्सीवाद (Nazism)

(ज) फासिज्म (Facism)

७—समाजवाद के गुण तथा दोष
(Merits and Demerits of Socialism)
समाजवाद के गुण

१—वर्ग सघर्ष की समाप्ति—समाजवादी अर्थव्यवस्था की सबसे बडी विशेषता या इसका लाभ यह है कि इसके अन्तर्गत वर्ग सघर्ष की समाप्ति हो जाती है।

२—राष्ट्रीयकरण—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्र की समस्त भूमि, प्राकृतिक साधन, कलकारखाने, वाणिज्य और व्यापार, यातायात और सवाद-वाहन के साधन आदि सभी विषयो का राष्ट्रीयकरण हो जाता है।

३—अनुत्पादित आय (Unearned Income) की समाप्ति—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वश-परपरानुसार स्वामित्व समाप्त हो जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी प्रथा के अतर्गत भूमि के अधिकारियो को भूमि के स्वामित्व से जो अनुपार्जित आय प्राप्त होती है वह समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार कल कारखानो से, बिना किसी परिश्रम के उत्तराधिकारी सूत्र मे जो अनुपार्जित आय प्राप्त होती है उसकी भी समाप्ति हो जाती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे कार्यानुसार ही प्रतिफल प्राप्त होता है।

४—राज्य का महत्व बढ जाता है—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राज्य के महत्त्व का अत्यत विस्तार होता है क्योंकि देश के शासन प्रबध, न्याय, शान्ति और सुरक्षा के कार्यों के अतिरिक्त भी इस प्रथा के अन्तर्गत उत्पत्ति के समस्त साधनो का नियन्त्रण और प्रबध, उसकी उत्पत्ति और वितरण का कार्य राज्य द्वारा ही होता है।

५—आर्थिक नियोजन—समाजवादी अर्थव्यवस्था का आधार आर्थिक नियोजन है। इन आर्थिक नियोजनो के द्वारा ही देश की आर्थिक स्थिति मे निरतर उन्नति प्राप्त करने की कोशिश की जाती है और इसी के द्वारा ही इस बात की भी चेष्टा की जाती है कि देश मे रहने वाले समस्त नागरिको का जीवन-स्तर क्रमश उन्नत हो सके।

६—आर्थिक असमानताओं की समाप्ति—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मनुष्य-मनुष्य मे कोई भेद नही रह पाता। पूँजीवाद मे आमदनी के आधार पर वर्गों की स्थापना होती है क्योकि विभिन्न व्यक्तियो की आमदनी मे बडा अन्तर होता है। देश का धन केवल कुछ ही व्यक्तियो के हाथो मे केन्द्रित हो जाता है। धनिक अधिक धनी होते जाते है, निर्धन और अधिक गरीब। इस प्रकार की आर्थिक असमानता समाजवाद म सभव नही होती।

७—समाज कल्याण (Social welfare)—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे समाज कल्याण को अधिक महत्त्व दिया जाता है जिसका पूँजीवाद मे अभाव रहता है। समाज कल्याण पर अधिक बल देने से राष्ट्र के समस्त नागरिको को पहले से अधिक सुविधाये प्राप्त हो जाती हैं।

८—नवीन पद्धतियों का अपनाया जाना—समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना प्राय पूँजीवाद के विरोध मे ही होती है। इस प्रकार समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे उस प्राचीन समाज को नष्ट कर दिया जाता है जिसके अतर्गत मनुष्यो का शोषण मनुष्यों द्वारा होता है। और एक ऐसी "नई सामाजिक, राजनैतिक और

आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की जाती है जिसके द्वारा मानव जाति के सम्मान और उसकी अधिकतम विकास की दशायें बनी रह सके ।"

६. **कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना**—कल्याणकारी *राज्य की स्थापना—जिसके अन्तर्गत राष्ट्र मे रहने वाले समस्त नागरिको को विभिन्न* प्रकार की सामान्य सुविधायें समान रूप से प्रदान की जाती है ताकि वे अधिकतम उन्नति कर सके—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे ही सम्भव है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को जीवित रहने, शान्ति और सुरक्षा से रहने, शिक्षा प्राप्त करने, रोजगार प्राप्त करने, वृद्धावस्था मे पेन्शन पाने और बीमारी मे चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें प्राप्त करने के पूरे अधिकारो का आश्वासन राज्य द्वारा दिया जाता है।

समाजवाद के दोष

१—समाजवाद के आलाचको का कहना है कि समाजवाद तानाशाही को जन्म देता है।

२—**असफल औद्योगिक प्रबन्ध**—पूँजीपतियो का यह कहना है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था म उद्योगो का प्रबन्ध प्राय गैरजिम्मेदार सरकारी कर्मचारियो के हाथ मे छोड दिया जाता है। इन कर्मचारियो को इस प्रबन्ध के कार्य से कोई निजी लाभ नही हो पाता। इसलिए वे इस कार्य को पूरा मन लगाकर नही करते। यह दोषारोपण आशिक रूप से ही सत्य है।

३—**स्वतन्त्रता की कमी**—समाजवाद मे कीमतो का निर्धारण राष्ट्र द्वारा ही होता है; साधारण सिद्धान्त के अनुसार माग और पूर्ति की शक्तियो द्वारा नही, इसलिए इस प्रणाली के अन्तर्गत उपभोक्ताओ का महत्त्व लुप्त हो जाता है।

४—**उत्पादन काय मे प्रेरणा का अभाव** (Absence of Incentive to Production)—प्राय यह कहा जाता है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति और वितरण के कार्य निजी लाभ के उद्देश्य से नही होते। इसलिए उत्पत्ति और *वितरण मे सलग्न व्यक्तियो मे इस प्रथा के अन्दर कार्य करने की प्रेरणाओ का* अभाव रहता है। यह विचार भ्रमात्मक है। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीयता की भावनाये अधिक जागृत होती हैं और प्रत्येक मनुष्य इस बात मे गर्व अनुभव करता है कि वह राष्ट्र की भलाई मे (जिसमे अपनी भलाई भी सम्मिलित है) सहयोग प्रदान कर रहा है।

५—**निर्णयों का अभाव** (Absence of Decision making)—समाजवाद के विरोध मे यह भी कहा जाता है कि इसमे द्रुत और सही निर्णय नही होने पाते। व्यवस्थापक वर्ग को शीघ्र या सही निर्णय करने से व्यक्तिगत रूप मे कोई लाभ प्राप्त नही होता। यह बात सैद्धान्तिक रूप से ठीक हो सकती है किन्तु व्यवहारिक रूप से यह सर्वथा निराधार है। प्राय यह देखा जाता है कि समाजवादी राष्ट्र तीव्रता से उन्नति करते हैं जो केवल तभी सभव हो सकता है जबकि सभी व्यक्ति सही प्रकार से, ठीक समय पर, मन लगाकर, राष्ट्रहित के उद्देश्य से कार्य करें।

उपरोक्त सभी तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् हम केवल एक ही निष्कर्ष पर पहुँच सकते है और वह यह कि समाजवादी अर्थव्यवस्था राष्ट्र-उन्नति के लिए और राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को समान सुयोग और सुविधायें प्रदान करने के लिए सबसे अच्छी है। रूस और चीन ने समस्त ससार को इस बात का सबूत दिया है कि राष्ट्र-उन्नति के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था से बढकर अन्य कोई प्रणाली नही है। यही कारण है कि भारतवर्ष मे भी समाजवाद की स्थापना होने जारही है। भारत समाजवादी ढग के समाज (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करना चाहता है। इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए यहाँ केन्द्रीय नियोजन की पद्धति को अपनाया जा रहा है।

अध्याय १०

मिश्रित अर्थव्यवस्था[1]
(Mixed Economy)

१—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background)

'मिश्रित अर्थव्यवस्था भारतवर्ष तथा सारे ससार के लिए एक नया विचार है'। प्राचीन काल मे आर्थिक क्षेत्र मे सरकार द्वारा हस्तक्षेप नही किया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति और आर्थिक सस्थाओ को पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। ऐडम स्मिथ का विचार था कि 'आर्थिक स्वतन्त्रता' ही सारी आर्थिक उन्नति का आधार है। उनका कहना था कि "राष्ट्र को आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, क्योकि राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक स्वतन्त्रता पाना आवश्यकीय है। राष्ट्र इन आर्थिक क्रियाओ को सही ढङ्ग से मितव्ययता से चलाने मे असमर्थ है।" यह मत करीब करीब सभी अर्थशास्त्रियो को मान्य था। राज्य भी इस मिश्रित अर्थ व्यवस्था की ओर से उदासीन थे क्योकि उस समय कोई आर्थिक कठिनाई उनके सामने नही थी। आर्थिक स्वतन्त्रता के बारे मे स्मिथ के विचार इतने सुन्दर थे कि वे आने वाले अर्थशास्त्रियो के लिए उद्धरण योग्य बन गये थे। स्मिथ का कहना था, "जितनी असम्बद्धता एक व्यापारी और राजा के चरित्र मे पाई जाती है उतनी किन्ही मे नही राजा प्राय धन की बर्बादी करने वाले होते हैं।" इसका तात्पर्य यह है कि सरकार किसी भी प्रकार की मितव्ययिता करने मे असमर्थ होता है। साहसी कुशलता तथा मितव्ययिता से उद्योग को चलाते हैं, उनमे उद्योग की उन्नति के लिए उत्साह होता है जो कि राज्य व्यवस्था मे नही पाया जाता। जहाँ साहसी स्वय अपनी पूजी लगा कर उद्योग चलाता है, वहाँ सरकार जनता का धन लगाती है। अत. राज्य-उद्योग मे बुद्धिमानी से धन व्यय करने का अभाव होता है। साहसी अपने प्रति स्वय जिम्मेदार होता है क्योकि वह स्वय अपनी पूजी से उद्योग चलाता है। जहाँ उद्योग राज्य द्वारा प्रचलित है वहाँ इस जिम्मेदारी का विकेन्द्रीकरण हो जाता

---

1 इसमें विशेषरूप से भारतीय स्थिति का अध्ययन किया गया है।

है और कोई भी व्यक्तिगत रूप से उद्योग के प्रति जिम्मेदार नही होता, साहसी की अपनी पूँजी सीमित होती है।

एडम स्मिथ ने पाय इस बात का उल्लेख अपने लेखो मे सभी जगह किया है, "आर्थिक विकास के लिए लगातार प्रयास की आवश्यकता होती है। (Il mondo Va Da Se) वर्तमान ससार की आर्थिक अवस्था लाखो मनुष्यो की सयुक्त प्रयासो का फल है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसमे इस बात का ध्यान नही रखते कि दूसरे क्या कर रहे हैं, बल्कि इस बात का कि आर्थिक विकास के प्राप्त करने का उद्देश्य कैसे सफल हो ?"[1]

आर्थिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य यह नही है कि इसमे राज्य का बिल्कुल हस्तक्षेप नही होता है तथा स्वतन्त्र व्यापार का अर्थ यह नही कि देश मे कोई राजकीय सगठन न हो। यह कोरा 'भाग्यवादी' सिद्धान्त नही होता है। स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत प्रत्येक साहसी के लिए क्षेत्र व्यापक होता है, और वह निर्भीकता पूर्वक अपने मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। इस प्रणाली मे सरकार के पास उद्योग सम्बन्धी कोई खास कार्य करने को नही होता। प्राचीन अर्थशास्त्रियो मे जे बी. से, डेविड रिकार्डो, मिल आदि इस सिद्धान्त के कट्टर पक्षपाती थे और उन्होने इस विचार का काफी प्रचार किया।

'स्वतन्त्र-व्यापार' (free trade) की नीति कुछ काल तक तो मान्य रहा पर बाद मे इस सिद्धान्त की आलोचना होने लगी। इसकी आलोचना के मुख्य आधार इसमे पाये जाने वाले दोष थे। इस प्रथा में गलाकाट प्रतिस्पर्धा, 'स्वार्थान्धता', पारस्परिक शोषण, व्यापार-चक्र, तथा आर्थिक उतार चढाव, और आर्थिक-सकटो के विद्यमान होने के कारण मनुष्यो का विश्वास इस पद्धति पर से उठ गया। मुख्य रूप से पूँजीवाद की कठिनाइयो तथा मदी के अस्तित्व ने लोगो के विचार को स्वतत्र व्यापार की पद्धति की ओर से हटा कर समाजवाद की ओर आकर्षित किया। इसकी प्रमुख आलोचना कीन्स और पीगू ने की। एल. रोबिन्स के विचार यद्यपि इससे मिलते जुलते है पर उन्होने समाजवाद का समर्थन नही किया।

बीसवी सदी के प्रारम्भ मे ही अर्थशास्त्रियो को इस बात का ज्ञान हो गया कि स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था पूर्णरूपेण ठीक नही है क्योकि यह प्रथा स्वय मे पूर्ण नही थी, और इसमे माँग और पूर्ति की शक्तियाँ उस रूप में कार्य नही कर पा रही थी जिस रूप मे कि वास्तव मे होना चाहिए। 'स्वतन्त्र-व्यापार' की नीति का पतन प्रथम महायुद्ध के समय तक काफी हो चुका था। इसी समय कीन्स (Keynes) की पुस्तक '*End of laissez faire*' (*1926*) प्रकाशित हुई जिसमे

---

1 *A History of Economic Doctrine*—Charles Gide & Charles Rist, 1948, P 86.

उन्होंने 'स्वतन्त्र-व्यापार-नीति' के दोषों को संसार के सामने रखा। कीन्स के विचारों को उस समय के अर्थशास्त्रियों ने बड़ा महत्त्व दिया। उस समय जो मन्दी और आर्थिक संकट उत्पन्न हुए उन्होंने भी कीन्स के विचारों को सही सिद्ध किया। इन्हीं सब कारणों से उस समय के सभी अर्थशास्त्री जो 'स्वतन्त्र व्यापार-नीति' के विरुद्ध थे, कीन्स के समर्थक हो गये।

धीरे-धीरे 'स्वतन्त्र व्यापार-नीति' का स्थान 'समाजवाद' ने ले लिया। अब यह बात मानी जाने लगी कि केवल 'पूर्ण-समाजवाद' ही 'स्वतन्त्र व्यापार नीति' की बुराइयों को दूर कर सकता है। 'समाजवाद' के अन्तर्गत देश के उद्योग धन्धों, व्यापार, विनिमय, उत्पत्ति और वितरण पर सरकार का आधिपत्य हो जाता है। इस विचार की पूर्णता के कारण सभी अर्थशास्त्री इसके समर्थक हो गये। पीगू (Pigou) ने अपनी पुस्तक (*Socialism Versus Capitalism*) में लिखा है, "आर्थिक शान्ति के लिए उत्पत्ति का समाजीकृत होना बहुत आवश्यक है। अतः यह जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा है। इन्होंने आगे लिखा है कि 'केन्द्रीय नियोजन प्रणाली' वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था से कहीं अच्छी है।"[1]

प्रो. कीन्स (Keynes) पूर्ण सामाजीकरण के विरुद्ध थे—विशेष रूप से उत्पत्ति के सामाजीकरण के। वे उद्योगों पर सरकार के पूर्ण आधिपत्य के विरुद्ध थे। उनका विचार था कि राज्य साहसी के सदृश जिम्मेदारी और कुशलता से उद्योग नहीं चला सकता। इसका कारण यह है कि राज्य को साहसी की तरह लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं होता है। उनके विचार से समाजवाद और व्यक्तिवाद में विरोध बिलकुल तथ्यहीन है। उनके विचार में देश की सर्वोत्तम अर्थव्यवस्था वह है जिसमें स्वतन्त्र व्यापार राज्य की देखभाल में हो। उन्होंने यह भी कहा था कि राज्य के आर्थिक विकास में यदि राज्य और साहसी दोनों मिल कर प्रयास करें तो बहुत अच्छा हो। 'स्वतन्त्र व्यापार' पद्धति का अन्त सबसे पहले रूस में हुआ और उसके स्थान पर सार्वजनिक अर्थव्यवस्था को अपनाया गया।

रूस में आर्थिक नियोजन का संगठन आर्थिक उन्नति और नियोजन की पूर्व आवश्यकताओं (Pre-requisites) के साथ पिछली कई दशाब्दियों (Decades) से बढ़ता चला जा रहा है। वास्तव में किसी देश में आर्थिक नियोजन को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब कि नियोजन बनाने के लिए जिन तथ्यों (Facts & Figures) की आवश्यकता होती है, वह उस देश में पाये जायें। अक्टूबर, सन् १९१७ की क्रान्ति (October Revolution of 1917) के पश्चात् जब रूस में नई सरकार की स्थापना लेनिन के अधीन हुई, तो वह न तो देश के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने और न देश में सामाजिक अर्थव्यवस्था को अपनाने में शीघ्रता करना

---

1 '*Socialism Versus Capitalism*'—A C Pigou

चाहती थी। इसका कारण यह था कि उनके मतानुसार जब तक देश के समस्त श्रमिक शिक्षित होकर नियोजन और देश के शासन को पूर्ण रूप से सभालने योग्य न हो तब तक न तो उद्योगो का राष्ट्रीयकरण हो और न सार्वजनिक अर्थव्यवस्था की स्थापना हो।[1] इसके पश्चात् श्रमिको को आर्थिक नियोजन के विषय मे उत्साह प्रदान करने के उद्देश्य से उन्हे कुछ कारखानो को नियन्त्रित करने का अधिकार दे दिया गया था। तब तक वहाँ न तो राज्य के उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया गया था न व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाश किया गया और न साहसियो के व्यक्तिगत लाभ को समाप्त किया गया था।

लेनिन का, द्रुत आर्थिक विकास करने के विषय मे यह मत था कि देश के समस्त प्राकृतिक साधनो और उत्पत्ति सस्थाओ का राष्ट्रीयकरण हो।[2] इस प्रकार धीरे धीरे रूस मे उत्पत्ति और वितरण का समस्त दायित्व और स्वामित्व सरकार के हाथों में आ गया और केन्द्रीय नियोजन की पद्धति को अपनाया गया। रूस में यह कार्य GOSPLAN द्वारा किया गया।

पूँजीवाद के कट्टर समर्थक भी अब इस बात को मानते है कि ससार के सभी देशो के नागरिको मे पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना जाग्रत हो गई है—विशेष तौर पर जब से रूस और चीन मे आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप द्रुत आर्थिक विकास हुआ है। एम० सॅल्वेडरी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है, 'ससार के प्राय सभी देशो के निवासी अब इस बात को मानने और समझने लगे है कि पूँजीवाद एक निकृष्ट आर्थिक प्रणाली है। समाजवादी राष्ट्रो म जिनमे समस्त ससार के एक तिहाई मनुष्य रहते हैं-पूँजीवाद की समाप्ति हो गई है। योरुप और लैटिन अमरीका के कुछ गणतन्त्र देशो मे—जहाँ पूँजीवाद अभी तक समाप्त नही हुआ है-पूँजीवाद की दशा अत्यन्त दयनीय है योरुप के देशो म प्राय आधी जनता यह चाहती है कि तुरन्त या धीर धीरे देश मे सामुहिक (Collectivism) की स्थापना हो प्राय एक तिहाई इस बात की माग करते हैं कि देश मे अप्रत्यक्ष रूप से क्रमश समाजवाद की स्थापना हो कुछ अन्य राष्ट्र के निवासियों का ध्येय यह है कि सामाजिक उथल पुथल के द्वारा समाजवाद की स्थापना हो कुछ लोगो की धारणा यह है कि यदि देश मे आर्थिक उन्नति करनी है तो वह समाजवादी प्रथा द्वारा ही सम्भव हो सकती है खेद का विषय यह है कि ससार के प्राय सभी व्यक्ति अब यह मानने लगे हैं कि देश के आर्थिक विकास के पथ पर पूँजीवाद बाधक के रूप मे खड़ा होता है।'[3] यह सब धारणाये

1 V I Lenin Coll Works Russian, III Ed, Vol XXIII, p 251 (Underscored by S G Strumilin)

2 Ibid

3 *American Capitalism*—Massimo Salvadori (American Reporter Book Supplement, Feb, 27, 1957, p 1)

अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन आदि पूँजीवादी देशो के आर्थिक विकास को देखते हुये भी फैल रही है। वास्तव मे ससार के प्राय: सभी पूँजीवादी देश अब पूँजीवाद मे ही सुधार करने की चेष्टा कर रहे हैं।

चीन दूसरा देश है जहाँ पूँजीवादी व्यवसायो का सफलता के साथ सामाजीकरण हो गया है। चीन मे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को समाप्त करने का केवल एक ही ध्येय था—समाजवादी ढग के समाज की स्थापना करना। इसके द्वारा वे पूँजीपतियो के शोषण और जमीदारी तथा अन्य इसी प्रकार की प्रथाओ को हमेशा के लिए समाप्त करना चाहते थे। आज चीन मे उत्पत्ति और वितरण के समस्त साधनो का स्वामित्व, नियन्त्रण और प्रबन्ध राष्ट्र के हाथ मे है...... चीन मे जन क्रान्ति के बाद जब नई सरकार की स्थापना हुई थी तभी इस बात का निश्चय कर लिया गया था कि देश के समस्त उद्योग-धधो का राष्ट्रीयकरण पूँजीपतियो को कोई मुआवजा दिए बिना ही कर दिया जायगा। परन्तु बाद मे चीन के नेताओ ने ऐसा करने से चीन की जनता को रोका और वहाँ भी समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना धीरे-धीरे हुई। चीन मे जो प्रथम और द्वितीय योजनायें बनाई गई हैं उनका उद्देश्य यही है कि देश का आर्थिक विकास हो, व्यक्तिगत आय मे वृद्धि हो, एवं देश के समस्त उत्पत्ति के साधनो और वितरण का क्रमश: राष्ट्रीयकरण हो जाय।

२—मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें

(Characteristics of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्योग तथा व्यक्तिगत उद्योग साथ-साथ कार्य करते हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था दो अलग अलग विचारो के अर्थशास्त्रियो के सामञ्जस्य का फल है। कुछ अर्थशास्त्रियो के अनुसार देश के समस्त उत्पादन साधनो, और आर्थिक क्रियाओ का एक साथ (en masse) राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है। जबकि अन्य कुछ अर्थशास्त्रियों ने स्वतत्र व्यापार की नीति का समर्थन किया है। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति तथा वितरण की जिम्मेदारी राज्य तथा साहसियो—दोनो पर होती है।

ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, फ्रास आदि देशो मे—जहाँ स्वतत्र व्यापार है—बहुत तीव्रता से औद्योगिक विकास हो रहा है तथा दूसरी ओर राज्य द्वारा सचालित आर्थिक नियोजनो ने रूस, चीन आदि देशो मे बडा चमत्कार दिखाया है। स्वतत्र व्यापार नीति तथा केन्द्रीय नियोजन दोनो मे ही कुछ गुण तथा दोष हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक क्रियाओ का विभाजन सार्वजनिक उद्योग तथा व्यक्तिगत उद्योग मे होता है। दोनो ही, व्यक्तिगत तथा सामाजिक हित के उद्देश्य

से कार्य करते हैं । 'मिश्रित अर्थव्यवस्था म साहसी बडा महत्त्वपूर्ण कार्य करता है" पर जहाँ साहसी देश की आर्थिक प्रगति मे महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, वहाँ इसके ऊपर राज्य का अकुश रहना है जिसके सामने सारे देश की उन्नति का ध्यान रहता है । इसी विचार को लेकर राज्य साहसी के उन कार्यों को नियन्त्रित करता है जिनके द्वारा देश की आर्थिक प्रगति होती है ।''[1]

मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने के कारण

१—व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दोनों ही उद्योगों के पास पूँजी का अभाव—अविकसित देशो मे साहसी तथा राज्य दोनो ही के पास पूँजी का अभाव होता है । अत दोनो म से कोई भी अकेला उतनी पूँजी का विनियोग नही कर सकता जितनी कि आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है । दोनो ही एकाकीरूप मे बडी बडी योजनाओ को कार्यान्वित करने मे असमर्थ होते हैं । अत ऐसी अवस्था मे मिश्रित अर्थव्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था बन जाती है ।

२—कुशल व्यक्तियों का अभाव—मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने का यह एक कारण है । प्राय यह देखा जाता है कि देश मे प्रशिक्षित कर्मचारियो का अभाव होता है । यदि देश के समस्त आर्थिक प्रयासो को सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्रो मे विभाजित नही किया जाता है तो विशिष्ट प्रकार के शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो की कमी का अनुभव होता है ।

३—देश की आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र का विभाजन—व्यक्तिगत और सार्वजनिक उद्योग मे अन्तर कर देने से कार्य-सचालन अधिक सुगमता से तथा प्रभावशाली रूप से किया जा सकता है । यह लाभ 'स्वतन्त्र व्यापार' या पूर्ण राष्ट्रीयकरण मे प्राप्त नही हो सकता ।

४—मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद के सारे गुण तो पाये जाते है पर उसके दोष नही आने पाते क्योंकि इस नीति मे पूँजीवाद को एक निश्चित सीमाओ मे पनपने दिया जाता है ।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में तीन आर्थिक क्षेत्र होते हैं, यथा

१ सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)—इस क्षेत्र के अतर्गत देश की उत्पत्ति और वितरण का प्रबन्ध, स्वामित्व, सगठन और आर्थिक सचालन राज्य द्वारा होता है । व्यक्तिगत साहसियो को इस क्षेत्र मे कोई स्थान नही होता । प्रतिरक्षा तथा सामरिक महत्त्व के उद्योग इसके उदाहरण हैं ।

२ सार्वजनिक-व्यक्तिगत क्षेत्र (Public-cum-Private Sector)—इस क्षेत्र के अन्तर्गत देश के उद्योगो का प्रबध और स्वामित्व सरकारी तथा गैर सर-

---

1 *The Concept of Mixed Economy and India*—
M C Vaish, P. 12

कारी क्षेत्रो मे विभाजित होता है। इसमे सरकार अपना प्रभुत्व स्थापित रखने तथा प्रबध मे अपना स्वामित्व कायम रखने के लिए पूरी पूँजी का ५१ प्रतिशत विनियोग करती है और विनियोग का बाकी ४६ प्रतिशत भाग गैरसरकारी क्षेत्र के लिये छोड देती है। मध्यम मात्रा की उत्पत्ति सस्थायें तथा उपभोग की वस्तु के उद्योग इस श्रेणी मे आते हैं।

३. निजी क्षेत्र (Private Sector)—इस क्षेत्र के अन्तर्गत उद्योगो का प्रबध, आर्थिक-सचालन, तथा सगठन पूर्णरूपेण व्यक्तिगत साहसियो के हाथ मे होता है। इसके अन्तर्गत कुछ उपभोग की वस्तुएँ बनाने के उद्योग तथा कम महत्व वाले उद्योग आते हैं।

यह विभाजन बिलकुल अपरिवर्तनशील नही है। इसमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन हो सकता है।

३—भारतवर्ष में मिश्रित अर्थव्यवस्था
(Mixed Economy in India)

भारतीय सरकार द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को देश की आर्थिक स्थिति मे सुधार करने तथा नागरिको का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए अपनाया गया है। देश की द्रुत आर्थिक उन्नति के लिये कृषि, उद्योग, यातायात और सवादवाहन के साधनो आदि का उन्नत होना और देश के प्राकृतिक साधनो का पूर्णरूपेण उपयोग होना अति आवश्यक है। इन सब बातो के लिए बहुत बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता पडती है तथा नियोजन को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए और सफल बनाने के लिए एक बहुत बडी सख्या मे प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारियो की आवश्यकता होती है। उचित रूप से उत्पादन और वितरण के कार्य को चलाने के लिए भी पूँजी की आवश्यकता होती है। वर्तमान काल मे समस्त आवश्यक पूँजी का विनियोग न तो केवल सरकार द्वारा और न एकाकी रूप मे हो सकता है। यही कारण है कि सरकार ने मिश्रित-अर्थव्यवस्था पद्धति को अपनाया ताकि सरकार और साहसियो के सम्मिलित प्रयास द्वारा देश की द्रुत आर्थिक उन्नति सम्भव हो सके।

प्रधानमन्त्री ने भी कहा कि "देश मे राजकीय और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था के आपसी विरोध की बडी चर्चा है ......" उन्होने कहा कि "इनमे कोई विरोध नही है। कुछ लोगो का मत है कि निजी उद्योग को पूर्ण और निर्बाध अवसर मिलना चाहिए। पर इस प्रकार का निर्बाध निजी उद्योग असम्भव है और राज्य को बडे पैमाने पर हस्तक्षेप करना पडता है। हम अपने सीमित साधनो को देखते हुए स्वतत्र व्यापार नीति को नही अपना सकते। हमे हर उद्योग मे, चाहे वह राजकीय हो या निजी, एक नियोजित व्यवस्था का निर्माण करना है। निजी उद्योग को विस्तार के लिए काफी क्षेत्र मिलना चाहिए पर उसे राजकीय नियोजन के अन्तर्गत ही चलना पड़ेगा। ऐसा नियोजन बिलकुल बेकार होगा जिसमे देश की सारी क्रियायें सम्मिलित

न हो चाहे वह राजकीय हो या निजी। सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित होना पडेगा।"[1]

मिश्रित अर्थव्यवस्था पश्चिमी देशो मे तो पहले से ही विद्यमान थी पर भारतवर्ष मे इसका प्रादुर्भाव हाल ही मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले देश मे राजकीय उद्योग इतनी उन्नति पर नही था। केवल कुछ विभाग ही जैसे, रेल यातायात, डाक-तार विभाग, रिजर्व बैंक, प्रतिरक्षा विभाग आदि राजकीय उद्योगो के अन्तगत थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार ने कृषि तथा अन्य क्षेत्रो मे उन्नति करके देश के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास शुरू कर दिया। इन सब बातो के लिए, तथा अन्य उन्नत देशो के मुकाबले मे आने के लिए, एक ऐसी व्यवस्था को अपनाने की आवश्यकता हुई जिसके द्वारा कम से कम कठिनाई से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। कुछ समय तक हमारी राष्ट्रीय सरकार एक ऐसी पद्धति की खोज करती रही जिससे देश के उद्योगों का सन्तुलित विकास हो सके। उस समय न तो सरकार ही इस स्थिति मे थी कि वह समस्त उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर सके और न साहसी वग ही देश का औद्योगीकरण करने मे समर्थ था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। भारत की प्रथम, द्वितीय और तृतीय पञ्चवर्षीय योजनायें इसी आधार पर निर्मित की गई हैं।

(४) सार्वजनिक क्षेत्र
(The Public Sector)

'सार्वजनिक क्षेत्र' का विचार भारतवर्ष के लिए नया ही है, पर पश्चिमी देशो मे इसका विकास पिछले कई वर्षों से हो रहा है। समाजवादी देशो म तो यह प्रथा काफी उन्नति पर है। भारतवर्ष में 'सावजनिक क्षत्र' की स्थापना सन् १९४८ के औद्योगिक प्रस्ताव के कारण हुई। राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्त ने (तथा इस विचार ने कि जो उद्योग निजी क्षेत्र द्वारा चलाये जायगे उनका भी राष्ट्रीयकरण हो सकता है तथा उनका सचालन राज्य द्वारा बनाए कानून के अन्तर्गत ही हो सकेगा) देश के तत्कालीन सारे आर्थिक ढाँचे को बदल दिया तभी से सावजनिक क्षत्र की बडी तेजी के साथ उन्नति हो रही है।

सन १९४८ के औद्योगिक प्रस्ताव के अनुसार निम्नलिखित पाँच वग के उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे रखे गये —

(१) प्रतिरक्षा तथा सामरिक महत्त्व के उद्योग (Defence Industr es) (२) लोकोपयोगी सेवाएँ (Public utility Services) (३) भारी उद्योग (Heavy Industries) (४) जहाज बनाने का उद्योग तथा (५) अन्य योजनायें।

---

1 *Planning and Development*, Speeches of Jawahar Lal Nehru (1952 56), Publications Division, Govt of India p 24

प्रथम योजना में सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक योजनायें :[1]

(अ) केन्द्रीय सरकार

लोहा और इस्पात योजना, ३००० लाख रुपया, जहाज निर्माण, १४०८ लाख रुपया, मशीन यन्त्र कारखाना, ६६३ ८ लाख रुपया, सिन्दरी का रासायनिक कारखाना, ६०३ लाख रुपया, रेल के इंजिन का कारखाना, ४७३ लाख रुपया, रेल-डिब्बा कारखाना, ४०० लाख रुपया, पेनिसीलीन कारखाना, २०६ ६ लाख रुपया, राष्ट्रीय यन्त्र कारखाना, १८२ लाख रुपया, भारतीय टेलीफून उद्योग, १३० लाख रुपया, हिन्दुस्तान केबिल्स लि०, १२६ ७ लाख रुपया, मन्डी का नमक कारखाना, १०० लाख रुपया, दुलभ मिट्टी कारखाना, ५४ लाख रुपया, डि० डि० टि० कारखाना, ३६ १ लाख (डॉलर), नमक के चालू कारखाने, ५० लाख रुपया, आवास कारखाना, ११ ८ लाख रुपया, अन्य योजनायें, २०२ १ लाख रुपया।

(ब) राज्य सरकारें

मैसूर लोहा और इस्पात कारखाना, २८३ लाख रुपया, उत्तर प्रदेश सरकार का सीमेन्ट कारखाना, २३० ५ लाख रुपया, नेपा मिल्ज, २०० लाख रुपया, सरसिल्क लि०, २०० लाख रुपया, सीरपुर कागज मिल, ६० लाख रुपया, उत्तर प्रदेश सूक्ष्म (Precision) यन्त्र कारखाना ५० २ लाख रुपया, बिहार सरकार का सुपर फासफेट कारखाना, ४१ १ लाख रुपया, अन्य योजनायें, ६५ लाख रुपया। (प्रथम पञ्चवर्षीय योजना, जनता सस्करण, भारत सरकार, पृष्ठ २६५-२६६)।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र :[2]

बड़ी फाउन्ड्रियां, लोहे तथा ढांचे बनाने के कारखाने तथा औद्योगिक मशीनें :

चितरंजन कारखाने को १२० से ३०० तक इन्जन प्रतिवर्ष बनाने की योजना है, जिससे रेल के लिये बड़े बड़े ढलाई के काम स्वदेश में ही किए जा सकें। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम की यह भी योजना है कि बड़ी फाउन्ड्रियों, लोहे की भट्टियों और बड़े बड़े ढॉचों के बनाने का काम शुरू किया जाये, जो बड़ी बड़ी मशीनों, उनके पुरजों और बिजली के भारी सामान आदि के निर्माण के लिए आवश्यक है।

सार्वजनिक क्षेत्र में जिन भारी मशीन उद्योगों के लिये व्यवस्था की गई है, वे हैं—बिजली का भारी सामान निर्माण करना (लागत २० करोड़ रु०) हिन्दुस्तान यांत्रिक औजार कारखाने का विस्तार और नेशनल इन्डस्ट्रियल डेवलपमेंट कार्पोरेशन के मातहत भारी औद्योगिक मशीनें और उनके पुर्जे निर्माण करना। इससे भारी औद्योगिक मशीनरी का विकास करना सुगम हो जायगा।

दक्षिण आरकाड् लिगनाइट योजना—दक्षिण भारत में कोयले की खानों

---

1 प्रथम पञ्चवर्षीय योजना—भारत सरकार

2 द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना (संक्षिप्त)—भारत सरकार।

की कमी के कारण दक्षिण आरकाडु की नेवली की बहुसूत्री लिगनाइट योजना को उच्चतम प्राथमिकता दी गई। योजना यह है कि ३५ लाख टन लिगनाइट की प्रतिवर्ष खुदाई की जाये, (अ) जिससे २,११,००० किलोवाट बिजली पैदा की जायेगी, (आ) प्रतिवर्ष ३,८०,००० टन कार्बोनाइट ब्रिकेट तैयार किये जायेगे, और (३) यूरिया और सल्फेट नाइट्रेट के रूप मे ६०,००० टन निश्चित नत्रजन पैदा किया जायगा। योजना पर आरम्भ मे ५२ करोड रु० खर्च किया जायगा और बाद मे आवश्यकतानुसार अधिक रकम लगाई जायेगी। इस योजना पर कुल खर्च का प्रारम्भिक अनुमान ६८ करोड रुपया लगाया गया है।

उवर्रक का उत्पादन—नत्रजन के उत्पादन मे ४७,००० टन की वृद्धि करने के लिए निश्चित कदम उठाए जा चुके है। इसके लिए सिन्द्री खाद फैक्टरी का विस्तार किया गया है, जिससे उसके कोक की भट्टी का गैस का उपयोग किया जा सकेगा। दक्षिण आरकाड की लिगनाइट योजना की ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है। इसके अलावा दो नए कारखाने कायम किए जायेगे। एक नगल मे जो प्रतिवर्ष ७०,००० टन नत्रजन पैदा करेगा और दूसरा रूरकेला मे जो ८०,००० टन नत्रजन पैदा करेगा। नगल के कारखाने के लिये २२ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। रूरकेला के सयत्र के लिये फिलहाल ८ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है और आवश्यकता के अनुसार अधिक रकम भी खर्च की जा सकेगी।

इन्जीनियरी के बडे उद्योग—हिन्दुस्तान शिपयार्ड का विस्तार करने के कारण विशाखापटनम मे जहाजो के उत्पादन मे पहले तो पुरानी किस्म के ६ और नई किस्म के चार जहाज बनाये जायेगे। जहाजो के निर्माण के उद्योग का विकास करने के लिये अन्य योजनाओ मे एक योजना विशाखापटनम् मे एक नया शिपयार्ड बनाने की है और ७५ लाख रुपये की व्यवस्था इसलिए की गई है कि उसके लिए प्रारम्भिक कार्य शुरू किया जा सके और साथ ही बडे जहाज डीजेल इजन के बनाने की भी योजना है जिनके लिए यथा समय आवश्यकतानुसार धन राशि की व्यवस्था की जायेगी।

चित्तरंजन इजन कारखाने के विस्तार के अलावा रेल सामग्री सम्बन्धी योजनाओ मे निम्न योजनाएँ सम्मिलित हैं जिनमे रेल के डिब्बे तैयार किए जायेगे।

१—पेराम्बूर मे जोडहीन डिब्बे बनाने के कारखाने का निर्माण पूरा करना,

२—छोटी लाइन के डिब्बो के निर्माण के लिए नया कारखाना कायम करना, और

३—फालतू पुर्जे बनाने के लिए दो छोटे इन्जीनियरी कारखाने खोलना। इन सारी योजनाओ के लिए १७ करोड रु० रखा गया है।

केन्द्रीय सरकार की दूसरी कम खर्च की योजनाएँ निम्नलिखित है.—

१—वर्तमान डी० डी० टी० और एटिबायोटिक कारखानो का विस्तार।

२—त्रिवाकुर कोचीन मे दूसरे डी० डी० टी० कारखाने का निर्माण।

३—हिन्दुस्तान केवल्स लिमिटेड, नेशनल इन्स्ट्रूमेंट्स फैक्टरी और इन्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज का विस्तार, तथा

४—सिक्युरिटियो और बाडो के लिए कागज बनाने की सिक्युरिटी पेपर मिल की स्थापना।

विभिन्न राज्यो की औद्योगिक योजना कार्यों मे निम्न उद्योगो का उल्लेख किया जा सकता है—मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स का विस्तार, दुर्गापुर मे कोक भट्टी का निर्माण, मैसूर और बिहार मे बिजली के पोर्सलीन इन्सुलेटरो का निर्माण, हैदराबाद की आगा टूल कारखाने का पुनर्गठन और उत्तर प्रदेश की सीमेट फैक्टरी तथा सुपरफासफेट कारखाने का विस्तार।

नये इस्पात कारखानो के साथ कोक की भट्टियो के सम्बन्ध मे पश्चिम वगाल मे दुर्गापुर की कोक भट्टी की योजना के और दक्षिण आरकाडु की लिगनाइट योजना क प्रारम्भ होने पर आर्गेनिक रासायनिक पदार्थ बडी मात्रा मे उपलब्ध हो सकेंगे, जिससे घरेलू खपत के लिए रासायनिक पदार्थो प्लास्टिक और रग के उद्योग पनप सकेंगे।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक योजना कार्यों पर जिसमे नेशनल इडस्ट्रियल डेवलपमेट कार्पोरेशन के लिए नियत की गई धन राशि शामिल नही है, मोटे तौर पर ५ अरब २ करोड रुपया खर्च किया जावेगा। विभिन्न राज्यो का खर्च अपनी योजनाओ पर ३२ करोड रुपय कूता गया है। इसमे वह ५ करोड रुपया भी शामिल है जो सहकारिता के आधार पर विभिन्न राज्यो मे चीनी के कारखाने कायम करन मे लगाया जायगा। आसाम तथा पाडेचेरी सरीखे राज्यो मे कुछ विशेष उद्योगो के विकास के लिए बतौर सहायता के दी जाने वाली रकम भी इसमे सम्मिलित है।

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम—वाणिज्य उद्योग मन्त्रालय के लिए निश्चित की गई ७० करोड रुपये की रकम के अलावा ५५ करोड रुपये की रकम राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम के लिए रखी गई है। इन साधनो का एक हिस्सा (मोटे तौर पर २४ से २५ करोड रुपए) कपडे और पटसन के उद्योगो के आधुनिकीकरण पर खर्च किया जायेगा, शेष रकम जो ३५ करोड रुपये के लगभग कूती गई है, नये मूल-भूत और बडे उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए उपलब्ध की जायेगी। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने जिन औद्योगिक योजनाओ के सम्बन्ध मे जाँच पडताल करनी शुरू की है उनमे फाउड्रियाँ, लोहे की भट्टिया, बडे-बडे ढांचों के निर्माण तथा रिफैक्टरियो, नकली रेशम के लिए रासायनिक लुगदी, अखबारी कागज आदि, रगो और दवाओ के बनाने वाले पदार्थ, कार्बन, अल्यूमिनियम, भारी सामान को इधर से उधर ले जाने वाले बडे बडे साधनो का निर्माण, खदानों की खुदाई आदि, लोहा तथा लोहेतर उद्योगों के लिये रोल और रोलिंग मिल के समान का

निर्माण शामिल है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए निगम को भविष्य मे अधिक धनराशि की आवश्यकता हो सकती है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र[1]

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे उसी प्रणाली पर कार्य होगा जैसा कि सन् १९५६ के Indusiial Policy Resolution मे बताया गया है या द्वितीय पचवर्षीय योजना मे अपनाया गया है। भारी उद्योग, सामरिक महत्त्व के उद्योग और अन्य भारी उद्योग अब भी सार्वजनिक क्षेत्र मे ही रहेगे। इसी के साथ-साथ तृतीय पचवर्षीय योजना मे यह भी बताया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत और अधिक कारखाने तथा उद्योग धन्धे स्थापित किये जायेंगे। अधिकतर नये उद्योगो की स्थ.पना भी इसी क्षेत्र मे होगी। इसके अतिरिक्त जब और जैसा आवश्यक समझा जायेगा उसी तरह से उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करके इस क्षेत्र का विकास किया जायेगा। जिन उद्योगो की स्थापना द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे शुरू की जायेगी परन्तु सम प्त न हो सकेगी—उनको तृतीय पचवर्षीय योजना काल मे पूरा किया जायेगा।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक उन्नति की निम्नलिखित **प्राथमिकताओं** को स्वीकृत किया गया है

(१) द्वितीय पचवर्षीय योजनाकाल मे जो कार्य शुरू कये गये है या किये जायेंगे उनको समाप्त करना।

(२) भारी इजीनियरिंग उद्योग, मशीन बनाने के कारखाने, यत्र और कल पुर्जे के कारखाने, लौह और इस्पात बनाने के कारखाने और रासायनिक खाद बनाने के कारखानो को स्थापित करना और जो पहले से ही हैं उनका विकास करना।

(३) 'उत्पादक वस्तुओ' (Producer goods) की उत्पत्ति मे भारी वृद्धि करना।

(४) जिन उद्योगो की स्थापना की गई है उनमे पूर्ण शक्ति से काम किया जाना।

(५) औषध, कागज, वस्त्र, चीनी, वनस्पति तेल और मकान बनाने की विभिन्न प्रकार की सामग्रियो का अधिकतम मात्रा मे देश मे ही उत्पत्ति किया जाना।

औद्योगिक विकास के लिए पूर्णरूप से २,५०० करोड रुपयो की व्यवस्था की गई है। इसका विभाजन इस प्रकार किया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे औद्योगिक विकास पर १,५०० करोड रुपया खर्च हो और निजी क्षेत्र मे १,००० करोड

1. तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा पर आधारित।

रुपया। सार्वजनिक क्षेत्र के खर्चो मे ५० करोड रुपये ऐसे भी हैं जो शायद बाद मे निजी क्षेत्र को विकास कार्यों के लिए आवश्यकता पडने पर प्राप्त हो सकें।

उपरोक्त २,५०० करोड रुपये का विभिन्न उद्योग और खनिज पदार्थों के उपयोग पर निम्नलिखित रूप से बँटवारे का ध्येय बनाया गया है—

व्यय का विभाजन (करोड रु०)

औद्योगिक वर्ग	१९६१-६६ मे पूँजी-विनियोग
धातु-कर्म और इजीनियरी उद्योग	१२००
रासायनिक और सम्बद्ध उद्योग (भारी रसायन, उर्वरक, औषध, प्लास्टिक-पदार्थ, रञ्जक, सीमेंट, कागज आदि)	६५०
कपडा उद्योग	१२५
खाद्य-उद्योग	७५
खनिज पदार्थ	४०५
विविध (इसमे सरकारी औद्योगिक परियोजनाओ के लिए छोटे नगर और आवास-बस्तियाँ भी शामिल है)	४५
योग	२५००

तीसरी योजना मे सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रमो का मोटे तौर पर इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है —

(क) वे परियोजनायें, जिन पर अमल हो रहा हैं, और जो दूसरी योजना पार करके तीसरी योजना की परिधि मे आई हैं,

(ख) नई परियोजनायें, जिनके लिए विदेशो से ऋण का आश्वासन मिल चुका है।

(ग) नई परियोजनायें, जिन्हे फिलहाल योजना मे माना जा सकता है। इसमे से अधिकतर *तैयारी के काफी आगे के दौर मे हैं किन्तु इनके लिए विदेशो* से ऋण का अभी कोई इन्तजाम नही किया गया।

(घ) अन्य नई परियोजनायें, जिन पर आरम्भिक काम कुछ खास आगे नही बढा और जिनके लिए अभी विदेशो से ऋण का भी कोई इन्तजाम नही किया गया।

(ङ) अनुपातिक ढग की परियोजनायें, जिनकी क्रियान्विति ऐसी कुछ बातो पर निर्भर होगी, जिनके सम्बन्ध मे अभी से कोई निश्चित ज्ञान नही हो सकता।[1]

---

1. Please see Appendix I.

सार्वजनिक क्षेत्र की कठिनाइयाँ तथा दोष :

१—संगठन सम्बन्धी—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के विकास और उन्नति मे सबसे बडी बाधा प्रबन्ध सम्बन्धी होती हैं। विभिन्न देशों मे विभिन्न प्रकार के प्रबन्धों का प्रचलन विभिन्न समयो मे किया गया। परन्तु प्रत्येक प्रकार के व्यवसायिक संगठन मे कुछ न कुछ कठिनाइयाँ पाई गई। मैनेजिंग एजेन्ट्स (Managing Agents) द्वारा प्रबन्धित व्यवसायो मे भी बहुत सी बाधाएँ हैं, जिनके कारण इस प्रथा को सर्वोत्तम नही समझा जाता है। इसी प्रकार बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा प्रबन्धित व्यवसायो मे भी संगठन सम्बन्धी कठिनाइया है। संगठन के विषय मे समय समय पर विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये जाने के पश्चात् अब अधिकतर संस्थाओ मे प्राय: अर्ध-स्वतन्त्र संगठन प्रणाली अपनाई जाती है। सार्वजनिक उद्योगो का सबसे बडा दोष यह होता है कि निजी लाभ की सम्भावना न होने के कारण संगठन-कर्ता उतने उत्साह, उद्यम और कुशलता से प्रबन्ध का कार्य नही करते, जितना निजी क्षेत्र मे करते हैं।

२—मूल्य-निर्धारण और उपभोक्ता—सार्वजनिक क्षेत्र मे वस्तुओ के उत्पादन से प्राय उन्हे प्रतिस्पर्द्धा का सामना नही करना पडता है जिसमे कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी एकाधिकार की स्थापना हो जाती है। इस परिस्थिति मे उपभोक्ताओ को उन वस्तुओ को उसी कीमत पर खरीदना पडता है जिस पर सरकार उन्हे बेचना चाहती है। यह कीमत प्राय प्रतिस्पर्धात्मक दर से अधिक होती है। यदि इस प्रकार की अवस्था सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगो की स्थापना के पश्चात् भी विद्यमान रहे तो इसका अर्थ यह होगा कि सरकार अपने उद्देश्य मे असफल रही, क्योकि सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो की स्थापना का एक प्रमुख कारण उपभोक्ताओ को कम मूल्य पर वस्तुओ को दिलाना होता है।

३—श्रमिकों की माग—सार्वजनिक क्षेत्र मे उत्पत्ति होने से कारखानो की सख्या कम हो जाती है, पूँजी-प्रमुख-प्रणाली से उत्पत्ति होती है एव उद्योगो के क्षेत्र में अभिनवीकरण की पद्धति अपनाई जाती है। इससे देश मे बेरोजगारी फैल जाती है और नियोजन के प्रमुख उद्देश्य—जीवन स्तर को ऊँचा उठाना एव रोजगार दिलाना अपूर्ण रह जाते है।

४—सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो की स्थापना और विकास यदि निरन्तर बढता रहे तो देश मे एक ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि इन उद्योगों मे संलग्न राज्य कर्मचारियो के हाथ मे अत्यधिक शक्ति आ जाये और वे उस शक्ति का दुरुपयोग करना शुरू कर दें। इससे देश की आर्थिक अवस्था मे सुधार न होकर अवनति होगी और देश की जनता मे सरकार के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो जायेगा—जो अवांछनीय है।

५—यदि सार्वजनिक क्षेत्र का विकास निरन्तर और तीव्र गति से होता ही रहे तो उससे एक कठिनाई यह भी उत्पन्न हो सकती है कि सरकार को कर और

मालगुजारी के रूप मे जो धन प्राप्त होता है वह मिलना बन्द हो जाये, क्योंकि जब अन्य उत्पादक ही न रहेगे तो उनसे कर आदि कैसे मिल सकेगा। इससे सार्वजनिक क्षेत्र के विकास मे बाधा उत्पन्न हो सकती है।

६—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे प्राय. यह भी देखा जाता है कि महत्त्वपूर्ण पदो पर ऐसे व्यक्तियो की नियुक्ति भी होती है जिन्हे उद्योग सम्बन्धी विषयो का कोई ज्ञान नही होता।

७—इस क्षेत्र के विकास पर सरकार को बहुत धन खर्च करना पडता है, जिसके कारण जनहित और जन कल्याण के कार्यों के विस्तार के लिए सरकार के पास काफी धन नही बच पाता जिससे जन कल्याण के कार्य उपेक्षित रह जाते है।

उपर्युक्त बातो से यह न समझ लेना चाहिये कि उद्योग धन्धो के सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापना और विकास से केवल हानियाँ ही है। सच तो यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगधन्धो की स्थापना से देश के प्रत्येक नागरिक को लाभ होता है। पूँजीपतियों का शोषण समाप्त हो जाता है, वस्तुएँ सरलता से तथा सस्ते दामों पर प्राप्त होती हैं। अति उत्पादन और कम उत्पादन की सम्भावना नही रहती एव आर्थिक तेजी और मन्दी भी समाप्त हो जाती है। उद्योग धन्धो का सतुलित विस्तार होता है। देश के प्राकृतिक साधनो का सही शोषण सम्भव होता है। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है। धन का वितरण समान होता है।

५—निजी क्षेत्र का विकास
(Private Sector)

द्वितीय योजना मे . [1]

सार्वजनिक क्षेत्र के समान निजी क्षेत्र मे भी लोहे और इस्पात के उद्योगो के लिए विशेष महत्त्व है। १ अरब १५ करोड रुपये के इस क्षेत्र मे विनियोग होने की कल्पना की गई है। निजी क्षेत्र मे इस्पात के उद्योगो का वर्तमान उत्पादन २३ लाख टन हो जाने की आशा है जबकि इस समय वह १२॥ लाख टन ही है।

अन्य धातु सम्बन्धी उत्पादन के लक्ष्य, जैसे कि अल्यूमिनियम और फेरोमैंगनीज के क्रमश ३०,००० और १,७२,००० टन स्थिर किए गए है।

सीमेंट तथा रिफैक्टरी उद्योगों का वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य क्रमश १ करोड ६० लाख टन और १० लाख टन १९६०-६१ तक के लिए स्थिर किया गया है, जब कि १९५५-५६ मे उत्पादन क्रमश. ४६ लाख ३० हजार टन और ४,४४,००० टन था।

छोटे और बडे इजीनियरी कारखानो के लिए विकास का जो कार्यक्रम निश्चित किया गया है, वह विशेष महत्वपूर्ण है। ढांचो के निर्माण, मोटर गाडियाँ,

---

1 द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना—भारत सरकार।

रेल के इजन व डिब्बे, ढलाई व पिटाई के काम, औद्योगिक मशीनें, बाइसकिल, सीने की मशीनें, मोटरें और ट्रान्सफार्मर कुछ ऐसी चीजें है जिनके लिए ऊँचे पैमाने के उत्पादन की कल्पना की गई है। टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी द्वारा प्रतिवर्ष जो १०० इजन तैयार किए जाते है, उनका उत्पादन दुगना करने के लिए १ करोड रुपए की धनराशि की व्यवस्था करने का अनुमान है। मोटर गाडियो के उद्योगो के विकास के कार्यक्रम से, देशी उद्योग इस धन्धे की ८० प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति करेंगे। ट्रको के उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया है। १९६०-६१ तक जो ५७,००० गाडियाँ तैयार की जाएँगी, उनमे ट्रको की सख्या ४०,००० होगी।

निजी क्षेत्र के लिए बनाई गई योजना मे औद्योगिक मशीनो के उत्पादन का विस्तार सम्मिलित किया गया है, और सूती कपडा मिल मशीनो, पटसन मिल मशीनो, चीनी मिल मशीनो, कागज मिल मशीनो, सीमेंट मिल मशीनो, इलैक्ट्रिक मोटरो और बिजली के ट्रान्सफार्मर (३३ के वी ए से कम) के उत्पादन लक्ष्यों की सिफारिश की गई है। अधिकाश इजीनियरी उद्योगो के लिए विदेशी विशेषज्ञो की सहायता अपेक्षित है, और उसके लिए आवश्यक कार्रवाही की जा रही है। सोडाऐश, कास्टिक सोडा, फास्फेटिक खादो, औद्योगिक विस्फोटक पदार्थों, रग और तत्सम्बन्धी पदार्थो आदि के रासायनिक उद्योगों के विकास को निजी क्षेत्र के कार्यक्रम मे विशेष महत्त्व दिया गया है। विकास के कार्यक्रम मे उत्पादन की मात्रा का बढाना और क्रमानुसार उत्पादन मे रद्दोबदल करते रहना सम्मिलित है। रगो से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थो मे जिनके उत्पादन को विशेष महत्त्व दिया गया है क्लेरो बैनजीन, नाइट्रोबैनजीन, टोल्यून, नैफ्थलीन और ऐन्थ्राक्विनाइन पदार्थो को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। गन्धक के तेजाब का उत्पादन उस माँग पर निर्भर करता है जो लोहा व इस्पात, रासायनिक खाद, नकली रेशम और सूती उद्योग के लिए की जाएगी।

विशाखापट्टनम मे कालटेक्स के शोध कार्य के लिए बनाये जाने वाले कारखाने के १९५७ तक तैयार हो जाने की आशा है और दूसरी योजना मे उसके लिए १० करोड रु० की व्यवस्था की गई है। औद्योगिक और शक्ति सुरासार के उत्पादन को विशेष रूप से बढाने का प्रस्ताव किया गया है। इस समय के २ करोड ७० लाख गैलन के उत्पादन को ३ करोड ६० लाख गैलन तक पहुँचाया जाएगा। डी०डी०टी० के उत्पादन मे विस्तार और पोलीविनल क्लोराइड और बुटेडाइन के उत्पादन की व्यवस्था कुछ ऐसी दिशा मे है, जिनसे औद्योगिक सुरासार का उत्पादन अत्यधिक मात्रा मे किया जा सकता है। प्लास्टिक उत्पादन के क्षेत्र मे हाल ही मे जो योजना स्वीकार की गई है, उनमे सैल्यूलोज एसीटेट, पोलीथाइलीन, पोलीविनल क्लोराइड एण्ड यूरिया फौरमैलडिहाइड (Kloride and Uria Formaldihyde) के उत्पादन को सम्मिलित किया गया है, और यह आशा की गई है कि ऐसा होने पर मोल्डिंग

पाउडरो का जो उत्पादन १९५५-५६ मे १,९८० टन है, वह दूसरी योजना के अन्त तक ११,४०० टन तक पहुँच जायेगा।

उपभोग्य पदार्थो मे उत्पादन शत-प्रतिशत बढाने की कल्पना की गई है, जैसे कागज तथा पुट्ठे के उत्पादन मे। चीनी के उत्पान को जो १९५५-५६ मे १६ लाख ७० हजार टन है, १९६०-६१ तक २२ लाख ५० हजार टन तक बढाने की आशा है। इसमे सहकारी आधार पर कायम की जाने वाली चीनी मिलो के उत्पादन का हिस्सा ३५ हजार टन मालाना होगा। वनस्पति तेलो के उत्पादन १७ लाख टन से २१ लाख टन तक बढ जाने की आशा है। विकास कार्यक्रम मे बिनौने के तेल और विशेष प्रक्रिया से खली से तेल के उत्पादन को विशेष महत्त्व दिया गया है। कपडे और सूत के उत्पादन को क्रमश ८ ५ अरब गज और १ अरब ६५ करोड पौंड तक बढाना निश्चित किया गया है। मिल और विकेन्द्रित उत्पादन मे इस उत्पादन को बाँटा जाना अभी शेष है। इस समय तक जितने तकुए लगे हुए है, और जितके लाइसेंस दिए जा चुके है, वे १६ अरब ५ करोड पौंड सूत पैदा करने के लिए पर्याप्त है। रासायनिक उद्योग को उस कार्यक्रम से विशष प्रोत्साहन मिलेगा, जो रगों के मध्यवर्ती पदार्थों के, जिसके लिए विशष कच्चे माल की आवश्यकता होगी, उत्पादन के लिए बनाया गया है। विटामिन पैदा करने के क्षेत्र मे, विटामिन 'ए' के कच्चे पदार्थों से पैदा करने की सभावनाओ और लेमन ग्रास तेल के उत्पादन की योजना की परीक्षा की जा रही है। आशा है कि रासायनिक क्षेत्र मे वर्तमान कारखाने, विशेष विकास कर सकेगे। इस समय जो प्रक्रिया चल रही है, उसका उद्देश्य वास्तविक उत्पादन करना है। यह आशा की जाती है कि निजी क्षेत्र मे रासायनिक उद्योगों पर ३ करोड रु० लगाया जाएगा।[1]

तृतीय पचवर्षीय योजना और निजी क्षत्र[2]

निजी क्षत्र के विषय मे एक पूर्ण सिद्धान्त बनाने के लिए योजना आयोग काफी दिनो से देशी और विदेशी साहसियो से बातचीत करता चला आ रहा है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत इस बात को पूर्ण मान्यता प्रदान की जा रही है कि देश की सर्वांगीण उन्नति और औद्योगिक विकास के लिए यह परमावश्यक है कि देश मे उद्योगो का विकास सार्वजनिक और निजी दोनो क्षेत्रो मे हो। इसी के साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया दिया जा रहा है कि उद्योग विकास के कार्य मे भारी उद्योग, मध्यममान के उद्योग, छोटे उद्योग और गृह उद्योग सभी को महत्त्व मिले।

सन् १९५६ की औद्योगिक नीति के अनुसार यह निश्चित किया गया है कि उपभोक्ताओ के महत्त्व की प्राय. सभी वस्तुओ और अन्य साधारण महत्त्व की वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति निजी क्षेत्र मे होगी। द्वितीय पचवर्षीय योजना

1. द्वितीय पन्चवर्षीय योजना—भारत सरकार।
2. तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा—भारत सरकार।

में इस नीति का पूर्ण रूप से अनुकरण किया गया है और तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि निजी क्षेत्र का विकास इसी नीति के अनुसार ही होगा। उद्योगो की स्थापना के लिए जिन २,५०० करोड रुपयो की व्यवस्था की गई है उनमे से १००० करोड रुपये का विनियोग निजी क्षेत्र मे होगा।

निजी क्षेत्र मे उद्योगो की स्थापना और विकास कार्यों के लिए निम्नलिखित प्राथमिकताये निश्चित की गई है —

१—द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे प्रारम्भ होने वाले उद्योगो को पूरा करना।

२—निजी क्षेत्र मे उन उद्योगो की स्थापना जिनके लिए विदेशी साहसी इच्छुक हैं तथा विदेशी पूँजी आदि की व्यवस्था हो चुकी है।

३—उपभोक्ताओ के महत्त्व के उद्योगो को स्थापित करना और उनमे लक्ष्य (Target) के अनुसार उत्पत्ति करना।

४—विभिन्न उद्योगो के लिए सरकार की ओर से जो अधिकतम उत्पत्ति का लक्ष्य निश्चित किया गया है उनको प्राप्त करना।

५—मध्यम आकार के इञ्जीनियरिंग, अलौह (non ferrous) और अन्य रासायनिक पदार्थों के उत्पादन मे वृद्धि करना।

६—मध्यम और छोटे आकार के उद्योगो की स्थापना और उनका विकास करना।[1]

निजी उद्योग क्षेत्र को विस्तार का काफी अवसर मिलेगा .

भारतवर्ष के उप-राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने १७ मार्च, सन् १६५५ को बम्बई मे वर्मा शैल के उद्‌घाटन समारोह के अवसर पर कहा था, "भविष्य मे होने वाली आर्थिक उन्नति हमारे बीते युग पर निभर है · यद्यपि हमारे सामने समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य है, पर अभी हमे इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाना पडेगा समाजवादी अर्थव्यवस्था के यह माने नही है कि हम देश मे प्रचलित सारे उद्योगो का एकदम राष्ट्रीयकरण कर दें और एक नये औद्योगिक युग का निर्माण करें व्यक्तिगत उद्योग क्षेत्रो को देश के उद्योगो की उन्नति के लिए पूरा अवसर मिलेगा—अगर वे ईमानदारी से राष्ट्रहित के दृष्टिकोण को अपना कर चले।"

निजी क्षेत्र के विकास मे सरकारी प्रोत्साहन का अभाव .

टाटा आयरन और स्टील कम्पनी के सचालक श्री जहाँगीर गाँधी के मतानुसार "इसमे कोई सशय नही है कि निजी उद्योग क्षेत्र का देश की आर्थिक व्यवस्था मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह अन्त तक बना

1. Please see Appendix, II

रह सकता है ? उत्तर अवश्य ही नकारात्मक होगा क्योकि निजी उद्योग क्षेत्र मे सरकारी प्रोत्साहन का अभाव है·· गैर सरकारी क्षेत्र की सबसे बडी कठिनाई है सरकार द्वारा उद्योग नीति मे परिवर्तन किया जाना तथा औद्योगीकरण या··· मैनेजिंग एजेन्सी प्रथा का देश से उन्मूलन, उद्योगो के विकास मे मन्द गति, कर की भारी दर आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण निजी क्षेत्र के विस्तार की कोई सम्भावना नही रह पाती।"

निजी उद्योग क्षेत्र को अधिक सरकारी प्रोत्साहन की आवश्यकता है ·

इडियन चैम्बरर्स ऑफ कामर्स और इडस्ट्रीज के फेडरेशन (Federation of Indian Chambers of Commerce and Indusrtries) के २८ वें वार्षिक अधिवेशन मे एक नई आर्थिक-नीति को अपनाने का प्रस्ताव पास किया गया, जिसमे निजी उद्योग क्षेत्र को अधिक प्रोत्साहन देने की चर्चा की गई। इस प्रस्ताव मे उक्त नीति को अपनाने के लिए निम्न कारण दिये गये —

१—मैनेजिंग एजेन्सी प्रथा तथा निजी उद्योग क्षेत्र मे अधिक कार्य कुशल साहसी पाये जाते हैं।

२—निजी उद्योग क्षेत्र देश के उत्पादन की वृद्धि मे काफी मदद कर सकता है।

३—निजी उद्योग क्षेत्र मे तथा सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र मे सहयोग सम्भव है, जिससे देश के उत्पादन को बढाने के लिए सारे प्राकृतिक तथा उत्पत्ति के साधनो का सन्तुलित उपयोग सरलता से हो सकता है।

४—राज्य कुछ शर्ते लगा कर देश के औद्योगीकरण का प्रश्न निजी उद्योग क्षेत्र पर छोड कर अन्य क्षेत्रो के विकास करने मे सलग्न हो सकता है।

५—देश के विधान के अनुसार कल्याणकारी राज्य (Welfare State) मे प्रत्येक व्यक्ति को न्याय एव समान अवसर प्राप्त होता है। अत 'साहसी तथा राज्य' औद्योगिक क्षेत्र मे समान हैं। इसलिए उन्हे औद्योगिक क्षेत्र मे होने का समानरूप से अवसर प्राप्त होना चाहिए।

———

अध्याय ११

राजकीय उद्योग
(State Enterprises)

१—भूमिका
(Introductory)

राजकीय उद्योग मे सभी उद्योग सम्मिलित होने है जो सरकार द्वारा स्थापित किये जाते हैं तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के अपनाने के पश्चात् जिनका राष्ट्रीयकरण किया जाता है। इसका कारण यह है कि ससार के किसी भी देश मे समाजवादी अर्थ व्यवस्था शुरू से ही नही थी बल्कि उसकी स्थापना तथा विस्तार पूँजीवादी शोषण को समाप्त करने के लिए ही हुआ। इस प्रकार यह आशा करना कि किसी भी देश मे प्राचीन काल से ही उत्पत्ति, विनिमय और वितरण पर सरकार का अधिकार रहा हो, गलत होगा।

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् कुछ देशो मे पूँजीवाद की स्थापना हो जाने पर धीरे-धीरे पूँजीपतियो का शोषण बढता गया। इसमे वर्ग सघर्ष का जन्म हुआ। इस वर्ग सघर्ष ने समाजवाद की विचारधारा को जन्म दिया। रूस की श्रमिक क्रान्ति के पश्चात् जब वहाँ पर श्रमिकराज्य की स्थापना हुई (जो वास्तव मे साम्यवाद है) समाजवाद के लाभ की जानकारी के पश्चात् कुछ अन्य देशो ने भी इस विचार को अपनाया कि 'देश की उत्पत्ति और वितरण पर राज्य का पूर्ण अधिकार हो।' अब राजकीय उद्योग (State Enterprise) की विचारधारा अनेक देशो मे फैल रही है।

यह कहना कि भारतवर्ष मे राजकीय उद्योगो की स्थापना केवल स्वाधीनता प्राप्ति और समाजवादी अर्थव्यवस्था को अपनाने के पश्चात् हुई, शतप्रतिशत सही नही है। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष मे भी काफी दिनो से कुछ क्षेत्रों मे राजकीय उद्योग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद था। उदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन काल से ही, विशेषतौर पर सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात्, राजकीय उद्योगो की स्थापना सरकार द्वारा हुई थी। मुख्य रूप से डाक तार विभाग (Post & Telegraph Dept.), रेलवे (Railways), प्रतिरक्षा उद्योग (Defence Industries) आदि का उल्लेख कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी कुछ और उद्योगों का नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाता था।

२—राजकीय उद्योग की विशेषतायें

(Characteristics of State Undertakings)

राजकीय उद्योगो म निम्नलिखित कुछ विशेषतायें हैं, जिनके कारण इसका विस्तार विभिन्न देशो में तीव्रता से हो रहा है —

१. समाजवादी विचारो का विस्तार —आधुनिक काल मे ससार के प्राय सभी देशो मे वर्ग सघर्ष का दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि ससार के विभिन्न देशो में समाजवादी मत का विस्तार होता जा रहा है रूस और चीन जैसे समाजवादी राष्ट्रो ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि देश म धन का समान वितरण और आर्थिक उन्नति समाजवादी अर्थव्यवस्था के अपनाने पर सरलता से प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह भी सोचा जाने लगा है कि समाज-कल्याण तभी सम्भव हो सकता है जबकि देश स्थित समस्त उद्योग और उत्पत्ति का नियन्त्रण, तथा उनका वितरण सरकार के हाथ मे हो।

२—राज्य प्रबन्ध —राजकीय उद्योगो की स्थापना मे एक और विशेषता यह होती है कि उनका प्रबन्ध भी सरकार द्वारा होता है। सरकार के पास साधनो की कमी नही होती और इसीलिए सरकारी उद्योगो मे अच्छे और कुशल प्रबन्धको की कभी कमी नही होती। सरकार कुशल प्रबन्धको को अधिक वेतन और सरकारी नौकरी का प्रलोभन देकर आकर्षित कर सकती है।

३—राजकीय उद्योग के अन्तर्गत उन उद्योगो की स्थापना भी सरलता से सम्भव होती है, जिनम बहुत बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है। साहसी द्वारा बहुत बडी रकम प्राय इकट्ठी नही हो पाती जिसके कारण आवश्यकता और सम्भावना रहते हुए भी कभी कभी बहुत बडे बडे कार्य साहसी अपने हाथ मे नहीं ले पाता है। सरकार के पास विनियोग करने के लिए बहुत पूँजी होती है जिससे वह उन उद्योगो की स्थापना भी राजकीय उद्योग के रूप मे कर लेती है जो अन्यथा स्थापित नही हो सकते थे।

४—इसी प्रकार उन उद्योगो की स्थापना, जिनमे प्रारम्भिक काल मे हानि की सम्भावना होती है और जिसे साहसी स्थापित करना नही चाहता, (परन्तु उनका स्थापित होना आवश्यक है) वे केवल राजकीय उद्योग के रूप मे ही स्थापित हो सकते है।

५—राजकीय उद्योगो की स्थापना मे विदेशी सहायता, (धन या तकनीकी कुशलता Technical skill) के रूप मे सरलता से प्राप्त हो सकती है जो निजी उद्योगो मे प्राय सम्भव नही हो पाती। राजकीय उद्योग के अन्तर्गत विभिन्न देशो से जो यन्त्रादि मगाये जाते है उसके साथ यह शर्त लगी होती है कि उसके विषय मे पूर्ण यान्त्रिक तथ्य (Mechanical Know-how) उस देश की सरकार से प्राप्त होगे।

६—सरकारी उद्योगो की स्थापना से, पूँजीपतियो की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से जो धन की बरबादी होती है, वह समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि जब देश के प्रत्येक कल कारखानो पर राज्य का अधिकार होता है तो राज्य द्वारा इन कारखानो से उतनी ही वस्तुये या सेवाये उत्पन्न की जाती हैं जितनी कि आवश्यक हैं। सरकार द्वारा वस्तु या सेवा के विषय मे प्रचार सरलता से हो जाता है जिससे उन्हे बेचने मे अधिक कठिनाई नही होती।

३—भारत मे राजकीय उद्योगों का विकास
(Evolution and Growth of State Undertakings in India)

भारत मे राजकीय उद्योग काफी दिनो से चला आ रहा है। यह बात ठीक है कि राजकीय उद्योग का क्षेत्र अब बहुत बढ गया है, परन्तु पहले भी राजकीय उद्योग इस देश मे विद्यमान था। उदाहरणार्थ, हम टकसाल (Mint) और पोस्ट-आफिस (Postal System) का उल्लेख कर सकते हैं। भारतीय रेल व्यवस्था (Indian Railways System) इसका एक अन्य उदाहरण है। भारत के अँग्रेज अधिकारी कभी भी समाजवादी अर्थव्यवस्था के पक्ष मे नही थे, किन्तु उन्होंने टकसाल, रेल, तार विभाग, अस्त्र-शास्त्र का निर्माण आदि कुछ कार्य अपने अधिकार मे रखे थे ताकि उसके द्वारा राजकीय आय मे वृद्धि हो और देश की सुरक्षा के लिये किसी पर आश्रित न रहना पडे।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश के नेताओ का ध्यान देश को शीघ्रता से समृद्धशाली बनाने की ओर गया। उन्होंने अनुभव किया कि देश के विकास के लिये देश मे अधिक उद्योग धन्धे स्थापित हो। एव देश के प्राकृतिक साधनो का सन्तुलित शोषण हो। इसी प्रकार उनका यह भी विचार था कि देश मे बडे उद्योगो की स्थापना और उनका प्रबन्ध, बडी-बडी योजनाओ का बनाना और उनको कार्यान्वित करना, देश की पूँजी की कमी को दूर करना और विदेशी सहायता प्राप्त करके देश का औद्योगीकरण तभी सम्भव हो सकता है जब कि यह सब कार्य 'राज्य-उद्योग' के रूप मे हो।

सन् १९४२ मे कॉंग्रेस के अवादी सम्मेलन मे इस बात का निश्चय किया गया कि देश के आर्थिक ढाँचे को बदल कर समाजवादी ढग के समाज (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना की जाय। तभी से राज्य उद्योगो पर अधिक जोर दिया जाने लगा। समाजवादी ढग के समाज की स्थापना का उद्देश्य ही यह है कि धीरे-धीरे राष्ट्रस्थित उत्पत्ति और वितरण के सभी साधनो का राष्ट्रीयकरण हो जाय और जो नई सस्थायें या उद्योग धधे खोले जायें वे सभी 'सार्वजनिक उद्योग' के रूप में हो, और इस प्रकार गैर सरकारी उद्योग क्षेत्र (Private Sector) धीरे धीरे सार्वजनिक उद्योग-क्षेत्र (Public Sector) मे परिवर्तित हो जाय।

खाद्य पदार्थ की कमी स्वाधीनता के पश्चात् भी भारतवर्ष में बनी रही। इससे सरकार को इस बात के लिए सचेष्ट होना पडा कि खाद्य-पदार्थों के वितरण

का समस्त दायित्व वह अपने ऊपर ले ले। इसके दो मुख्य कारण थे, पहला यह कि खाद्य-सामग्री विदेशों से मगाना आवश्यक था जो केवल सरकार द्वारा ही सरलता से सभव हो सकता था और दूसरा यह कि खाद्य-सामग्रियों का उचित और ठीक वितरण केवल राज्य द्वारा ही सभव हो सकता है। इस प्रकार खाद्य पदार्थों को इकट्ठा करने और उसको वितरण करने का कार्य सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से ही देश की कृषि और सिंचाई में उन्नति करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। कृषि की उन्नति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि खेतों में अच्छे प्रकार के खाद का प्रयोग हो। भारत में रासायनिक खाद (Chemical fertiliser) की उत्पत्ति पहले नहीं होती थी, जिसमे सरकार को इसका आयात करना पडता था। इसकी कमी को दूर करने के लिए सरकारी उद्योग के रूप मे रासायनिक खाद निर्माण करने के कारखाने खोले गए, जो ठीक तरह से कार्य कर रहे हैं।

सन् १९५४ के बिल द्वारा इसी बात की चेष्टा की गई कि जो उद्योग निजी उद्योग क्षेत्र में हैं वे सरकार के निर्देशानुसार कार्य करें।

इसके पश्चात् जब कुछ उद्योग सार्वजनिक उद्योग-क्षेत्र मे खुल गए और लोगो को इस बात की शका होने लगी कि शायद यह सार्वजनिक उद्योग ठीक प्रकार से कार्य नही कर रहे है तो जनता की माँग पर एक बिल सन् १९५४ मे पास किया गया जिसका शीर्षक था "The Public Financed Industries Control Bill 1954," इसके पश्चात् Estimates Committee ने तथा Public Accounts Committee ने भी सार्वजनिक-उद्योग सबधी तथ्यो पर समय-समय पर प्रकाश डाला है। इनके सुझावो तथा अन्य सुझावो के अनुसार सार्वजनिक उद्योगो का नियन्त्रण और प्रबन्ध सरकारी कर्मचारियो द्वारा होता है।

जीवन-बीमा कम्पनियो का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Life Insurance Com) करने मे, इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण और उसको स्टेट बैंक मे परिवर्तित करने से तथा एयर-इन्डिया इन्टरनेशनल (A. I I) के राष्ट्रीयकरण से सार्वजनिक उद्योग के क्षेत्र का और विकास हो गया। इनके राष्ट्रीयकरण करने के तीन मुख्य कारण थे। पहला तो यह कि इम्पीरियल बैंक और जीवन-बीमा कम्पनियो मे देश के अधिकतर व्यक्तियो की पूँजी, अमानत या बचत इकट्ठी थी, जिसका सदुपयोग राष्ट्र उन्नति के हित मे नही हो रहा था। दूसरा कारण यह था कि एयर इडिया-इन्टरनेशनल का कार्य सुचारु रूप से नही चल पा रहा था क्योकि उसके लिए जितनी पूँजी की आवश्यकता थी वह गैर-सरकारी कम्पनी द्वारा इकट्ठा करना कठिन था, तथा उन्हे बडी बडी विदेशी सस्थाओ के साथ प्रतिस्पर्द्धा करनी पड रही थी, जिससे उनके समाप्त हो जाने की सम्भावना थी, तीसरा कारण यह था कि राष्ट्र की बहुमुखी उन्नति के लिए इनका राष्ट्रीयकरण आवश्यक समझा गया था।

सन् १९५१ मे ए०डी० गोरवाला ने राजकीय उद्योग के विषय मे जो अपनी रिपोर्ट पेश की थी उसमे उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया था कि "भारतवर्ष के लिए राजकीय उद्योग की स्थापना और उसका विस्तार बहुत आवश्यक है।" खास तौर पर उन्होंने यह सिफारिश की थी कि खाद्य पदार्थों का व्यापार और नियन्त्रण, रासायनिक खाद और अन्य प्रकार की आवश्यक वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति—जो सरलता से गैर-सरकारी उद्योग-क्षेत्र मे उत्पन्न नही हो सकती—सार्वजनिक उद्योग-क्षेत्र मे उत्पन्न होनी चाहिए। उन्होंने इस बात की भी सिफारिश की थी कि राज्य उद्योगो का प्रबन्ध, उनका सचालन और विस्तार सरकारी कर्मचारियो द्वारा, राष्ट्र हित के उद्देश्य से हो। इस प्रकार उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि उद्योगों का स्वामित्व, प्रबन्ध और सचालन जनहित के उद्देश्य से सरकार के ही हाथ मे हो। उसमे लाभ कमाने का कोई उद्देश्य न रहे। राज्य उद्योगो के लाभ उनसे प्राप्त सुविधाये और उनका द्रुत विस्तार इस बात का प्रमाण है कि सरकार ने जनता के विश्वास की अवहेलना नही की है। यही कारण है कि भारत मे सार्वजनिक उद्योग क्षेत्र का विकास दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है।

४—राज्य-उद्योगों का प्रबन्ध

(Management of State Undertakings)

राज्य-उद्योग या राज्य-सचालित व्यवसाय का प्रबध सरकारी कर्मचारियो द्वारा ही होता है। उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण पद मैनेजर या मैनेजिंग-डाइरेक्टर का होता है। इसकी सहायता करने के लिए तथा उसके कार्य को सरल बनाने के लिए डाइरेक्टरो की एक समिति (Board of Directors) होती है। ये मैनेजर को समय-समय पर विभिन्न प्रकार के विषयो पर सलाह देते हैं। मैनेजर प्राय इनकी सलाहो को मान कर काम करता है, परन्तु उसके लिए यह हमेशा आवश्यक नहीं होता कि उन सलाहो को शत प्रतिशत रूप मे माने। बोर्ड के सदस्य प्राय मैनेजर को सभापति मान कर काय करते है और हमेशा इस बात की चेष्टा करते हैं कि वह सभी पारस्परिक सहयोग और सद्भावना से काम करें। उद्योग की स्थिति और उसके आकार के हिसाब से डाइरेक्टरो की सख्या निश्चित की जाती है। मध्यम और बडी मात्रा के उद्योग मे प्राय ५ से लेकर ९ तक डाइरेक्टर होते हैं। इनमें से प्रत्येक को एक विभाग सौंप दिया जाता है—जैसे, किसी को श्रम सम्बन्धी, किसी को धन सम्बन्धी, किसी को प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारी बना दिया जाता है। मध्यम रूप की उत्पत्ति सस्थाओ मे प्राय- प्रत्येक डाइरेक्टर को एक से अधिक विषयो का भार ग्रहण करना पडता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, मैनेजर या डाइरेक्टरो के सभापति को, जहाँ तक हो सके इन डाइरेक्टरो के मतो की अवहेलना नहीं करनी चाहिए; किन्तु उसे इस बात का अधिकार है कि अगर वह आवश्यक समझे तो डाइरेक्टरो के मत की अवहेलना करे। उस हालत मे उसे सम्बन्धित मन्त्री को इस

बात की सूचना देनी पडती है कि उसने डाइरैक्टरो के मतो के अनुसार काम नही किया है।

मैनेजर और डाइरैक्टरो की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। यदि किसी पूर्वस्थित उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया गया हो तो इस बात का भरसक प्रयास किया जाता है कि उसमें जो पहले मैनेजर, सहकारी मैनेजर आदि थे, उनकी ही नियुक्ति डाइरैक्टरो के रूप मे हो। इस विषय मे शिक्षा आदि के विषय मे कोई पाबन्दी नही होती। उसकी शिक्षा जो पहले से है, उसका अनुभव, काय कुशलता, जिम्मेदारी और सद्भावना से कार्य करने की प्रवृत्ति तथा उसकी उस उद्योग के प्रति वफादारी आदि ऐसे गुण है जिनके आधार पर उसकी नियुक्ति डाइरैक्टर के रूप मे होती है। जाति-पाँति या वेतन का कोई आधार इस नियुक्ति मे नही होता। इन डाइरैक्टरो की उम्र प्राय तीस से पचास वर्ष तक की होती है। उनके वेतन और अन्य सुविधाओ के बारे म कोई निश्चित नियम नही है—काय के स्वरूप, उत्पत्ति की मात्रा, योग्यता, शिक्षा, अनुभव और पहले के वेतन आदि बातो के द्वारा ही उनका वेतन निश्चित किया जाता है।

मैनेजर और डाइरैक्टरो की नियुक्ति किसी विशेष अवधि के लिए नही होती। यह वास्तव म 'प्रेसीडेन्ट' की मर्जी पर है कि वह कितने दिन तक मैनजर या डाइरैक्टर की नियुक्ति करता है। डाइरैक्टरो की पदच्युति कई कारणो से हो सकती है, जिनम से प्रमुख है—पागलपन, शारीरिक अस्वस्थता, अयोग्यता, जानबूझ कर काय न करना, उच्च अधिकारियो की आज्ञा की अवहेलना करना, चारित्रिक दोष आदि। आवश्यकता पडने पर मैनेजर सम्बन्धित व्यक्ति' से स्तीफा माग सकता है जिसे वह सम्बन्धित मन्त्री के पास भेज देता है।

मैनेजर और डाइरैक्टरो की नियुक्ति स पहले यह आवश्यक है कि वे अपनी आमदनी और अपनी सम्पत्ति के विषय म सम्बन्धित मन्त्री को सूचित कर दें। इसी के साथ-साथ उनको यह भी बताना पडता है कि उनकी रुचि या योग्यता किस ओर है ? क्या उनका कोई सम्बन्धी या निकट सम्बन्धी उसी प्रकार के व्यवसाय मे सलग्न है ? क्या उनका कोई सम्बन्धी किसी देशी या विदेशी फर्म मे कार्य कर रहा है ? जो 'सार्वजनिक-शासन' (Civil Service) विभाग से आते है, कुछ हद तक उनको भी इन विषयो की सूचना देनी पडती है और आवश्यकता पडने पर उन्हे उद्योगो के काय के साथ साथ 'सावजनिक शासन' का कार्य भी करना पडता है।

राज्य उद्योगों की व्यवस्था प्रणाली

१—विभागीय व्यवस्था (The Departmental Pattern)— इस व्यवस्था के अन्तर्गत राजकीय-उद्योग का उत्तरदायित्व सम्बन्धित मन्त्री पर होता है, जो उस कार्य को सुचारुरूप से चलाने के लिए एक मैनेजर तथा बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (Board of Control) की नियुक्ति करता है, जो इस प्रकार की राज्य व्यवस्था का

प्रबन्ध करते है। इसके अन्तर्गत मैनेजर एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस (Administrative Service) के समकक्ष होता है। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सदस्य वह व्यक्ति होते है जिन्हे उद्योगो के विषय मे पर्याप्त जानकारी और अनुभव होता है। इस प्रकार की राज्य व्यवस्था का उत्तरदायित्व मन्त्री पर होने के कारण वह पालियामेंट के प्रति इसके विषय मे उत्तरदायी होता है।

भारतवर्ष मे यह प्रथा विद्यमान है, जिसमे उल्लेखनीय उद्योग यह है : रेलवे, डाक और तार विभाग, प्रतिरक्षा व्यवसाय, खाद्य पदार्थ और रासायनिक खाद का व्यवसाय; हीराकुण्ड और भाखडा नांगल बाँध, चितरजन लोकोमोटिव फैक्टरी, पैनिसिलीन फैक्टरी, नशनल इन्स्ट्रूमेण्ट फैक्टरी (National Instrument Factory), सरकारी नमक उत्पत्ति उद्योग (Govt Salt Works) इत्यादि। इनमे कुछ अन्य उद्योग भी क्रमश शामिल किये जा रहे है।

इस प्रकार के प्रबन्धित राज्य व्यवसायो मे विशेष गुण यह होता है कि सम्बन्धित मन्त्री और कुशल व्यवस्थापको के हाथ मे यह कार्य होता है, जिससे इनकी विकास की सम्भावना और शक्ति म वृद्धि होती है। परन्तु इनका सबसे बडा दोष यह होता है कि सरकारी कर्मचारियो द्वारा कार्य होने के फलस्वरूप प्रत्येक कार्य देर से, और अकुशलता से और कभी-कभी गलत नीतियो मे होते है।

२—**अर्द्ध-सरकारी व्यवस्था** (The Operating-Contract System)—इस प्रथा के अन्तर्गत स्थापित किये गये उद्योगो का स्वामित्व सरकार का होता है, परन्तु उसकी व्यवस्था का कार्य साहसी द्वारा होता है। इस प्रकार साहसी और सरकार मे यह समझौता हो जाता है कि सरकार उस उद्योग की स्थापना के लिए सब प्रकार की सुविधाये प्रदान करेगी और साहसी का कार्य यह होना है कि उस उद्योग मे सम्बन्धित सभी प्रकार की व्यवस्था और योजना का कार्य करे। लाभ का प्रतिशत या उसका स्वरूप भी इस समझौते के द्वारा निश्चित किया जाता है। इसके अन्तगत कुछ और सामान्य शर्ते सरकार की ओर से रक्खी जाती है—जैसे, सरकार उस व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर सकती है, उत्पत्ति की मात्रा और वस्तु के गुण (quality) को नियन्त्रित कर सकती है, आवश्यकता पडने पर साहसी को इस बात का भी प्रबन्ध करना पडेगा कि उस उद्योग मे लगे कर्मचारियो की साधारण और विशिष्ट शिक्षा का प्रबन्ध करे।

यह प्रथा प्राय अविकसित देशो (Under-developed Countries) मे पायी जाती है। इन देशो की सरकारो का आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नत देशो के साहसियो के साथ समझौता होता है, जिसके अनुसार वे साहसी इन देशो मे भारी कारखाने स्थापित करते है। इसका कारण यह होता है कि इन पिछडे देशो के पास ऐसे उद्योगो के स्थापित करने के लिए साधन और सुविधायें प्राप्त नही होती।

इस प्रथा का सबसे बडा गुण यह होता है कि राष्ट्र के पास साधन न होते हुए भी वह देशी और विदेशी साहसियो की सहायता से (और दोनो पक्षो के लाभ

की सम्भावना से) इन देशो में नये-नये और भारी उद्योगों की स्थापना हो जाती है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति मे सुधार हो जाता है। इस प्रथा से एक अन्य लाभ यह भी होता है कि इनकी व्यवस्था मे सरकार को हस्तक्षेप नही करना पडता और इनकी व्यवस्था कार्य-कुशल तथा अनुभवी साहसियो द्वारा होने के कारण यह द्रुत गति से उन्नति कर सकते है। इस प्रथा मे हानि केवल यह होती है कि यदि समझौता ठीक प्रकार से न किया जाय या कुछ वर्षो के पश्चात् इन उद्योगो का राष्ट्रीयकरण सरकार द्वारा सम्भव न हो सके तो राष्ट्र को सदा हानि उठानी पडती है क्योंकि उसका लाभ साहसी ही उठाते रहते है।

भारतवर्ष मे इस प्रकार के भी कुछ राज्य-उद्योग हैं, जैसे, हिन्दुस्तान स्टील कम्पनी, राउरकेला, सिन्द्री फर्टीलाइजर्स (Sindri fertilizers), ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन (Eastern Shipping Corporation), हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड (Hindustan Shipyard Ltd.) इत्यादि। *इस प्रथा में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि यह आवश्यक नहीं है कि सरकार केवल विदेशी साहसियों के साथ ही समझौता करे, देशी साहसियों के साथ भी वह समझौता कर सकती है।*

३—सहकारी प्रथा (The Co-operative Type)—इस प्रथा के अन्तर्गत उद्योग के क्षेत्र म पूंजीपतियो और राज्य मे पारस्परिक सहयोग की स्थापना होती है। इसमे सार्वजनिक क्षत्र और निजी क्षेत्र दोनो सम्मिलित होते है, इसलिए इसको सहकारी प्रथा कहते है। इसमे उद्योगो की स्थापना, पूँजी का प्रबन्ध, स्वामित्व और प्रबन्ध सरकार तथा साहसी दोनो के बीच मे बँटा होता है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के सम्मिलित प्रयास से यह उद्योग स्थापित होते है। इन उद्योगो मे सबसे बडा लाभ यह होता है कि सरकारी नीति और नियन्त्रण का सम्मिश्रण साहसी की योग्यता और व्यवस्था-शक्ति के साथ होता है, जिसके फलस्वरूप इन उद्योगो मे हानि की सम्भावना कम हो जाती है। अवादी अधिवेशन (१९४८) के आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव मे जो सरकारी और गैर-सरकारी उद्योग-क्षेत्र की स्थापना का सकेत किया गया था, यह प्रथा प्राय उसी रूप मे है। इण्डियन टेलीफून इन्डस्ट्रीज लिमिटेड (Indian Telephone Industries Limited), हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री लि० (Hindustan Housing Factory Ltd.), हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि० (Hindustan Machine Tools Ltd), हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि० (Hindustan Shipyard Ltd), आदि इसके उदाहरण हैं। धीरे-धीरे इस प्रथा के द्वारा भी, उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करके, देश मे समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना सम्भव हो सकती है।

४—स्वय व्यवस्थित प्रथा (Autonomous Management Patterns)—इस प्रथा के अन्तर्गत पार्लियामेण्ट द्वारा कानून बना कर इन सस्थाओं की स्थापना की जाती है, जिससे वह अपने नाम से और अपने प्रबन्ध द्वारा

सरकारी उद्योगो की स्थापना और उनका प्रबन्ध कर सकें । इन पर स्वामित्व सरकार का होता है किन्तु इनका काय प्रबन्ध निजी क्षेत्र के उद्योगो की व्यवस्था के अनुरूप होता है । सरकारी उद्योग के सभी लाभ और हानियाँ इसमे भी विद्यमान होती है । दामोदर वैली कॉरपोरेशन (Damodar Valley Corporation), जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation) आदि इसके उदाहरण हैं ।

५—राज्य-उद्योगो का आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis of State Undertakings)

राज्य उद्योगो की स्थापना और उसके विस्तार से राष्ट्र को कुछ लाभ प्राप्त होते है जो निम्नलिखित हैं —

१—राज्य उद्योग की स्थापना और उनके विस्तार स समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना सरल और सम्भव हो जाती है ।

२—राज्य उद्योगो की स्थापना लाभ न कमाने और जनता को अधिकतम सुविधाय प्रदान करने के लिए होती है । इस प्रकार राज्य उद्योग की स्थापना से जनता का पूँजीपतियो द्वारा शोषण समाप्त हो जाता है ।

३—राज्य उद्योगो की स्थापना से देश मे औद्योगीकरण तीव्रता से और एक नीति के अनुसार सम्भव हो सकता है जो पिछडे हुए देशो मे गैर सरकारी उद्योग के रूप मे सम्भव नही हो पाता । सरकार इस बात की ओर भी सचेष्ट रहती है कि उद्योगों की स्थापना देश के विभिन्न भागो मे इस ढग स की जाय कि देश स्थिति कच्ची सामग्री और प्राकृतिक साधनो का अधिकतम प्रयोग सम्भव हो सके और उद्योगा के विस्तार से स्थानीयकरण को बढावा न मिले ।

४—राष्ट्र उद्योगो द्वारा सकट का सामना सरलता से हो सकता है, जैसे पिछले कई वर्षो मे सरकार ने खाद्य पदार्थों में व्यापार करके राष्ट्र को अन्न सकट से बचा लिया है ।

५—बडे बडे उद्योगो और योजनाओ की स्थापना और उनका विस्तार (विशेषतौर पर अविकसित देशों मे) केवल सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है ।

६—उद्योग और आमदनी के क्षेत्र म असमानता को दूर करने के लिए, तथा राज्य मे अधिकतम प्रतिरक्षा सामग्री की उत्पत्ति के लिए और देश को आर्थिक दृष्टि से उन्नत बनाने के लिए राज्य उद्योगो की स्थापना या उद्योगो का राष्ट्रीयकरण या सार्वजनिक क्षेत्र मे नये नये कारखानो की स्थापना आवश्यक होती है ।

उपरोक्त गुणो के अतिरिक्त कुछ और भी गुण राज्य-उद्योगो मे पाये जाते है । परन्तु यह सोचना कि इन राज्य-उद्योगो से केवल लाभ ही लाभ हैं, कोई हानि नहीं, भ्रमात्मक होगा । वास्तव मे इनमे बहुत से दोष हैं, जिनमे से कुछ निम्न-लिखित हैं :—

१—राज्य उद्योगो की व्यवस्था के कार्य को चलाने के लिए जो नियुक्तियाँ होनी हैं वे हमेशा ठीक नही होनीं। इसमे प्राय. ऐसे व्यक्तियो की नियुक्ति होती हैं जिनकी साधारण कार्य कुशलता और दक्षता पर किसी को कोई सन्देह नही हो सकता परन्तु उन्हे व्यवसाय चलाने या उद्योगो के प्रबन्ध का कोई अनुभव नही होता, इसलिए वह इन कार्यों को उतनी अच्छी तरह नही कर सकते जिस तरह से निजी क्षेत्र के साहसी या व्यवस्थापक कर सकते है।

२—राज्य-उद्योगो के व्यवस्थापको पर इस बात का कोई प्रभाव नही पडता कि उद्योग से लाभ प्राप्त हो रहा है या हानि। इसलिए वह इन उद्योगो की उन्नति के लिए उतना प्रयास कभी भी नही कर पाते जितना कि साहसी करता है।

३—प्राय यह कहा जाता है कि राज्य-उद्योगो की स्थापना वर्ग-सघर्ष को समाप्त करने के लिए की जाती है। खेद का विषय है कि भारत सरकार अपन राज्य-उद्योगो द्वारा अभी तक इस वर्ग-सघर्ष को समाप्त नही कर पायी है।

४—जिन वस्तुओ या सेवाओ की राज्य-उद्योगो द्वारा उत्पत्ति होती है उनका निर्माण राष्ट्र मे अन्य किसी कारखाने म नही होता। इसका अर्थ यह होता है कि इन वस्तुओ की उत्पत्ति और वितरण का पूरा अधिकार सरकार को प्राप्त हो जाता है जिसमे एकाधिकार (Monopoly) की स्थापना हो जाती है।

५—सरकारी उद्योगो की स्थापना से उपभोक्ताओ का महत्त्व समाप्त हो जाता है क्योकि इसमे प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हो जाता है। जब बाजार मे कीमत का निर्धारण प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर होता है तो प्रत्येक उत्पादक कम से कम उत्पत्ति-व्यय पर वस्तुएँ उत्पन्न करता है एव उपभोक्ता अपनी इच्छानुसार वस्तुओ को खरीदता है। इस प्रकार उस परिस्थिति म उत्पादक को उपभोक्ताओ की इच्छानुसार वस्तुएँ उत्पन्न करनी होती है परन्तु सरकारी उद्योग की स्थापना से प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है और इसीलिए उपभोक्ता का महत्त्व भी समाप्त हो जाता है।

६—राज्य व्यापार म प्रायः वस्तुओ की कीमते ऊँची होती है जिससे देश की जनता को कठिनाइयों का सामना करना पडता है। उदाहरणाथ, भारत सरकार द्वारा जब से खाद्य पदार्थ (food grains) का व्यापार हो रहा है तभी से इनकी कीमतो मे वृद्धि हो गइ है।

७—यह कहना कि राज्य उद्योगो की स्थापना से ही देश मे समाजवादी अर्थ व्यवस्था की स्थापना सम्भव हो सकती है, पूर्णत. ठीक नही है। इसका कारण यह है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना केवल मात्र राज्य-उद्योगो की स्थापना द्वारा नही होती—इसके और भी बहुत से तरीके हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था की पूर्णरूपेण स्थापना मे सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र का भेद स्वत. ही समाप्त हो जाता है। क्योकि उसमे उत्पत्ति और वितरण का स्वामित्व केवल सरकार के हाथ मे होता है।

८—राज्य-उद्योगो की स्थापना से वस्तुओ और सेवाओ की कीमत प्राय अधिक होती है क्योंकि सार्वजनिक उद्योगो मे व्यय अधिक होता है।

९—राज्य उद्योगो मे श्रमिको की शिक्षा और उनके कल्याण पर प्राय. उतना बल अभी नही दिया जा रहा है जितना कि दिया जाना चाहिये। विशेषतौर पर समाजवादी अर्थव्यवस्था मे जितना महत्त्व श्रम कल्याण पर होना चाहिये। उतना महत्त्व श्रम कल्याण पर अभी भारत मे नही दिया जा रहा है।

१०—राज्य-उद्योग की स्थापना से या राज्य व्यवसाय के प्रवर्तन से कभी-कभी विभिन्न वस्तुओं और सेवाओ पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर राशनिग (Rationing) प्रथा भी जारी की जाती है, जिससे जनता को कठिनाइयां होती हैं।

११—उद्योगों के राष्ट्रीयकरण से औद्योगिक नीति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़ते है, जो स्थितशील उद्योग नीति के विरुद्ध है।

१२—राज्य-उद्योगो के प्रबन्ध मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन उतनी सरलता से नही हो पाता जितना कि निजी-उद्योगो में।

१३—राज्य-उद्योगो की स्थापना मे प्रायः अभिनवीकरण (Rationalisation) की पद्धति को अपनाया जाता है, जिससे उत्पत्ति का ढग श्रम-प्रमुख (Labour intensive) के स्थान पर पूंजी-प्रमुख (Capital intensive) हो जाती है और देश मे बेरोजगारी फैल जाती है।

१४—सरकार द्वारा नियन्त्रित और प्रबन्धित उद्योग हमेशा मन्दगति से कार्य करते है क्योंकि इस क्षेत्र मे 'लाल फीता' (Red tape) की कठिनाइयाँ विद्यमान रहती है।

१५—राज्य-उद्योगो की स्थापना कभी कभी विदेशी साहसियो के सहयोग से भी होती है, जिससे, आगे चल कर राष्ट्र को हानि भी हो सकती है।[1]

---

1 इस पर बहुत मतभेद है।

अध्याय १२

आर्थिक नियोजन के प्रकार एवं पद्धतियाँ[1]

(Kinds And Techniques of Economic Planning)

१—विषय प्रवेश

(*Introductory*)

आर्थिक नियोजन के व्यापक एव आलोचनात्मक अध्ययन के लिए, नियोजन के प्रकार तथा पद्धतियो का अध्ययन आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। योजना के संदर्भ मे वित्तीय साधनो को एकत्र और सगठित करके आर्थिक नीति की इतिश्री नही हो जाती, बल्कि नीति का उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह योजना की आवश्यकताओ के अनुसार उपभोग को उत्साहित करे और वास्तविक साधना का प्रयोग करे। योजना केवल उन कार्यो की सूची नही है जो हमे करने हैं बल्कि योजना मे एक नीति होती है जिसके अनुसार ये कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। मोटे तौर पर दो कार्य पद्धतियां हैं, और उन दोनो का स्तेमाल किया जाना चाहिए। प्रथम, आर्थिक क्रिया को अर्थ और वित्त नीति के माध्यम से पूरी तरह नियन्त्रित करना और द्वितीय, आयात और निर्यात नियन्त्रण, उद्योगो और व्यवसायो को लाइसेन्स देना, मूल्य-नियन्त्रण और नियमन आदि उपाय जो अर्थव्यवस्था के किसी विशेष क्षेत्र की या उप-क्षेत्र की आर्थिक क्रिया को प्रभावित और नियमित करते हैं। व्यापक योजना मे, जिसका उद्देश्य विनियोग मे यथेष्ट वृद्धि करना और प्राथमिकता की योजना पर अमल करना होता है, इन दोनो तरह के नियन्त्रणो की जरूरत पडती है।[2] ससार के सभी देशो मे, जहाँ केन्द्रीय नियोजन की पद्धति को अपनाया जाता है, इन दोनो ही प्रणालियो को व्यवहार मे लाया जाता है। इसका कारण यह है कि यह एक-दूसरे के पूरक हैं। किन्तु यह सोचना कि नियोजन की केवल यही दो प्रणालियाँ एव पद्धतियाँ है, गलत होगा। नियोजन की कुछ प्रमुख पद्धतियाँ और प्रणालियाँ निम्न लिखित हैं :

---

1. With special reference to India
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (संक्षिप्त), पृष्ठ १८

२—उद्देश्यपूर्ण नियोजन
(Planning with a Purpose)

यदि कोई व्यक्ति शब्दकोश के अर्थानुसार 'उद्देश्यपूर्ण नियोजन' शब्द का अध्ययन करे तो वह भ्रम मे पड जायगा। क्या बिना किसी उद्देश्य के भी योजना का अस्तित्व हो सकता है ? इसका स्पष्टत उत्तर होगा 'नही।' फिर इस शब्द का क्या आशय है ? नियोजन अच्छी तरह से निश्चित लक्ष्यो तथा उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। लक्ष्यो की प्राप्ति पूर्णरूपेण अथवा आशिक रूप मे हो सकती है। यदि ये पूर्णरूपेण प्राप्त किये जायें तो वह 'उद्देश्यपूर्ण नियोजन' कहलायेगा, अन्यथा नही। स्तालिन के अनुसार, "पूँजीवाद के समर्थक भी यह मानते हैं कि उत्पत्ति कार्य मे 'किसी' प्रकार का नियन्त्रण आवश्यक होता हैं परन्तु पूँजीवादियों की योजना काल्पनिक और अव्यावहारिक होती है जो किसी के लिए भी 'बाध्य मूलक नही होती, यही कारण है कि उन्हे योजना से सफलता नही मिलती।"[1] वर्तानियाँ के नियोजको ने भी स्पष्ट शब्दो मे कहा था, "पहले नियोजन का एक आधार बना लेना चाहिए, फिर उसका पालन पूर्ण शक्ति से करना चाहिए।"[2]

जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'उद्देश्यपूर्ण नियोजन' नियोजन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमे उद्देश्य एव आधार निश्चित तथा स्थिर होते हैं। इस प्रणाली मे आवश्यकता पडने पर लक्ष्यो और उद्देश्यो मे परिवर्तन सभव नही होता है। जब इस प्रकार का नियन्त्रण बना लिया जाता है तो राज्य, सरकार एव जनता उसको कार्यान्वित करने के लिए भरसक प्रयास करते है। भारत की प्रथम, द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे से कोई सी भी इस प्रकार की नही है। इसका मुख्य कारण यह रहा कि भारतीय योजनाओ को आवश्यकतानुसार एव वित्तीय-स्थिति (आभ्यन्तरिक एव विदेशी) के अनुसार समय-समय पर बदलने की आवश्यकता पडती रहती है।

३—भौतिक और वित्तीय योजना[3]
(Physical and Financial Planning)

समाज की जनशक्ति के प्रयोग मे विकास के साथ साथ जो परिवर्तन आता है, वह इस बात का सूचक है कि अन्य साधनो के उपयोग की दिशाओ मे भी परि-

---

1 Speech of Stalin, incorporated in **Soviet Economic System** ' By Baykov, p 424

2 Sir Stafford Cripps, Speech deliverd in House of Commons, Feb. 28,1946

3 (संक्षिप्त) द्वितीय पचवर्षीय योजना, १९५६, योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ ७६ ७१

वर्नन आया है । अथवा यो कहा जाय कि यह सभी परिवर्तन परस्परावलम्वी है । वास्तविक साधनो को लगातार सतुलित ढग से उन्नत होना और आगे बढना है । विकास के लिए आयोजन मे यह बात निहित है कि वाछित परिणाम की प्राप्ति के लिए अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वास्तविक साधनो के उपयोग मे कैसे परिवर्तन लाये जाये । समस्या के प्रति यह दृष्टि रखना, अर्थात् वास्तविक साधनो अथवा भौतिक योजना के रूप मे विकास की समस्या को देखना, वैसा ही है जैसे, आवश्यक या प्रस्तावित विकास प्रयत्नो के अन्तर्गत इस प्रकार साधनो का आवटन और उत्पादन, जिससे आय और रोजगार की अधिक से अधिक वृद्धि हो । दूसरे शब्दो मे, विकास के कार्यक्रम को सचालित करते हुए यह जरूरी है कि हम मुद्रा और वित्त के अवगुठन के पीछे झाक सके और यह अनुमान लगा सके कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत और विशेषत सामरिक महत्त्व के क्षत्रो मे माग और पूर्ति पर उन कार्यक्रमो की क्या प्रतिक्रिया होगी । इसके साथ ही वास्तविक साधनो को जुटाते हुए हमे केवल अलग अलग योजना-कार्यो पर दृष्टि नही रखनी है बल्कि सम्पूर्ण कार्यक्रमो को एक साथ ध्यान मे रखना है । इस उद्देश्य से हमे यह अध्ययन करना है कि किसी विशेष बिन्दु पर उत्पादन मे आयोजित वृद्धि के फलस्वरूप किस प्रकार विभिन्न दिशाओ मे पूँजी-विनियोग की माँग बढती है ।

दूसरे शब्दो मे, वास्तविक साधनो के रूप मे योजना मे कुछ सन्तुलन होने चाहिए । जब किसी योजना का प्रारम्भ होता है तो वह पहले पहल एक स्थापित सन्तुलन को डिगा देता है और तब उच्चतर स्तर पर एक नया सन्तुलन स्थापित करता है । समस्या यह है कि आवश्यक वास्तविक साधनो, जैसे मशीनें, श्रम, व्यवस्था और साज-सज्जा आदि की पूर्ति उचित मात्रा मे होती रह । कुछ हद तक विनियोग के किस स्वरूप को अपनाया जाता है, इससे आवश्यक सन्तुलन स्थापित हो सकेगा । जहाँ ऐसा नही किया जा सकता वहाँ अवरोध के उन बिन्दुओ को स्पष्टत बताया जा सकता है जिनका सामना करना है और जिन्हे दूर करना है ।

इस बात पर बल देना आवश्यक है कि योजना मे जिस सन्तुलन को प्राप्त करना है, वह वास्तविक और वित्तीय दोनो ही रूपो मे होना चाहिए । उत्पादन के क्रम मे मुद्रा के रूप मे आय का जन्म होता है, और मुद्रा की माग पर सम्भरित वस्तुओ की खपत होती है । अत यह बात महत्त्वपूर्ण है कि मुद्रा के रूप मे प्राप्त आय के व्यय को इस प्रकार नियमित किया जाये जिसमे उपभोग्य वस्तुओ की माँग और पूर्ति के बीच, बचतो और विनियोग के बीच और वैदेशिक अर्जन और भुगतान के बीच सन्तुलन बना रहे । इसके साथ ही प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पण्य की माँग और पूर्ति के बीच सन्तुलन भी आवश्यक है ।

वित्तीय योजना निर्माण का सार यह है कि माँग और पूर्ति का सामजस्य ऐसा हो जिससे भौतिक साधनो का पूरा लाभ तो उठाया जा सके, पर मूल्य के

ढाँचे मे कोई बडा या असन्तुलित परिवर्तन न हो। वित्त अथवा घरेलू वित्त विकास के मार्ग मे कोई विशेष बाधा नही खडी हो सकती क्योकि उसे हमेशा बढ़ाया जा सकता है। लेकिन केवल इसी बात से कि किसी के पास भुगतान के यथेष्ट साधन हैं, यह सिद्ध नही हो जाता कि आवश्यक वास्तविक साधन जुट जायेंगे। अगर वास्तविक साधन नही जुट पाते, तो भुगतान के साधनो मे वृद्धि के फलस्वरूप व्यवस्था मे और गडबडी ही होगी। अतः वित्तीय साधनो पर बल देने का अर्थ है ठोस आयोजन और प्रबन्ध। चाहे कोई भौतिक आयोजन की बात सोचे, चाहे वित्तीय आयोजन की, दोनो एक दूसरे के पूरक है और हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि अर्थव्यवस्था मे उत्तरोत्तर उच्चतर स्तरो पर विभिन्न प्रकार के सन्तुलन स्थापित करें।

४—दीर्घकालीन बनाम अल्पकालीन योजना
(Long-term Vs Short-term Planning)

आर्थिक विकास मे वास्तविक साधनो के उपयोग मे बडे परिवर्तन निहित रहते है। जब हम दूरगामी या भविष्य की योजना बनायें तो ऐसे परिवर्तनों को ध्यान मे रखना आवश्यक होता है। कुछ खास उद्देश्यो के लिए केवल पाँच साल की योजना पर विचार करना ही यथेष्ट हो सकता है। लेकिन साथ ही यह भी आवश्यक है कि और अधिक लम्बे समय के विकास पर दृष्टि रखी जाये। प्रत्येक पचवर्षीय अवधि मे होने वाले विकास के बीच पूर्ण सन्तुलन स्थापित हो ही जाये, यह आवश्यक नही है। कुछ हद तक थोडे बहुत असन्तुलन से किसी एक समयावधि मे विकास की गति अधिक तीव्र हो सकती है और सन्तुलन श्रेष्ठकर। बिजली, परिवहन और बुनियादी उद्योगो के क्षेत्र मे यह बात सही हो सकती है क्योकि ऐसे क्षेत्रो मे विनियोग का रूप पिण्डित (Lumpy) होता है। ऐसे विनियोगो की जरूरतो को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह होना है कि तात्कालिक या वर्तमान माँगो की बजाय आगामी दस या पन्द्रह वर्षो मे किन-किन दिशाओ मे विकास की परिकल्पना की गई है। इस प्रकार निकट भविष्य के लिये जो कार्यक्रम बनाये या चालू किये जायँ उन्हे व्यापक परिप्रेक्षित मे बनाना चाहिए।

ऊपर जिन बातो को बताया है उनके अनुसार दीर्घकालीन कार्यक्रमो की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। लेकिन साथ ही साथ पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अल्पकालिक कार्यक्रमो की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। इसलिए पचवर्षीय योजना को वार्षिक योजनाओ या कार्यक्रमो मे बाटना होगा और सफलताओ को वार्षिक आधार पर आकना होगा। इस पद्धति मे केन्द्र और राज्य सरकारें वार्षिक बजट बनाकर कार्य करती हैं। और इससे वर्ष के बाद आने वाले वर्ष मे पचवर्षीय कार्यक्रम को ध्यान मे रखकर कार्यक्रमो पर पुर्नविचार और उनका समायोजन करने का मौका रहता है।

प्रथम, द्वितीय एव तृतीय योजनाओ का ढांचा इस प्रकार तैयार किया गया है जिससे उनके अन्तर्गत इस प्रकार की वार्षिक योजनाऐं तैयार की जायेंगी। पाँच साल तक चालू योजना की नमनीय रूप से कल्पना करनी चाहिए। योजना निर्माण कोई ऐसा अभ्यास नही है जो एक ही बार मे पाँच वर्ष के लिए कर लिया जावे। उसके अन्तर्गत चालू और भविष्य की प्रवृत्तियो पर जब तब निगाह रखना, तकनीकों, आर्थिक और सामाजिक सूचनाओ और आकडो पर व्यवस्थित रूप से विचार करते रहना और नयी जरूरतो के अनुसार कार्यक्रमो को समायोजित करते रहना आवश्यक है।

दीर्घ योजना का एक और भी अग है जिसकी चर्चा करना आवश्यक है। एशिया और अफ्रीका के समस्त अल्प विकसित अचलो की कुछ विकास सम्बन्धी समस्यायें हैं। यह अचल कुछ राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणो से अभी तक अधिकाशत अल्प विकसित रहा है, और उनमे से कुछ देशो की अर्थव्यवस्था उन योरपीय देशो की अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध है, जिनके साथ उनके राजनीतिक सम्बन्ध रहे हैं। इसके फलस्वरूप ऐसे अचलो म उद्योग व्यवसाय का यथेष्ट विकास नही हुआ है और न इस बात की खोजबीन पूरी तरह हो पाई है कि इन अचलो के देशो मे पारस्परिक सहायता और पूरक प्रयत्नो की कितनी गु जाइश है। लेकिन जैसे-जैसे इन अचलो म विकासात्मक योजना आगे बढती है, उत्पादन के विशेष कार्यक्रमो और पारस्परिक हित की दृष्टि से होने वाले वाणिज्य तथा सूचनाओ के आदान-प्रदान की समस्या अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती जायेगी। यह स्वाभाविक है कि इन अचलो का प्रत्येक देश अपनी जरूरतो और अपनी पद्धतियो के अनुसार अपने साधनो का विकास करेगा। फिर भी यह जरूरी है कि विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत उत्पादनो और तकनीकी जानकारी के पारस्परिक विनिमय की व्यवस्था हो। इसी व्यापकतर आचलिक परप्रेक्षित मे भारत म योजना को आगे बढना है। इस बात को ध्यान मे रखना है कि गरीबी, जीवन के निम्न मानदण्ड और आर्थिक पिछड़ेपन की समस्यायें सभी जगह एक समान हैं, और प्रत्येक देश के प्रयत्न और अनुभव इस अचल के अन्य देशो के लिए मूल्यवान सिद्ध होगे।

५—स्वतन्त्र नियोजन
(Free Planning)

स्वतन्त्र नियोजन प्रणाली मे राज्य और साहसी दोनो ही को अपने-अपने क्षेत्र म नियोजन करने का अधिकार होता है। प्रकृति मे यह 'निश्चित नियोजन, प्रणाली के विपरीत होता है। इस प्रकार के नियोजन की प्रारम्भिक स्थिति मे सरकार और साहसी दोनो मिल कर आदर्श उद्देश्य का निर्धारण करते हैं। इसके पश्चात् उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियोजन के आधार, तकनीक, प्राथमिकताएँ एव लक्ष्य का निर्धारण करते हैं। इन सब कार्यों मे दोनो का सहयोग होता है। इस

प्रकार, स्वतन्त्र नियोजन प्रणाली मे सार्वजनिक एव व्यक्तिगत दोनों ही क्षेत्र होते हैं। स्वतन्त्र नियोजन प्रणाली मे नियोजन काल मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते है। इस प्रकार, यह नियोजन की आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील प्रणाली है।

स्वतन्त्र नियोजन प्रणाली में कुछ दोष एव कुछ गुण हैं। इस प्रणाली का सबसे बडा दोष यह होता है कि राज्य तथा साहसी विभिन्न सिद्धान्तो पर सहमत नही हो पाते, जिसके फलस्वरूप उन्नति की दर मे तीव्रता से वृद्धि नही हो पाती। इसका एक और दोष यह है कि इस प्रकार के नियोजन मे प्राय परिवर्तन होते रहते हैं जिससे नियोजन का अन्तिम रूप निश्चित करना कठिन होगा। इस प्रणाली का सबसे बडा गुण यह है कि इसमे परिवर्तित परिस्थित, साधन एव आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं। नियोजन-रचना-काल मे नियोजक के पास आवश्यक आँकडे पूर्णमात्रा मे नही होते, जिससे उनके लिए नियोजन को अन्तिम रूप प्रदान करना कठिन होता है। किन्तु इस प्रकार के नियोजन मे नियोजन-काल मे भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते है। हमारी प्रथम, द्वितीय एव तृतीय योजनायें इस प्रणाली के अन्तर्गत आती हैं। साधनो की कमी हमारे नियोजको को इसके लिए बाध्य करती हैं कि वे नियोजन की परिवर्तनशील पद्धति को अपनायें।

६—नियोजन-पद्धति 'विनाश' बनाम 'निर्माण'
(Planning Through Dislocation Vs Construction)

नियोजन के समर्थको मे प्राय इस बात पर द्वन्द्व होता है कि नियोजन का सिद्धान्त क्या हो ? एक वर्ग के मतानुसार, 'नियोजन का कार्य विनाश पद्धति को अपनाकर होना चाहिए।' अर्थात, उनके अनुसार, नियोजन का कार्य तभी सफल हो सकता है जबकि उपभोग, उत्पत्ति एव वितरण पद्धति को पूर्णरूप से बदल दिया जाय। उत्पत्ति प्रणाली मे परिवर्तन लाने से समाज के सभी नागरिक—विशेषरूप से श्रमिक—प्रभावित हो जाते हैं। श्रम-प्रमुख उत्पत्ति के स्थान पर पूंजी-प्रमुख उत्पत्ति की प्रणाली के अपनाने से देश मे बेरोजगारी फैल जाती है, जिससे प्रारम्भिक स्थिति मे दरिद्र एव श्रमिक वर्ग को बहुत कठिनाई होती है। किन्तु जब यह प्रथा कुछ काल मे स्थितिशील हो जाती है तो इसके गुण नजर आने लगते हैं—अधिक उत्पत्ति, कम उत्पत्ति व्यय, कीमत मे कमी, 'अवशिष्ट पदार्थ' का उपयोग, समान वितरण, नये उद्योगो की स्थापना आदि। इस प्रथा के विरोधियो का कहना है कि नियोजन का उद्देश्य नागरिको का जीवन-स्तर ऊँचा करना एव रोजगार दिलाना होता है—जो कि इस प्रणाली की प्रारम्भिक स्थिति मे प्राप्त नही हो पाते। उनका यह भी कहना है कि अवकसित देशो के लिए यह प्रणाली और भी हानिकारक है।

इसके विपरीत एक अन्य वर्ग के अर्थशास्त्रियो का कहना है कि नियोजन की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे काम मे लगे हुए कोई भी व्यक्ति नियोजन के कारण विस्थापित न हो जायँ। इसके लिये वह यह सलाह देते है कि उत्पत्ति और वितरण के क्षेत्र मे नई पद्धतियो को न अपनाया जाय बल्कि पुराने काल से चला आ रही पद्धति को अपनाकर ही नियोजन के अन्तर्गत इस बात की चेष्टा की जाय कि उत्पत्ति और वितरण का क्षेत्र बढ जाय एव देश की उत्पादन की दर मे क्रमश वृद्धि हो। प्रथम प्रणाली मे शुरू मे नागरिको को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पडता है किन्तु देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से सम्भव होता है। दूसरी प्रणाली मे किसी को कोई कठिनाई नही होती किन्तु विकास की दर बहुत मन्द रहती है।

७—नियोजन पद्धति : सन्तुलित बनाम असन्तुलित विकास
(Planning with Balanced Vs Unbalanced Growth)

नियोजन का वास्तविक सैद्धान्तिक रूप 'सन्तुलित विकास-पद्धति' के अन्तर्गत ही होता है। सन्तुलित विकास का अर्थ यह होता है कि नियोजन मे एव नियोजन काल मे उपभोग, विनियोग एव आमदनी मे समान रूप से विकास तथा वृद्धि होनी चाहिए। वास्तव मे ये तीनो ही आपस मे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते है, जिसके फलस्वरूप किसी एक मे उन्नति अथवा अवनति होने से दूसरे भी प्रभावित हो जाते है। आमदनी मे वृद्धि होने से उपभोग की मात्रा मे भी वृद्धि हो सकती है तथा विनियोग हेतु बचत की मात्रा मे भी वृद्धि सम्भव होती हैं। इसके विपरीत, यदि विनियोग की मात्रा मे भी कमी हो जाय तो आमदनी कम हो जायगी, जिससे उपभोग की मात्रा मे भी कमी आ जायगी। नियोजन की यह एक सही और वैज्ञानिक प्रणाली है, जिसके कारण सभी देशो के नियोजनाधिकारी इस पद्धति की प्रशसा करते है एव नियोजन कार्य में इसको अपनाते हैं।

इसके विपरीत, 'असन्तुलित विकास' नियोजन प्रणाली मे इस बात की कोई आवश्यकता नही होती है कि उपभोग, विनियोग एव आमदनी मे एक ही साथ (एव एक ही दर पर) विकास या वृद्धि हो। इसका मुख्य कारण यह होता है कि विभिन्न देशो में आमदनी का वितरण समान रूप से नही होता है। धनी वर्ग द्वारा ही विनियोग किया जाता है—एव उनकी ही आमदनी मे वृद्धि होती है। देश के समस्त नागरिको की व्यक्तिगत आमदनी मे विशेष परिवर्तन नही होता है। अविकसित देशो के लिए तो सन्तुलित विकास पद्धति का अपनाना प्राय असन्तुलित विकास पद्धति को अपनाकर ही किया जाता है।

सोवियत सघ ने जब अपने देश मे नियोजन पद्धति को अपनाया था तो उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उन्होने उस समय असन्तुलित विकास की नियोजन प्रणाली को ही अपनाया था। भारतवर्ष में भी नियोजको ने योजनाओ के

निर्माण मे असन्तुलित विकास पद्धति को अपनाया है। इस पद्धति को अपनाकर जब देश की आर्थिक स्थिति मे काफी सुधार हो जाता है तभी सन्तुलित विकास प्रणाली को अपनाया जाता है। यद्यपि सन्तुलित विकास योजना पद्धति सही एव वैज्ञानिक प्रणाली है, किन्तु अविकसित देशों के लिए असन्तुलित विकास योजना प्रणाली वरदान है।

८—नियोजन पद्धति : स्थिर बनाम अस्थिर
(Dynamic Planning Vs Static Planning)

नियोजन पद्धति का विभाजन अस्थिर एवं स्थिर रूप मे भी सम्भव हो सकता है। अधिकाश, अर्थशास्त्रियो का मत यह है कि नियोजन एक अस्थिर पद्धति है। इसका कारण वह यह बताते है कि दीर्घकालीन नियोजन मे नियोजन के सभी तत्वो मे परिवर्तन होते रहते हैं, जिससे सम्पूर्ण 'योजना-काल' के लिए एक निश्चित एव अपरिवर्तनशील नियोजन का निर्माण कठिन हो जाता है। प्रारम्भ होने के पश्चात् योजना-कार्यक्रम जैसे जैसे अग्रसर होता है वैसे ही वैसे नई-नई परिस्थितिया उत्पन्न होती हैं। नियोजन द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि 'बदली हुई परिस्थिति' के अनुसार ही नियोजन का कार्य चलाया जाय। उसी दशा मे देश योजनाओ से अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार नियोजन की 'अस्थिर प्रणाली' मे इस बात की सुविधा रहती है कि आवश्यकता और समयानुसार नियोजन की रीति, स्वरूप, लक्ष्य, और उद्देश्यो मे परिवर्तन किया जा सके। इस प्रणाली मे वित्तीय स्थिति के अनुसार नियोजन का कार्य मन्द या तीव्र गति से अग्रसर हो सकता है।

नियोजन की 'स्थिर प्रणाली' के अन्तर्गत योजना का निर्माण (एक विशेष अवधि के लिए) किया जाता है और उसके पश्चात् उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया जाता। इस प्रकार के नियोजन के निर्माण से पहले जनता और विभिन्न समुदायो को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह सरकार को अपने सुझाव पेश करे। सरकार या नियोजनाधिकारी इस बात की पूरी चेष्टा करते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो सके इन सुझावो को नियोजन मे सम्मिलित कर लें—परन्तु इस कार्य को करने के लिए वह बाध्य नही होती। व्यावहारिक रूप से नियोजनाधिकारी अच्छे और तथ्यपूर्ण सुझावो को मान लेते हैं। इस प्रकार के नियोजन का सबसे बडा गुण यह होता है कि इन 'नियोजनो' मे निरन्तर परिवर्तनो की कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती है। नियोजन मे यदि निरन्तर परिवर्तन करने की आवश्यकता बनी रहे तो उद्देश्य की प्राप्ति कठिन हो जाती है। इसके विपरीत, इस पद्धति का सबसे बडा दोष यह होता है कि नियोजन काल मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन इस प्रकार के नियोजन मे सम्भव नही होता है। नियोजन मे 'भविष्य—तत्त्व' सदा विद्यमान रहता है। इस प्रकार, नियोजन-काल मे यदि वित्तीय, साधन सम्बन्धी, आदर्श या

उद्देश्य सम्बन्धी अथवा नीति सम्बन्धी कोई परिवर्तन देश मे हो और नियोजन के स्वरूप या आकार मे परिवर्तन करने की आवश्यकता पडे तो—यदि आवश्यकतानुसार नियोजन म परिवर्तन सम्भव न हो सके आवश्यक रूप से कठिनाई उपस्थित होगी। विभिन्न देशा (जैसे, चीन, रूस, भारत आदि) की नियोजन पद्धति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि प्राय सभी देशो मे नियोजन की पद्धति काफी हद तक, अस्थिर प्रणाली पर आधारित होती है।

६—नियोजन पद्धति : 'प्रोत्साहन मूलक' बनाम 'आज्ञा मूलक' (Planning by Inducements Vs Planning by Direction)

पूँजीवादी देशो मे हस्तक्षेप न करने की आर्थिक नीति होती है। दूसरे शब्दो मे, साहसी अपने उद्योग एव व्यापार के विषय मे योजना का कार्य स्वय करते है। सरकार को इसम हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इस परिस्थिति म 'आज्ञा द्वारा' नियोजन सम्भव नही होता। जिन देशो मे केवल व्यक्तिगत साहस या निजी क्षेत्र का ही अस्तित्व होता है, वहाँ 'प्रोत्साहन द्वारा' नियोजन की पद्धति को अपनाया जाता है। कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियोजन का पूर्ण भार उठाना कभी भी सम्भव नही हो सकता—इसलिये, 'आज्ञा द्वारा' नियोजन कभी भी पूर्ण-नियोजन का रूप धारण नही कर सकता। इस मत के समर्थकों का कहना है कि निम्नलिखित कारणो से 'आज्ञा मूलक' नियोजन सफल नही हो पाता

१—उपभोक्ता वस्तुओ और सेवाओ के उपभोग की स्वतन्त्रता चाहता है।

२—साहसी अपनी इच्छा तथा शक्ति के अनुसार उद्योगो और व्यवसायो मे सलग्न होना चाहता है तथा विनियोग करना चाहता है।

३—श्रमिक की हार्दिक इच्छा यही रहती है कि वह अपनी शक्ति, इच्छा, कुशलता एव अभिरुचि के अनुसार कार्य प्राप्त कर सके।

४—केन्द्रीय नियोजन की सफलतायें सीमित हैं—वास्तव मे, केन्द्रीय नियोजन के विषय मे प्राय यह कहा जाता है कि "केन्द्रीय नियोजन से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लोप हो जाता है और आर्थिक विकास का उद्देश्य भी सफल नही हो पाता।"

उपर्युक्त बातो के अध्ययन से हम साधारणतया इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ निजी क्षेत्र का आधिपत्य हो वहाँ 'आज्ञामूलक' नियोजन पद्धति असफल रहती है। किन्तु, यह बात उन क्षत्रो के लिये सही नही है जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र का आधिपत्य है या केन्द्रीय नियोजन के अन्तर्गत राष्ट्र की समस्त उत्पत्ति सस्थाओ पर राष्ट्र का अधिकार है।

'प्रोत्साहनमूलक' नियोजन पद्धति पूँजीवादी राष्ट्रो मे या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था वाले देशो मे अधिक प्रभावशील होता है। इस प्रथा के अन्तर्गत सरकार

द्वारा साहसियो और उद्योगपतियो को आर्थिक विकास के कार्य को द्रुत गति से कार्यान्वित करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान किये जाते है। इस कार्य मे सरकार इस बात की ओर सचेष्ट रहती है कि साहसी और उद्योगपति एक निश्चित् आदर्श की प्राप्ति के लिये एकाकी या सामूहिक रूप से प्रयास करे। इस प्रयास मे यदि उन्हे किसी कठिनाई का सामना करना पडे तो सरकार उस कठिनाई को दूर करने का प्रयास करती है।

इस 'प्रोत्साहनमूलक' नियोजन में नियोजन का कार्य सरकार और साहसी दोनो के सम्मिलित प्रयास से होता है। सरकार द्वारा आदश, उद्देश्य और लक्ष्य का निर्धारण होता है एव 'कठिनाइयो' को दूर करने का प्रयास किया जाता है तथा प्रोत्साहन दिया जाता है। इस प्रकार के नियोजन का सबसे बडा गुण यह होता है कि आर्थिक विकास का कार्य द्रुत गति से होता है—क्योकि साहसी निजी लाभ के उद्देश्य से उद्यम के साथ कार्य करता है। इसके विपरीत, इस प्रणाली का दोष यह होता है कि सरकारी नियन्त्रण के अभाव म पूँजीवादी प्रथा के समस्त अवगुण इसमे आ जाते है।

'आज्ञामूलक' नियोजन प्रणाली के समर्थको का कहना है कि "नियोजन का उद्देश्य ही निजी क्षेत्र की कठिनाइयो को दूर करना होता है।" उद्योग-पतियो, और पूँजोपतियो के शोषण को समाप्त करने तथा द्रुत एव सन्तुलित आर्थिक विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही 'नियोजन' को अपनाते हैं। इसका केवल एक ही अर्थ होता है—नियोजन केवल 'आज्ञामूलक' ही होना चाहिये।

सोवियतसघ मे जब GOSPLAN द्वारा रूस की प्रथम योजना का निर्माण किया गया था तो उसमे 'आज्ञामूलक नियोजन के साथ-साथ 'प्रोत्साहनमूलक' पद्धति को भी अपनाया गया था। इसका कारण यह था कि उस समय तक वहाँ उत्पत्ति और वितरण के समस्त साधनो का पूर्ण राष्ट्रीयकरण नही हो पाया था। इसके पश्चात् जब वहा केन्द्रीयकरण हो गया तो नियोजन काय के लिए एक ही प्रणाली अपनाई गई—'आज्ञामूलक प्रणाली'। चीन ने भी अपनी पहली योजना मे, थोडी मात्रा मे, 'प्रोत्साहनमूलक प्रणाली' को नियोजन मे स्थान दिया था। किन्तु द्वितीय योजना मे केवल *'आज्ञामूलक प्रणाली' को ही अपनाया*। भारतवर्ष मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे निजी क्षेत्र के आधिपत्य के कारण 'प्रोत्साहन द्वारा नियोजन' पर अधिक बल दिया गया था। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे समाजवादी समाज की स्थापना पर अधिक बल दिया गया। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार हुआ एव 'आज्ञामूलक' नियोजन प्रणाली का क्षेत्र भी इस योजना-काल मे बढ गया। तृतीय पचवर्षीय योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र का और विस्तार किया जा रहा है, इसलिये, साधारण रूप से 'आज्ञामूलक प्रणाली' का महत्त्व और बढ गया है। क्योकि भारतवर्ष मे अभी तक निजी क्षत्र का भी सह अस्तित्व

है इसलिये प्रोत्साहन द्वारा नियोजन पद्धति भी, अभी तक यहां विद्यमान है। इन दोनो प्रणालियो मे 'आज्ञामूलक' अधिक अच्छी समझी जाती हैं।

१०—नियोजन पद्धति : फासिज्म बनाम नाजीज्म[1]

(Planning Concepts : Fascism Vs Nazism)

नाजीज्म एव फाजिज्म दोनो ही निरकुशतावादी (Etatist) विचारधारायें हैं। फाजीज्म के अनुसार समाज मे राज्य का स्थान सर्वोच्च है। मुसोलिनी का कथन था, "हर वस्तु तथा व्यक्ति राज्य के अन्तर्गत एव राज्य के लिए है, राज्य के बाहर या विरुद्ध कोई या कुछ नही हो सकता... ... परन्तु नाजीवादी राज्य के स्थान पर राष्ट्र को सर्वोच्च मानते हैं . ।" नाजीज्म एव फासिज्म दोनो ही प्रणालियो मे यह पाया जाता है कि राज्य नागरिको की जीवन सम्बन्धी सभी क्रियाओ को नियमित करने का प्रयास करता है। " इन प्रणालियो के द्वारा वे पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनो के समर्थक होने का दावा कर सकते .. । इटली मे यह ढग था निगमात्मक राज्य (Corporate State) की योजना और जर्मनी मे राष्ट्रीय समाजवाद की कल्पना। वास्तव मे दोनो का ही मूल उद्देश्य राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित करना था।"[2]

"सिन्डीकेटो, उनके सघो (Federations) तथा महासघो (Confederations) और निगमो (Corporations) द्वारा फासिस्ट राज्य का इटली मे पूर्ण आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण हो गया था। इसी प्रकार की व्यवस्था जर्मनी मे भी की गई थी। वहां उसको राष्ट्रीय समाजवाद के नाम से पुकारा जाता था।[3]" " फासिज्म और नाजीज्म दोनो के अन्तर्गत देश की समस्त आर्थिक क्रियाओ पर सरकार द्वारा नियन्त्रण एव योजना नियोजन होता है।[4]

---

1. १—पूँजीवादी नियोजन के लिए अध्याय ८ देखिए।
   २—समाजवादी, मार्क्सवादी तथा साम्यवादी नियोजन के लिए अध्याय, ९ देखिए।
   ३—मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत नियोजन के लिए अध्याय १० देखिए।
2. राजनीति शास्त्र के आधार, द्वितीय भाग, अम्बादत्त पन्त आदि, पृष्ठ ३०१।
3. Ibid, p 302.
4. For further details, please see Appendix iv.

अविकसित देशों की आर्थिक विशेषतायें[1]

(Characteristics of an Under-developed Economy)

१—अविकसित अर्थव्यवस्था का अर्थ और परिभाषा

(Meaning and Definition of an Under-developed)

अविकसित अर्थव्यवस्था का अध्ययन पिछले कुछ वर्षों से हो रहा है और तभी से ससार के विभिन्न अर्थशास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। विशेष तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं के विकास के साथ-साथ विद्वानों का ध्यान इस ओर भी गया कि ससार में सभी राष्ट्र धीरे-धीरे आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नति करें ताकि उन्हें दूसरे देशों के भरोसे पर न रहना पड़े और उन्नत देश इन राष्ट्रों का आर्थिक दृष्टि से शोषण न कर सकें। समाजवादी अर्थव्यवस्था का कुछ देशों में अपनाया जाना और उन देशों में आर्थिक नियोजन के द्वारा अल्प समय में द्रुत आर्थिक उन्नति का होना अविकसित देशों के लिए एक आदर्श बन गया।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अविकसित अर्थव्यवस्था की भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्या की है। कुछ का कहना है कि "अविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें प्राकृतिक सम्पत्तियों का सन्तुलित और ढगपूर्ण शोषण नहीं होता है।" इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों का यह कहना है कि "अविकसित देशों में कुछ कठिनाइयों के अस्तित्व के कारण साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता है।" इसी प्रकार एक अन्य वर्ग के अर्थशास्त्री यह समझते हैं कि साधनों के उपलब्ध होने पर भी जिन देशों की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आमदनी कम है वे अविकसित देश कहे जा सकते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि जिन देशों में उत्पत्ति के साधन कम हैं, या जिन देशों में उत्पत्ति के विभिन्न प्रयासों में (खेती, व्यवसाय, उद्योग आदि) असमानता है, या जिस देश में राष्ट्रीय आय कम है, या जिस देश में उत्पत्ति के साधनों की कमी है, या जिस देश में साधनों का सम्पूर्ण और ढङ्गपूर्ण प्रयोग नहीं होता है, या जिस देश में समस्त प्राकृतिक सम्पत्तियों का समान शोषण नहीं होता वह देश अविकसित कहलाता है।

---

1. इसमें विशेष तौर पर भारतीय स्थिति का अध्ययन किया गया है।

है इसलिये प्रोत्साहन द्वारा नियोजन पद्धति भी, ग्रभी तक यहाँ विद्यमान है। इन दोनो प्रणालियों मे 'ग्राज्ञामूलक' अधिक अच्छी समझी जाती हैं।

१०—नियोजन पद्धति : फासिज्म बनाम नाजीज्म[1]
(Planning Concepts : Fascism Vs Nazism)

नाजीज्म एव फासिज्म दोनो ही निरकुशतावादी (Etatist) विचारधारायें हैं। फाजीज्म के अनुसार समाज मे राज्य का स्थान सर्वोच्च है। मुसोलिनी का कथन था, "हर वस्तु तथा व्यक्ति राज्य के अन्तगत एव राज्य के लिए है, राज्य के बाहर या विरुद्ध कोई या कुछ नही हो सकता .... परन्तु नाजीवादी राज्य के स्थान पर राष्ट्र को सर्वोच्च मानते हैं . ।" नाजीज्म एव फासिज्म दोनो ही प्रणालियो मे यह पाया जाता है कि राज्य नागरिको की जीवन सम्बन्धी सभी क्रियाओं को नियमित करन का प्रयास करता है। " इन प्रणालियों के द्वारा वे पूँजीवाद तथा समाजवाद दानो क समर्थक होने का दावा कर सकते । इटली म यह ढग था निगमात्मक राज्य (Corporate State) की योजना और जर्मनी म राष्ट्रीय समाजवाद की कल्पना। वास्तव मे दोनो का ही मूल उद्देश्य राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित करना था।"[2]

'सिन्डीकेटो, उनके सघो (Federations) तथा महासघो (Confederations) और निगमो (Corporations) द्वारा फासिस्ट राज्य का इटली म पूर्ण आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण हो गया था। इसी प्रकार की व्यवस्था जर्मनी मे भी की गई थी। वहाँ उसको राष्ट्रीय समाजवाद के नाम से पुकारा जाता था।[3]"

फासिज्म और नाजीज्म दोनो के अन्तर्गत देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं पर सरकार द्वारा नियन्त्रण एव योजना नियोजन होता है।[4]

———

1 १—पूँजीवादी नियोजन के लिए अध्याय ८ देखिए।
२—समाजवादी, मार्क्सवादी तथा साम्यवादी नियोजन के लिए अध्याय, ९ देखिए।
३—मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत नियोजन के लिए अध्याय १० देखिए।
2 राजनीति शास्त्र के आधार, द्वितीय भाग, अम्बादत्त पन्त आदि, पृष्ठ ३०१।
3 Ibid, p 302
4. *For further details, please see Appendix iv.*

अविकसित देशों की आर्थिक विशेषतायें[1]
(Characteristics of an Under-developed Economy)

१—अविकसित अर्थव्यवस्था का अर्थ और परिभाषा
(Meaning and Definition of an Under-developed)

अविकसित अर्थव्यवस्था का अध्ययन पिछले कुछ वर्षो से हो रहा है और तभी से ससार के विभिन्न अर्थशास्त्रियो का ध्यान इस ओर आकर्पित हुआ है। विशेष तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ के विकास के साथ-साथ विद्वानो का ध्यान इस ओर भी गया कि ससार के सभी राष्ट्र धीरे-धीरे आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नति करें ताकि उन्हे दूसरे देशो के भरोसे पर न रहना पडे और उन्नत देश इन राष्ट्रो का आर्थिक दृष्टि से शोषण न कर सके। समाजवादी अर्थव्यवस्था का कुछ देशो मे अपनाया जाना और उन देशो मे आर्थिक नियोजन के द्वारा अल्प समय मे द्रुत आर्थिक उन्नति का होना अविकसित देशो के लिए एक आदर्श बन गया।

विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने अविकसित अर्थव्यवस्था की भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्या की है। कुछ का कहना है कि "अविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमे प्राकृतिक सम्पत्तियो का सन्तुलित और ढगपूर्ण शोपण नही होता है।" इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियो का यह कहना है कि "अविकसित देशो मे कुछ कठिनाइयो के अस्तित्व के कारण साधनो का पूरा उपयोग नही हो पाता है।" इसी प्रकार एक अन्य वर्ग के अर्थशास्त्री यह समझते हैं कि साधनो के उपलब्ध होने पर भी जिन देशो की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आमदनी कम है वे अविकसित देश कहे जा सकते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियो का कहना है कि जिन देशो मे उत्पत्ति के साधन कम है, या जिन देशो मे उत्पत्ति के विभिन्न प्रयासो मे (खेती, व्यवसाय, उद्योग आदि) असमानता है, या जिस देश मे राष्ट्रीय आय कम है, या जिस देश मे उत्पत्ति के साधनो की कमी है, या जिस देश मे साधनो का सम्पूर्ण और ढङ्गपूर्ण प्रयोग नही होता है, या जिस देश मे समस्त प्राकृतिक सम्पत्तियो का समान शोषण नही होता वह देश अविकसित कहलाता है।

1. इसमें विशेष तौर पर भारतीय स्थिति का अध्ययन किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अविकसित देश वह है जो या तो (अ) उत्पत्ति के साधनों, सुविधाओं और प्राकृतिक सम्पदा से वंचित है, या (ब) वह देश, जिनके पास साधन, शक्ति, प्राकृतिक सम्पत्ति और सुअवसर प्राप्त है (जिससे वह देश वे आर्थिक ढाचे मे सुधार करके देश को उन्नत बना सकें), परन्तु किसी कठिनाई या कठिनाइयो के अस्तित्व के कारण इस प्रयास मे सफल नही हो रहा है। भारतवर्ष भी इसी वर्ग मे आता है।

भारतवर्ष पिछली कई सदियो से पराधीन रहा है। इसके फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था का विकास उस रूप मे न हो सका, जिस रूप मे होना चाहिये था, बल्कि उस रूप मे हुआ जिस रूप मे अंग्रेज अपने लाभ के लिए करना चाहते थे। अर्थात् भारतवर्ष का आर्थिक विकास उसकी स्थिति, जलवायु, जनसख्या, प्राकृतिक सम्पत्ति, शक्ति के साधन, और प्राकृतिक साधनो को दृष्टिकोण मे रखकर नही किया गया। बल्कि इस रूप मे किया गया कि ब्रिटेन के उद्योगो को कम से कम मूल्य पर अच्छी से अच्छी काफी सामग्री प्राप्त हो सके। देश की कृषि दिनो दिन अवनति की ओर जाती रही और उपज मे वृद्धि के लिये खेती मे नवीनतम पद्धतियो का प्रयोग या सिंचाई का सुचारु रूप से प्रबन्ध नही किया गया। इसी के साथ-साथ जनसख्या की वृद्धि ने और देश के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमो ने खेतो के और छोटे-छोटे टुकडे बना दिये। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत की प्राय: सभी भूमि पर उत्पत्ति-ह्रास-नियम लागू होने लगा। भारत मे पूर्व स्थित गृह-उद्योग और छोटे माना के उद्योगो के अंग्रेजो द्वारा नष्ट किये जाने के फलस्वरूप और अधिक व्यक्ति—जो वास्तव मे अनावश्यक थे—कृषि कार्य मे मजबूरी से जुट गये। इन सब बातो के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आमदनी बहुत कम हो गई। साथ ही साथ इन दरिद्र किसानो की वह शक्ति भी समाप्त हो गई जिससे वे अधिक उत्पत्ति के लिए कृषि पद्धति मे सुधार कर सकते थे। इस प्रकार भारत के किसान जो प्राय समस्त आबादी के—७०-७५ प्रतिशत है, और अधिक गरीब हो गये।

भारत मे बडी मात्रा के जो थोडे से उद्योग खोले गये उनमे से प्राय: सभी विदेशी साहसी द्वारा और विदेशी पूँजी से, खोले गये। इससे एक ओर तो देशी उद्योग धन्धे नष्ट हो गये और दूसरी ओर देश का सारा धन इन विदेशियो के हाथ पहुँच गया।

इसके अतिरिक्त भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति के विकास का कोई प्रयास नही किया गया और वास्तव मे इन प्राकृतिक साधनो का असमान, असन्तुलित और अन्यायपूर्ण शोषण हुआ। इसका एकमात्र उद्देश्य ब्रिटेन के उद्योगो का विस्तार करना था। उसका भी परिणाम यह हुआ कि भारतीय नागरिको की आमदनी कम से कम होती चली गई और देश की प्राकृतिक सम्पदा भी निश्चेष्ट होती गई।

देश मे जनसख्या की अनियन्त्रित वृद्धि, अशिक्षा का प्रसार, वेरोजगारी का बढना, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का देश मे स्थापित होना सभी इस बात मे सहायक थे कि देश की आर्थिक स्थिति मे और तीव्रता से अवनति आये। इस प्रकार अविकसित अर्थ व्यवस्था की स्थिति भारतवर्ष मे बनी। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से राष्ट्रीय सरकार इस ओर सचेष्ट है कि इस अवस्था मे सुधार लाये और देश की आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाए।

२—अविकसित अर्थव्यवस्था के लक्षण कौन कौन से है ?
(Symptoms of an Underdeveloped Economy)

इसका यदि हम विश्लेषण करें तो अविकसित अर्थव्यवस्था के कुछ लक्षण हमारे सामने आ जावेगे। उनमे से कुछ ये हैं —

१—देश की आबादी मे तीव्रता से वृद्धि—इससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है—विशेषतौर पर यदि वह देश पहले से ही घनी आबादी का हो। भारतवर्ष मे अधिक जनसख्या के विद्यमान होते हुए भी देश की जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। लेकिन देश की कृषि-उत्पत्ति, व्यवसाय और उद्योग और प्राकृतिक साधनो मे उसी अनुपात मे वृद्धि नही हो पा रही है। इसलिए प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आमदनी मे वृद्धि कठिनाई से हो रही है और देश मे भुखमरी और वेरोजगारी बढ़ती जा रही है।

२—उद्योग धन्धों का असन्तुलित और मन्द विकास—अविकसित देशो का दूसरा लक्षण यह होता है कि उन देशो मे उद्योग धन्धो का विकास कम और असन्तुलित रूप से होता है जिससे उत्पत्ति के बहुत से साधन बेकार पड़े रहते है। भारत मे भी उद्योग धन्धो के वितरण का जितना अवसर और साधन प्राप्त है उस अनुपात मे उद्योगो का विकास नही हो पाया है और न हो पा रहा है।

३—शासन और प्रबन्ध की अक्षमता—देशो के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रबन्ध और शासन ठीक प्रकार से नही चल पाते जिससे देश के किसी भी क्षेत्र म आर्थिक विस्तार उस रूप मे और उस तीव्रता से नही हो पाता जैसा कि होना चाहिए। देश की आर्थिक नीति, कर प्रणाली, मुद्रा स्थिति, व्यवसाय नीति और उस प्रकार के अन्य विषयो का प्रबन्ध जब तक पूर्ण दक्षता से नही किया जाता तब तक उस राष्ट्र का आर्थिक विकास कठिन ही नही बल्कि असम्भव हो जाता है। दुर्भाग्यवश भारत मे उपरोक्त विषयो का प्रबन्ध और शासन अकुशल है।

४—देश मे पूँजी की कमी—प्राय यह देखा जाता है कि अविकसित देशो मे जहाँ एक ओर उत्पत्ति के साधनो की (पूँजी के अतिरिक्त) कमी नहीं होती, वहाँ दूसरी ओर देश मे उपलब्ध पूँजी की मात्रा मे कमी होती है, जिसके कारण देश के उद्योग धन्धो का ठीक प्रकार से विकास नहीं हो पाता। पूँजी की कमी इन देशो मे मुख्य रूप से इसलिए होती है कि लोगों की आमदनी बहुत कम होती है जिसके

फलस्वरूप वे बचत नही कर सकते और जब बचत नही हो पाती तो पूंजी का निर्माण नही हो पाता।

५—उत्पत्ति के विभिन्न प्रयासों मे असन्तुलन—अविकसित देशो का एक लक्षण यह भी होता है कि इन देशों मे असन्तुलित प्रयास होते हैं, अर्थात् उत्पत्ति के विभिन्न क्षेत्रो को (जैसे-कृषि उद्योग धन्धे आदि) समान महत्त्व प्रदान नही किया जाता। प्राय ऐसा होता है कि या तो कृषि पर आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है या उद्योग धन्धो पर या कभी कभी केवल एक ही उद्योग के विकास पर। इसी प्रकार इन क्षेत्रो मे उत्पत्ति की जो मात्रा होती है (जैसे, बडी मात्रा की उत्पत्ति, गृह उद्योग आदि उनम भी सन्तुलन नही होता है। उत्पत्ति की इन मात्राओं में जो आदर्श अनुपात होना चाहिए वह नही होता। इन सब बातो का प्रभाव यही होता है कि देश की आर्थिक स्थिति में उन्नति उस रूप से नही हो पाती जैसी कि होनी चाहिये।

भारतवर्ष के विषय में यह बातें सत्य हैं। भारतवर्ष में कृषि पर अत्यधिक जोर दिया जाता है जब कि उद्योग धन्धो के विकास पर उतना महत्त्व प्रदान नही किया जाता जितना कि देना चाहिए। इसके फलस्वरूप कृषि में आवश्यकता मे अधिक मनुष्य जुटे हुए हैं, और उद्योग क्षेत्र मे विकास की सम्भावना होते हुए भी साधनों का सम्पूर्ण प्रयोग नही हो पा रहा है। इसी प्रकार पिछले कुछ वर्षो मे बडी मात्रा की उत्पत्ति पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है, जबकि देश की अर्थव्यवस्था के अनुसार इन बडे उद्योगो के साथ साथ मध्यमाकार की उत्पत्ति संस्थाओ, छोटी मात्रा की उत्पत्ति संस्थाओ और गृह उद्योगो के विकास पर अधिक बल देना चाहिए ताकि देश के औद्योगिक विकास के साथ-साथ बेरोजगार की दशा मे भी सुधार हो सके।

६—विदेशी राज्य—प्राय यह देखा जाता है कि उन देशो की आर्थिक स्थिति अविकसित रह जाती है जो दूसरे देशो के द्वारा शासित होते हैं। इसके दो कारण होते हैं। प्रथम तो यह कि विदेशी शासक स्वय यह नही चाहता कि उस देश की आर्थिक स्थिति सुधर जाय क्योकि उस स्थिति मे उस देश के स्वतन्त्र हो जाने की सम्भावना होती है। और दूसरा कारण यह कि विदेशी शासक अपने देश मे उत्पन्न वस्तुओ को इन देशो म बेचना चाहता है—जो तभी सम्भव हो सकता है जब कि यह देश पिछडा हुआ हो।

भारतवर्ष म भी, जब तक ब्रिटिश शासन बना रहा, ऐसी ही स्थिति बनी रही। सन् १९४७ के बाद से, जब देश को स्वतन्त्रता मिली, तभी से भारतवर्ष के उद्योग धन्धो मे उन्नति हुई है और सरकार की ओर से इस बात का भरसक प्रयास किया जा रहा है कि देश की आर्थिक स्थिति मे निरन्तर उन्नति हो।

परन्तु हमेशा यह आवश्यक नही होता कि अविकसित देशो मे विदेशी शासन ही हो।

(७) **देश मे साधनों की कमी**—कुछ राष्ट्रो की आर्थिक दशा इसलिए भी बिगड़ी रहती है कि उन देशो म साधनो की कमी होती है। इन स'धनो मे सभी बाते सम्मिलित होती है—जैसे प्राकृतिक सम्पत्ति, कृषि योग्य भूमि, शिक्षित और कुशल कारीगर, चल और अचल पूंजी, उद्योगो के लिए कच्ची सामग्री, उद्योगधन्धो की स्थापना के लिए साहसियो का अभाव, अच्छे प्रबधको की कमी आदि। प्राय ऐसा देखा जाता है कि इस प्रकार के देशो मे इच्छा होते हुए भी आर्थिक स्थिति मे सुधार सभव नही हो पाता है और उन देशो की आर्थिक स्थिति हमेशा ही अविकसित रहती है।

३—अविकसित देशो का अस्तित्व क्यो होता है ?

प्राय यह प्रश्न हमारे सामने आता है कि अविकसित देशो का अस्तित्व क्यो होना है जब कि ससार की सभी अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाये और उन्नत तथा अनुन्नत देश इस ओर सचेष्ट है कि ससार मे कोई देश अविकसित न रह जाय। इन देशो के अविकसित रहने के निम्नलिखित चार मुख्य कारण है —

(१) प्राकृतिक कारण, (२) राजनैतिक कारण, (३) सामाजिक कारण, और (४) आर्थिक कारण।

प्राकृतिक कारण—विभिन राष्ट्रो की अर्थव्यवस्था के अविकसित रहने का प्राकृतिक कारण प्राय यह होता है कि उन देशो मे प्राकृतिक सम्पत्ति बहुत कम मात्रा मे प्राप्त होती है। इसी के साथ एक कारण उस देश मे प्राप्त प्राकृतिक वातावरण और जलवायु भी हो सकती है। जिन देशो मे प्राकृनिक सम्पत्ति कम, निकृष्ट और अनुपयोगी होती है या प्राकृतिक सम्पत्ति बहुत कम प्राप्त होती है, उन देशो का आर्थिक विकास बहुत कठिनाई से हो पाता है। इसी प्रकार जिस देश का प्राकृतिक वातावरण और जलवायु प्रतिकूल होता है वहाँ रहने वाले मनुष्यो की काय क्षमता मे वृद्धि नही हो पाती। अत देश की आर्थिक स्थिति म विशेष सुधार नही हो पाता।

राजनैतिक कारण—ये कारण विभिन्न प्रकार के हो सकते है। जैसे, यदि किसी देश पर विदेशी शासन हो तो प्राय उस देश की आर्थिक प्रगति सन्तोपजनक रूप से नही हो पाती। इसी प्रकार देश मे जो राजनैतिक दल सत्ताधारी होता है उसकी औद्योगिक और आर्थिक नीति यदि त्रुटिपूर्ण होती है तो भी उन राष्ट्रो की आर्थिक स्थिति मे प्राय सुधार नही हो पाता। राजनैतिक नीति के कुप्रभाव से यदि किसी राष्ट्र का किसी विदेशी राष्ट्र या राष्ट्रो के साथ सदा मनमुटाव और युद्ध की आशका बनी रहती है तो भी उस देश की आर्थिक स्थिति मे उस रूप से सुधार नही हो पाता जैसा कि होना चाहिए। देश का शासन अगर बहुत ही ढीला और दोषपूर्ण हो और देश मे शान्ति तथा सुरक्षा का अभाव हो तो भी आर्थिक उन्नति नही हो पाती।

सामाजिक कारण—ये कारण बहुत से हो सकते हैं। विभिन्न वर्ग और स्तरो मे अन्तर, एक दूसरे के विपरीत सामाजिक नियमो का अस्तित्व और सामाजिक नियमो का अत्यधिक रूप से धर्मो द्वारा प्रभावित होना आदि कुछ ऐसे सामाजिक कारण हैं जो आर्थिक विकास के क्षेत्र मे बाधा उत्पन्न कर सकते हैं।

भारतवर्ष मे विभिन्न जातियो का अस्तित्व, जाति-पाँति का भेद-भाव, छुआ-छूत, सयुक्त परिवार की प्रथा का अस्तित्व, विभिन्न प्रकार के सामाजिक स्तर और उनके अलग-अलग सामाजिक नियमो का अस्तित्व, विभिन्न प्रतिरोधी धर्मों तथा धार्मिक-भावनाओ का अस्तित्व और उनका सामाजिक प्रभाव, परिवार नियोजन की भावनाओ को अधार्मिक और प्रकृति विरोधी माना जाना, जिसमे जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, आदि कुछ ऐसे सामाजिक कारण भारत मे विद्यमान हैं जो आर्थिक प्रगति के पथ को रोक देते हैं। अविकसित देशो का यह एक मुख्य लक्षण भी है।

आर्थिक कारण—इन कारणो मे सबसे प्रथम देश मे प्राप्त प्राकृतिक सम्पत्ति का उल्लेख होता है। प्राकृतिक सम्पत्ति यदि विभिन्न प्रकार की और अधिक होती है तो प्रायः आर्थिक उन्नति सरलता से सम्भव होती है। परन्तु यदि प्राकृतिक, सम्पत्ति कम हो और उसका शोषण भी उचित ढग से न हो तो आर्थिक प्रगति मे बाधा उत्पन्न होती है। उत्पत्ति के प्रयासो मे से किसी एक प्रयास पर अत्यधिक बल प्रदान करना और दूसरे प्रयासो की अवहेलना करना भी राष्ट्रो के आर्थिक दृष्टिकोण से अविकसित रहने के कारण होते है। इसी प्रकार आमदनी मे कमी, उपभोग की मात्रा मे कमी जीवन स्तर का अवनत होना शिक्षा और काय कुशलता मे कमी, उत्पत्ति के साधनो का उपयोग न हो पाना, पूँजी की कमी, विनियोग की सुविधायें प्राप्त न होना, योग्य साहसियो और प्रबन्धकों की कमी, देश की त्रुटिपूर्ण औद्योगिक, आर्थिक, राजनैतिक और वित्तीय नीति, देश मे शान्ति और सुरक्षा का अभाव और सबसे ऊपर, देश मे एक ऐसे वातावरण का अभाव जिससे आर्थिक विकास शीघ्रता मे और सरलता से हो सके। ये कुछ अन्य आर्थिक कारण हैं जिनसे कुछ राष्ट्रो की आर्थिक स्थिति अविकसित रह जाती है।

अविकसित देशो के आर्थिक विस्तार के प्रयासो मे बहुत सी कठिनाइया भी आती है, जिनका सही हल हो जाने पर आर्थिक विकास का मार्ग खुल जाता है। जैसे हम इस प्रश्न का उत्तर ढूँढना पडता है कि आर्थिक विकास का प्रयास समाज के उच्चतम स्तर से शुरू कर या निम्नतम स्तर स ? उच्चतम् स्तर मे कम सख्या होने के कारण उसका नियोजन और प्रबन्ध सरलता से हो सकता है किन्तु यह स्तर तो पहले से ही उन्नत है। इसको और उन्नत बनाने स धन का असमान वितरण ,हो सकता है। यदि निम्नतम् स्तर को उन्नत बनाने की योजना बनाई जाय तो अत्यधिक पूँजी, प्रयास और साधनो की आवश्यकता होती है, जो अविकसित देशों मे

प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उन देशों की आर्थिक उन्नति के लिए इस प्रकार का नियोजन करना पड़ता है जिससे वर्ग भेद मिट जाय और देश की आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव हो सके।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अविकसित देशों के उन्नति के पथ पर राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जो कारण है उनको सामूहिक प्रयास से यदि दूर कर दिया जाय तथा साथ ही साथ देश में विभिन्न प्रकार की उत्पत्ति संस्थाओं में सुधार किये जायें और नियोजन के आधार पर देश की आर्थिक स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया जाये, तो आर्थिक दृष्टिकोण से अविकसित राष्ट्र धीरे-धीरे विकसित राष्ट्रों में परिणत हो सकते हैं।

४—अविकसित देशों की आर्थिक प्रगति में बाधायें

विभिन्न अर्थशास्त्रियों में प्राय इस बात पर वाद-विवाद होता है कि अविकसित देशों की आर्थिक उन्नति ठीक रूप से और शीघ्रता से क्यों नहीं होती? एक वर्ग के अर्थशास्त्रियों का जिनका दृष्टिकोण निराशावादी (Pessimistic) है—यह कहना है कि इन देशों में आर्थिक उन्नति कभी नहीं होगी, यह सर्वथा भ्रमपूर्ण है। दूसरे वर्ग के अर्थशास्त्रियों का यह कहना है (जिसमें अधिकतर विद्वान हैं) कि अविकसित देशों के सामने कुछ कठिनाइयाँ होती हैं जिनके कारण इन देशों में आर्थिक विकास नहीं हो पाता। यदि यह कठिनाइयाँ दूर कर दी जाये तो इन देशों में आर्थिक विकास सम्भव हो सकेगा। अविकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास के पथ में निम्नलिखित मुख्य बाधायें आती हैं —

१—अति जनसंख्या (Over population)—अविकसित देशों की आर्थिक अवनति का एक कारण तीव्रता से जनसंख्या का बढ़ना होता है। जिन देशों में पहले से ही जनसंख्या अधिक होती है, उनमे यदि निरन्तर वृद्धि होती रहे तो एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब कि देश का सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा ही अव्यवस्थित हो जाता है। जनसंख्या अधिक होने से देश में अकाल, भुखमरी, बीमारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप आदि में वृद्धि होती है। इसी प्रकार देश में बेरोजगारी फैलती है, राष्ट्रीय आय में कमी आ जाती है, प्रति व्यक्ति आमदनी कम हो जाती है, जीवन स्तर गिर जाता है, कार्य कुशलता में वृद्धि नहीं हो पाती, आर्थिक विकास की सुविधायें प्राप्त नहीं हो पाती। प्राय ऐसा देखा जाता है कि जनसंख्या का आधिक्य होने से मनुष्यों का दृष्टिकोण निराशापूर्ण हो जाता है, कृषि पर अत्यधिक बल प्रदान किया जाता है, जिससे आगे चल कर खेतों में उत्पत्ति-ह्रास-नियम लागू हो जाता है और उत्पत्ति की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि किसी देश में जनसंख्या का आधिक्य होने से उसका सामाजिक, राजनैतिक, चारित्रिक और आर्थिक पतन होता है। भारत और दक्षिणी पूर्वी एशिया के अन्य देशों में संतुलित रूप के आर्थिक विकास न होने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। समाज और राष्ट्र

के सयुक्त प्रयास द्वारा जब तक इन देशो की जनसख्या की वृद्धि पर पूरा नियन्त्रण न हो और परिवार नियोजन की भावना का विस्तार न हो तब तक अधिक जनसख्या की कठिनाइयो का दूर होना कठिन प्रतीत होता है।

२—बाजार की कठिनाइयाँ (Marketing Imperfections)—आर्थिक विकास के लिए दो बात बहुत आवश्यक समझी जाती हैं। एक तो यह कि सम्पूर्ण बाजार पर प्रभुत्व तथा नियन्त्रण सरकार द्वारा हो जिससे विभिन्न वर्गों का शोषण समाप्त हो जाये, और दूसरा बाजार म विनिमय का कार्य पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तगत तथा बाजार के नियमो के अनुसार हो।

अविकसित देशो मे इन दोनो बातो मे से कोई भी एक बात पूर्णरूप से लागू नही होती। इन देशो मे जब तक उत्पत्ति और वितरण के समस्त साधनो का पूर्ण राष्ट्रीयकरण नही होता है तब तक उत्पत्ति और वितरण के अधिकतर साधन कुछ पूँजीपतियो के हाथो मे होते हैं। जिसके फलस्वरूप इन देशो के बाजारो मे बाजार के नियम सही रूप से लागू नही हो पाते और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के सभी अवगुण दिखाई पडते है। व्यापार चक्र का प्रभाव, अति उत्पादन और अल्प उत्पादन के कुप्रभाव गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा का अस्तित्व, विभिन्न उत्पादको मे एक ऐसा सघर्ष और 'अनार्थिक' प्रतिस्पर्द्धा (जिससे राष्ट्र के निवासियो को विभिन्न प्रकार की हानि उठानी पडती है,) अत्यधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति और देश मे धन का असमान वितरण कुछ ऐसे तत्व हैं जिनका जन्म और विस्तार बाजार की त्रुटियो के अस्तित्व से ही होता है। इन त्रुटियो के रहने के कारण ही एकाधिकार की स्थापना होती है, वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि होती है जिससे नागरिको का जीवन स्तर नीचा हो जाता है, उद्योग धन्धो का ठीक विस्तार नही हो पाता और कभी-कभी देश के प्राकृतिक साधनो का उपयोग नहीं हो पाता। यह सब तथ्य ऐसे है जो किसी भी राष्ट्र को आर्थिक दृष्टिकोण से पीछे की ओर धकेलते हैं और उन प्रयासो के आगे दीवार बनकर खडे हो जाते हैं जो आर्थिक विकास के लिए किये जाते हैं। अविकसित देश आर्थिक उन्नति तभी कर सकते हैं जब वे इन कठिनाइयो को दूर करके सरकार और जनता के सामूहिक प्रयास से एक ऐसी आदर्श परिस्थिति की स्थापना कर सके जो उन्हे आर्थिक प्रगति की ओर ले जा सके।

३—विदेशी विनियोग से उत्पन्न कठिनाइयाँ (Repercussions of Foreign Investments)—अविकसित देशो के आर्थिक विकास की एक और बाधा देश स्थित विदेशी विनियोग से होता है। आर्थिक दृष्टिकोण से पिछडे हुए देशों मे प्राय पूँजी का विनियोग उन विदेशी राष्ट्रो द्वारा होता है जो आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से उन्नत हैं। इसके कारण दो होते हैं। पहला, इन पिछडे हुए देशो के पास विनियोग योग्य पूँजी का अभाव होता है और दूसरा कारण यह कि उन्नत देश उस ओर प्रयत्नशील रहते हैं कि उन्हें दूसरे देशो मे विनियोग करने की

सुविधा के अवसर प्राप्त हो। इन दोनों ही कारणों या किसी एक कारणवश पिछड़े हुए देशों में विदेशी विनियोग होता है। उसका परिणाम हमेशा घातक होता है। विदेशी साहसी केवल निजी लाभ के उद्देश्य से या अपने राष्ट्र-हित के उद्देश्य से इन पिछड़े हुए देशों में उत्पत्ति और वितरण का कार्य करते हैं। वास्तव में, इन विदेशी साहसियों द्वारा इन पिछड़े हुए राष्ट्रों का आर्थिक शोषण होता है और वे उनके आर्थिक विकास मे हमेशा के लिए बाधक रहते हैं। इन देशों के साहसी जब कभी भी उद्योगों की स्थापना का प्रयास करते हैं तो ये विदेशी साहसी अपनी सत्ता और शक्ति के द्वारा उस प्रयास को व्यर्थ कर देते हैं, जिससे उन राष्ट्रों का आर्थिक विकास सम्भव नहीं हो पाता। विदेशी साहसी मनमानी करते हैं और पिछड़े हुए राष्ट्रों का शोषण करके उनकी सम्पत्ति अपने राष्ट्र को पहुँचा देते हैं। जिससे अविकसित देश की दशा और बिगड़ जाती है। इस कमी को दूर करने के उपाय यह हैं कि या तो उत्पत्ति और वितरण का समस्त स्वामित्व दायित्व और अधिकार सरकार अपने हाथ मे लेले और इस प्रकार राष्ट्रीय और विदेशी समस्त उत्पत्ति संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण हो जाय या सरकार की ओर से इन विदेशी साहसियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखा जाय ताकि वे अपनी इच्छानुसार कार्य न कर सकें या राष्ट्र की सहायता से धीरे-धीरे विभिन्न उद्योगों की स्थापना राष्ट्र निवासियों द्वारा हो।

४—संरक्षण का अभाव, घाटे की वित्तीय व्यवस्था और अरक्षित अर्थ व्यवस्था से उत्पन्न कठिनाइयाँ (Failures of 'Protection', 'Deficit financing' and threat to 'Exposed Economy')—अविकसित देशों की आर्थिक कठिनाइयाँ कई अन्य कारणों से भी उत्पन्न होती हैं, जैसे शिशु उद्योगों को राष्ट्र द्वारा संरक्षण न मिलना या राष्ट्रीय उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से संरक्षण न मिलना। घाटे की वित्तीय व्यवस्था को अनियन्त्रित रूप से अपनाना और राष्ट्र मे अरक्षित अर्थव्यवस्था का अस्तित्व आदि।

पिछड़े हुए देशों के लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि वह आर्थिक उन्नति प्राप्त करने के लिए राष्ट्र के उद्योगों और साहसियों को सब प्रकार की सुविधायें प्रदान करे। इन सुविधाओं मे पूँजी प्राप्त करना, देश मे उद्योगों की स्थापना करना और उनका सफल संचालन, विदेशी आयात को रोकना, संरक्षण कर लगना आदि सम्मिलित हैं। यदि पिछड़ा हुआ देश इन कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें तो कुछ समय के पश्चात् राष्ट्रीय आमदनी में आवश्यक रूप से वृद्धि होगी। परन्तु विदेशी प्रभाव के कारण और अपनी कमजोरियों के फलस्वरूप अविकसित देश इस संरक्षण-नीति का ठीक प्रकार से संचालन नहीं कर सकता जिसके फलस्वरूप अविकसित देशों का आर्थिक विकास मन्द पड़ जाता है।

अविकसित देशों मे राष्ट्रोन्नति के उद्देश्य से घाटे की वित्तीय व्यवस्था को अपनाया जाता है। घाटे की वित्तीय व्यवस्था तभी तक उचित समझी जा सकती है हैं जब तक उसका पूर्ण नियन्त्रण सरकार द्वारा राष्ट्र हित के उद्देश्य से ठीक प्रकार

से सम्भव है। परन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि अविकसित देश घाटे की वित्तीय व्यवस्था मे निरन्तर वृद्धि करते जाते हैं। और एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कि घाटे की वित्तीय व्यवस्था का प्रसार इतना अधिक हो जाता है कि उसका नियन्त्रण बहुत कठिन हो जाता है। इससे देश म मुद्रा प्रसार हो जाता है, और वस्तुओ तथा सेवाओ की कीमत मे अत्यधिक वृद्धि होने लगती है। उसका परिणाम यह होता है कि जनता का उपभोग का स्तर और नीचा हो जाता है, जिससे जीवन स्तर भी गिर जाता है और अविकसित देश की आर्थिक स्थिति मे और अधिक अवनति आ जाती है।

इसी प्रकार 'अरक्षित अर्थव्यवस्था' का अस्तित्व अविकसित देशो के लिए बहुत ही हानिकारक होता है। इसमे देश की अर्थव्यवस्था पर सरकार का नियन्त्रण नही होता। कोई भी व्यक्ति (चाहे वह राष्ट्रीय हो या विदेशी) जिस रूप मे भी चाहे धन या पूँजी का उपयोग कर सकता है, पूँजी का विनियोग कर सकता है, उत्पत्ति की मात्रा मे विस्तार या सकुचन अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है, आयात और निर्यात पर कोई विशेष नियन्त्रण नही होता। इस प्रकार अरक्षित अर्थ व्यवस्था मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसका अधिकतम लाभ विदेशी विनियोगी उठाते हैं। ये सब बात अविकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे बाधक होती है। हर्ष की बात यह है कि अब प्राय सभी अविकसित देश उपरोक्त बातो को सम्पूर्ण रूप से अपने अधीन करने का प्रयास कर रहे हैं और इन देशो की सरकारे इस ओर सचेष्ट है कि देश की औद्योगिक, व्यावसायिक, वित्तीय और अन्य आर्थिक प्रयास सम्बन्धी तत्व सम्पूर्ण रूप से उनके अधिकार और नियन्त्रण मे हो।

५—औद्योगीकरण की कठिनाइयाँ (Problems of Industrialization)—विभिन्न राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे उद्योगो का विकास बहुत महत्वपूर्ण होता है। औद्योगिक विकास का अर्थ होता है—देश स्थित प्राकृतिक सम्पत्तियों का सन्तुलित शोषण, वस्तु और सेवाओं की अधिकतम उत्पत्ति, अधिक आमदनी और जीवन स्तर म उन्नति, रोजगार की अधिक सुविधायें और राष्ट्र का आर्थिक विकास। अविकसित देशो मे प्राय औद्योगीकरण की सुविधायें उपलब्ध नही होती। पूँजी और विनियोग की सुविधाओ का अभाव, उद्योग धन्धो का स्थापित न होना, विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से राष्ट्रीय उद्योगो की हानि और देशी उद्योगो द्वारा उत्पन्न वस्तु और सेवाओ को बाजार की अप्राप्ति, देश मे प्रशिक्षित कर्मचारियो की कमी, शक्ति के साधनो मे कमी या उत्पत्ति की आधुनिकतम प्रणालियो को अपनाने की असमर्थता, देश के औद्योगीकरण मे बाधायें हैं। जब तक अविकसित देश इन बाधाओं को दूर करके देश म नये नये उद्योग धन्धों की स्थापना नही कर पायेंगे तब तक उनका आर्थिक विकास सम्भव न हो सकेगा। आर्थिक विकास के लिए उद्योग धन्धो, व्यवसाय और वित्त सम्बन्धी नीति मे आवश्यक परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

६—खाद्य पदार्थों की कमी (Food insufficiency)—अविकसित देशो मे हमेशा खाद्य की कमी या अन्न सकट बना रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्र को सदा इस ओर सचेष्ट रहना पडता है कि विदेशो से खाद्य पदार्थों का आयात करके देशवासियो को भुखमरी से बचाये। इस प्रयास मे सरकार का समय, शक्ति और बहुत सा धन नष्ट हो जाता है—जिनका प्रयोग यदि अन्य रूप से किया जाय तो देश की आर्थिक स्थिति मे बहुत सुधार हो सकता है। इस प्रकार अविकसित देशों के लिए यह परमावश्यक समझा जाता है कि वह खाद्य पदार्थो के मामले मे आत्मनिर्भर बन जाय ताकि वह अपने साधन और शक्ति का प्रयोग देश के आर्थिक विकास के कार्यो मे कर सके। भारतवर्ष और दक्षिणी पूर्वी एशिया के प्राय सभी देशो मे खाद्य पदार्थो की कमी बनी रहती है जिसके कारण उनकी आर्थिक विकास की योजनायें पूरे उद्यम से कार्य नही कर पाती।

७—दोषपूर्ण शासन प्रबन्ध (Faulty Public Administration) अविकसित देशो मे प्राय यह देखा जाता है कि वहाँ शासन प्रबन्ध उतना स्वतन्त्र और कुशल रूप से नही हो पाता जैसा कि होना चाहिए। इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे, प्रबन्ध-शिक्षा की कमी, देश मे नैतिकता के सिद्धान्तो को कम अपनाया जाना, कमजोर सरकार का अस्तित्व या देश भक्ति का अभाव आदि। कभी-कभी तो शासन प्रबन्ध इसलिए भी ढीला होता है कि सरकार की नीति ही ढीली होती है।

प्रबन्ध और शासन ढीला तथा त्रुटिपूर्ण होने का प्रभाव देश के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो मे पडता है। राजनैतिक क्षेत्र मे यह प्रभाव होता है कि राज्य-सत्ता जिन हाथो मे होती है उनकी अपनी स्वतन्त्र और मजबूत नीति न होने से वे अपने राजनैतिक सिद्धान्त ठीक प्रकार से नही बना पाते जिससे राष्ट्र की अन्य राजनैतिक पार्टियाँ भी शक्तिशाली हो जाती हैं और वे आगे चल कर कठिनाइयाँ उत्पन्न कर सकती हैं। इसको दूर करना केवल एक ही रूप मे सम्भव है—राजनैतिक क्षेत्र मे कडे शासन प्रबन्ध का होना, ताकि उसमे किसी प्रकार का भेद भाव या भ्रष्टाचार न हो सके। सामाजिक क्षेत्र मे शासन प्रबन्ध का कुशल होना और भी अधिक आवश्यक है। शासन प्रबन्ध यदि सुदृढ नही होता तो समाज मे विभिन्न प्रकार की कुरीतियाँ प्रवेश करती है जो धीरे-धीरे समाज को खोखला बना देती हैं। *राष्ट्र का विकास समाज के विकास पर निर्भर होता है।* इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि समाज को नीचे गिरने से रोका जाय और इस बात का भरसक प्रयास नागरिको, समाज सुधारको और सरकार द्वारा होना चाहिए जिससे सामाजिक उन्नति बराबर होती रहे। राजनैतिक और सामाजिक उन्नति पर काफी हद तक राष्ट्र की आर्थिक उन्नति निर्भर करती है। क्योकि राष्ट्रो का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास होता है (और विशेपतौर पर अविकसित देशो का) इसलिए राज्य सरकार की ओर से इस बात का पूर्ण प्रयास होना चाहिए कि शासन प्रबन्ध अच्छे से अच्छा

हो। आर्थिक विकास के साधारण कार्य, नियोजन के कार्य, वस्तु और सेवाओं का नियन्त्रण, कीमतों का नियन्त्रण, उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण कार्यों में समय-समय पर विभिन्न प्रकार की सरकारी सहायता की आवश्यकता होती है जो उचित रूप से तभी सम्भव हो सकता है जबकि देश का शासन-प्रबन्ध कुशल हो। इसी प्रकार देश की वित्तीय-व्यवस्था, उद्योग, व्यवसाय, यातायात और सम्वादवाहन के साधन, कर नीति, राज्य उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में कुशल प्रबन्ध और सुदृढ़ शासन प्रबन्ध का होना बहुत आवश्यक है। राष्ट्र की आर्थिक उन्नति प्रत्यक्ष रूप से इसी पर निर्भर होती है। भारत का मन्दगति से आर्थिक विकास होने का एक कारण देश में कुशल शासन प्रबन्ध का अभाव है।

८—प्रजातन्त्रवाद से उत्पन्न कठिनाइयाँ (Problems of Democracy)—कभी-कभी यह देखा जाता है कि अविकसित देशों का शासन-प्रबन्ध प्रजातन्त्रवाद के आधार पर होता है। प्रजातन्त्रवाद प्रायः तभी सफल होता है जबकि देश के प्रायः सभी नागरिक शिक्षित हों किन्तु यदि उन क्षेत्रों में प्रजातन्त्रवाद की स्थापना हो—जहाँ शिक्षा का अभाव है तो प्रायः वहाँ प्रजातन्त्रवाद की सफलता कठिन हो जाती है। प्रजातन्त्रवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास के उद्देश्य से जो प्रयोग (Experimentation) किये जाते हैं उनसे बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे आर्थिक विकास का कार्य और कठिन हो जाता है। भारतवर्ष में भी प्रजातन्त्रवाद का अस्तित्व है और क्योंकि यहाँ के अधिकतर मनुष्य अशिक्षित हैं इसलिए बहुत से आर्थिक प्रयास बेकार हो जाते हैं। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास के लक्ष्य से जो प्रयोग देश में किये गये हैं उनमें से बहुत से (बहुत रुपया खर्च होने के बावजूद भी) असफल रहे हैं। अविकसित देशों में आर्थिक विकास एक ऐसे ढंग से होना चाहिए जिसमें प्रायः सरकार का हाथ शतप्रतिशत हो।

९—नियोजन के तरीकों में भिन्नता से उत्पन्न कठिनाइयाँ (Problems due to divercities of Planning Techniques)—जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं नियोजन के बहुत से तरीके और प्रणालियाँ हैं जो विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न प्रकार के नियोजन के उद्देश्य से अपनाये जाते हैं। यद्यपि इन तरीकों और प्रणालियों में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख होता है कि उनकी विशेषतायें कौन सी हैं या उनका व्यवहार किस रूप में और किस क्षेत्र में होना चाहिये, फिर भी प्रजातन्त्रात्मक देशों में जब नियोजन के विषय में विभिन्न प्रयोग होते हैं तो कभी-कभी नियोजन सम्बन्धी वे तरीके और प्रणालियाँ अपनाई जाती हैं जो एक दूसरे के प्रतिकूल होती हैं। इससे राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ता है और आर्थिक उन्नति के स्थान पर— काफी रुपया खर्च होने पर भी—आर्थिक अवनति ही दिखाई पड़ती है। इस विषय में इस बात का उल्लेख भी निराधार न होगा कि कभी-कभी एक ही राष्ट्र में एक ही सरकार द्वारा विभिन्न समय पर नियोजन के

विरोधी तरीको और प्रणालियो को भी अपनाया जाता है जिससे राष्ट्र की आर्थिक स्थिति मे कोई सुधार नही हो पाता। वास्तव मे तरीका यह होना चाहिए कि नियोजन के तरीके और प्रणाली के विषय मे पहले सोच विचार कर लिया जाय और उसके बाद जब किसी एक तरीके या प्रणाली को अपनाया जाय तो उसमे आगे चल कर फिर कोई परिवर्तन न किया जाय।

१०—प्रारम्भिक सुविधाओं का अभाव (Absence of basic facilities)—अविकसित देशो का आर्थिक विकास का एक मात्र उपाय आर्थिक नियोजन का अपनाना होता है। आर्थिक नियोजनों के निर्माण के लिए कुछ प्रारम्भिक सहूलियत आवश्यक होती है। जैसे, देश की जनसख्या के आकडे प्राप्त होना, प्राकृतिक साधनो की जानकारी, देश की आर्थिक स्थिति के विषय मे आँकडे प्राप्त होना आदि। अर्थात्, दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि नियोजन के लिए विभिन्न प्रकार के साख्यकीय आँकडे, प्रशिक्षित कर्मचारी, उत्पत्ति के विभिन्न साधन, विनिमय और वितरण की सहूलियते और नियोजन की पक्षपाती सरकार की आवश्यकता होती है। इन सबके ऊपर राष्ट्र के निवासियो का नियोजन द्वारा आर्थिक विकास प्राप्त करने का अदम्य उत्साह होना चाहिए। यह सब सुविधाये नियोजन कार्य के लिए प्रारम्भिक आवश्यकतायें समझी जा सकती हैं। जिन अविकसित देशो मे इन तथ्यो की बहुलता है वहाँ पर नियोजन द्वारा आर्थिक विकास सरलता से सम्भव होता है। लेकिन यदि किसी देश मे इन तथ्यो का अभाव हो तो उस राष्ट्र के लिए आर्थिक उन्नति प्राप्त करना कठिन हो जायेगा।

५—पूँजी-निर्माण की कठिनाइयाँ

(Problems of Capital formation)[1]

अविकसित देशो के आर्थिक विकास मे सबसे बडी बाधा पूँजी-निर्माण के सम्बन्ध मे होती है। पूँजी का निर्माण जब तक किसी देश मे नही हो पाता है तब तक राष्ट्र का आर्थिक विकास प्राय. सम्भव नही होता, क्योकि आर्थिक विकास के लिए नये-नये उद्योगो की स्थापना, देश स्थित प्राकृतिक सम्पत्तियो का सतुलित शोषण और व्यापार मे वृद्धि के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के विनियोगो की आवश्यकता होती है। यह सभी कार्य ऐसे है जिनके लिए पर्याप्त मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है। पूँजी के अभाव मे इच्छा और अन्य साधनो के मौजूद होने पर भी आर्थिक विकास कठिन हो जाता है।

कुछ विद्वानो का कहना है कि यदि राष्ट्र मे पूँजी की कमी हो तो विदेशो से पूँजी मँगाकर देश के उद्योगो का विस्तार सरलता से किया जा सकता है। यह एक

1. For mathematical implications, please also refer to chapter 15 (Theory of Growth)

ऐसा मत है जिस पर कोई राय देने से पहले अनुकूल और प्रतिकूल दोनो पक्षों का अध्ययन स्पष्ट रूप से कर लेना चाहिए। इसके पक्ष मे यह कहा जाता है कि आर्थिक विकास के प्रारम्भिक काल मे विदेशी पूँजी की सहायता लेने से उद्देश्य की प्राप्ति सरलता से और शीघ्रता से सम्भव हो जाती है। पूँजी का कुछ काल तक विदेशो से अपने देश मे विनियोग हो सकता है। कुछ सुविधाय प्रदान करके अविकसित देश विदेशी साहसियो को अपने देश मे उद्योग धन्धो की स्थापना के लिए आमन्त्रित कर सकते हैं, इससे अविकसित देशो मे वह उद्योग भी सरलता से स्थापित किये जा सकते है, जिनमे बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है और जो इन अविकसित देशो के पास नही होती। इस प्रकार देश मे नये उद्योग धन्धो की स्थापना से देश की कच्ची सामग्री का सरलता से और सुव्यवस्थित रूप से व्यवहार सम्भव हो जाता है, देश मे रोजगार की स्थिति मे सुधार हो जाता है, श्रमिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं। इन उद्योग धन्धों की स्थापना से विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति बडी मात्रा मे होने लगती है, जिससे उनके दामो मे ह्रास होता है और उसका उपभोग तथा व्यवहार साधारण जनता के लिए भी सम्भव हो जाता है जिसमे मनुष्यो का जीवन-स्तर ऊँचा हो जाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत रूप से आमदनी मे वृद्धि होने से और जीवन-स्तर के उन्नत हो जाने से मनुष्यो को अधिक मात्रा मे बचत करने की सुविधाएँ प्राप्त हो जाती है, जिसम आगे चलकर देश म अधिक पूँजी का निर्माण सम्भव हो जाता है। जब देश मे पूँजी का निर्माण इतना होने लगे कि देश को विदेशी पूँजी की आवश्यकता न रहे और वह उस क्षेत्र मे आत्मनिभर हो जाये, तो सरकार धीरे-धीरे विदेशी साहसियो का बहिष्कार कर सकती है या विदेशी सस्थाओ का राष्ट्रीयकरण कर सकती है। इस प्रकार अविकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास के प्रथम पहलू मे विदेशी पूँजी और साहसी बहुत योग दे सकते हैं।

इसके विपक्ष मे यह कहा जाता है कि 'विदेशी व्यापार के साथ विदेशी झडा भी आता है।' अर्थात् विदेशी साहसियो को यदि राष्ट्र के उद्योग धन्धो की सत्ता सौंप दी जाय तो इस बात का हमेशा डर बना रहता है कि विदेशी निजी लाभ के उद्देश्य से और अपनी स्वार्थ सिद्धि के उद्देश्य से क्रमश सरकार के प्रबन्ध और शासन क्षेत्र मे भी प्रभाव डालने लगते हैं और यदि राष्ट्रीय सरकार कमजोर हो तो उस बात का भी प्रयास कर सकते हैं कि समस्त राष्ट्र को ही हडप ले—जैसा भारत मे ब्रिटिश शासन काल के स्थायित्व काल मे हुआ था।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि जब विदेशी साहसी अपनी पूँजी लगाकर अविकसित राष्ट्रो मे उद्योग धन्धो की स्थापना करते हैं तो सदा इस बात की चेष्टा करते हैं कि उनका निजी लाभ अधिकतम मात्रा मे हो इस कार्य मे यदि उस राष्ट्र को हानि भी होती हो तो भी विदेशी साहसी अपने उद्देश्य की पूर्ति से निरस्त नही होते। इनके द्वारा इन अविकसित राष्ट्रो की प्राकृतिक सम्पत्तियो का

शोषण अत्यन्त असतुलित और घृणित रूप से होता है। इसी प्रकार, श्रमिको, राष्ट्रीय उद्योगपतियो और साधारण जनता का शोषण भी इन विदेशी साहसियों द्वारा होता है। यह विदेशी साहसी इस ओर भी सचेष्ट रहते हैं कि उनके कारखानो मे कोई भी 'देशी श्रमिक' किसी प्रकार की विशिष्ट शिक्षा' प्राप्त न कर सके और जब कभी भी किसी देशी उद्योगपति द्वारा उस वस्तु के निर्माण की चेष्टा होती है (जिसकी उत्पत्ति विदेशी साहसी कर रहे हैं) तो उस चेष्टा को यह किशोरावस्था मे ही कुचल देते हैं, जिससे उस राष्ट्र मे देशी साहसियो द्वारा आर्थिक विकास के प्रयत्न असफल हो जाते हैं और राष्ट्र के आर्थिक विकास की सम्भावना सदा के लिए लुप्त हो जाती है। विदेशी साहसी एकाधिकार की स्थापना करके बाजार का सम्पूर्ण नियन्त्रण अपने हाथ म ले लेते है और वस्तुओ तथा सेवाओ की मनमानी दर निश्चित करके उपभोक्ताओ का शोषण करते हैं। इन सब बातो के अतिरिक्त विदेशी साहसी प्राय इस ओर भी प्रयत्नशील होते है कि वे जो कुछ भी आमदनी करें उसे अपने देश मे भेज दें। इससे इन अविकसित राष्ट्रो के मूल्य पर इन साहसियो के देशो का आर्थिक विकास होता है।

अविकसित राष्ट्रो म पूँजी निर्माण की जो बहुत सी कठिनाइयाँ हैं उनम से सबसे महत्त्वपूर्ण कठिनाई यह है कि राष्ट्रीय आय और व्यक्तिगत आमदनी बहुत कम होती है। आमदनी कम होने का परिणाम यह होता है कि मनुष्यो क लिए जीवन-निर्वाह करना ही कठिन हो जाता है। वे इच्छा होते हुए भी किसी भी प्रकार से बचत नही कर पाते हैं। जब बचत की सम्भावना ही नही होती तो यह आशा करना कि उस राष्ट्र मे पूँजी का निर्माण सरलता से और अधिक मात्रा मे हो सकता कल्पना मात्र है। भारतवर्ष और दक्षिण पूर्व एशिया के अविकसित राष्ट्रो म जो पूँजी निर्माण नही हो पाता है, उसका खास कारण यही है कि इन राष्ट्रो की राष्ट्रीय आय और व्यक्तिगत आमदनी बहुत कम है, जिससे इच्छा रहने पर भी पूँजी-निर्माण सम्भव नही हो पाता है।

पूँजी-निर्माण के मार्ग मे अति-जनसख्या और जनसख्या का अधिक घनत्व भी एक प्रमुख बाधा होती है। जनसख्या आधिक्य होने से प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छा और कार्यक्षमता के अनुसार कार्य नही मिल पाता है। देश मे बेरोजगारी फैली होती है और रोजगार प्राप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। प्रतिस्पर्द्धा और गरीबी के कारण साधारण जनता को कम उम्र से ही किसी न किसी प्रयास मे जुट जाना पडता है, जिससे व्यक्तिगत आमदनी कम हो जाती है। श्रमिको की पूर्ति माँग के मुकाबले मे बहुत अधिक होती है जिससे मजदूरी की दर कम हो जाती है, इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रो मे जनसख्या आधिक्य होने से प्राय' व्यक्तिगत आमदनी बहुत कम हो जाती है, जिससे बचत और पूँजी-निर्माण प्राय सभव नही हो पाता।

प्रयासो मे असन्तुलन भी पूँजी-निर्माण को हतोत्साहित करता है। इसके अनुसार किसी एक विशेष प्रयास पर अत्यधिक बल प्रदान किया जाता है जबकि

दूसरे प्रयास उपेक्षित रह जाते हैं। इससे भी राष्ट्रीय आय मे कमी हो जाती है। उदाहरणार्थ, भारत का दृष्टान्त दिया जा सकता है जहाँ कृषि पर आवश्यकता से अधिक बल प्रदान किया जाता है जिससे कृषि प्रयास मे बहुत से व्यक्ति 'अतिरेक' के रूप मे होते हैं और बाकी लोगो को भी कृषि क्षेत्र मे साल भर काम नही रहता है। इसके विपरीत, गृह-उद्योग और उद्योग-धन्धो—जहाँ और अधिक मनुष्य प्रयुक्त होने चाहिए—उनकी कमी है। इसका भी प्रभाव यह होता है कि प्रति व्यक्ति आमदनी कम हो जाती है और सचय तथा पूँजी-निर्माण सम्भव नही हो पाता।

राष्ट्रोन्नति और विभिन्न सकटो को दूर करने के उद्देश्य से जब अविकसित देशो मे घाटे की बजट-नीति को अपनाया जाता है और देश मे मुद्रा प्रसार हो जाता है तो प्राय यह देखा जाता है कि देश की साधारण जनता को अपनी आवश्यकताओ को सतुष्ट करने के लिए अधिक खर्च करना पडता है किन्तु इस काल मे उनकी आमदनी उस अनुपात मे नही बढती जिस अनुपात मे मुद्रा-प्रसार के फलस्वरूप कीमतो मे वृद्धि होती है। इसका भी परिणाम यह होता है कि बचत नही हो पाती और बचत के अभाव से पूँजी निर्माण भी नही हो पाता।

नियोजन काल मे प्राय करो मे वृद्धि की जाती है। यह कर केवल उत्पत्ति तक ही सीमित नही होते बल्कि उपभोग की सभी वस्तुओ पर बिक्री कर और आय कर के रूप मे होते है। इस प्रकार जनता से विभिन्न प्रकार के भारी कर वसूल करने का परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपनी आमदनी म से एक बडे भाग को बचत के रूप म नही रख पाता है, जो आगे चल कर पूँजी का रूप ग्रहण कर सके।

अविकसित राष्ट्रो मे बैंक और साख सम्बन्धी सुविधाओ की कमी होने के कारण साधारण जनता की छोटी छोटी बचते एकत्रित नही हो पाती ताकि बैंक द्वारा इन छोटी-छोटी बचतो को एकत्रित करके विशाल पूँजी का रूप प्रदान किया जा सके। आधुनिक अर्थव्यवस्था मे उद्योग और व्यवसाय का विकास मुख्य रूप से साख की सुविधाओ पर निर्भर करता है और जो राष्ट्र इन सुविधाओ को प्रदान करने मे असमर्थ होता है वहाँ पूँजी का निर्माण या उद्योग धन्धो तथा व्यवसाय का विकास प्रायः सम्भव नही हो पाता।

अविकसित राष्ट्रो मे 'पूँजी की कमी' भी पूँजी के निर्माण मे एक विशेष बाधा उत्पन करती है। 'पूँजी' के अभाव से देश की प्राकृतिक सम्पत्तियो का शोषण उद्योग धन्धो की स्थापना, व्यावसायिक उन्नति और आर्थिक विकास सम्भव नही हो पाता है। और जब तक इन क्षेत्रो मे विकास सम्भव नही हो पाता तब तक राष्ट्रीय आय मे विशेष उन्नति होना सम्भव नही होता जिसके फलस्वरूप बचत करना और पूँजी का निर्माण कठिन हो जाता है।

अविकसित राष्ट्रों को परिवर्तनशील, अस्थाई और अशक्त व्यावसायिक, उद्योग सम्बन्धी और वित्तीय नीति भी पूँजी-निर्माण के पथ पर विघ्न उत्पन्न करती है। इन त्रुटिपूर्ण नीतियों का अस्तित्व अविकसित राष्ट्रों को आर्थिक उन्नति प्राप्त करने से दूर रखते हैं। इन नीतियों का स्पष्ट और शक्तिशाली न होने के कारण साहसी, उद्योगपति, विनियोगी और व्यवसायी नये-नये प्रयासों को अपनाने से डरते है जिससे राष्ट्रीय विकास और पूँजी का निर्माण सम्भव नही हो पाता।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि भारतवर्ष और दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य अविकसित राष्ट्रों में पूँजी का निर्माण बहुत-सी प्राकृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण सम्भव नही हो पा रहा है यद्यपि सभी सरकारें इस ओर सक्रिय रूप से सचेष्ट है और यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में यह बाधायें दूर हो जावेंगी और आवश्यकतानुसार पूँजी का निर्माण इन राष्ट्रों में सम्भव हो सकेगा।

अविकसित देशों में नियोजन-प्रणाली

(Planning Techinques for Under-developed Countries)

१—अविकसित देशों में नियोजन-महत्व

(Importance of Planning in Under developed Countries)

अविकसित देशो मे प्राय. यह देखा जाता है कि उनके साधनो का शोषण पूर्ण एव सन्तुलित रूप से नहीं हो पाता। इसका परिणाम प्रायः यह होता है कि विदेश मे आर्थिक उन्नति के पर्याप्त साधन विद्यमान होने पर भी देश का आर्थिक उत्थान नही हो पाता। आधुनिक काल मे प्रत्येक सरकार इस ओर सचेष्ट रहती है कि जहाँ तक हो सके राष्ट्र के समस्त सम्पत्ति और साधनो का व्यवहार राष्ट्र के अधिकतम कल्याण के उद्देश्य से हो सके। यही कारण है कि पिछड़े हुये, अर्द्ध विकसित और अविकसित देशो मे भी अब आर्थिक विकास पर बल दिया जा रहा है ताकि देश का आर्थिक उत्थान द्रुतगति से सम्भव हो सके, और यह राष्ट्र कुछ काल मे ही आर्थिक रूप से उन्नत राष्ट्रो के साथ प्रतिस्पर्द्धा मे अवतीर्ण हो सके।

प्राय सभी विकसित राष्ट्रो मे विदेशी शासन या तो अभी तक बना हुआ है या कुछ काल पहिले तक बना हुआ था। यह भी एक मुख्य कारण है जिसके फलस्वरूप इन राष्ट्रो का आर्थिक विकास व्यवस्थित रूप से नही हो पाया है। विदेशी शासको का यह आदर्श और उद्देश्य रहा है कि वह शासित देश को शोषण करें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने इस बात का प्रयास किया कि इन अविकसित देशो मे आर्थिक उन्नति न हो पाये। भारतवर्ष मे अंग्रेजो ने सदा इस बात की चेष्टा की कि भारत के खनिज पदार्थ और कच्ची सामग्री अधिकतम मात्रा मे ब्रिटेन भेजी जाय और वहाँ से निर्मित वस्तुएँ भारत मे मगाई जायें। इसका परिणाम यह होता था कि भारत को हानि होती थी और साथ ही साथ उसके उन्नति करने के मार्ग में सदा के लिये कठिनाई उत्पन्न होती थी। देश की कच्ची सामग्री निर्यात के रूप मे बाहर चली जाती थी और निर्मित वस्तु के रूप मे आयात होती थी इससे राष्ट्र का आर्थिक ढाँचा कमजोर होता चला गया।

अविकसित देशो मे पूँजी का सदा अभाव रहता है। उसका कारण यह है कि नागरिको की आमदनी कम रहने की वजह से वे बचत नही कर पाते और जब तक बचत नही हो पाती है तो विनियोग कार्य के लिये पूँजी का निर्माण भी नही हो पाता। यह भी एक कारण है जिसके लिये इन अविकसित देशो मे नियोजन का अत्यन्त महत्त्व है। इन देशो मे नियोजन का कार्य प्राय सरकार द्वारा होता है एव विनियोग के लिये पूँजी की व्यवस्था भी प्राय सरकार और साहसी दोनो के सहयोग से होती है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन पद्धति के अपनाने पर ही इन राष्ट्रो का आर्थिक उत्थान सम्भव हो पाता है।

अविकसित देशो मे शिक्षित और प्रशिक्षित (Technical) श्रमिको की कमी रहती है। नियोजन के अभाव मे इन देशो मे न तो शिक्षा एव प्रशिक्षण की व्यवस्था ही ढगपूर्ण रीति से हो सकती है और न उद्योग, कृषि, व्यवस्था एव अन्य क्षेत्रो मे आवश्यकतानुसार योग्य व्यक्ति ही प्राप्त हो सकते है। इस प्रकार यदि इन देशो मे नियोजन पद्धति न अपनाई जावे तो उत्पत्ति-व्यवस्था एव वितरण व्यवस्था मे कभी भी परिवर्तन या सुधार सम्भव नही हो सकेगा। इससे भी देश का आर्थिक विकास सदा के लिये रुक जावेगा।

इस प्रकार हम यह देखते है कि अवकसित राष्ट्रो के लिये आर्थिक उत्थान एव राष्ट्र का पुन सगठन (आर्थिक रूप से) नियोजन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। नियोजन का स्वरूप अलग अलग प्रकार का हो सकता है, किन्तु नियोजन-पद्धति का अपनाया जाना आवश्यक है।

२—उद्योग-प्रमुख नियोजन या कृषि-प्रमुख ?

(More Industry or Agriculture ?)

अविकसित राष्ट्रो के नियोजको के सामने सदा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे राष्ट्र के आर्थिक विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उद्योग पर अधिक बल दें या कृषि पर ? साधारण रूप से कुछ यह प्रश्न कर सकते हैं कि किसी एक क्षेत्र पर अधिक बल देने की क्या आवश्यकता है। कृषि और उद्योग दोनो पर समान बल दिया जा सकता है और दोनो मे एक ही साथ उन्नति प्राप्त की जा सकती है। वास्तव मे, यह धारणा गलत है। हमे यह नही भूलना चाहिये कि अविकसित राष्ट्रो के पास साधन और पूँजी की अत्यन्त कमी रहती है। उस सीमित साधन और पूँजी के अपनाने से, विशेष रूप से एक ही क्षेत्र पर अधिक बल प्रदान किया जा सकता है, समस्त क्षेत्रो पर नही। अविकसित देश अधिकतर कृषि-प्रधान हैं। यही कारण है कि इन देशो में जब नियोजन का कार्य शुरू किया जाता है तो प्राय कृषि की उन्नति एव पुनर्सगठन पर अधिक बल प्रदान किया जाता है। इसके मुख्यत दो कारण होते हैं:-

(१) कृषि प्रधान देशों मे अधिक सख्यक जनता का भाग्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर होता है। इसीलिये उनके भाग्य को सभालने की पहिले चेष्टा की जाती है। देश की अधिक सख्या जनसख्या यदि खुशहाल हो जावे तो बाकी भाग भी धीरे-धीरे खुशहाल हो जावेगा।

(२) उद्योग के मुकाबले मे कृषि के पुनरुत्थान मे कम पूँजी की आवश्यकता होती है। अविकसित देशो मे पूँजी की हमेशा कमी बनी रहती है इसलिये इस बात की चेष्टा की जाती है कि पहिले उन क्षेत्रो को उन्नत बनाने का प्रयास किया जावे जो कम पूँजी द्वारा सम्पन्न हो सके।

सोवियत सघ, चीन, आदि देशो मे जब प्रारम्भिक रूप से योजना का कार्य शुरू किया गया तो वहाँ पर भी पहिले कृषि को उन्नत बनाने की ही चेष्टा की गई थी। भारतीय प्रथम पचवर्षीय योजना मे भी इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि "भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिये कृषि उन्नति पर सबसे अधिक महत्त्व और प्राथमिकता प्रदान की गई है।"

नियोजन के प्रारम्भिक काल मे कृषि को उन्नत बनाने का सबसे बडा लाभ यह होता है कि खाद्य पदार्थ एव कुछ कच्ची सामग्रियों के विषय मे देश आत्मनिर्भर हो जाता है। इसके अतिरिक्त क्योकि अधिक सख्यक जनसख्या कृषि पर आधारित होती है इसलिये उनकी आर्थिक स्थिति मे सुधार होने से देश की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो जाती है एव अन्य क्षेत्रो मे उन्नति करने के लिये राष्ट्र को सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु इसमे दोष भी है। कृषि प्राय असगठित रहती है एव कृषक वर्ग सुधारो को मानने से प्राय इन्कार करते है। इसका परिणाम यह होता है कि नियोजन-काल ही मे द्रुत आर्थिक विकास की उपलब्धि अत्यन्त कठिन हो जाती है। एक और कठिनाई यह है कि राष्ट्र की व्यक्तिगत आमदनी तीव्रगति से तब तक नही बढ सकती जब तक कि देश मे उद्योग और व्यवसायो का विकास सन्तुलित एव द्रुतगति से न हो।

प्रायः सभी देशों मे, जहाँ नियोजन-पद्धति अपनाई जाती है, इस बात की चेष्टा की जाती है कि नियोजन की प्रारम्भिक स्थिति मे कृषि मे आवश्यकीय सुधार किया जावे तथा कृषि क्षेत्र के विकास पर अधिक बल दिया जाय। इससे भविष्य मे किये जाने वाले अन्य नियोजनो के लिये सुदृढ आधार तैयार हो सके। इसके पश्चात् अन्य योजनाओ मे प्राय उद्योगो के विकास पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है—साथ ही साथ इस बात की भी चेष्टा होती है कि देश किसी भी उन्नति की ओर अग्रसर हो सके। भारतवर्ष मे प्रथम योजना मे कृषि आदि के विकास पर अत्यधिक बल प्रदान किया गया था, किन्तु द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे उद्योग एव व्यवसायो की उन्नति पर अधिक बल प्रदान किया गया है।

३—पूँजी-प्रमुख या श्रम-प्रमुख उत्पादन ?
(Capital Intensive or Labour Intensive Production ?)

अविकसित देशो मे नियोजन पद्धति के निर्णय करते समय नियोजको के सामने एक प्रश्न यह आता है कि नियोजन के अन्तर्गत वस्तु और सेवाओ की उत्पत्ति का स्वरूप क्या हो ? अर्थात् श्रम-प्रमुख प्रणाली द्वारा उत्पादन का कार्य करना चाहिये या पूँजी-प्रमुख प्रणाली द्वारा। श्रम-प्रमुख उत्पत्ति मे सबसे बडा गुण यह होता है कि अधिकतम मात्रा मे नागरिको को रोजगार प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि अधिक जनसख्या वाले देशो मे, और विशेष तौर से उन देशो मे, जहाँ रोजगार की कमी है श्रम-प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली अपनाई जाती है ताकि देश मे जो बेरोजगारी या अर्द्धबेरोजगारी विद्यमान है वह समाप्त हो जाय या उसकी मात्रा कम से कम रह जाय। भारतवर्ष भी एक ऐसा ही देश है जहाँ जनसख्या अधिक है एव पर्याप्त मात्रा मे बेरोजगारी है। यही कारण है कि भारतीय नियोजन मे इस बात की चेष्टा की गई है कि जहाँ तक हो सके श्रम-प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली को ही अपनाया जाय। इस प्रणाली मे सबसे बडा दोष यह है कि इस प्रणाली के अपनाये जाने पर आर्थिक विकास का कार्य मन्द गति प्राप्त करता है। इस प्रकार योजना काल मे व्यक्तिगत आय और राष्ट्रीय आय मे विशेष वृद्धि नही हो पाती। साथ ही साथ योजना काल मे जनसख्या मे क्रमागत वृद्धि होने से देश का आर्थिक विकास प्राय स्थिर हो जाता है।

पूँजी प्रमुख उत्पत्ति के साधनो मे सबसे अधिक प्रमुखता पूँजी को प्राप्त होती है। अधिक पूँजी के विनियोग मे, बडी मात्रा म शक्ति और मशीनो के प्रयोग से, अभिनवीकरण (Rationalisation) की पद्धति को अपनाकर उत्पत्ति प्रणाली मे परिवर्तन करके एव अधिकतम साधनो का प्रयोग करके उत्पत्ति का कार्य किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वस्तुओ और सेवाओ की उत्पत्ति अधिकतम मात्रा म एव कम से कम उत्पत्ति व्यय पर उत्पन्न हो जाता है एव देश मे आर्थिक प्रगति द्रुतगति से सम्भव हो जाती है। इस प्रणाली का सबसे बडा दोष यह होता है कि अत्यधिक पूँजी के विनियोग से एव मशीनो के प्रयोग के कारण श्रमिको को काय मिलना कठिन हो जाता है तथा देश मे बेरोजगारी फैल जाती है। अर्द्धविकसित या अविकसित देशो के लिए इससे लाभ के स्थान पर और कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है। इन देशो मे इस प्रणाली को नियोजन के अन्तर्गत सम्मिलित न करने का एक और कारण यह है कि इन देशो मे पूँजी की कमी बनी रहती है जिससे विशाल मात्रा म पूँजी का विनियाग सम्भव नही हो पाता है। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि अविकसित देशो मे बडी मात्रा की उत्पत्ति या पूँजी-प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली अपनाई ही नही जाती। वास्तव म अविकसित राष्ट्रो के नियोजक इस ओर सदा सचेष्ट रहते है कि नियोजन मे श्रम-प्रमुख और पूँजी

प्रमुख दोनो ही प्रकार की उत्पत्ति प्रणाली को अलग-अलग क्षेत्रो मे अपनायें। भारतवर्ष मे भी नियोजकों ने प्रथम, द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे इस ओर स्पष्ट सकेत किया है कि कृषि, छोटे उद्योग एव गृह उद्योगो के क्षेत्र मे श्रम प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली अपनाई जायगी जबकि बडी मात्रा की उत्पत्ति और व्यवसायो मे पूँजी-प्रमुख प्रणाली। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अविकसित राष्ट्रो के लिए केवल मात्र पूँजी-प्रमुख प्रणाली का अपनाना घातक सिद्ध होगा।

४—घाटे के बजट द्वारा नियोजन

(Planning Through Deficit Financing)

अविकसित राष्ट्रो मे पूँजी की हमेशा कमी रहती है। यही कारण है कि नियोजको को योजना बनाते समय इस बात का पता पूरी तरह से लगाना पड़ता है कि नियोजन कार्य के लिए वित्तीय साधनो की व्यवस्था किस प्रकार होगी। अर्थात् कितना रुपया, नियोजन काल मे, करो द्वारा, रेवेन्यू से, उधार माँग कर (देश या विदेश से) सहायता प्राप्त कर आदि इकट्ठा हो सकेगा। इसी के आधार पर उन्हे नियोजन के उद्देश्य, आधार, एव आकार का निर्धारण करना पड़ता है। व्यावहारिक रूप से यह देखा जाता है कि अविकसित देशो मे नियोजन कार्य को सफल और प्रगतिशील बनाने के लिए जितने वित्तीय साधनो की आवश्यकता होती है उतना साधन इन सरकारो के पास प्राय नही होता। इस कमी को दूर करने के लिए करो की मात्रा मे वृद्धि की जाती है, विदेशो से सहायता और ऋण प्राप्त किये जाते हैं। देश की जनता स भी रुपया माँगा जाता है। इन सब पद्धतियो को अपनाने के पश्चात् भी जो कमी रह जाती है उसको पूरा करने के लिए घाट की बजट योजना को अपनाना आवश्यक हो जाता है। नियोजन के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रति वर्ष घाट का बजट बनाया जाता है। किन्तु इस प्रणाली मे एक बहुत बड़ा दोष होता है। वह यह कि इस प्रणाली से देश म अत्यधिक मात्रा म मुद्रा प्रसार हो जाता है। मुद्रा प्रसार के साथ ही साथ इसकी समस्त कठिनाइयाँ, जिसम कीमतो का अत्यधिक बढना सबस अधिक प्रमुख है, देश म उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार अधिक समय तक और अधिक मात्रा म घाटे की बजट पद्धति के अपनाये जान पर लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

अविकसित देशो के लिए क्योंकि घाटे की बजट योजना प्राय: अपरिहार्य होती है इसलिए इन सरकारो द्वारा इस बात की भी चेष्टा साथ ही साथ करनी चाहिये कि देश म अत्यधिक मुद्रा प्रसार न हो सके। अत्यधिक मुद्रा प्रसार होने से योजना के समस्त लाभ समाप्त हो जाते हैं और जनता के लिए वही कठिनाइयाँ बनी रह जाती हैं जिनको कि दूर करने के लिए नियोजन पद्धति अपनाई जाती है।

अत्यधिक मुद्रा प्रसार को दूर करने के कई उपाय होते है—जैसे, कीमत पर नियन्त्रण, राशनिंग प्रणाली को अपनाना, साख नियन्त्रण, मुद्रा प्रचलन पर नियन्त्रण आदि। प्राय सभी अविकसित देशो मे योजनाधिकारी घाटे की बजट योजना को अपनाते है और उसमे उत्पन्न मुद्रा प्रसार की समस्त कठिनाइयो को दूर करने के लिए उपरोक्त उपाय अपनाते है। इस प्रकार देश की पूँजी की कमी की कठिनाई भी दूर हो जाती है और जनता को अत्यधिक कठिनाई का सामना भी नही करना पडता है। एक बात उस विषय मे ध्यान रखने योग्य है—वह यह कि अविकसित देशो में प्रारम्भिक नियोजन काल मे आवश्यक रूप से वस्तुओं और सेवाओ के मूल्य म वृद्धि होती है जिसमे जनता को कुछ कठिनाइयो का सामना करना पडता है—यह स्थिति अवाछनीय होते हुए भी अवश्यभावी होती है। नियोजन अधिकारी को इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास करना चाहिये, किन्तु इस कठिनाई से भयभीत होकर नियोजन के कार्य मे ढील प्रदान नही करनी चाहिये या नियोजन के कार्य को स्थगित नही कर देना चाहिये। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अविकसित देशो मे घाटे की बजट योजना—कुछ कठिनाइयाँ होते हुए भी—परम आवश्यक है।

५—केन्द्रीय नियोजन या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ?

(Centralised Planning or Mixed Economy ?)

अर्द्धविकसित या अविकसित राष्ट्रों के सामने साधन और पूँजी की कमी बनी रहती है इसीलिये उसके सामने यह प्रश्न भी सदा बना रहता है कि नियोजन का स्वरूप पूर्णरूपेण केन्द्रीय हो या सार्वजनिक प्रयास के साथ-साथ निजी प्रयास का भी सह-अस्तित्व हो ' केन्द्रीय नियोजन यदि पूर्णरूप से हो—तो उसका अर्थ यह होगा कि नियोजन का काय, उसका प्रबन्ध, प्राथमिकता एव उद्देश्य का निर्णय तथा पूँजी की व्यवस्था केन्द्रीय 'सरकार' द्वारा ही होगी। अविकसित राष्ट्रों की सरकार के पास पर्याप्त माना मे साधन और पूँजी नही होती इसलिये यह सरकार नियोजन की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर नही ले पाती। यदि यह सरकार यह चाहे कि नियोजन का शतप्रतिशत कार्य अपने हो हाथ म ले तो आवश्यक रूप से नियोजन कार्य मे कठिनाइयाँ उपस्थित होगी और उद्देश्य की पूर्ति मे भी बाधाय आवेगी। यही कारण है कि अविकसित राष्ट्र नियोजन के प्रारम्भिक काल मे समस्त दायित्व अपने ही उपर नही लेवे और नियोजन के कार्य मे केन्द्रीय सरकार के प्रयासो के साथ-साथ व्यक्तिगत प्रयास का भी सह-अस्तित्व होती है।

भारतवर्ष की प्रथम, द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओ का यदि विश्लेषण किया जाय तो भी यह पाया जायगा कि ये योजनाए मिश्रित अर्थव्यवस्था पर ही आधारित हैं। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि न तो सरकार के पास इतनी विशाल पूँजी है कि वे नियोजन के समस्त खर्चो को उठा सकें, न साहसियो के पास

ही इतना धन है कि वे सरकार की सहायता के बिना ही देश मे औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास सम्बन्धी समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इस प्रकार यदि मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली न अपनाई जाती तो नियोजन का कार्य सफलतापूर्वक अग्रसर नही हो पाता।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अविकसित देशो के नियोजनाधिकारियो को नियोजन बनाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि राष्ट्र की द्रुत आर्थिक विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पूँजी की कठिनाई को मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली को अपना कर दूर करदें। भारतवर्ष मे यही प्रणाली अपनाई जा रही है, एव चीन व रूस मे प्रारम्भिक नियोजन काल मे इसी पद्धति को अपनाया गया था। अविकसित राष्ट्रो के लिये नियोजन द्वारा आर्थिक विकास प्राप्त करने का यही सही रास्ता है।

६—व्यक्तिगत आमदनी में वृद्धि या राष्ट्रीय आय में वृद्धि ?

(Increase in par-capita Income or in National Income ?)

साधारण रूप से तो यही कहा जाता है कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने से प्रति व्यक्ति आमदनी मे भी वृद्धि हो जाती है—और यह सही भी है। किन्तु, यदि आय के स्तर मे अत्यन्त विशाल अन्तर हो या वितरण की पद्धति त्रुटिपूर्ण हो तो यह भी हो सकता है कि राष्ट्रीय आय मे द्रुतगति से वृद्धि होने पर भी साधारण जनता की प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष आमदनी मे विशेष उन्नति न हो। इसका कारण यह रह सकता है कि देश के कुछ ही धनी व्यवसायी औद्योगिक-विकास द्वारा बहुत अधिक मात्रा मे धन कमायें, और इस प्रकार राष्ट्र की सम्पत्ति केवल कुछ ही हाथों में एकत्रित हो जावे। ऐसी अवस्था मे साधारण जनता की प्रतिवर्ष आमदनी मे विशेष उन्नति नही होगी जबकि धनी वर्ग की आमदनी मे अत्यधिक वृद्धि से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि सम्भव है।

अविकसित राष्ट्रो मे साधारण जनता की आमदनी बहुत कम रहती है। इस आमदनी मे वृद्धि करने के उद्देश्य से ही नियोजन का कार्य हाथ मे लिया जाता है। नियोजन के पश्चात् भी यदि वितरण की त्रुटि की वजह से साधारण जनता की प्रति व्यक्ति आमदनी मे विशेष अन्तर (उन्नति) न हो पाये तो इसका अर्थ यह होगा कि नियोजन का उद्देश्य असफल रहा। अधिकतर नियोजनाधिकारी इस बात की चेष्टा करते है कि नियोजन द्वारा साधारण जनता की प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आमदनी के स्तर को ऊँचा बनायें, और इस प्रकार प्रति व्यक्ति आमदनी एवं राष्ट्रीय आय दोनो मे सन्तुलित रूप से वृद्धि होती है।

उपरोक्त विषय के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अविकसित राष्ट्रों के नियोजन भरसक इस बात का प्रयास करते है कि नियोजन काल मे एवं नियोजन द्वारा राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की आमदनी मे उन्नति प्राप्त हो। इससे

राष्ट्र के साथ-साथ प्रत्येक नागरिक भी खुशहाल हो जाता है और उनका जीवन स्तर ऊँचा हो जाता है—जो नियोजन का उद्देश्य भी है। भारतीय योजनाओं के विश्लेषण करने पर भी हम इसी सत्य को पाते हैं।

७—अधिक उत्पत्ति या अधिक उपभोग ?

(More Production or More Consumption ?)

योजना के उद्देश्यो मे अधिक उत्पत्ति और अधिक उपभोग दोनो होते हैं। परन्तु योजना के निर्माताओ को इस बात का फैसला करना पडता है कि उत्पत्ति और उपभोगो मे से वह किस को अधिक प्राथमिकता प्रदान करें ? साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि उत्पत्ति और उपभोग आपस मे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। एक मे कमी आने से दूसरे मे भी कमी आ जाती है और एक के बढ जाने से दूसरे मे भी वृद्धि आ जाती है।

अविकसित राष्ट्रो के सामने उत्पत्ति और उपभोग दोनो की समस्याएँ होती है। आमदनी कम रहने की वजह से उपभोग का स्तर भी नीचा रहता है। इसी कारण बचत भी नही हो पाती और न पूँजी का निर्माण हो पाता है। पूँजी के अभाव मे उत्पत्ति का कार्य भी अग्रसर नही हो पाता। नियोजनाधिकारी के सामने उपभोग के स्तर को ऊँचा करने तथा उद्योग धन्धों के विकास का प्रश्न रहता है। नियोजन काल मे प्रति व्यक्ति आमदनी म वृद्धि होती है जिससे साधारणतया मनुष्यो का जीवन स्तर कुछ ऊँचा होता है। इससे स्वत ही उपभोग का स्तर थोडा ऊँचा हो जाता है। आमदनी मे वृद्धि होन से सचय की मात्रा मे भी वृद्धि होती है जिससे पूँजी का निर्माण सरल हो जाता है और उत्पत्ति पहिले से अधिक मात्रा में होने लगती है।

अविकसित राष्ट्रो के प्रारम्भिक नियोजन काल मे उत्पत्ति पर अधिक बल दिया जाता है। ('उत्पत्ति' मे सभी प्रकार और सभी स्तर की उत्पत्ति सम्मिलित रहती है।) उत्पत्ति कार्य मे सरकार और साहसी दोनो ही एक दूसरे से सहयोग करते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे राष्ट्र मे औद्योगीकरण का उद्देश्य पूरा हो जाता है और वस्तुएँ सस्ती बनने के कारण और आमदनी की वृद्धि से उपभोग का स्तर भी ऊँचा हो जाता है।

इस विषय मे दो बातें विशेष रूप से ध्यान मे रखने योग्य है। प्रथम, उत्पत्ति के समस्त प्रयास केवल साहसियो के हाथ में ही नही होने चाहिये, क्योंकि उस हालत मे देश मे धन का वितरण असमान हो जायगा—जो नियोजन सिद्धान्त के विरुद्ध और अवाछनीय है। द्वितीय, इस अवस्था मे इस बात का भी भय बना रहेगा कि साधारण मनुष्य की आमदनी स्तर की विशेष उन्नति मे रुकावट न होने पावे। राष्ट्र की ओर से इस बात का पूरा प्रयास होना चाहिये कि नियोजन के लाभ समस्त जनता को प्राप्त हो—केवल धनी वर्ग को ही नही। भारतीय योजना

में समाजीकरण, केन्द्रीयकरण, कल्याणकारी राज्य की स्थापना और समाजवादी ढग के समाज की *स्थापना* के *प्रयास* आदि उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सम्मिलित किये गये है।

इस प्रकार हमारा निष्कर्ष यह है कि अविकसित राष्ट्रों की योजनाओं में उत्पत्ति पर उपभोग के मुकाबले में अधिक प्राथमिकता प्रदान की जाती है। नियोजन द्वारा जब इन राष्ट्रों का आर्थिक विकास काफी ऊँचे स्तर पर पहुँच जाता है तो फिर इस बात का अधिक प्रयास किया जाता है कि उपभोग के स्तर में वृद्धि हो— यो तो उत्पत्ति और आमदनी बढने से साधारण उपभोग के स्तर मे उन्नति स्वतः ही हो जाती है।

८—अव्यवस्थित या अर्द्ध-व्यवस्थित क्षेत्र को प्राथमिकता प्रदान की जावे ?

(Priority for Unorganised or Semi organised Sector ?)

अविकसित देशो के नियोजको के सामने एक प्रश्न सदा यह बना रहता है कि नियोजन द्वारा वह किस क्षेत्र को पहले विकसित करने का प्रयास करें? क्षेत्रों को सामान्य रूप से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—अव्यवस्थित एव अर्द्ध-व्यवस्थित। अव्यवस्थित क्षेत्र के विकास पर सामान्यरूप से नियोजन मे अधिकतम प्राथमिकता प्रदान किया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि जब तक *किसी देश के अव्यवस्थित क्षेत्र की उन्नति न हो, तब तक उस देश के लिये* द्रुत आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त न हो सकेगा। इसके विपरीत, यदि नियोजक अर्द्ध-विकसित क्षेत्र को उन्नत बनाना चाहे तो उस कार्य मे उसे विशेष कठिनाई का सामना नही करना पडेगा। इसका कारण यह है कि कम साधन के व्यय से एव कम कठिनाई से ही अर्द्ध-विकसित क्षेत्र को सुव्यवस्थित किया जा सकता है।

अर्द्ध-व्यवस्थित क्षेत्रों को सन्तुलित रूप से व्यवस्थित करने मे कम साधनो एव प्रयासो की आवश्यकता होती है। अविकसित देशो के पास साधनो की सदा कमी बनी रहती है। इसी कारण इन देशो के नियोजक इस बात की चेष्टा करते हैं कि पहले अर्द्ध-व्यवस्थित क्षेत्रों को पूर्ण रूप से व्यवस्थित बनाले। इस कार्य मे उन्हें विशेष कठिनाई नही उठानी पडती। जब तक यह क्षेत्र पूर्णरूप से व्यवस्थित हो पाते है तब तक अव्यवस्थित क्षेत्र उस पर्याय पर पहुँचते हैं जिनको कि हम अर्द्ध-व्यवस्थित क्षेत्र कहते हैं। इस प्रकार नियोजन द्वारा विभिन्न क्षेत्रों को उन्नत तथा व्यवस्थित करने का क्रम चलता रहता है।

भारतवर्ष मे जब प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ था तभी से इस बात की बराबर चेष्टा की जा रही है कि देश के भिविन्न क्षेत्रों की उन्नति एक क्रम से हो। द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी इस बात का स्पष्ट

सकेत मिलता है कि विभिन्न क्षेत्रो मे आर्थिक विकास का कार्यक्रम समानान्तर रूप से चले। फिर भी, इन क्षेत्रो के आर्थिक विकास मे कुछ प्राथमिकता का प्रदान किया जाना आवश्यक होता है। तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे कहा गया है, "तीसरी योजना के समान विशाल और विस्तृत योजना का विकास करते समय उसकी विभिन्न परियोजनाओ और व्ययो को ठीक ठीक सोपानो में बाँट लेना निहायत जरूरी है। इसके बिना यह सम्भव नहीं है कि योजना पर चुस्ती से अमल हो, पूँजी-विनियोग का हर वर्ष मिलने वाले स्वदेशी और विदेशी साधनो के साथ मेल बैठता रहे और इस बात का निश्चय हो कि योजना के हर सोपान मे कुछ परियोजनाओ पर अमल हो रहा है और योजना निरन्तर आगे बढ रही है और फायदा पहुँचा रही है ।" वास्तव म, योजना क प्रारम्भिक काल मे अर्द्ध-व्यवस्थित क्षेत्र को पूर्ण व्यवस्थित बना देने के कार्य को अधिक प्राथमिकता की आवश्यकता होती है क्योंकि इस कार्य मे कम साधनो की आवश्यकता होती है एव समय की दृष्टि से भी यह कार्य शीघ्र सभव होता है।

९—योजना की रूपरेखा[1]
(Plan-frame)

किसी योजना के पूँजी-विनियोग के रूप से पता चल सकता है कि योजना काल मे उसकी प्राथमिकतायें क्या रहगी और उसके विभिन्न भागो मे से किस पर कितना जोर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त, इनका निश्चय, उस समय विद्यमान आर्थिक परिस्थिति और सम्भावित प्रवृत्तियो का विचार करके, देश की बुनियादी, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ का विश्लेषण करके, और दीर्घकालीन लक्ष्यो को देख कर भी किया जाता है। इसलिये इनका निश्चय करते समय अनेक विचारो मे सन्तुलन रखने की होशियारी भी बरतनी पडती है।

विकास के नक्शे मे स्वभावत सबसे प्रथम स्थान कृषि का है। देश को अन्न के क्षेत्र मे आत्मनिर्भर बना देना और उद्योगो तथा निर्यात की आवश्यकताये पूरी कर देना इसलिये कृषि के उत्पादन को यथासम्भव उच्चतम स्तर तक उठाना होगा, ताकि ग्रामीण लोगो की आमदनी और रहन-सहन का स्तर भी अन्य क्षेत्रो के लोगो के साथ साथ ऊँचा उठे। कृषि-उत्पादन का स्तर देख कर यह भी पता लगता है कि समस्त अर्थव्यवस्था की तरक्की किस रफ्तार से हो रही है। यो भी, कृषि-अर्थव्यवस्था का विस्तार और ग्रामीण जन-शक्ति तथा अन्य साधनो का उपयोग करने मे परस्पर गहरा सम्बन्ध है। . . .

सामान्य विचारो के द्वितीय वर्ग का सम्बन्ध योजना म उद्योग, बिजली और परिवहन के क्षेत्र को प्रदान की गई प्राथमिकता से है। अर्थव्यवस्था को

1 तीसरी पचवर्षीय योजना (रूपरेखा)—भारत सरकार, पृष्ठ २३—२४
(प्राय. सभी अविकसित देशों के नियोजन की रूपरेखा इसी ढंग की होती है)

उच्चतर स्तर पर ले जाने और उसकी गति को तीव्र करने के लिये इन क्षेत्रों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। यह मानी हुई बात है कि आगे बढने के क्रम मे एक मजिल ऐसी आ जाती है कि उससे आगे कृषि की उन्नति और जनशक्ति का विकास, उद्योगो की प्रगति पर ही निर्भर करने लगते हैं। इसलिये, कृषि और उद्योगो को सदा विकास की एक ही प्रक्रिया का समवाय अग मान कर चलना चाहिए। जब तक अर्थव्यवस्था स्वावलम्बी गति की दशा मे नही पहुँच जाती, तब तक औद्योगिक विकास के लिये विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बडी मात्रा में पडती ही रहगी।

चूँकि बडी परियोजनाओ मे लगाई हुई पूँजी से, उत्पादन-वृद्धि-रूपी फल की प्राप्ति, बहुधा बहुत समय के पश्चात होती है, इसलिए उसकी योजना काफी पहले से बना लेनी चाहिए, और दीर्घकाल पश्चात् तथा अपेक्षाकृत कम समय में फल देने वाली परियोजनाओ मे एक उचित अनुपात रख लेना चाहिए।

उद्योग, बिजली और परिवहन आदि प्रत्येक क्षेत्र मे प्राथमिकताओ का निश्चय सावधानीपूर्वक कर देना चाहिए, ताकि आवश्यकता पडने पर उनमे तुरन्त ही हेर फेर किया जा सके। ...इन क्षेत्रो के कार्यक्रमो का सचालन समन्वयपूर्वक होना चाहिए।

औद्योगिक क्षेत्र की योजना, समस्त अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ और प्राथमिकताओ को ध्यान मे रखकर बनाई (जाती) है, और वैसा करते समय योजना के सरकारी और निजी क्षत्रो को एक मान (लिया जाता है)। उपलब्ध प्राकृतिक साधनो और देश की बढती हुई आवश्यकताओ का तकाजा (होना) है कि बुनियादी उद्योगो पर—विशेषकर इस्पात, यन्त्र-निर्माण, ईधन और बिजली पर—ज्यादा जोर दिया जाय। ...समाज सेवाओ, विकास-क्षेत्रो, ... वैज्ञानिक अनुसधान, तकनीकी शिक्षा, आदि पर भी प्राथमिकता प्रदान की जाती है। नियोजन की रूपरेखा बनाते समय लक्ष्य, उद्देश्य, साधन आदि विषयो का पूर्णरूप से ध्यान रखा जाना चाहिए।

१०—अविकसित देशो में नियोजन की कठिनाइयाँ[1]
(Problems of Planning in Under-developed Countries)

अविकसित देशो के नियोजको को नियोजन के निर्माण मे बहुत सी बाधाओ का सामना करना पडता है। विशेषरूप से, नियोजन की प्रारम्भिक अवस्था मे यह कठिनाइयाँ स्पष्टरूप से दिखाई देती हैं तथा नियोजकों को जटिल परिस्थिति मे डाल देती हैं। किन्तु, नियोजन का कार्य जब सुचारु रूप से चल पडता है तो

1 With special reference to India (Please also read Chapter 13).

यह कठिनाइयाँ क्रमशः निस्तेज होने लगती हैं, और अन्तिम रूप से यह समाप्त हो जाते हैं। नियोजन के प्रारम्भिक काल मे निम्नलिखित कठिनाइयाँ विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है :—

(१) **आंकडों सम्बन्धी कठिनाइयाँ**—नियोजन के निर्माण के लिये एव उसे सुव्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने के लिये पर्याप्त माता मे एव सही आकडो की आवश्यकता होती है। सही आकडो के अभाव मे विभिन्न आवश्यकताओ की सही मात्रा का ज्ञान नही हो पाता। नियोजन के उद्देश्य, लक्ष्य, प्राथमिकता, साधन एव अन्य विषयो के निर्धारण के लिये पर्याप्त मात्रा मे एव सही प्रकार के आकडो (data) की आवश्यकता होती है। इनके अभाव मे नियोजन का कार्य ठीक प्रकार से नही हो सकता। अविकसित देशो मे प्राय सही आकडे इकट्ठे करने की सस्थायें नही होती—जिससे नियोजन कार्य मे बाधा पडती है। भारतवर्ष मे भी, प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ के निर्माण मे आकडों का अभाव स्पष्टरूप से अनुभव हुआ था। अब इस कार्य पर अधिक बल प्रदान किया जा रहा है।

(२) **जनसख्या के अनुमान की कठिनाइयाँ**—अविकसित देशो मे से अधिकतर या तो जनसख्या-आधिक्य के शिकार हैं या जनसख्या की कमी के। इससे कभी-कभी नियोजन-कार्य मे कठिनाई हो जाती है। परन्तु, जनसख्या की सही मात्रा के विषय मे अज्ञानता अत्यन्त हानिकारक है। इन देशों मे प्राय. यह पाया जाता है कि देश की जनसख्या को निरन्तर जानने का प्रयास नही होता। भारतवर्ष मे जन-गणना प्रत्येक १० वर्ष बाद होती है। इस बीच जनसख्या मे जो वृद्धि होती है उसके बारे मे जानकारी केवल अनुमान द्वारा ही ज्ञात की जाती है—जो सैद्धान्तिक रूप से गलत है। जनसख्या की वृद्धि किसी विशेष गति से नही होती है, अर्थात् किसी वर्ष जनसख्या अधिक तेजी से बढती है और कभी मद गति से। इस प्रकार नियोजक जब नियोजन का खाका बनाते हैं तो वे जनसख्या के अनुमानित अक को ही ध्यान मे रखते हैं, और उसी के अनुसार नियोजन करते हैं जिससे नियोजन कार्य में बाधायें उत्पन्न होती है। भारतवर्ष की प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे सफलता की कमी होने का एक कारण यह भी रहा कि जनसख्या मे वृद्धि (नियोजन काल मे) अनुमान से अधिक तीव्रता से हुई।

(३) **प्राकृतिक साधनों के अनुमान संबंधी कठिनाई**—नियोजन कार्य को सतुलित एव सुव्यवस्थित रूप से करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि देश की प्राकृतिक सपत्ति के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त हो। इसी के आधार पर उत्पत्ति के लक्ष्य, उद्देश्य एव नियोजन पद्धति का निर्धारण निर्भर करता है। देश मे यदि प्राकृतिक साधनो की भरमार हो तो ऐसे नियोजन को कार्यान्वित किया जा सकता है जिसमे इन साधनो का उपयोग अधिक मात्रा मे तथा ठीक प्रकार से किया जाय। इसके विपरीत, यदि देश मे प्राकृतिक साधनो की कमी होतो

छोटे आकार के नियोजन का निर्माण अवश्यम्भावी होगा। नियोजकों के सामने प्राकृतिक साधनों सबंधी आकडे तथा तथ्यों का होना बहुत जरूरी है। किन्तु, खेद का विषय है कि प्रायः सभी अविकसित देशों मे इस प्रकार के प्रामाणिक तथ्यों की हमेशा कमी रहती है जिससे नियोजन का कार्य जटिल हो जाता है। भारतवर्ष मे अब विभिन्न साधारण और सरकारीय सस्थाओ द्वारा—सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासो से—इस प्रकार के आकडे अब इकट्ठे किए जा रहे हैं जिससे नियोजन का कार्य क्रमश सरल होता जा रहा है।

(४) राष्ट्रीय आय के विषय मे अज्ञानता—यह एक और कमी है जो अविकसित राष्ट्रों के नियोजनाधिकारियों के सामने नियोजन-निर्माण मे कठिनाई पैदा करती है। राष्ट्रीय आय के विषय मे जब तक पूर्ण ज्ञान न हो तब तक नियोजन के उद्देश्य और लक्ष्यों के निर्धारण मे सुविधा नही होगी। राष्ट्रीय आय यदि बहुत कम हो तो मनुष्यों मे बचत करने की शक्ति भी कम होगी एव पूँजी का निर्माण भी अत्यत मद गति से होगा। इसका प्रभाव यह होगा कि आर्थिक विकास का कार्य द्रुत गति से सभव नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त भी, राष्ट्रीय आय के विषय मे अज्ञानता रहने पर नियोजन का सम्पूर्ण आधार भी गलत हो जायेगा। आधुनिक काल मे प्राय प्रत्येक सरकार द्वारा इस बात को जानने की चेष्टा की जाती है कि वहाँ की राष्ट्रीय आय प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष कितनी है? तब इस बात का निर्धारण होता है कि नियोजन के लक्ष्य के रूप में राष्ट्रीय आय मे प्रतिवर्ष कितने प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिये? भारत मे विभिन्न सस्थाओ द्वारा राष्ट्रीय आय को जानने का प्रयास होता आ रहा है। तृतीय पचवर्षीय योजना मे प्रतिवर्ष, प्रतिव्यक्ति की आमदनी मे पर्याप्त वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

(५) कर-वहन शक्ति के विषय मे अज्ञानता—नियोजन कार्य को सफल बनाने के लिए उस पर विशाल मात्रा मे खर्च करना पड़ता है। सरकार के पास इस खर्चे को उठाने के कई तरीके होते हैं, जिनमे से कर द्वारा जनता से रुपया प्राप्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कर लगाने के सिद्धान्तो मे यह भी बताया जाता है कि अधिकतम कर उतना ही लगना चाहिए जितना कि साधारण जनता सरलता से वहन कर सके। इसके लिए यह आवश्यक होता कि समय-समय पर इस बात की खोज होती रहे कि देशवासियों की कर-वहन-शक्ति कितनी है? अविकसित देशों मे इस बात की पूर्ण जानकारी नही हो पाती है जिसके फलस्वरूप ठीक रूप से एव ठीक मात्रा मे कर नही लग पाता। अविकसित देशो के नियोजकों के सामने यह भी एक समस्या होती है।

(६) विनियोग शक्ति की अनुमान सबधी कठिनाई—अविकसित देशो में प्राय. इस बारे मे तथ्य और आकडे इकट्ठे नही किए जाते कि देश मे विभिन्न उत्पत्ति-प्रयासों मे कितनी मात्रा मे विनियोग हो सकता है। अर्थात् इन राष्ट्रों के

नियोजनाधिकारियो को इस बात की अज्ञानता होती है कि विभिन्न क्षेत्रों मे, नियोजन काल मे, कितनी मात्रा मे एवं किस रूप से विनियोग सभव है ? इस अज्ञानता के कारण नियोजन के उद्देश्य, तरीके, आकार, प्रणाली, लक्ष्य एव साधनो के निर्धारण मे कठिनाई होती है। भारत मे जब प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ था तो यह कठिनाई भयानक रूप से नियोजको के सामने उपस्थित हुई थी। अब यह समस्या इतनी भयानक नही रह गई है, क्योंकि विभिन्न सस्थाओं द्वारा अब इस विषय मे जानकारी होती है।

(७) पूँजी उत्पादन-अनुपात (Capital Output-Ratio) सबधी आकडों का अभाव—अविकसित देशो मे पूँजो-उत्पादन अनुपात के विषय मे विशेष जानकारी नही होती है। इसका एक कारण तो यह है कि इन देशो मे उद्योग धधे अधिक उन्नत दशा मे नही होते हैं, और दूसरा कारण यह है कि इसके अध्ययन क समस्त लाभो के विषय मे इन देशो के निवासी प्राय अनभिज्ञ हैं। नियोजन के निर्माण मे इस विषय मे तथ्यो की उपलब्धि अत्यत आवश्यक है। इसी के आधार पर नियोजक उद्योग सबधी नीति का निर्माण करता है। भारत मे नियोजन के प्रारम्भिक काल मे इस विषय पर अधिक बल प्रदान नही किया गया था, किन्तु अब इस बारे मे पूर्ण जानकारी का प्रयास होना है। जब इस विषय पर पूरे तथ्य और आकडे प्राप्त होने लगेंगे तो नियोजन का कार्य और सुगम हो जायगा।

(८) नियोजनकाल सबधी कठिनाई—अविकसित राष्ट्रो के सामने एक यह भी कठिनाई होती है कि वह इस बात को स्पष्ट रूप से निर्धारित करें कि नियोजन की अवधि अल्पकाल की होगी या दीर्घकाल के लिए ? दीर्घकालीन नियोजन के लिए विशाल साधन की आवश्यकता होती है—जो प्राय सभी अविकसित देशो के लिए जुटाना कठिन होता है। दूसरी ओर, यदि योजना काल अत्यत छोटा हो तो नियोजन के सभी उद्देश्य प्राप्त न हो सकेंगे। यही कारण है कि प्राय सभी अविकसित देशो मे नियोजन प्रणाली इस प्रकार की होती है कि एक 'नियोजन' दीर्घकाल के लिए प्राय ५ से ७ वर्ष तक होता है जबकि उसी अवधि मे प्रत्येक वर्ष के लिए भी एक छोटी-छोटी योजना बनाई जाती है। इसस दीर्घकालीन योजना के समस्त लाभ प्राप्त हो जाते हैं और उसके निर्माण तथा कार्यान्वित होने की कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं।

(९) द्रव्य सम्बन्धी कठिनाई—अविकसित देशो के सामने नियोजन कार्य मे सबसे बडी बाधा या कठिनाई द्रव्य सम्बन्धी होती है। इन देशो के पास विशाल योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए साधनो की कमी रहती है। इसी कारण नियोजको को सबसे अधिक प्रयास इस बात का करना पडता है कि नियोजन कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए द्रव्य की व्यवस्था किस प्रकार हो ? साधारणतया

वे इस बात की चेष्टा करते हैं कि नियोजन कार्य के लिए अधिकतम धन सरकारी आमदनी से प्राप्त किया जावे। परन्तु प्राय. ऐसा देखा जाता है कि नियोजन-कार्य को चलाने के लिए उन देशो की सरकार की आमदनी कम रहती है। इसलिए इन राष्ट्रो द्वारा आमदनी मे वृद्धि करने के लिए करो मे वृद्धि की जाती है। जब कर में वृद्धि द्वारा भी समस्त आवश्यकता की पूर्ति नही होती तो देश की जनता से ऋण लिया जाता है। यदि इससे भी आवश्यकता की पूर्ति न हो तो विदेशो से ऋण मागा जाता है तथा घाटे की बजट-योजना का निर्माण किया जाता है। व्यावहारिक रूप से यह देखा जाता है कि इन राष्ट्रो की नियोजन सम्बन्धी द्रव्य की आवश्यकता इन समस्त उपायो को अपनाने के पश्चात् भी पूरी नही हो पाती और नियोजको को नियोजन का निर्माण करते समय द्रव्य सम्बन्धी कठिनाई का सामना करना पडता है।

(१०) घाटे के बजट योजना से उत्पन्न कठिनाइयाँ—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अविकसित राष्ट्रो द्वारा घाटे का बजट बना कर नियोजन कार्य सम्बन्धी द्रव्य और वित्तीय साधन की पूर्ति करने का प्रयास होता है। इससे यह कठिनाई तो काफी सीमा तक दूर हो जाती है, परन्तु और अन्य कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है—जैसे, देश मे मुद्रा प्रसार उत्पन्न होने के फलस्वरूप सभी वस्तुओ और सेवाओ की कीमतें अत्यधिक बढ जाती है। उसका परिणाम यह होता है कि उपभोग का स्तर तथा जीवन-स्तर दोनो ही नीचे गिरने लगते है, और नियोजन का उद्देश्य, जो कि जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का होता है, वह पूरा नहीं हो पाता है। अविकसित राष्ट्रो की सरकार और नियोजनाधिकारियो को सदा इस ओर सचेष्ट रहना पडता है कि घाटे के बजट के निर्माण से देश मे अत्यधिक मुद्रा-प्रसार और कीमतो म वृद्धि न होने पावे। इसके लिए उन्हे नियन्त्रण और राशनिंग आदि प्रणालियों को अपनाना पडता है।

(११) श्रम और उत्पत्ति के अन्य साधनों की गतिशीलता मे कमी—अविकसित राष्ट्रों के नियोजकों को एक और भी कठिनाई का सामना करना पडता है। इन देशो मे प्राय यह देखा जाता है कि उत्पत्ति के विभिन्न साधनो मे उतनी गतिशीलता नही होती जितनी उन्नत देशो मे होती है। इस कारण भी नियोजक औद्योगीकरण के कार्य मे उतनी सफलता प्राप्त नही कर पाते जितनी कि वह प्राप्त करना चाहते हैं।

(१२) तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण का अभाव—अविकसित राष्ट्रों मे नियोजन कार्य मे तथा उद्योग धन्धो और व्यवसायो मे उन्नति प्राप्त होने मे इस कारण भी कठिनाई उत्पन्न होती है कि तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण का अभाव होना है। उत्पत्ति के क्षेत्र मे उत्पादन प्रणाली मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है एव शक्ति के नये साधनो और मशीनो का अधिकतम प्रयोग उद्योगो मे होता है। उद्योगो को उन्नतिशील बनाने के लिए विशिष्ट शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो की आवश्यकता

होती है—इनके अभाव में औद्योगीकरण का कार्य सुचारु रूप से नही चल पाता । उन्नत देशो को इस प्रकार की कठिनाई का सामना नही करना पडता है ।

(१३) विदेशी मुद्रा की कमी एव पूँजी निर्माण का प्रभाव—कम ग्रामदनी वाले देशो मे पूँजी निर्माण का कार्य सरलता से नही हो पाता । नियोजन-कार्य को सरलता से प्रचलित करने एव अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अधिकतम मात्रा मे मशीनो और यन्त्रो का व्यवहार हो । परन्तु इन देशो मे न तो अधिकतर मशीन और यन्त्रो का निर्माण ही होता है और न इनके पास इतने साधन होते है कि वे अपनी पूर्ण आवश्यकतानुसार मशीनो को विदेशो से ही खरीदें । यह कार्य तभी सम्भव हो सकेगा जब इन देशो मे विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध बडी मात्रा मे सम्भव हो सके । प्राय अविकसित देशो मे विदेशी मुद्रा की अत्यन्त कमी बनी रहती है जिससे नियोजन के कार्य मे बहुत कठिनाई उत्पन्न होती है ।

(१४) शासन-सम्बन्धी तथा प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयाँ—इन देशो के नियोजनाधिकारियो को शासन तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी कठिनाइयो का सामना भी करना पडता है । शासन-प्रबन्ध प्राय प्रभावशाली नही होता जिससे नियोजन-कार्य की सफलता मे बाधाय उत्पन्न होती हैं । नियोजन के प्रारम्भिक काल मे प्रत्येक क्षेत्र मे स्वत ही कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है, जिनको दूर करने के लिए शासन-प्रबन्ध का प्रभावशाली होना आवश्यक है ।

राज्य-उद्योगो मे प्रबन्ध और प्रशासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ विद्यमान होती हैं—जिससे इन क्षेत्रो मे नियोजनाधिकारियो को सफलता प्राप्त नही होती । राज्य उद्योगो का प्रशासन एव सचालन ठीक रूप से होना चाहिए नही तो आशानुरूप फल इन उद्योगो से कभी भी प्राप्त नही हो सकेगा ।

(१५) जनता के सहयोग का प्रभाव—राज्य नियन्त्रित और केन्द्रीय-सचालित नियोजनो की सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर होती है । अविकसित देशो की जनता प्राय अशिक्षित होती है जिसके कारण नियोजन के सभी लाभ उन्हे ज्ञात नही होते—जिससे वे सरकार को नियोजन की सफलता मे उतना सहयोग नही दे पाते जितना सहयोग कि उन्हे देना चाहिए । इन देशो की जनता प्राय अत्यन्त निर्धन होती है जिसके कारण नियोजन काल मे जब उन्हे अधिक कर देना पडता है तो वे नियोजन का विरोध करने लगते हैं । इन देशो के नियोजनाधिकारियो को विभिन्न प्रचारो द्वारा जनता को इस बात का विश्वास दिलाना पडता है कि नियोजन उन्ही के लिए है और मौजूदा परिस्थिति मे उन्हे जिन कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है वे आगे नही रहगी, तथा उनकी सन्ताने नियोजन के पूरे लाभ उठा पायेंगे ।

इन सब कठिनाइयो के अतिरिक्त भी, अविकसित देशो के नियोजनाधिकारियो को कुछ और कठिनाइयो का सामना करना पडता है। जैसे, अति जनसख्या सम्बन्धी समस्या, देश मे फैली हुई अशिक्षा, स्वास्थ्य हीनता, निवास स्थान सम्बन्धी और बेरोजगार सम्बन्धी समस्यायें, नियोजन के निर्माण करते समय प्राथमिकता, उद्देश्य, लक्ष्य एव साधन क निर्धारण सम्बन्धी-कठिनाइयाँ, केन्द्रीय नियोजन की सामान्य कठिनाइयाँ एव केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्यो के नियोजनो मे असन्तुलन की कठिनाइयाँ आदि।

११—अविकसित देशों में नियोजन को सफल बनाने के तत्त्व

(Factors governing the success of Planning in Under-developed Countries)

अविकसित राष्ट्रो मे नियोजन कार्य को सफल बनाने के तत्वो को सरलता से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है :

(अ) आन्तरिक तत्व एव (ब) बाहरी तत्व

आन्तरिक तत्व (Internal factors)

आन्तरिक तत्व, जिन पर अविकसित राष्ट्रो मे नियोजन की सफलता निर्भर करती है बहुत से होते है। इससे पहले अविकसित राष्ट्रो मे नियोजन की कठिनाइयाँ जिन क्षेत्रो म एव जिस रूप मे बताई गई हैं उनको ही यदि दूर कर दिया जाये तो नियोजन कार्य मे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकेगी।

इनके अतिरिक्त यह भी आवश्यक होता है कि नियोजनकाल मे देश मे पूर्णरूप से शान्ति और सुरक्षा बनी रहे। यदि देश मे शान्ति और सुरक्षा का अभाव हो तो उद्योग-धन्धो, व्यवसायो एव अन्य प्रयासो के क्षेत्रो म शिथिलता आजावेगी जिससे नियोजन की सफलता मे बाधा आवेगी। किन्तु, इसके विपरीत, यदि देश मे पूर्ण शान्ति और सुरक्षा हो तो इस बात की आशा होगी कि नियोजन कार्य सफलतापूर्वक एव द्रुत गति से अग्रसर होगा।

इसी प्रकार यदि राष्ट्रीय सरकार देश की जनता मे यह विश्वास पूर्णरूप से उत्पन्न कर सके कि नियोजन की सफलता से उनकी समृद्धि मे वृद्धि होगी और उसे जन-सहयोग प्राप्त हो सके, तो भी नियोजन के कार्य मे पूर्ण सफलता प्राप्ति की आशा बनी रहती है। भारतवर्ष मे पहली योजना के शुरू से ही राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जनता का सहयोग प्राप्त करने पर बडा जोर दिया जाता रहा है। यह भी अनुभव किया जा रहा है कि जिन कार्यों का सम्बन्ध स्थानीय लोगो के कल्याण से हो, उनम लोगो के सगठन विशेष योग दे सकते हैं। यह आशा एक बडी मात्रा मे पूरी भी हुई है। अनेक स्वयसेवको ने, विशेषकर स्त्रियो ने, स्वय आगे बढ कर नई जिम्मेदारियाँ उठाई हैं। केन्द्र और राज्यो की सरकारो को भी कई बार कुछ खास कार्यों मे स्वैच्छिक सगठनो की सहायता करने का अवसर मिला

है। इससे सरकार को मौका मिला कि वह विभिन्न कार्यों के लिए प्रशिक्षित और पूरा समय लगा कर काम करने वाले कार्यकर्ताओ को पेश कर सके। सरकार ने कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय-स्मारक-न्यास, हरिजन-सेवक-सघ, गाधी-स्मारक निधी, भारत-सेवक-समाज, भारतीय समाजकार्य-सम्मेलन, भारतीय-शिशु-कल्याण-परिषद, आदि प्रमुख स्वैच्छिक सगठनो के प्रतिनिधियो को लेकर 'राष्ट्रीय जन-सहयोग-परामर्शदात्री समिति' स्थापित की है, जो जनता का सहयोग प्राप्त करने के क्षेत्र मे सरकार का मार्ग-प्रदर्शन करती है। विकास के कार्यक्रमो मे जनता का सहयोग प्राप्त करने से सम्बद्ध समस्याओ पर भी इस समिति मे विचार-विमर्श होता रहता है। इस समिति की सिफारिशो से जो योजनाये चल रही है अथवा भविष्य मे चलाई जायेंगी, उनकी पूर्ति के लिए १० करोड रु० की राशि रख दी गई है। एक विचार यह भी है कि विकास-कार्यो मे जनता का सहयोग बढाने की नई नई विधियाँ निकालने और उनका प्रदर्शन करने के लिए कुछ योजनाये चलाकर देखी जायें और इस प्रश्न का अनुसधान करने के लिए अध्ययन आरम्भ किया जाए।[1]

देश की प्रशासन की कुशलता और उपलब्ध जन-सहयोग पर नियोजन की सफलता एक बडी सीमा तक निर्भर होती है। तृतीय पचवर्षीय योजना के विधेयको ने स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया है[2] प्रशासन के सभी काम कुशलता और शीघ्रता से करने की आवश्यकता और जहाँ कहीं जनता से वास्ता पडे, वहाँ प्रशासन मे उसका अधिक से अधिक विश्वास प्राप्त करना ऐसी समस्याये है, जिनका आर्थिक विकास के क्षेत्र मे गम्भीर महत्व होना है। विकास कार्यों की गति और सरकार के कर्तव्य बढ जाने के कारण, प्रशासन मे सुधार के इन पहलुओ को और भी जरूरी समझा जाने लगा है। प्रशासन के सुधार मे प्राप्तव्य प्रधान लक्ष्य ये हैं·

(१) सरकार अपनी नीतियो का निर्धारण स्पष्ट शब्दो मे कर दे और उनका निरन्तर पालन होते रहने का ध्यान रखे।

(२) नीतियो के पालन करने मे· किसकी जिम्मेदारी क्या है, इसे स्पष्टत निर्धारित कर दिया जाय।

(३) कार्य ठीक प्रकार से और शीघ्रता से होना चाहिए।

(४) इसका पता रखा जाय कि बडी योजनाओ से कितना लाभ हो रहा है।

(५) जनता के साथ सम्पर्क और सहयोग ठीक प्रकार से हो रहा है या नही और सब नागरिको के साथ शिष्टता और नम्रता का बर्ताव किया जाता है या नही।

---

1. तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, पृष्ठ ६५।
2. तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूप रेखा)—भारत सरकार, पृष्ठ ६०।

इसके साथ-साथ इस बात की भी आवश्यकता होती है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच में पूर्ण सम्एक्यता हो। यदि केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच मतभेद बने रहे तो नियोजन द्वारा आवश्यक एव इच्छित सफलता प्राप्ति में बाधायें उत्पन्न हो जाने का डर बना रहेगा।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त भी, नियोजन को सफल बनाने के लिये देश में कुछ आधारभूत तथ्यो पर ध्यान देना जरूरी हो जाता है जैसे द्रव्य और साधन की व्यवस्था करना, सही आँकड़े एव तथ्यो की प्राप्ति की व्यवस्था, मुद्रा प्रसार को रोकने का भरसक प्रयास, कीमतों को बढ़ने से रोकने के उपाय सोचना, साख एव साख-संस्थाओं पर पूर्ण नियन्त्रण, खाद्य-सामग्री एव उद्योगों के लिए कच्ची सामग्री के क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता की स्थिति उत्पन्न करना, विदेशी ऋण और तकनीकी सहायता की व्यवस्था करना आदि।

बाह्य तत्व (External Factors)

नियोजन की सफलता के लिये बाह्य तत्वों का अनुकूल होना भी वाछनीय होता है। बाह्य तत्वों मे विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विद्यमान राजनैतिक वातावरण होता है। यदि वातावरण ठीक है तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सुख और शान्ति का अस्तित्व होना स्वाभाविक है। उस परिस्थिति में ससार के उन्नत देश अविकसित देशों को नियोजन द्वारा आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिये भरसक प्रयास करते हैं। किन्तु यदि वातावरण तनाव का या दूषित है (जिसमें युद्ध का भय बना रहता है) तो सभी देश युद्ध-सामग्री के निर्माण में एव अपनी सुरक्षा के कार्य में व्यस्त होगा। परिणाम स्वरूप, अविकसित देशों को इन देशों से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त न हो सकेगी।

राजनैतिक मतभेद के कारण भी एक देश दूसरे देश को सहायता प्रदान करने से हाथ खीच लेता है। जैसे इस समय ससार में दो दल बलवान हैं—पूँजीवादी विचारो के देश, एव समाजवादी और साम्यवादी विचारो वाले देश। यदि एक देश पूँजीवादी सिद्धान्त को मानने वाला है तो उसे कोई सहायता साम्यवादी देशों से प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार, यदि वह साम्यवादी विचारधारा में विश्वास करे तो उसे पूँजीवादी राष्ट्रो से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी।

यदि अविकसित देश किसी उन्नत देश द्वारा शासित है, तो जब तक आर्थिक दृष्टि से उन्नत देश इस अविकसित देश को ऊँचा न उठाना चाहेगा तब तक न तो वह ठीक प्रकार से नियोजन का कार्य ही कर पायेगा, और न नियोजन द्वारा अपने देश को आर्थिक दृष्टि से उन्नत ही कर पायेगा। अर्थात्, जब कोई देश दूसरे पर आश्रित होता है तो वहाँ 'नियोजन' का सफल होना बहुत ही कठिन होता है।

अविकसित देशों के नियोजन की सफलता काफी हद तक आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशों की आर्थिक और तकनीकी सहायता पर निर्भर करती है। प्राय. इन देशों

के पास पूँजी की कमी रहती है। इसी कारण, योजना को सफल बनाने के लिये, उन्हे विदेशो से सहायता एव ऋण लेनी पडती है। इसके अभाव मे, इन देशो मे नियोजन का कार्य असम्पूर्ण रह जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अविकिसत देशो के सामने नियोजन कार्य मे बहुत सी बाधाये उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त, इन देशो मे नियोजन कार्य की सफलता विदेशी सहायता पर भी निर्भर होती है। किन्तु इसका अर्थ कदापि यह नही है कि इन राष्ट्रो को नियोजन प्रयास छोड देना चाहिए। इसके विपरीत, अधिक उत्साह और उद्यम से कार्य मे लग जाना चाहिए। यह हर्ष की बात है कि भारतवर्ष समस्त कठिनाइयो को दूर करके एव नियोजन की पहली बाधाओ से निराश न होकर उद्देश्य की ओर अग्रसर हो रहा है।

विविध
(Miscellaneous)

१—परिवार नियोजन[1]
(Family Planning)

परिवार नियोजन का लक्ष्य है परिवार के स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिये उपयुक्त वातावरण बनाना। परिवार के जीव-विज्ञान सम्बन्धी, आर्थिक तथा सामाजिक पहलुओं और परिवार के महत्व पर विचार करने से परिवार के बहुत से दुख मिट सकते हैं। यह काम और भी सरल हो जाए यदि परिवार की क्रमिक उन्नति लिंग और दाम्पत्य सम्बन्ध के मानव प्रजनन का विज्ञान तथा वैवाहिक जीवन की साम्यता एव विषमता के कारणों अथवा पारिवारिक जीवन की अन्य समस्याओं का अध्ययन किया जावे।

यह स्पष्ट है कि परिवार नियोजन जीवन का उत्तरदायित्वहीन ढग नहीं है। परिवार की सीमाबन्दी तक ही इसका ध्येय समाप्त नहीं होता। परिवार नियोजन के कार्य मे केवल कम बच्चे पैदा करना और उनके जन्म म समयान्तर देना ही नहीं है परन्तु और भी ऐसे कार्य हैं जो परिवार के कल्याण के लिये आवश्यक हैं, जैसे युवक युवतियो को विवाह तथा पितृत्व के दायित्व योग्य बनाना, बाझपन, सन्तानोत्पत्ति, काम सम्बन्धी शिक्षा, विवाह सम्बन्धी सलाह मशवरा आदि देना भी है, जिनसे परिवार की वृद्धि और उन्नति हो और आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टि स सामूहिक कल्याण के लिये आवश्यक परिस्थितियो का निर्माण हो।

परिवार समाज का प्राथमिक अग है और इसकी धीरे धीरे पुन प्राप्ति होती जा रही है। लोगो को उत्साहित किया जा रहा है कि वे अपने परिवार को सीमित रखें और इसका साम्कृतिक स्तर तथा आय परिवार के आकार के अनुरूप हो। मा बाप तथा बच्चा की सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए सामाजिक वातावरण तैयार करने मे प्रयत्न किये जा रहे है।

---

1 परिवार नियोजन क्यों ? (Produced by the Directorate of Advertising & Visual Publicity, Ministry of I & B for Ministry of Health, Govt of India

मुख्य लक्ष्य

जनसख्या सबधी ऐसी नीति अपनाने का मुख्य लक्ष्य है परिवार के सुख एव स्वास्थ्य की रक्षा, अनिच्छित बच्चो की सख्या मे कमी तथा आवश्यक और इच्छित बच्चो की सख्या मे वृद्धि की जाय। इच्छित बच्चे का स्वागत होता है और वह प्यार एव ममता भरे वातावरण मे पलता है।

भारत मे परिवार परिसीमन एक बडी समस्या है। इसी कारण से परिवार के आकार पर अधिक बल दिया जाता है और परिवार परिसीमन तथा परिवार नियोजन को समानार्थक माना गया है। परिवारसीमन कार्यक्रम (जो कि आवश्यक है) को यत्नपूर्वक चलाते समय हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि "परिवार नियोजन" सीमित अर्थो मे न लिया जाए, क्योकि इसमे वे समस्त उपाय हैं जो परिवार और समुदाय के सुख और स्वास्थ्य को बढाने के लिए आवश्यक हैं।

बहुमुखी समस्या

जनसख्या सबधी समस्याएं बहुमुखी हैं यानी सख्या सबधी तथा जीव विज्ञान पर आधारित, व्यक्ति से सबधित तथा समुदाय से सबधित। जनसख्या और परिवार की सख्या मे वृद्धि सरल तथ्यो पर आधारित है। जिनका ज्ञान आवश्यक है। फेयरचाइल्ड[1] के शब्दो मे मानव भी धरती पर एक पशु है और आत्मिक एव बौद्धिक विकास के फलस्वरूप अन्य पशुओ के समान ही आवश्यकताओ और सीमाओ मे स्वय भी बधा हुआ है। इस धरती के आकार प्रकार भी सीमित है और इसी के अन्दर मानव को अपनी विश्व यापी रहने और खाने की मागो की पूर्ति करना पडती है और दोनो हालतो म सभावनाय सीमित होती है। अपने जीवन चक्र मे प्रत्यक जीव भूख तथा काम प्रेरणा की दो मौलिक शक्तियो द्वारा परिचालित होता है। पर तु असीमित प्रजनन क्षमता तथा सीमित खाद्य सामग्री सभावनाओ के कारण ये दोनो मूल शक्तिया सीधे एक दूसरे के विमुख होती है।

आर्थिक कारण

यह स्पष्ट है कि आर्थिक कारणो के आधार पर जन्मानुपात मे कमी होनी चाहिए। यह तभी हो सकता है जब प्रत्येक दम्पति परिवार नियोजन द्वारा अपने बच्चों की सख्या कम करने का प्रयत्न करे। बच्चो को अच्छी शिक्षा, अच्छा खाना-कपडा और अन्य सुविधाएं प्रदान करने के लिये यह आवश्यक है कि परिवार के आकार पर नियन्त्रण रखा जाए। उचित समय के अन्दर अन्दर उस ध्येय की पूर्ति के लिए सभी परिवारो को प्रयत्नशील रहना चाहिए। कठिन प्रयास करने से सफलता अवश्य मिलगी।

---

1 हेनरी फेयरचाइल्ड : "पापुलेशन एण्ड पीस" विरजीनियरलिग आफ प्लेंण्ड पेरेण्टहुड।

नैतिक कारण

परिवार नियोजन को अपनाने मे नैतिक कारण भी रुकावट नही होने चाहिए। पिछली सदियो मे विश्व के विभिन्न भागों मे लोग जनसख्या की वृद्धि को रोकने के लिए शिशु हत्या और नवजात बच्चो की लापरवाही किया करते थे। परन्तु सन्तति निग्रह के लिए आधुनिक तरीको मे ऐसी कोई वृत्ति नही है। उनका प्रयोग तो ऐसी वृत्तियो को रोकने के लिए किया जाता है। गर्भ रोकने से किसी की हत्या नहीं होती। अत परिवार नियोजन को अपनाने मे कोई अनैतिकता नही है।

स्वास्थ्य

परिवार नियोजन के बारे में डाक्टरी दृष्टिकोण इतना स्पष्ट है कि उसके ब्यौरे की कोई आवश्यकता नही। ऐसी घटनाओ का प्रत्येक डाक्टर को पता है जहाँ पर गर्भ से माँ अथवा बच्चे के जीवन को खतरा पैदा हो गया हो या उसके बाद उनका जीवन दुखमय बन गया हो। यदि माँ दुर्बल हो या किसी भयानक रोग से पीडित हो तो उसके लिए गर्भ धारण बहुत खतरनाक है। दिल, फेफडे, गुर्दे के किसी रोग, खून की कमी, पागलपन और गर्भ मे रक्त दूषित रोग वाली स्त्री को गर्भवती बनने देना उसके और बच्चे दोनो के साथ घोर अन्याय करना है।

लोगों म यह विश्वास है कि पाँच छ बच्चों वाली माँ का गर्भवती बनना कम खतरनाक होता है। परन्तु असलियत यह है कि चौथी गर्भावस्था से खतरा बढ जाता है। छठी के बाद खतरा दुगुना हो जाता है और दसवीं के बाद पाँच गुना हो जाता है।

स्वस्थ स्त्रियो के लिए गर्भ धारण करना स्वाभाविक शारीरिक कर्म है। परन्तु ऐसा उचित परिस्थितियो मे करना चाहिए और प्रसूतियाँ पर्याप्त अन्तर के साथ तथा थोडी सख्या मे होनी चाहिए। उचित आहार की कमी और रोगो के कारण प्रसव-कष्ट बढ जाते हैं। भावी माताओ को गर्भावस्था और प्रसव सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। प्रसव से पूर्व और उसके पश्चात् यदि माता, सेवा मे कमी और प्रसव के समय अच्छी तरह देखभाल न होने से, तथा गरीबी, गन्दगी अथवा चिकित्सा की कमी जैसे दूसरे कारणो से स्त्री की गर्भ धारण की शक्ति कम होती जाती है तो बाद म गर्भावस्था और भी कष्टप्रद और स्वास्थ्य की दुश्मन बन जाती है। यथोचित समयान्तर वाली प्रसूतियो से माँ का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

खतरनाक

ऐसी भी घटनाएँ हो सकती हैं जहाँ अस्वस्थ होने पर भी बच्चे पैदा करने की तीव्र इच्छा होती है। परन्तु प्रत्येक स्त्री की अवस्था भिन्न-भिन्न होती है। अत डाक्टर का यह कर्तव्य है कि वह सभाव्य माता-पिताओं को खतरो से परिचित करा दें।

यदि गर्भ के कारण बार-बार माँ का रक्त दूषित हो जाता हो तो उसे और गर्भ धारण करने की सलाह नही देनी चाहिए। सबकी यही राय है कि एक बार बीमार होने पर तब तक गर्भ धारण नही करने देना चाहिए जब तक कि रोग के सभी लक्षण समाप्त नही हो जाते। रोग के तीसरी बार होने पर गर्भ धारण किसी भी अवस्था मे नही होने देना चाहिए।

तपेदिक होने पर बच्चा माँ से अलग रहना चाहिए और उसके पालन-पोषण का प्रबन्ध घर से बाहर करना चाहिए। अत ऐसे रोगियो को कम से कम बच्चे और परिवार के हित के लिए ही गर्भावस्था का परिहार करना चाहिए।

जिस स्त्री को गुर्दे सम्बन्धी रोग हो जाएँ उसे इस रोग से छुटकारा पाने के कम से कम दो वर्ष तक जब तक मूत्र भाग से पस और जीवाणु साफ न हो जायें, गर्भ नही होना चाहिए। गठिया और दिल के रोगो से पीडित स्त्रियो को गर्भवती बनने के खतरे से बचना चाहिए।

डायबटीज (मूत्र रोग) के रोगियो को सावधानी और परिवार परिसीमन की आवश्यकता होती है। विशेषतया जब माता-पिता दोनों ही इस रोग के शिकारी हो।

रति रोग से पीडित व्यक्तियो को गर्भ धारण की सलाह देना उनके साथ अन्याय करना है। जब दोनो इस रोग से मुक्त हो तो गर्भ धारण करना चाहिये। शारीरिक दोषो अथवा अन्य किन्ही कारणो से जिन स्त्रियो के बच्चे बार-बार आपरेशन द्वारा हुए हो अथवा बहुत बार गर्भ धारण कर चुकी हो, उन्हे गर्भ-निरोध के उपाय अवश्य करने चाहिए।

परिवार का आकार

अपने लिए उचित रहन-सहन का स्तर बनाए रखने और बच्चो को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान करने की इच्छा ही मुख्य रूप से परिवार नियोजन को स्वेच्छया स्वीकार करने की प्रेरक शक्ति है।

माँ बाप सामाजिक और आर्थिक वातावरण को, जिनमे वे स्वय रहते हैं, ध्यान मे रखकर परिवार के आकार का निर्णय कर सकते है।

प्रत्येक परिवार के लिये बच्चो की सख्या निर्धारित करना बहुत कठिन है। भूतपूर्व रजिस्ट्रार-जनरल श्री आर० ए० गोपालस्वामी ने १९५१ की जनगणना की अपनी रिपोर्ट मे कहा था कि एक दम्पति के अधिक से अधिक तीन बच्चे होने चाहिए।

अकेला बच्चा प्राय सूनापन महसूस करता है। बच्चो की आयु मे भी इतना अन्तर नही होना चाहिए कि उसे घर मे किसी दूसरे बच्चे की सगति का अभाव खले।

बच्चे केवल दो होने की दशा मे भी वे प्राय. मानसिक असन्तोष से मुक्त नही होते और एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगते है। (उदाहरणार्थ भाई का अपनी बहन से

ईर्ष्या करना) । यह स्मरणीय है कि आयु के साथ-साथ बच्चे पैदा होने की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं । पहली गर्भावस्था को बहुत समय तक टालना अच्छा नही है । जब माँ बाप पूर्ण यौवन में हो तो उस समय पहले बच्चे के पैदा करने की इच्छा हो जानी चाहिए । ताकि माता-पिता के प्रौढ अवस्था के पहुँचने तक बच्चे बड़े हो जाए और अपनी देखभाल करने योग्य बन जाएँ । यह माँ और बच्चे दोनो के हित मे है कि बच्चो मे कम से कम दो से तीन वर्ष का अन्तर हो ।

उचित उपाय

कुछ लोगो को डर है कि परिवार को सीमित करना प्रकृति के विरुद्ध है । सभ्यता की प्रगति मनुष्य की अपनी इच्छा पर निर्भर है । वह धीरे-धीरे अपने आसपास के वातावरण पर काबू पा रहा है । मनुष्य ने मृत्यु के कई कारणो पर नियन्त्रण कर लिया है । उसी प्रकार उसे जन्म पर भी नियन्त्रण प्राप्त करना चाहिए । प्राचीन काल मे जब कभी भी जीवन निर्वाह के साधनो की अपेक्षा जनसख्या अधिक हो जाती थी तो अकाल, महामारी, अनावृष्टि, बाढ अथवा युद्ध आदि द्वारा सतुलन कायम हो जाता था । परन्तु आज मनुष्य इस समस्या का हल आपदाओ की बजाए समुचित उपायो द्वारा चाहता है ।

सभ्यता के बारे मे बताते हुए डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन[1] ने कहा था "यह धीरे-धीरे मनुष्य द्वारा प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त करना है । जबकि जानवरो की दुनियाँ मे पशु-योनियो मे जीवन अथवा मरण प्रकृति अथवा वातावरण पर निर्भर है, मनुष्य को इतनी बुद्धि दी गई है कि वह अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाए । प्रत्येक मानव का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का पता लगाए कि सामाजिक, शारीरिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ कौन-कौन सी हैं और उनको पूरा करने का प्रयत्न करे । ईश्वर हमसे भिन्न नही है । वह हमारे अन्दर रम रहा है और सदा इस बात की प्रेरणा देता है कि अपनी बुद्धि का इस्तेमाल सच्चे तरीके से तथा न्यायपूर्वक मनुष्य जाति के भले के लिए करें ।"

क्या यह हानिकारक है ?

इस बात का कोई प्रमाण नही है कि गर्भ निरोधक उपाय करना हानिकारक, अनैतिक, अप्राकृतिक अथवा दोष-वर्धक है । बल्कि इससे माँ के स्वास्थ्य की रक्षा होती है, अनिच्छित गर्भावस्था का भय दूर होता है, पाप और अनियन्त्रित गर्भ से उसकी रक्षा होती है और प्रत्येक दम्पत्ति एक दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के योग्य बनते हैं । इससे माँ बाप को परिवार नियोजन में सहायता मिलती है तथा बच्चे सयोग से नहीं बल्कि इच्छा से पैदा करने, बच्चो के स्वास्थ्य और सुख की रक्षा तथा अपने साधनों के अनुसार परिवार का आकार स्थिर करने मे आसानी रहती है । इस तरह बच्चे के प्रति अपना कर्तव्य निभाने मे मदद मिलती है ।

---

1. राधाकृष्णन, एस (१९५२) तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन सम्मेलन के अवसर पर उद्घाटन भाषण ।

इससे देश के साधनो के अनुसार जनसख्या मे स्थिरता आती है और प्रत्येक दम्पत्ति को एक सुखी, प्रबल एव समृद्ध राष्ट्र बनाने मे सहयोग देने का अवसर मिलता है। विश्व मे बहुत कम देश है जिनको भारत की तरह जटिल जनसख्या के सकट का सामना करना पड रहा है। देश तथा प्रत्येक परिवार को सुखी तथा समृद्ध बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सब साधनों को विकसित और जनसख्या को नियन्त्रित किया जाये।

गुरण

जीव विज्ञान सम्बन्धी हमारी जानकारी बहुत सीमित है। फिर भी तीन प्रकार के जैविक गुरण हम जानते है। अर्थात् शुद्ध वशागत, वशागत एव वातावरणानुकूल, तथा शुद्ध वातावरणानुकूल। वातावरण द्वारा बहुत से वशागत दोषो को दबाया और वाछनीय वशागत गुणो को बढाया जा सकता है। वातावरण पर मानव नियन्त्रण दिन प्रति दिन बढ रहा है।

हम यह भी जानते है कि कुछ समय पहले इस बात के निर्णय मे बहुत बडा हाथ मृत्यु का होता था कि किस व्यक्ति अथवा वर्ग के प्राणियो को जीवित रहना चाहिए। मृत्यु के कई कारणो पर नियन्त्रण कर लेने के पश्चात् अब उत्पत्ति को भी इच्छाधीन करने की भावना विभिन्न गतियो से विकसित हो रही है। परिवार परिसीमन का प्रचलन शिक्षा सम्बन्धी, आर्थिक और व्यावसायिक कारणो से विभिन्न वर्गो मे भिन्न भिन्न है। इसलिये यह विचार करने की बात है कि विभिन्न वर्गो मे जन्मानुपात क्यों भिन्न है। यह बहुत दु ख की बात होगी यदि परिवार नियोजन कार्यक्रम द्वारा परिजनन क्षमता विशेष वाले लोगो की क्षमता का नाश कर दिया जाए। ब्रिटेन मे जनसख्या के सम्बन्ध मे बैठाये गये रायल कमीशन ने कहा था कि नियोजन के जो लाभ है वे हमारे समाज मे दिखाई पडते हैं। यह भी देखा गया है कि उन वर्गो के परिवार, जिनकी आय बहुत अधिक है और उन माता पिताओ के जो अच्छे शिक्षित और बुद्धिमान हैं, दूसरो की अपेक्षा छोटे है। हमारे सामने जो विशेषज्ञो ने मत प्रकट किया है कि परिवार नियोजन द्वारा जनसख्या को कम करने से देश की बुद्धि का स्तर गिर जाएगा, इस बात का हम पूरा अनुमान नही लगा सकते। इस प्रश्न पर काफी सोच विचार करने की आवश्यकता है।

विभिन्न क्षेत्रों मे प्रयत्न

यह भी कहा जाता है कि विश्व के ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ काफी अन्न होता है और दूसरो को दिया जा सकता है। वहाँ वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान का भी भण्डार है। इसमे शक नही कि विश्व के साधनो को इकट्ठा करने, पर्याप्त पूँजीकरण और तकनीकी उन्नति से स्थिति पर काबू पाया जा सकता है। समन्वित आयोजन, सभी क्षेत्रो मे उन्नति और खोज तथा विश्व के साधनो को बराबर बाँटने से, हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ हल हो सकती है, विश्व का सहयोग मिलने से उत्पादक सभार की समस्या, जो कि अविकसित और बहुत जनसख्या वाले देशो की उन्नति मे बहुत बडी बाधा है, किसी हद तक हल हो सकती है।

इन कारणो के महत्त्व को कम नही समझा जा सकता। वस्तुत: रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने के लिए इस क्षेत्र मे बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। संतति निग्रह मे विश्वास रखने वाले जनसख्या के हल के लिए परिवार परिसीमन को सबसे अच्छा तरीका मानते हैं। उनमे से कुछ परिवार परिसीमन के लिए सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक कारणो को ध्यान मे नही रखते। बहुत से परिवार नियोजन और सतति निग्रह मे कोई अन्तर नही मानते और जनसख्या के गुणात्मक पहलू तथा परिवार नियोजन की अन्य समस्याओ की भी उपेक्षा कर देते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो सतति निग्रह की निन्दा करते हैं और सभी कठिनाइयो का हल औद्योगीकरण बताते हैं।

दृढ रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक वातावरण को सुधारने और विस्तीर्ण तथा प्रशस्त रूप मे परिवार परिसीमन के सन्देश का प्रचार करने से सफलता मिल सकती है। पहला कार्य करने से दूसरे के लिए अपने आप प्रोग्राम बन जाता है। हमारा मुख्य उद्देश्य जनता के स्वास्थ्य, सुख और रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना है। बढती हुई जनसख्या इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह उद्देश्य की प्राप्ति मे बाधक होती है। जनसख्या की समस्या बहुत जटिल है और इसके हल के लिए अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, सामाजिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, औद्योगिक, कृषि और रोगाणु क्षेत्रो मे प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

हमारे सामने एक जटिल समस्या है। यह ठीक है कि इसे हल करना आसान नही परन्तु निराश होने की कोई वजह नही है। सम्भवत रोगाणु विकास अन्तिम छोर पर पहुँच गया है। मनुष्य उसकी महान् उत्पत्ति है परन्तु विकास अभी हो रहा है। मनुष्य के साथ ही साइकोसोसल विकास प्रारम्भ हो गया है। मनुष्य स्वय अपने भाग्य का निर्माता है। वह परिवर्तनो से गुजर चुका है और धीरे-धीरे वातावरण पर नियन्त्रण पा रहा है। यदि वह मृत्यु पर काबू पा सकता है तो जन्म पर भी नियन्त्रण कर सकता है। प्रश्न यह है कि क्या वह भाग्यवादी ही बना रहेगा या अनुभव से कुछ सीखेगा और जटिल समस्या को जिसका उसने स्वय निर्माण किया है, बदलेगा। यदि वह समस्या के बारे मे केवल तर्क ही करता रहा तो अकाल, रोग, युद्ध और गरीबी अपना अपना प्रकोप दिखायेंगे। यदि उसने सकट को टालने का निश्चय कर लिया तो उसे सफलता मिलेगी।

तीसरी योजना में परिवार-नियोजन[1]

तीसरी और चौथी योजनाओ मे परिवार-नियोजन कार्यक्रम को एक प्रमुख कार्यक्रम मानकर चलाया जाएगा। परन्तु साथ ही, इस कार्यक्रम में कई उलझन की बातें भी हैं, और इसका फल कुछ समय पश्चात् ही मालूम हो सकता है। पहली योजना मे इसका प्रारम्भ तो अल्प परिमाण मे हुआ था, परन्तु अब इसका

1. तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, पृष्ठ १९३.

विस्तार काफी हो चुका है—यहां तक कि १९६१ तक परिवार नियोजन के कार्य मे सलग्न शहरी केन्द्रों की सख्या ६७६ और ग्रामीण केन्द्रो की सख्या १,१२१ हो जाएगी। स्वास्थ्य-मन्त्रालय ने तीसरी योजना के लिए सुझाव देने को एक विशेष समिति नियुक्त की थी। उसने इसके कार्यक्रम पर विचार करके कुछ सुझाव दिए हैं। उनका सम्बन्ध बहुत बडे क्षेत्र से है और उनमे कार्यक्रम का विवरण, उसे पूरे करने के साधन, आर्थिक पहलू, स्त्री अथवा पुरुष का वन्ध्याकरण, स्वैच्छिक सगठनो की भूमिका, गर्भ-निरोधक साधनो का उत्पादन, आदि अनेक विषय सम्मिलित है। इन सुझावो पर अभी विचार किया जा रहा है। अभी परिवार-नियोजन के लिए तीसरी योजना मे २५ करोड रु० रख दिए गए है, परन्तु विस्तृत कार्यक्रम बन जाने पर इस राशि के विषय मे फिर विचार किया जाएगा। मोटी बात यह है कि इस कार्यक्रम को और फैलाया और घना किया जाएगा, परन्तु अधिक जोर इन कामो पर दिया जाएगा

(१) परिवार-नियोजन के कार्यक्रम के अनुकूल सामाजिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए लोगो को समझाना बुझाना और प्रचार करना;

(२) परिवार-नियोजन के कार्यो का साधारण स्वास्थ्य-सेवाओ के साथ मेल बैठाना,

(३) चिकित्सा और स्वास्थ्य केन्द्रो की मार्फत परिवार नियोजन को वन्ध्याकरण, आदि सेवाए उपलब्ध कराना और गर्भ-निरोधक उपकरण बाँटना,

(४) मेडिकल कालेजो और अन्य शिक्षा-सस्थाओ मे प्रशिक्षण-कार्यक्रमो का विकास करना, और

(५) परिवार-नियोजन के आन्दोलन मे स्थानीय नेताओ का अधिकतम सहयोग प्राप्त करना।

२—मूल्य-नीति
(Price-Policy)

नियोजन को सफल बनाने के लिये प्रत्येक नियोजक को इस ओर सतर्क दृष्टि रखनी पडती है कि नियोजन-काल मे वस्तुओ और सेवाओ की कीमतो मे अत्यन्त वृद्धि न हो पाये। क्योकि ऐसा होने से नियोजन का उद्देश्य (जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना) असफल हो जाता है। प्रथम और द्वितीय योजना काल मे करो मे वृद्धि के साथ साथ साधारण जनता को कीमतो मे भारी वृद्धि के कारण कठिनाइयो का सामना करना पडा। इसके बहुत से कारण थे, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह था कि घाटे की बजट योजना एव वित्त तथा द्रव्य सबधी नीतियो के कारण देश मे मुद्रा प्रसार द्रुत गति से हो गया। तृतीय पचवर्षीय योजना के निर्माण काल से ही

इस ओर सतर्क दृष्टि रखी गई है कि जहाँ तक सम्भव हो सके कीमतो मे विशेष वृद्धि न हो पाये।

तीसरी पचवर्षीय योजना मे मूल्य-नीति[1]

तीसरी योजना का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू, मूल्य-नीति है। इस पर इन दिनो विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह स्पष्ट है कि योजना-पूँजी-विनियोग जिस प्रकार क्रमश बढाते जाने की बात सोची जा रही है, उसके परिणामस्वरूप साधारणतया मूल्यो के और ऊचा उठने की सम्भावना है। इसलिए, योजना नीति का प्रयत्न यह होना चाहिए कि मूल्य—खास कर अत्यावश्यक उपभोक्ता पदार्थों के मूल्य—अधिक न बढें, अपेक्षाकृत स्थिर रह।

मूल्यो का उतार-चढाव कई बातो पर निर्भर करता है। उनमे से कुछ तो बाजार की तमाम माँग से सम्बद्ध होती हैं और कुछ अलग-अलग वस्तु की माग और पूर्ति से। इसलिए, मूल्य नीति को भी कई क्षेत्रो मे सक्रिय होना पडता है—वित्तीय उपाय, द्रव्य-नीति, और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ नियन्त्रण अथवा माल सीधा पहुँचाने की व्यवस्था। विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न उपायो का सयुक्त प्रयोग करके ही मूल्यो को अपेक्षाकृत स्थिर रखते हुए विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

योजना मे खाद्यान्न, वस्त्र, चीनी, आदि के उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि करने की बात सोची जा रही है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, पूँजी विनियोग क रूप का निश्चय करते समय आवश्यक उपभोग्य पदार्थों की आवश्यकता का भी ध्यान रखा गया। फिर भी, कभी कभी माँग और पूर्ति म असन्तुलन हो जाने की सम्भावना रहती ही है, और इस कारण अनिष्टकारी प्रवृत्ति को ठीक करने के लिए समय पर ही प्रभावशाली कारवाई कर देना आवश्यक होता है। खाद्यान्नो क सम्बन्ध मे यह बात विशेषरूप मे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उनका प्रतिकूल प्रभाव न केवल जनता के अधिक निर्बल वर्गों पर पडता है, बल्कि मूल्य और लागत की समस्त व्यवस्था पर भी उसकी प्रतिक्रिया होती है।

जब तक खाद्यान्न-उत्पादन देश मे ही आवश्यक मात्रा म नही होने लगता, तब तक की अवधि को पार करने क लिए विदेशों से खाद्यान्न मगाने की आवश्यकता रहेगी ही। हाल म अमरिका के साथ जो 'पी० एल० ४८०' समझौता हुआ है, उसमे इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए आयात करने के अतिरिक्त, सकट काल के लिए भी पर्याप्त मात्रा मे गेहूँ प्राप्त करने की व्यवस्था है। इसम मूल्यो को स्थिर रखने म काफी मदद मिलेगी।

1. तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, पृष्ठ १३-१४.

– परन्तु मूल्य-नीति के कई व्यापक पहलू हैं। विकास में सलग्न किसी अर्थ-व्यवस्था के लिए यह जरूरी होता है कि मूल्य-वृद्धि का सामना करने के लिए वह अपनी आन्तरिक रक्षा व्यवस्था दृढ रखे। गेहूँ की कमी तो विदेशों से माल मगा कर पूरी कर ली जाएगी, चावल की शायद कमी रह जाए। हो सकता है कि किसी वर्ष, किसी कारणवश, कुछ फसले मारी जाए, और यह भी हो सकता है कि कभी मुनाफाखोर लोग माल दबा लें। हाल के वर्षों में एक नई समस्या सामने आई है—देश के विभिन्न भागो मे मूल्यो मे भारी अन्तर होने की। इन सब परिस्थितियों का ठीक ढग से सामना करना हो, तो उचित सरकारी कार्यवाही-द्वारा मूल्यो के नियन्त्रण, सरकारी व्यापार और सहकारी समितियो की मार्फत माल की बिक्री तथा वितरण करवाने का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त, खाद्य-पदार्थों की मूल्य नीति का निश्चय करते समय यह भी देखना पडता है कि देश की अर्थव्यवस्था मे अन्य पदार्थों के मूल्यों का क्या रुख है। विभिन्न पदार्थों के मूल्यों मे उचित सम्बन्ध भी स्थिर रखना पडता है। यह बात भी सावधानीपूर्वक सोचनी पडती है कि मूल्य-नियन्त्रण, प्रादेशिक बन्दोबस्त, न्यूनतम और अधिक मूल्यो का निर्धारण और सरकारी व्यापार, आदि को मिलाकर ऐसी क्या व्यवस्था की जाए कि अधिकतम उद्देश्य-सिद्धि हो। इन सब समस्याओं पर इन दिनों राष्ट्रीय विकास-परिषद् की एक समिति विचार कर रही है।

योजना मे कर बढाने का सुझाव भी रखा गया है। खपत को काबू मे रखने के लिए न्यायसगत कर लगाना योजना का एक आवश्यक अग है। सरकारी उद्योग-व्यवसायो मे भी अधिकतम बचत करनी होगी—जहाँ उचित जान पडे, वहाँ यह काम मूल्यो मे हेर-फेर करके भी करना होगा। मूल्यो मे अकस्मात् अथवा बिना किसी क्रम की वृद्धि रोकना निहायत जरूरी होगा। कभी-कभी मूल्य और मूल्य नियन्त्रण की जो विधियां अपनाई जाती है, उनके कारण कई पेचीदा सवाल खडे हो जाते हैं। उन्हें हल करते समय परस्पर-विरोधी भावो मे सन्तुलन कायम रखना पडता है। मूल्यो, आय और लागतो म निकट सम्बन्ध होता है। इस कारण, इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है कि नियन्त्रण के जो भी उपाय किए जाए, वे प्रभावशाली और परस्पर-सगत हो। जो उपाय अपनाए जाएँ, उनमे हेर फेर करने की गुजायश रहे, ताकि यदि विभिन्न वस्तुओ के मूल्य म पारस्परिक सम्बन्ध ठीक रखने की जरूरत पडे, तो वैसा किया जा सके। परन्तु इसके साथ ही, सरकार को स्थिति ऐसी रहनी चाहिए कि यदि जरूरत पडे, तो सभी जगहों पर वह प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित कर सके।[1]

---

1. कीमतों की वृद्धि रोकने के लिये साख पर नियन्त्रण, अधिक निर्यात, मुद्रा-प्रसार में कमी, योजना के आकार में कमी आदि का सुझाव भी विभिन्न विद्वानों द्वारा दिया गया है।

३—आर्थिक उन्नति के सिद्धान्त एवं विकास के 'नमूने'
(Theory of Economic Growth and Growth Models)

पिछले कुछ वर्षों मे आर्थिक उन्नति के सिद्धान्तों के विषय मे काफी अध्ययन हुआ है। आधुनिक अर्थशास्त्री अब इस बात को स्पष्ट रूप से मानने लगे है कि "उन्नति के सिद्धान्त" केवल एक काल्पनिक तथ्य नही है। इसके विपरीत, विभिन्न सिद्धान्तो द्वारा उन्होने इस बात को प्रतिपादित किया है कि यह सिद्धान्त सत्य एव व्यवहारिक है। यो तो सभी विद्वानो मे काफी मतभेद है, पर वे सभी इस बात को मानते हैं कि "आर्थिक विकास" कोई लक्ष्यहीन तथ्य नही है। बहुत सी "बातें" ऐसी है जिनके बारे मे व्यवहारिक सत्यता के प्रमाण का कोई अभाव नही है। जैसे, "पूंजी विनियोग सम्बन्ध," 'पूंजी–उत्पादन सम्बन्ध," "आमदनी–बचत (सचय) सम्बन्ध," "पूँजी–निर्माण एव आर्थिक विकास सम्बन्ध" आदि। इसी प्रकार, सभी अर्थशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि विभिन्न "क्षेत्रो' के "आर्थिक विकास" के लिये अलग अलग "विकास सिद्धान्त" को अपनाने की आवश्यकता होती है। वे इस बात पर भी सहमत हैं कि "आर्थिक विकास" के तथ्य परिवर्तनशील होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों मे "आर्थिक उन्नति के सिद्धान्तो" पर निम्नलिखित विद्वानों ने अपना अपना मत प्रकाश किया है तथा उन्होने 'आर्थिक विकास" की प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रकार के Growth Models को अपनाने की भी सिफारिश की है

(१) Prof R F Harrod.
(२) Mrs J Robinson
(३) Prof R M Solow
(४) Prof T W Swan.
(५) Prof J Tobin
(६) Prof W Fellner
(७) Mr N Kaldor
(८) Mr R Eisner.
(९) Mr D G Champernowne
(१०) Mr W W Rostow
(११) Mr. H A John Green
(१२) Mr. Von Neumann
(१३) Mr Leontief
(१४) Prof P. C Mahalanobis

उपरोक्त सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्येक देश मे साहसी और राज्य की ओर से "आर्थिक उन्नति" के लिये पर्याप्त प्रयास होना चाहिए, क्योंकि देश का आर्थिक विकास तब तक नही होता जब तक कि देश के साधारण

नागरिकों का उपभोग का स्तर एवं जीवन-स्तर ऊँचा न हो पाये। वे सभी इसी बात को मान्यता प्रदान करते है कि उन सिद्धान्तों को ही केवल अपनाना चाहिए जो स्पष्ट, सत्य, उपयुक्त एवं व्यवहारिक हो।

कुछ बातो पर मतऐक्य होने पर भी, Growth Models के विचार मे उनके मतो मे बहुत भिन्नता है। कुछ विद्वानो ने बचत की मात्रा मे वृद्धि करके "आर्थिक विकास" करने के बारे मे सुझाव दिये है, जबकि इसके विरुद्ध, कुछ अन्य विद्वानो ने अधिक "पूँजी विनियोग" द्वारा आर्थिक "आर्थिक विकास" प्राप्त करने के विषय मे सुझाव दिये। कुछो ने 'सन्तुलित विकास" को लक्ष्य माना है तो कुछ ने "कृषि-द्वारा" "विकास" प्राप्त करने के सुझाव पेश किये हैं। महलानवीस ने जब द्वितीय पचवर्षीय योजना का निर्माण किया था तो उन्होने इस बात को स्पष्ट किया था कि "श्रम-पूँजी" (Labour–capital) मे सामजस्य द्वारा "क्षेत्रीय" उन्नति द्वारा "आर्थिक विकास" का लक्ष्य प्राप्त होना चाहिए। कुछ भी हो, इस बात मे कोई सन्देह नही है कि विभिन्न देशो मे "आर्थिक विकास" किसी न किसी विशेष ढग से ही होता है। अविकसित देशो की आर्थिक परिस्थिति उन्नत देशो से सम्पूर्ण भिन्न होता है, यही कारण है कि अविकसित देशो के लिये "आर्थिक विकास" के उद्देश्य से भिन्न प्रकार Growth Model को अपनाना पडता है

भारतीय "आर्थिक विकास" के हेतु विशिष्ट 'प्रणाली' का अपनाया जाना (Special Theory of Growth for India)—भारतवर्ष मुख्य रूप से एक कृषि-प्रधान देश है। इसी कारण, "आर्थिक विकास" के लक्ष्य को पूरा करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषि की उन्नति पर अधिक बल प्रदान किया जाये। वास्तविक रूप से, भारत के प्रथम पचवर्षीय योजना मे इसी बात की चेष्टा की गई। किन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना ने इस बात को स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया कि देश का "आर्थिक बिकास" केवल मात्र कृषि पर ही निर्भर नही होता। उसी अनुभव के आधार पर द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजना मे "सन्तुलन आर्थिक विकास" को प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया गया है।

भारत मे जनसख्या-अधिक्य के कारण उत्पत्ति और वितरण व्यवस्था इस प्रकार के होने की आवश्यकता है जिनमे अधिकतम मात्रा मे श्रमिक प्रयुक्त हो सके, एव देश मे अत्यधिक मात्रा मे बेरोजगारी विद्यमान न रहे। यह भी एक कारण है जिसके लिए प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि एव छोटे तथा कुटीर उद्योग के विकास पर प्राथमिकता प्रदान की गई थी। किन्तु देश के नागरिको का जीवन-स्तर तीव्र गति से तभी ऊँची हो सकती है जब कि देश मे बडी मात्रा के उद्योग धन्धे एव व्यवसाय स्थापित हो।

इसमे कोई सन्देह नही कि देश मे औद्योगीकरण का काम यदि शीघ्रता से तथा सन्तुलित रूप से सफल हो सके तो साधारण जनता के जीवन-स्तर मे भी तीव्र

गति से उन्नति होना सम्भव होगा एव "आर्थिक विकास" का लक्ष्य भी प्राप्त हो जायगा। भारत मे औद्योगीकरण के पथ पर सबसे बडी बाधा यह है कि देश मे विनियोग के लिए पूँजी का नितान्त अभाव है। साधारण जनता की प्रतिवर्ष प्रति-व्यक्ति आमदनी अत्यन्त कम है। इसके कारण साधारण श्रेणी के मनुष्यो द्वारा कोई भी रकम, किसी भी प्रकार से, "बचत" नही हो पाती। 'बचत" की कमी के कारण "पूँजी का निर्माण" नही हो पाता एव इसी के परिणामस्वरूप, देश मे "उत्पादन' के लिए आवश्यक पूँजी का 'विनियोग" नही हो पाता। इसके अति-रिक्त, वस्तुओ और सेवाओ की कीमतें मुद्रा प्रसार के कारण बढे हुए रहने के कारण जितनी आमदनी मध्यम वर्ग म आती हैं, वे भी कोई "धन" बचा नही पाते। यही कारण है कि देश के "आर्थिक विकास" के कार्य म हम अभी बहुत पिछडे हुए हैं।

दश के कोने-कोने मे बैंकिंग प्रणाली अभी तक उपलब्ध नही है। यह भी एक कारण है जिसके फलस्वरूप जिनके पास "सामान्य" बचत हो पाती है, वह "उसे' पूँजी का रूप प्रदान नही कर पाते हैं। क्रम-वर्द्धित "आर्थिक विकास" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिय यह बहुत आवश्यक है कि देश की समस्त जनता को "बचत" करन की समस्त सुविधाये प्रदान की जाय। भारत म अभी इन 'सुविधाओ" की अत्यन्त कमी है। 'आर्थिक विकास" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये यह भी आवश्यक है कि देश म एक स्पष्ट निभरशील, दीर्घकालीन एव सुदृढ औद्योगिक नीति हो। इसका अभाव भी साहसी तथा उद्योगपतियो को "विनियोग" के क्षेत्र मे हताश बना देता है एव 'आर्थिक विकास" नही हो पाता।

भारत मे नियोजित रूप से "आर्थिक विकास" को प्राप्त करने के लिये एक ऐस "नियोजन" की आवश्यकता है जिसमे "सन्तुलित विकास' का लक्ष्य रखा गया हो एव "सर्व-क्षत्रीय विकास" पर प्राथमिकता प्रदान की गई हो। इसका कारण यह है कि हमारे पास साधन (वित्तीय) की अत्यन्त कमी है। हमे नियोजित रूप से, इसी 'सीमित साधन" द्वारा, बहुमुखी एव तीव्र "आर्थिक विकास" के उद्देश्य की पूर्ति करनी है। यह तभी हो सकेगा जब कि "सर्व क्षेत्र" पर प्राथमिकता के आधार पर "साधनो" का बँटवारा किया जा सके। प्रथम, द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजनाओ का यदि इस दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय तो यह पाया जायेगा कि हमारे नियोजनाधिकारियो ने इन 'नियोजनो" का निर्माण इसी आधार पर किया है।

"पूँजी उत्पादन-अनुपात" (Capital-Output Ratio) को ठीक प्रकार से ज्ञात करना या उसका अनुमान लगाना भी भारतीय नियोजकों के लिये एक विशेष समस्या है। उन्नत देशो म न तो "पूँजी" के विषय मे जानकारी करना बहुत कठिन होता है, और न "उत्पादन" के विषय मे जानकारी। किन्तु, अविकसित देशो में, जिसमे भारतवर्ष भी सम्मिलित है, "पूँजी" और "उत्पादन" दोनों के ही विषय में

जानकारी अत्यन्त कठिन है। इस "कठिनता" के बहुत से कारण हैं। इस "कठिनाई" के अस्तित्व से भारत में 'पूँजी-उत्पादन-अनुपात' की जानकारी, या नियोजन के निर्माण में इस ओर एक स्पष्ट संकेत या लक्ष्य का निर्धारण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्माण में प्रो० महलानोबीस ने एक विशेष "आर्थिक-विकास-नमूने" का निर्माण किया था, जिसके आधार पर, इस योजनाकाल में लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये चेष्टा की गई। इस "नमूने" की विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत उन्होंने "क्षेत्रीय विकास" एवं 'पूँजी श्रम अनुपात" को प्राथमिकता प्रदान की थी। यह "नमूना" 'महलानोबीस नमूने' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। अन्य 'आर्थिक विकास नमूनों" में साधारणतया 'पूँजी-उत्पादन-अनुपात" पर बल दिया जाता है, लेकिन, क्योंकि भारतवर्ष में अधिक बेरोजगारी है, और महलानोबीस की "योजना" का उद्देश्य बेरोजगारी को दूर करने का था, इसलिये उन्होंने "पूँजी-श्रम-अनुपात" पर बल दिया था। उनका "नमूना" केवल आंशिक रूप में ही सफल रहा।

द्वितीय योजना के विशेषज्ञों ने कहा था, 'अन्त में, हम दीर्घकालीन योजना के विषय में एक विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं। हमारा ख्याल है कि आगामी वर्षों में इस पर अधिकाधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यह विचार एशिया और अफ्रिका के विस्तृत और अविकसित भू-भाग के विकास की समस्याओं के विषय में है। यह भू-भाग अनेक राजनीतिक और सामाजिक कारणों से अभी तक प्रायः अविकसित रहा है। यहाँ की कुछ देशों की अर्थव्यवस्था या तो शेष संसार से अलग अलग रही है या योरुप के उन देशों के साथ जुड़ गई है जिसके साथ उनका राजनीतिक सम्बन्ध हो गया था।... ज्यों-ज्यों इस भू-भाग में योजनापूर्वक विकास होता चला जायगा, त्यों-त्यों उत्पादन की कुछ विशेष दिशाओं में विशेषता प्राप्त कर लेने, परस्पर लाभदायक व्यापार करने और जानकारी तथा अनुभव का आदान-प्रदान करने के अवसर अधिकाधिक मिलते चले जाएँगे। इन देशों में योजना की प्रगति विभिन्न स्थितियों में है और स्वभावतः इनमें से प्रत्येक देश की मुख्य दृष्टि यह रहेगी कि वह अपने साधनों का अधिकतम विकास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करे और ऐसी दिशा में करे जो कि आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उसके लिये अधिकतम लाभदायक हो। फिर भी यह आवश्यक है कि इनके विकास के कार्यक्रम इस प्रकार बनाये जायें कि उनमें तैयार पदार्थों और टेकनीकल जानकारी और अनुभव के परस्पर लाभदायक आदान-प्रदान की गुंजाइश रहे। .... भारत को अपनी योजना का निर्माण इस बड़े भू-भाग की प्रादेशिक दृष्टि से करना चाहिए.." [1]

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार, १९५६, पृष्ठ १८–१९

भारतवर्ष के लिये एक प्रणाली यह भी बताई गई है कि सबसे पहले देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रो को उन्नत बनाये जायें, फिर क्षेत्र के आधार पर उन्नति प्राप्त की जाए एव अन्त मे, इस बात की चेष्टा की जाये कि समस्त देश का आर्थिक विकास हो।

इस प्रकार, हम देखते है कि "आर्थिक विकास" की प्राप्ति के उद्देश्य से विभिन्न देशो मे भिन्न भिन्न प्रकार के नियोजन-पद्धतियाँ अपनाई जाती है। उनके स्वरूप, प्रकृति, प्राथमिकता आदि मे अन्तर हो सकता है, परन्तु उनका उद्देश्य सामान्यत एक ही रहता है—आर्थिक उन्नति। किसी "नमूने" के द्वारा इस "उद्देश्य" की प्राप्ति मे शीघ्रता होती है, और 'किसी" मे देरी। अविकसित देशो का 'नमूना" अलग होता है। "आर्थिक विकास" के अध्ययन मे अब अर्थशास्त्र के साथ-साथ गणित, साख्यशास्त्र और इकोनोमिट्रिक्स की भी सहायता ली जा रही है।

Growth Models

Growth Models के बारे मे विभिन्न विद्वानो के अलग-अलग मत है। उनमे स कुछ निम्नलिखित प्रकार के हैं

(अ) Prof. Harrod's Views .*

"Let G stand for the geometric rate of growth of income or *output in the system, the increment being expressed as a fraction* of its existing level. G will vary directly with the time interval chosen

"Let G_w stand for the warranted rate of growth

"If x_0 is output in period O and x_1 output in period 1,

$G = \frac{x_1 - x_0}{x_0}$ Since we suppose the period to be short.

x_0 or x_1 *may alternatively stand in the denominator*

"x_0 and x_1 are compounded of all individual outputs. Even in the most ideal circumstances conceivable, G would diverge from time to time from G_w.

"Let S stand for the fraction of income which individuals and corporate bodies choose to save S *is total saving divided by* x_0 or x_1 This may be expected to vary with the size of income, the phase of the trade cycle, institutional changes, etc

"Let C stand for the value of the capital goods required for the production of a unit increment of output The value of C is

* R H Harrod—*'An Essay in Dynamic Theory'*, Economic Journal, volume XLIX, March 1939, pp. 16 17.

inversely proportional to the period chosen The value of C depends on the state of technology and the nature of the goods constituting the increment of output Now, the fundamental equation, in its simplest form is

$$Gw = \frac{S}{C} \qquad (I)$$

' (Since the value of Gw varies directly and that of C inversely, and the value of S is independent of the unit, the validity of the equation is independent of the unit period chosen)

'The proof is as follows Let Cp stand for the value of the increment of capital stock in the period divided by the increment of total output Cp is the value of the increment of capital per unit increment of output actually produced Circulating and fixed capital are lumped together,

$$G = \frac{S}{Cp} \qquad I\ (a)$$

is a truism, depending on the proposition that actual saving in a period is equal to the addition of the capital stock Total saving is equal to Sx_0 The addition to the capital stock is equal to $Cp\ (x_1 - x_0)$ This follows from the definition of Cp And so,

$$Sx_0 = Cp\ (x_1 - x_0)$$

$$\frac{S}{Cp} = \frac{x_1 - x_0}{x_0} = G$$

If C=Cp, then G=Gw, and from I (a) we get,

$$Gw = \frac{S}{C} \quad \ldots \quad \ldots$$

(ब) Prof E D Domar's views :[1]

"Let investment proceed at an annual rate of I

Let annual productive capacity (net value added) of newly created capital be equal on the average to S

' Let σ represent the potential social average productivity of investment

"Let investment increase at an absolute annual rate of $\triangle I$, and let the corresponding absolute annual increase in income be indicated by $\triangle y$

---

1 E D Domar—*Expansion and Employment*, 'The American Economic Review', Volume xxxvii, March 1947, pp 39 41

We have then

$$\Delta Y = \Delta I \frac{I}{a}, \quad \ldots \quad \ldots, \quad . \qquad (1)$$

where $\frac{I}{a}$ is the multiplier

Let us now assume that the economy is in a position of a full employment equilibrium, so that its national income equals its productive capacity To retain this position, income and capacity should increase at the same rate The annual increase in potential capacity equals $I\sigma$ The annual increase in actual income is expressed by $\Delta I\left(\frac{I}{a}\right)$ Our objective is to make them equal This gives us the fundamental equation

$$\Delta I \frac{I}{a} = I\sigma \quad \ldots \ldots \ldots \qquad (2)$$

"To solve this equation, we multiply both sides by a' and divide by I, obtaining

$$\frac{\Delta I}{I} = a\sigma \quad \ldots \quad . \qquad (3)$$

"The left side of expression (3) is the absolute annual increase or the absolute rate of growth in investment—ΔI—divided by the volume of investment itself or the annual percentage rate of growth of investment Thus, the maintenance of full employment requires that investment grow at the annual percentage rate of $a\sigma$

(ग) Prof. Sweezy's Theory (as Analysed by Prof E D Domar[1])

'Examination of Sweezy s Chapter X (*The Theory of Capitalist Development*) which, according to him is based on Otto Bauer's book 'Zwischen Zewi Weltkriegen' published in 1936, pp 186 137 of Sweezy's book reads as

' If I is the net national income in value terms, w the total wage bill (= workers' consumption), *l* the part of surplus consumed by capitalists and k the part of surplus value added to constant capital (= investment), then we have the following equation :

$$I = w + l + k \qquad (1)$$

1 *Problem of Capital Accumulation*—E D Domar, 'The American Economic Review' Vol xxxviii, No 5, Dec 1948, part IV of the Essay, pp 787—794 (Abstracts only are reproduced here)

"All of these concepts, of course, represent rates of flow per unit of time if K is the total stock of means of production, then $K = \frac{dk}{dt}$ We assume that the national income steadily rises and that each of its three component parts also rises Thus if we regard w and l as functions of k, it will always be true that as k increases, w and l will also increase But since it is a fundamental feature of capitalism that an increasing proportion or surplus value tends to be accumulated and an increasing proportion of accumulation tends to be invested both, w and l must grow less rapidly than k Hence we have :

$$w = f(k) \text{ such that } O < f(k) < 1 \text{ and } f''(k) < O \qquad (2)$$

And similarly,

$$l = \phi(k) \text{ such that } O < \phi'(k) < 1 \text{ and } \phi(k) < O \; .. \qquad (3)$$

Domar s Observations on this

' But expressions (2) and (3) do not necessarily follow from the 'fundamental feature of capitalism If surplus value is a non-diminishing part of national income (Sweezy s view) and an increasing fraction of surplus value is accumulated, and finally if an increasing proportion of accumulation is invested then what does follow is that the ratio of investment to accumulation to surplus value to consumption and to national income rises

In other words what is given by the fundamental feature of capitalism is that

$$\frac{d\left(\frac{k}{I}\right)}{dt} > O \qquad (4)$$

or that

$$\frac{d\left(\frac{k}{m}\right)}{dt} > O \qquad (5)$$

where $m = w + l$ = total consumption (we can also say that $\frac{dk}{dt} \frac{l}{k} > \frac{dI}{dt} \frac{l}{I}$, i e that k will grow at a greater relative rate than I The same holds true form) ' But it does not at all follow that $f(k) < 1$ (or that $\phi(k) < 1$) As a matter of fact from what we know about the magnitude of k and w there is a very good presumption in favour of $f(k) > 1$ There is a confusion here between absolute and relative rates of growth Fortunately, the assumption that $f' < (k) < 1$ is not needed for his proof But the

other one, $f'(k) < 0$ is needed, yet it cannot be said that it necessarily follows from (4) in the general case

'Let us try to re work the problem Our first assumption will be that the ratio investment to income remains constant or increases i e, that

$$\frac{d\left(\frac{k}{I}\right)}{dt} \geq 0 \qquad (6)$$

'The second one is S (average applicable to the new investment as a whole) which or rather the inverse of which Sweezy also used as the required ratio between capital and income If

$$I = Ks \qquad (7)$$

$$\frac{dI}{dt} = \frac{dk}{dt}\, S = ks \qquad (8)$$

"The expression (7) is the equilibrium condition from the point of view of this problem Differentiating we get

$$I\,\frac{dk}{dt} \geq k\frac{dI}{dt} \qquad (9)$$

from (8) we obtain

$$\frac{d^2I}{dt^2} = \frac{dk}{dt}\, S \qquad (10)$$

and the substitution of (8) and (10) into (9) gives us

$$I\,\frac{d^2I}{dt^2} \geq \left(\frac{dI}{dt}\right)^2 \qquad (11)$$

"We shall now prove that the expression (11) is equivalent to the statement that the relative rate of growth will be constant or will increase For

$$\frac{d\left(\frac{\frac{dI}{dt}}{I}\right)}{dt} \geq 0 \qquad (12)$$

immediately gives

$$\frac{I\,\frac{d^2I}{dt^2} - \left(\frac{dI}{dt}\right)^2}{I^2} \geq 0 \qquad (13)$$

which is identical to (11)

"We can conclude that

(i) If the ratio of investment to income is constant, the

preservation of equilibrium requires that income grow at a constant relative rate

(ii) If the ratio is, as Sweezy assumes, increasing, national income should grow at an increasing relative rate "

(ज) Prof Mahalanbis' Model.

Prof Mahalanbis constructed two models, "a bi sector model, and a four sector model which is an elaboration of the basic bi sector model It is the four sector model which represents the theoretical construction of the Second Five Year Plan The major targets of the models are a postulated rate of growth of income over a certain definite period of time, say Δy over a period of five years, with a proposed rate of increase in employment over the same period, say ΔN The economy is divided into four sectors Investment goods industries, Factory organised consumers' goods industries, Small scale, household industries producing consumer's goods, and Service industries

"The capital output and labour output ratios, giving parameters of capital and labour requirements per unit of increase in national income in each of the sectors of the closed system, are assumed Then the problem is, how to distribute a given amount of available investment funds among these sectors so as to achieve both the targets In distributing investment funds, the investment goods industries sector is given a special priority, by allocating to it one third of the total funds for new investment This allocation is arrived at, from considerations of long seen economic growth (economic growth over twenty or twenty five years) Then the planning problem is reduced to one of distributing the remaining investment funds among the three sectors in such a way as to yield definite increases in income and employment on the basis of the assumed capital output and labour output ratios in different sectors "[1]

---

1 G C Surve—"*Monopoly, Competition and Welfare*", Bombay, 1960, Ch III, pp 62 63

Please also read—(a) "*The Review of Economics and Statistics*", Feb , 1959

(b) "*A Note on Professor Mahalnobis' Model of Indian Economic Planning*"—R Komiye

(c) "*Contributions to Economic Analysis—The Logic of Investment Planning*"—S Chakravarty.

इनके अतिरिक्त भी, और बहुत से विद्वानो ने (जिनके नाम पहले दे दिये गये हैं) अन्य प्रकार के Growth Models की चर्चा की है। सभी के विषय मे विशद वर्णन यहाँ सम्भव नही है, इसलिये केवल २/३ के बारे मे ही वर्णना की गई है।[1]

४—नियोजन की प्रबन्ध सम्बन्धी आवश्यकतायें
(Organisational Requirements for Planning)

नियोजन के कार्य को सफल बनाने एवं सन्तुलित रूप से उसका सचालन करने के लिए विभिन्न क्षेत्रो मे प्रशासन का कार्य कुशलता से चलना चाहिए। यो तो सभी क्षेत्रो मे कुशलतापूर्वक प्रशासन का कार्य होना चाहिए, परन्तु निम्नलिखित क्षेत्रो मे विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। वित्त के क्षेत्र मे, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे, श्रमिक सम्बन्धी विषयो पर, कृषि सम्बन्धी क्षेत्र मे, उद्योग तथा खनिज पदार्थों के विषय मे, सांख्यिकी के विषय म, साधारण प्रशासन एवं प्रचार के विषय मे।

---

1. Selected References :

(1) R. F. Harrod—"*An Essay in Dynamic Theory,*" Economic Journal, March 1939.
(2) A A Youngs—"*Increasing Returns & Economic Progress*", Economic Journal, Dec 1928.
(3) T. W Swan—"*Economic Growth and Capital Accumulation,*" Economic Record, Nov. 1956.
(4) R M. Solow—"*A Contribution to the Theory of Economic Growth,*" Quarterly Journal of Economics, Feb 1956
(5) N Kaldor—"*A Model of Economic Growth,*" Economic Journal, Dec 1957.
(6) R F Harrod—"*Towards A Dynamic Economics*"
(7) Joan Robinson—"*Economic Growth & Capital Accumulation—A Comment,*" Economic Record, April, 1957
(8) Robert Eisner—"*On Growth Model and the Neo classical Resurgence*", Economic Journal, Dec 1958
(9) James Tobin—"*A Dynamic Aggregative Model*", Journal of Political Economy, April, 1955
(10) W Fellner—"*Trends and Cycles of Economic Activity*".
(11) W W Rostow—"*The Process of Economic Growth*".
(12) H. A John Green—"*Growth Models, Capital and Stability*", Economic Journal, March 1960
(13) R. Komiye—"*A Note on Professor Mahalanobis' Model of Indian Economic Planning*".

वित्त सम्बन्धी प्रशासन कार्य (Financial Organisation) :

नियोजन को सफल रूप देने के लिये यह *अत्यन्त आवश्यक होता है कि वित्त एवं* द्रव्य सम्बन्धी प्रशासन का कार्य कुशलतापूर्वक चलता रहे। उनकी अनुपस्थिति में नियोजन की सफलता में बाधा उत्पन्न हो सकती है। योजना आयोग ने तृतीय पंचवर्षीय योजना के निर्माण में इस ओर विशेष ध्यान दिया है। तृतीय पचवर्षीय योजना के अनुसार :[1]

साधनो की समस्या पर—विशेष रूप से उसके भुगतान-सन्तुलन के पहलू पर—पचवर्षीय योजना की समस्त आवश्यकताओं की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि योजना के व्यय के वर्ष प्रति-वर्ष के विवरण की दृष्टि से भी विचार किया जाना चाहिए। इस दूसरे तत्व पर विचार करते समय कई कसौटियाँ सामने रखनी होगी : जो परियोजनाएँ हाथ में हैं, उन्हें यथाशीघ्र पूरा कर डालने की आवश्यकता, नई परियोजनाओं को यथासमय आरम्भ कर देने की आवश्यकता, ताकि उत्पादन का निर्धारित लक्ष्य पूरा होने का निश्चय हो जाय, विदेशी मुद्रा की उपलब्धि, आदि। योजना के व्यय को विभिन्न स्पष्ट सोपानो में विभाजित करने से पहले, नियोजकों को बहुत-सारे काम करने होंगे। फिर भी, इतना स्पष्ट है कि योजना में सोचे गये कार्यक्रमो को पूरा करने के लिये, विदेशी सहायता प्राप्त करने के अतिरिक्त, स्वदेशी साधनो के सग्रह का प्रयत्न भी जारी रखना होगा।

बडे पैमाने पर विकास की किसी भी योजना के लिए ये विचार बुनियादी *महत्त्व रखते हैं। देश के आन्तरिक साधनो की उपलब्धि-विषयक सम्भावनाओं के* प्रसग मे यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि कई दृष्टियो से इस समय की परिस्थिति गत योजनाओं की अपेक्षा अधिक अनुकूल है। गत दस वर्षों मे पूँजी-विनियोग का स्तर काफी ऊँचा उठा है। इसके फलस्वरूप न केवल उत्पादन का स्तर ऊँचा उठा है, बल्कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता मे भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सिंचाई, बिजली और परिवहन के क्षेत्र मे भी काफी ठोस प्रगति की गई है। दूसरी योजना के समय आरम्भ की गई नई औद्योगिक परियोजनाओं का पूरा लाभ तीसरी योजना की अवधि मे मिलने लगेगा। दूसरी योजना की अवधि मे सरकारी क्षेत्र की अधिकाश परियोजनाएँ निर्माणावस्था से गुजर रही थी। तीसरी योजना की अवधि मे वे सब कार्यशील हो जायँगी और *आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने लगेंगी*। इन सब अतिरिक्त उत्पादनों को इकट्ठा करके नए पूँजी-विनियोग मे प्रयुक्त किया जा सकता है, और किया जाना चाहिए। शिक्षण और प्रशिक्षण की जो सुविधाएँ पहले ही बढाई जा चुकी है, और जो तीसरी योजना मे और भी बढा दी जाएँगी, उन सब का लाभ आगामी वर्षों मे अधिकाधिक परिणाम में दृष्टिगोचर होने लगेगा। यह

1. तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, पृष्ठ ४६-४७

भी ध्यान देने की बात है कि देश मे साहसपूर्वक नये काम आरम्भ करने की प्रवृत्ति, प्रबन्ध के अनुभव और कार्य-कुशलता की मात्रा बढ रही है।

किसी योजना के लिए साधन तलाश करने की समस्या का अभिप्राय, किसी जमे-जमाए अथवा स्थायी कोश से कुछ निकाल लेना नही समझना चाहिए। एक हद तक, साधनो मे वृद्धि अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ होती है। गत वर्षों मे परेशानियो और कठिनाइयो के बावजूद जो प्रगति की गई, उससे आगामी वर्षों मे अधिक परिश्रम करने का आधार तैयार हुआ है। निस्सन्देह, किए हुए पूँजी-विनियोग का, विशेषकर बुनियादी ढग के विनियोग का, फल उत्पादन के रूप मे प्रकट होने मे कुछ समय लगता ही है। परन्तु निर्धनता, अल्प बचत और अल्प विनियोग के कुचक्र से निकलने के लिए यह जरूरी है, कि सभी समर्थ साधनो का अधिक प्रभावशाली ढग से उपयोग किया जाए और उनसे उत्पादन के रूप मे जो कुछ प्राप्त हो उसे पुन पूँजी-विनियोग मे मिला दिया जाए। देश का एक महत्त्वपूर्ण एव ठोस साधन अप्रयुक्त जन-शक्ति है। उसका उत्पादन मे अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सबधी प्रशासन कार्य (Organisation regarding International Trade) :

आन्तरिक और विदेशी दोनो ही प्रकार के व्यापार को ठीक प्रकार से चलाने के लिये सरकार की ओर से अच्छा प्रबन्ध, अच्छी नीति एव कुशल प्रशासन की आवश्यकता होती है। इनके अभाव मे यह काय कुशलतापूर्वक सम्भव नही होता है। प्रत्येक नियोजनाधिकारी को नियोजन के निर्माण के समय इस ओर सचेष्ट रहना पडता है कि नियोजन कार्य को सफल बनाने के लिये इस बात का स्पष्ट सकेत नियोजन मे हो कि व्यापार नीति किस प्रकार की होगी एव प्रशासन की कुशलता के लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जायेगा। तृतीय पचवर्षीय योजना (रूप रेखा) मे भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है (पृष्ठ ८१-८२) :

किसी भी देश के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अपने विकास की आरम्भिक दशा मे पहले स्वदेश मे उस सामान का उत्पादन करे, जिसे वह विदेशो से मँगा रहा है। भारत का औद्योगिक विकास भी अब तक उसके आन्तरिक बाजार की बढती हुई आवश्यकताए पूरी करने की दृष्टि से किया जाता रहा है। परन्तु गत कुछ वर्षों के अनुभव से पता चला है कि निर्यात बढाने के लिए भी योजना बनाना उतना ही आवश्यक है। इसके लिए निर्यात की सामर्थ्य बढाने, वर्तमान बाजारो का विकास करने और नए बाजार खोजने की आवश्यकता है। कोई भी विकासरत देश, ससार का व्यापार बढने से, एक हद तक लाभान्वित होने की आशा कर सकता है। परन्तु यह सामान्य बढावा काफी नही माना जा सकता। यद्यपि आजकल उद्योग-व्यवसाय मे अधिक समुन्नत देश पहले से उदार व्यापार-नीतियाँ

अपनाते जा रहे हैं, फिर भी नए विकासोन्मुख देशो के कारण, निर्यात का व्यापार बढाने मे बहुत-सी बाधाएँ हैं। जब विभिन्न देश अपने अब तक अप्रयुक्त साधनो का विकास और उपयोग करने लगेंगे, तब व्यापार के प्रादेशिक रूप मे परिवर्तन हुए बिना नही रह सकेगा। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के गठन और प्रादेशिक रूप मे अनेक परिवर्तन होगए हैं। कई नए व्यापारिक गुट बन गए है और बनते जा रहे है। इस परिस्थिति मे विकासोन्मुख देशो की यह इच्छा होना स्वाभाविक है कि ये गुटबन्दियाँ व्यापार मे बाधक न हो। भारत को आगामी वर्षों मे अपना निर्यात-व्यापार न केवल राष्ट्रमण्डल के देशो मे, बल्कि पूर्व और पश्चिम के अन्य देशो मे भी बढाना होगा। हाल के वर्षो मे, जिन देशो ने सरकारी व्यापार की प्रणाली अपनाई है, उनके साथ भारत के व्यापार-सम्बन्ध पारस्परिक लाभ के आधार पर काफी मजबूत हुए हैं और आशा है कि उनके साथ जो समझौते होगए हैं, वे व्यापार का और भी विस्तार करने मे सहायक होगे। अपनी भावी व्यापार-नीतियो का निर्धारण करते समय हमे एशिया और अफ्रीका के पडोसी देशो के अतिरिक्त दक्षिण (लैटिन) अमेरिका के देशो के साथ भी अपने व्यापार-सम्बन्ध घनिष्ठ होने की सम्भावनाओ का ध्यान रखना चाहिए।

देश का वैदेशिक हिसाब अधिक अच्छी तरह सतुलित करने के लिए हमे जिस चीज की आवश्यकता है, वह अपना निर्यात-व्यापार बढाने के लिए निरन्तर और योजनाबद्ध प्रयत्न करने की है। यह प्रश्न केवल व्यापार-नीति का नही है—इसका सम्बन्ध पूँजी-विनियोग, मूल्यो और वित्तीय नीतियो से भी है। तात्कालिक दृष्टि से यह समस्या, आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे कठिनाई उठा कर भी अधिक निर्यात के लिए माल बचा लेने की है। दीर्घ-दृष्टि से हमारा वास्तविक कार्य यह है कि हम अपनी अर्थव्यवस्था का आधार दृढ कर ले, बुनियादी यन्त्रो और अन्य यन्त्रो के उत्पादक अपने उद्योग-व्यवसायो का इतना विकास कर ले कि उनमे जाने वाली पूँजी का औचित्य स्वदेश के ही उत्पादन से प्रमाणित हो जाए, निर्यात के लिए उत्पादन करने लगें और नए बाजारो मे प्रवेश करने के लिए उपयुक्त सगठन बना ले। इस कारण, हमे कृषि और उद्योग, दोनो के विकास-कार्यक्रमो को ऐसा बनाना होगा कि उनसे आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के अतिरिक्त, निर्यात की आवश्यकताएँ भी पूरी होती चली जाएँ—वे भी कुछ कम जरूरी नही हैं।

श्रम सम्बन्धी नीति एव प्रशासन-व्यवस्था (Policy & Organisational Arrangements for Labour)

श्रमिको के विषय मे एक विशेष नीति को अपनाने की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से भारत मे, जहाँ अधिकतर क्षेत्रों मे श्रम-प्रमुख उत्पत्ति प्रणाली अपनाई जाती है, यह और भी आवश्यक हो जाता है कि श्रमिक के विषय मे एक विशेष नीति अपनाई जाये और उसको कुशलतापूर्वक चलाने के लिये प्रशासन की विशेष

व्यवस्था की जाये । श्रम के बारे मे प्रशासन का कार्य अत्यन्त कुशल होना बहुत आवश्यक होता है। इस कार्य मे यदि कोई त्रुटि रह जाये, तो नियोजन कार्य की सफलता मे बहुत कठिनाइयाँ उपस्थित होगी। यही कारण है कि नियोजन के निर्माण मे श्रम-नीति एव श्रम सम्बन्धी प्रशासन की विशेष व्यवस्था की जाती है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् और पहली पचवर्षीय योजना के समय श्रम-नीति मे जो प्रवृत्तियाँ आरम्भ की गई थी, उन्हे दूसरी योजना के समय दृढ तथा विकसित किया गया। इस काल मे श्रम-नीति का विकास करने और उसके मूल उद्देश्यो को पूरा करने के लिए भी विशेष कार्य किया गया।

उद्योगो मे शान्तिपूर्ण परिस्थितियाँ पैदा करने के प्रयोजन से, सरकार ने दस वर्ष से, औद्योगिक झगडो को प्रेमपूर्वक निबटाने के लिए सुविधाएँ देने की जिम्मेदारी अपने सिर ले रखी है। औद्योगिक शान्ति की रक्षा के प्रयोजन से ही सरकार ने इन झगडो मे दखल देने के अधिकार भी ले रखे है। इसलिए यह भावना बढती जा रही है कि झगडो मे एक हद तक तो सरकारी दखल के बिना काम नही चल सकता, परन्तु आज के हालात मे वास्तविक प्रगति का मार्ग यह है कि दोनो पक्ष मिल कर, परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार, परस्पर-सहयोग की व्यवस्था कर लें। हालांकि आज लोग नही समझ रहे हैं, परन्तु जब वे यह समझने लगेगे कि लक्ष्य केवल शाति की स्थापना नही, अपितु औद्योगिक कुशलता के ऊँचे स्तर तक पहुँचना और श्रमिक-वर्ग के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना भी है, तब औद्योगिक झगडो को सुलझाने के लिए इस मार्ग पर चलने का महत्त्व अधिक अच्छी तरह समझा जाने लगेगा।

हाल मे विशेष महत्त्व की जो कुछेक बातें हुई हैं, उनकी यहा सक्षेप मे चर्चा कर देना उचित होगा। उनसे पता लगेगा कि तीसरी योजना में श्रम-नीति का लक्ष्य क्या होना चाहिये और आगे किस दिशा मे बढना चाहिये। मालिको और मजदूरो के सभी केन्द्रीय सगठनो ने औद्योगिक अनुशासन की एक सहिता स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर ली है और उस पर सरकारी और निजी, दोनो क्षेत्र के उद्योगो मे १९५८ के मध्य से अमल हो रहा है। इस सहिता मे मालिको और मजदूरो, दोनो पर कुछ खास जिम्मेदारियाँ डाल दी गई है, जिनका उद्देश्य यह है कि दोनो के प्रतिनिधियो मे सब स्तरो पर रचनात्मक सहयोग होता रहे—न तो काम रुके और न मुकदमेबाजी हो; झगडो और शिकायतो का निबटारा आपसी बातचीत, सुलह-समझौते तथा स्वेच्छया नियुक्त पचो के द्वारा हो ; मजदूर-सगठनो का विकास स्वतन्त्रतापूर्वक होने की सुविधाएँ मिलें, मजदूरो मे लापरवाही से काम करने अथवा कर्तव्य की उपेक्षा करने की भावना कम हो जाए और मालिक-मजदूरो के सम्बन्धो मे सब प्रकार की जोर-जबर्दस्तियो और दबावो का अन्त हो जाए। स्पष्ट है कि यह विचार नया है, इसके उद्देश्य अति दूरव्यापी हैं और इसके अमल का क्षेत्र कठिन है, इसलिए व्यवहार मे इसकी जड अच्छी तरह जमाने के लिए बहुत समय तक बडी ईमानदारी से काम

करना पड़ेगा। अब तक इसके जो परिणाम निकले हैं, वे उत्साहवर्द्धक है—काम रुकने के कारण नष्ट होने वाले श्रमिक-दिनो की संख्या मे कमी होने की दृष्टि से भी और औद्योगिक सम्बन्धो के वातावरण मे सामान्य सुधार होने की दृष्टि से भी। सभी जानते है कि मजदूरों की यूनियनो मे आपसी विरोध के दुष्परिणाम मालिको और मजदूरो, दोनो के लिए कितने शोचनीय होते हैं। दो वर्ष हुए कि मजदूर-सगठनो के प्रतिनिधियो ने एक व्यवहार-सहिता बना कर उसे स्वीकार कर लिया था। उससे उक्त दुष्परिणाम कुछ कम होगए है। पर दोनो पक्षो की एक सामान्य शिकायत यह रही है कि पच-निर्णयो और समझौतो का पालन नही किया जाता। यदि यह शिकायत आगे भी जारी रही, तो ये दोनो सहिताएँ सर्वथा निरर्थक और निष्प्रयोजन हो जाएँगी। इसलिए, केन्द्र और राज्यो मे एक सगठन बना दिया गया है कि इन सहिताओ और कानूनो अथवा समझौतो के कारण दोनो पक्षो पर जो जिम्मेदारियाँ आती हो, वह उनसे उनका पालन करवाए और देखे कि उनसे कितना लाभ हुआ और कितना नही।[1]

सांख्यिकीय प्रशासन एव नीति (Statistical policy and arrangements of Organisation) :

प्रथम योजना विशेष रूप से इसलिये असफल रही थी कि उस समय तक देश मे साख्यिकीय आँकडे एकत्रित करने के साधन उपलब्ध नही थे। किन्तु, द्वितीय पच वर्षीय योजना मे इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है कि साख्यकीय सस्थायें अधिक हो एव उनके प्रबन्ध एव प्रशासन के विषय मे भी एक निर्धारित नीति हो। नियोजन-निर्माण मे आँकडे एव साख्यिकीय साधनो की बहुत आवश्यकता होती है। इनके अभाव मे यह कार्य ठीक प्रकार से नही चल पाता।

तृतीय पचवर्षीय योजना के निर्माताओ ने भी इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि तृतीय योजना काल मे देश मे और बहुत सी साख्यिकीय सस्थाये खोली जायेंगी एव उनके प्रबन्ध तथा प्रशासन सम्बन्धी प्रणालियो मे भी उन्नति होगी (पृष्ठ १३२ १३३)।

मसरी मे राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी और प्रशिक्षण निर्देशालय खोले गए हैं। इनमे प्रथम श्रेणी के अखिल भारतीय केन्द्रीय सेवाओ के सदस्यो के लिए एक सम्मिलित प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। दूसरी योजना मे जो और कदम उठाए गए, वे हैं—हैदराबाद मे 'प्रशासनिक कर्मचारी-कालेज' की स्थापना तथा 'औद्योगिक प्रबन्ध-समुच्चय' का आयोजन। आशा है कि राज्य सरकारे इस बात की शीघ्र ही समीक्षा करेंगी कि तीसरी योजना की अवधि मे अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए सभी स्तरो पर उन्हे कितने और कैसे प्रशासनिक कर्मचारियो की आवश्यकता होगी। दूसरी योजना के अन्तर्गत सात सस्थाओ मे व्यवसाय

---

1 तृतीय पंचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, योजना आयोग, पृष्ठ ८६-८७।

प्रशासन और प्रबन्ध के पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं। इनमे से २ सस्थाएं औद्योगिक और उत्पादन-इन्जीनियरी की भी शिक्षा देती हैं। तीसरी योजना मे इस क्षेत्र मे सुविधाएं बढाने का विचार है। एक अखिल भारतीय प्रबन्ध सस्थान खोलने के सुझाव पर भी विचार किया जा रहा है।

इन कुछ वर्षों मे अक-सकलन-विशेषज्ञो को प्रशिक्षण की अधिक सुविधाएं देने के बारे म कई कदम उठाए गए है। केन्द्रीय अक सकलन-सघ, भारतीय कृषि-अनुसधान-परिषद् तथा अखिल भारतीय स्वच्छता एव सार्वजनिक स्वास्थ्य-सस्थान ने नौकरी मे रहते हुए प्रशिक्षण देने के लिए कई प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की है। राज्यो के अक-सकलन-कार्यालयो ने जिला अक सकलन-अधिकारियो, सामुदायिक विकास-खण्डो के प्रगति सहायकों और अन्य कर्मचारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। आशा है कि भारतीय अक-सकलन-सस्थान, जिसे विधिवत् राष्ट्रीय महत्त्व की सस्था घोषित किया गया है, शीघ्र ही अक-सकलन मे स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्रियों के पाठ्यक्रम का प्रबन्ध करेगा। इस सस्थान मे दो साल के व्यावसायिक अक सकलन-पाठ्यक्रम का प्रबन्ध है। वह कुछ और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो की भी व्यवस्था करता है—जैसे, कलकत्ता के अन्तर्राष्ट्रीय अक-सकलन शिक्षा-केन्द्र के पाठ्यक्रम और अक-सकलन के स्तर नियमन के पाठ्यक्रम। बम्बई के सामाजिक अक-सकलन (डमोग्राफी) प्रशिक्षण एव अनुसन्धान-केन्द्र मे राष्ट्रो की सामाजिक अक-सकलन-विद्या का प्रशिक्षण दिया जाता है। कलकत्ता का औद्योगिक अक-सकलन-प्रतिष्ठान औद्योगिक अक-सकलन के क्षत्र मे प्रशिक्षण का प्रबन्ध करता है। सुयोजित विकास की अक-सकलन-सम्बन्धी आवश्यकताएं तेजी से बढ रही हैं। अत आवश्यक कार्यकर्ता तैयार करने के लिए मौजूदा सुविधाओ को यथासम्भव बढाने का विचार है।

साधारण 'प्रबन्ध' एव प्रशासन की कुशलता (Efficiency for General Administration)

नियोजन के कार्य को सरल तथा सफल बनाने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि नियोजन से सम्बन्धित सभी क्षेत्रो मे प्रबन्ध की कुशलता हो एव प्रशासन का स्तर ऊँचा हो। प्रथम, और द्वितीय पचवर्षीय योजना मे प्रशासन की कुशलता पर बल दिया गया। किन्तु, कुछ कारणो से द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे प्रशासन व्यवस्था अत्यन्त ढीली पड गई, जिससे नियोजन के लक्ष्यो की प्राप्ति ठीक उस रूप मे सम्भव न हो सकी, जिस रूप मे आशा की गई थी। इसी कारण से हमारे विधेयको ने तृतीय नियोजन के निर्माण मे प्रशासन सम्बन्धी विषयों पर विशेष ध्यान दिया। तृतीय पच वर्षीय योजना मे साधारण प्रशासन की व्यवस्था निम्न रूप मे की गई है।[1]

1. तृतीय पँचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार, योजना आयोग, पृष्ठ ६१-६२

आजकल हमारी प्रशासन-प्रणाली जिस प्रकार चल रही है, उसमे कुछ बातें ऐसी हैं, जिनके कारण काम की गति मन्द पड जाती है। इन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथम तो, इस बात पर जोर रहना चाहिए कि किसी भी काम का परिणाम, निर्धारित नीति और कार्यक्रम के अनुसार, नियत समय मे निकाल देने की जिम्मेदारी, सम्बद्ध व्यक्तियो पर डाल दी जाए। प्रशासन की कुछ परम्पराएँ ऐसी हैं, जो यह जिम्मेदारी किसी पर नही पडने देती। उदाहरणार्थ, सरकार के दफ्तरी महकमों मे मूल कार्य की ज्यादा-से ज्यादा जिम्मेदारी अपने सिर ओढ लेने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसके विपरीत, उनके काम का मुख्य सम्बन्ध नीति, निगरानी और कार्य-दक्षता का स्तर कायम रखने मे होना चाहिए। कुछेक सन्दिग्ध मामलो को छोडकर आज्ञाओ पर अमल कराने के सब काम उनके लिये नियत महकमो और अधिकारियो पर छोड देने चाहिये। यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकार के आज्ञा-पालक महकमो, निगमो और सरकारी कम्पनियो को अधिक समर्थ बना कर उन्हे सब काम अपनी जिम्मेदारी से और प्रभावशाली ढग से करने दिए जायें। दूसरी बात यह, कि किसी भी सरकारी कर्मचारी को कानून, नियम अथवा सरकारी आज्ञा द्वारा जितना अधिकार दिया जाए, उस हद तक उसके निर्णयो मे हस्तक्षेप न किया जाए। यदि कोई अधिकारी अपना कार्य ठीक ढग से न करे, तो उसके विरुद्ध उचित कार्रवाई की जा सकती है। जिन मामलो मे प्रशासन की आवश्यकता के कारण सरकार या ऊँचे अधिकारी-द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक जान पडे, उनमे जिस कानून, नियम या आज्ञा से अधिकार दिया गया था, उसमे सशोधन किया जा सकता है। तीसरी बात यह, कि कोई कार्रवाई करने से पहले अन्त विभागीय सम्मेलनो, सलाह मशविरे और चर्चा कर लेने की जो परम्परा चली आ रही है, उसे यथासम्भव कम कर देना चाहिये, क्योकि इसका नतीजा प्राय जिम्मेदारी को बिखेर देने और जिम्मेदार कार्यकर्ताओ द्वारा अपनी ओर से कोई कार्रवाई न करने के रूप मे सामने आता है।

सरकार का काम अब बहुत फैल चुका है और उच्च स्तरो पर बहुत दबाव रहने के कारण, सभी विभागो मे मध्यम वर्ग के कर्मचारियो का सदा ठीक-ठीक मार्ग-प्रदर्शन नही हो पाता इसलिये यह अत्यत आवश्यक है कि इन वर्गो के कर्मचारियो के प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देकर, उन्हे दिन-प्रति दिन के प्रशासन मे अधिकाधिक जिम्मेदारी उठाने के योग्य बना दिया जाए।

जैसा कि पहली योजना मे भी कहा गया था, यदि प्रशासन के अधिक बडे लक्ष्यो की पूर्ति करनी है, तो स्वय शासन-चक्र के ही व्यक्तियो को आगे बढने और नेतृत्व करने का अवसर देना चाहिए, ताकि वे प्रशासन की कुशलता और स्तर मे निरन्तर सुधार करके उसे ऊँचा उठा सकें। ये नेता अधिकतर सरकारी कर्मचारियो के उच्च वर्ग मे से निकलगे। इस विचार पर अमल करने के लिए आजकल केन्द्रीय सरकार एक सुझाव पर विचार भी कर रही है। राज्यो मे इस लक्ष्य की पूर्ति के

लिए मुख्य सचिव, आदि कुछ उच्च अधिकारियो को कहा जा सकता है कि वे एक प्रशासन समिति के रूप म कार्य करें। उनको यह जिम्मेदारी हमेशा के लिए सौंपी जा सकती है कि वे प्रशासन मे सुधार करने के उपाय सुझाएं और विभिन्न विभाग जो कारवाहियाँ करें उन पर विचार करें। यह समिति समय समय पर अपनी रिपोर्ट मुख्य मन्त्री और मन्त्रिमण्डल के सामने पेश किया करे।

ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो की सफलता बहुत बडी मात्रा मे जिले, खण्ड और गाँव के प्रशासन की कुशलता और ईमानदारी पर निभर करती है। इसीलिए कई राज्यो मे जिला-प्रशासन की समस्याओ पर विचार किया जा रहा है और उसे सुधारने के उपाय किए जा रहे हैं। अब कई स्थानो पर, विशेषकर विकास-खण्डो मे, लोकप्रिय निकायो का सगठन कर दिया गया है। फलत स्थानीय जन-शक्ति तथा अन्य साधनो के उपयोग की सम्भावनाएँ बढ गई है। परन्तु जैसा कि इसी अध्याय मे सामुदायिक विकास के प्रकरण मे बतलाया गया है, विकास खण्डो मे पचायत-समितियो के लिए आवश्यक है कि वे तीसरी योजना की अवधि मे अपना सारा जोर, सुख-सुविधाएँ बढाने के कार्यक्रमो के स्थान पर, कृषि की उपज बढाने पर लगाएँ और अपने क्षेत्र मे योजना को पूरा करने वाली एजेन्सी की हैसियत से काम करें। सर्वोच्च प्राथमिकता क विचार और ऊपर के सलाह मशविरे को छोडकर विकास खण्डो मे विकास के सब कार्यो के लिए आखिरी जिम्मेदारी खण्ड पचायत-समिति पर रहनी चाहिये और इस मार्ग पर निरन्तर आगे बढते रहना चाहिये।

प्रशासन म कुशलता का स्तर ऊपर उठाने की प्रक्रिया सदा चलती ही रहती है। प्रशासन का सामना अधिकाधिक उलझन-भरे और बडे कामो से होता रहता है और कई क्षेत्रो मे काम करने की नई विधियाँ निकालने की जरूरत पड जाती है। कार्य प्रणाली का नियमपूर्वक अध्ययन करने और मन म प्रयोग की वृत्ति रखने से इस क्षेत्र म बडी सहूलियत होती है।

द्वितीय भाग

भारतीय नियोजन

भारत के प्रारम्भिक नियोजन
(Earlier Indian Plans)

१—संक्षिप्त इतिहास
(A Short History)

सम्भवत भारत के नियोजनाबद्ध आर्थिक विकास का प्रथम प्रयास श्री एम. विश्वेस्वरैया द्वारा किया गया था। सन् १९३४ मे उनकी पुस्तक 'प्लाण्ड इकनॉमी फॉर इण्डिया' (Planned Economy For India) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे उन्होने विस्तृत रूप से आर्थिक नियोजन की आवश्यकता तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला था, साथ ही एक अनियोजित अर्थव्यवस्था के दोषो का भी विवेचन किया था। इस पुस्तक से हमे ज्ञात होता है कि किसी भी देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन का होना नितान्त आवश्यक है। '*अखिल भारतीय आर्थिक सम्मेलन*' ने भी इसको महत्त्वपूर्ण बतलाया और सन् १९३४-३५ तथा सन् १९३८-३९ की सालाना बैठक मे सम्मेलन ने उक्त पुस्तक (Planned Economy For India) पर विचार विमर्श किया। इस प्रकार से इस पुस्तक की सार्थकता प्रकट हो जाती है। इस पुस्तक म श्री विश्वेस्वरैया न समस्त भारत के लिए एक दस वर्षीय योजना का सुझाव दिया था जिसका मुख्य उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय आय को दुगुना करना तथा कारखानों की उत्पत्ति मे वृद्धि करना था, जिससे कि प्राचीन समय मे विद्यमान कुछ मूलभूत त्रुटियो और कमजोरियो को थोडे से समय मे ही दूर किया जा सके। साथ ही देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए जो वाछित सुधार और विकास के उपाय हैं, उनको लागू किया जा सके। उनके अनुसार ये सुधार और विकास के उपाय निम्न-लिखित बातो पर आधारित होते हैं। सार्वजनिक शिक्षा, सुरक्षा, प्रशिक्षण, बडे उद्योगो की स्थापना के साथ देश का औद्योगीकरण, साधनो की जांच तथा अकशास्त्र का सकलन, व्यवसायो का सतुलन तथा ग्रामो का पुनरुत्थान आदि।

इसके बावजूद भी कि यह '*भारत का आर्थिक नियोजन*' पुस्तक समय के बहुत अनुकूल थी और इस मे सुधार के असख्यो महत्त्वपूर्ण तथ्य थे, किन्तु निम्न-लिखित कठिनाइयो के कारण इसे प्रयोग मे नही लाई जा सकी —

धन की कमी, उचित आंकडो का अभाव, विदेशी शासन तथा जनमत की उपेक्षा आदि इन्ही समस्त कठिनाइयो के कारण यह पुस्तक कभी व्यवहार मे नही लाई जा सकी और इसके सुधार केवल सिद्धान्त बन कर रह गये ।

सन् १९३५ के बाद जब प्रान्तो मे स्वतन्त्र सरकार बनाने की स्वीकृति दे दी गई तो तत्कालीन कॉंग्रेस सरकार ने एक 'राष्ट्रीय नियोजन समिति' नियुक्त की जिसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नहरू थे। इस समिति ने सन् १९३८ मे अपना कार्य आरम्भ किया ही था कि द्वितीय विश्वयुद्ध छिड जाने से तथा राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इस समिति के कार्य सचालन को काफी धक्का लगा । इस राजनैतिक उथल-पुथल ने समिति के कार्य को ही धक्का नही पहुँचाया अपितु कर्मठ कॉंग्रेसी कार्य-कर्त्ताओ को भी कार्य क्षेत्र से हटा दिया । इसके बाद सन् १९४७ मे कुछ परिवर्तनो के साथ यह समिति पुनर्जीवित हो उठी और पडित नेहरू की अध्यक्षता मे तथा के० टी० शाह के सम्पादकीय नेतृत्व मे इसने कई महत्वपूर्ण रिपोर्ट (reports) प्रकाशित की ।

जुलाई सन् १९४४ मे जनमत के दबाव के कारण उस समय की भारत सरकार ने एक 'नियोजन तथा विकास विभाग' स्थापित किया जिसके कर्त्ता धर्त्ता आरदेशीर दलाल (Ardeshir Dalal) थे। इसके फलस्वरूप सन् १९४६ मे एक सलाहकार नियोजन बोर्ड स्थापित किया गया जिसका काम *'आर्थिक नीति'* का निर्धारण करना था । आर्थिक नीति का निर्धारण मुख्यत निर्माण कार्य करने, जनता के स्तर को ऊँचा उठाने, सबको लाभदायक रोजगार दिलाने, प्राप्त साधनो का अधिकतम उपभोग करने तथा आवश्यक पदार्थों का समान रूप से वितरण करने के लिए था । इसके अलावा सरकार ने विभिन्न उद्योगो के लिए अलग-अलग स्तर पर औद्योगिक उपसमिति (Pannel) की स्थापना की , किन्तु इन सब सघटनो तथा बोर्डो के लिए अन्य कठिनाइयों के अलावा सबसे बडी कठिनाई *वित्त* की थी । अधिकतर अर्थ-शास्त्रियो का विचार था कि वित्त की कठिनाई के कारण आयोजन के उद्देश्यो को कभी प्राप्त नही किया जा सकता और भारतीय वित्त की कठिनाई को सरलता से दूर नही किया जा सकता । इसके विपरीत कुछ आशावादी ऐसे भी थे जो आर्थिक विकास के लिए नियोजन को आवश्यक समझते थे । लार्ड वॉवेल (Lord Wavell) उन सबमे मुख्य थे और उनका उल्लेख कर देना ही यहाँ पर पर्याप्त होगा, जिसने अपनी दृढ विश्वास शक्ति के साथ अनेको बार यह कहा था कि "अगर युद्ध जैसे विनाशकारी कामो के लिए धन प्राप्त किया जा सकता है तो कोई कारण नही कि शान्ति के लिए किए जाने वाले कार्यों के लिए धन प्राप्त नही किया जा सके"[1] अर्थात्

---

1. "If money can be found for war, money can also be found for peace "—Lord Wavell.

अगर युद्ध के लिए धन मिल सकता है तो शान्ति के लिए भी धन मिल सकता है। किन्तु आर्थिक नियोजन के महत्व को इतना भारी सहयोग और स्वीकृति मिलने पर भी व्यवहारिक रूप से तब तक कोई ठोस कार्य न हो सका।

२—जन-नियोजन
(The Peoples' Plan)

यह नियोजन साम्यवादी दल के नेता एम० एन० रॉय तथा उनकी पार्टी द्वारा बनाया गया था। इसमें कम्यूनिस्टों की आदर्शवादिता की समस्त विशेषतायें पाई जाती हैं। उनका कहना था कि देश की समस्त आर्थिक गडबड और बुराइयों का कारण देश की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है।

नियोजन के मूल तत्व (Central Idea of the Plan)[1]—

(१) भारतवर्ष का भावी राज्य प्रजातन्त्रात्मक हो जो सार्वजनिक रूप से गठित हो। भूमि उत्पादन के साधनो पर उसका अधिकार हो और जो सामान्य उद्योग, बडे-बडे उद्योगों तथा बैंको को अपने नियन्त्रण में रखे।

(२) भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय तथा ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता को दूर कर दिया जाय।

(३) मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए।

(४) सहकारी कृषि को प्रोत्साहन दिया जाय।

(५) राज्य द्वारा मनुष्य की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं, जैसे खाना, कपडा, स्वास्थ्य, मकान आदि की प्राप्ति की गारण्टी होनी चाहिए।

(६) उत्पादन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे कि 'मुनाफाखोरी' की प्रवृत्ति दूर हो जाय। अतिरिक्त पूँजी को पुर्ननियोजित किया जाय जिससे कि उत्पादन बढे और लोगो को लाभदायक रोजगार मिले।

(७) ग्रामीण-ऋण-ग्रस्तता के सम्बन्ध मे योजना मे यह सुझाव रखा गया है कि ७५% ऋण को समाप्त कर दिया जाय और बचे हुए २५% का भुगतान राज्य करे।

(८) कृषि योग्य भूमि का क्षेत्र बढाया जाय, जिससे कि अन्न का उत्पादन बढे। खेती करने के वर्तमान वैज्ञानिक तरीको का प्रयोग किया जाय। खेती मशीनो द्वारा की जाय तथा ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जाय।

(९) कुटीर उद्योग-धन्धो को पनपने से रोका जाय तथा बडे पैमाने के उद्योग धन्धो के विकास पर बल दिया जाय, जो कि पूर्णरूप से राज्य द्वारा चलाये जाय।

(१०) व्यापार के सम्बन्ध मे कठोर नीति अपनायी जाय। उत्पादक तथा उपभोक्ता मे सहयोग हो। विदेशी व्यापार मे राज्य एकाधिकार सम्बन्धी नीति अपनाये।

1. *Economic planning in India*—C. B. Memoria, p. 21

व्यय तथा लागत

१० वर्ष की अवधि मे अनुमानो के आधार पर १५००० करोड रुपया व्यय किया जायेगा। जो निम्न प्रकार होगा:—

व्यय के प्रकरण	कुल व्यय (रुपयों मे)
१—कृषि	२,६५० करोड
२—उद्योग	५,६०० ,,
३—सवादवाहन	१,५०० ,,
४—स्वास्थ्य	७६० ,,
५—शिक्षा	१,०४० ,,
६—गृह-निर्माण	३,१५० ,,
कुल	१५,००० ,,

यह धन निम्नलिखित साधनो से प्राप्त किया जायगा :—

आय के साधन	कुल आय (करोड रुपयो मे)
१—पौन्ड पावना निधि से	४५० ,, ,,
२—सार्वजनिक साधन—जायदाद कर, उत्तराधिकार कर, मृत्यु कर आदि	८१० ,, ,,
३—भूमि के राष्ट्रीयकरण से प्राप्त आय	६० ,, ,,
४—कृषि से प्राप्त आय (पुर्नविनिमय के लिए)	१०,८१६ ,, ,,
५—उद्योगो से प्राप्त आय (पुर्नविनिमय के लिए)	२,८३४ ,, ,,
कुल	१५,००० ,, ,,

उपर्युक्त तालिका को देखने मे ज्ञात होता है कि यह एक महत्वाकांक्षी योजना है। यह योजना कृषि उत्पादन पर विशेष जोर देती है और औद्योगिक उत्पादन पर कम और प्राथमिक उद्योगो के उपभोक्ता की वस्तुओं के उत्पादन के बजाय कारखानो को प्राथमिकता देती है।

सम्भावित परिणाम—योजना के पूर्ण हो जाने पर कृषि उत्पादन मे ४०० प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन मे ६०० प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया था और भारतवर्ष का हर व्यक्ति पहले से चौगुनी अच्छी हालत मे रहने लगेगा। यह योजना मनुष्य की वर्तमान आवश्यकताओ को १० साल मे पूरा करने के साधन प्रदान करती है। किन्तु अत्यधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण इस योजना को कार्यान्वित नही किया गया और इसके परिणाम केवल स्वप्न बनकर रह गए।

३—गांधीवादी योजना
(The Gandhian Plan)

विश्व युद्ध के समय भारत की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई थी। लोगों का जीवन स्तर काफी गिर गया था, उपभोग की मात्रा मे काफी कमी हो गई थी जिसके फलस्वरूप साधारण जनता का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। उसी समय गाधीजी जहाँ एक ओर तो भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे; वहाँ दूसरी ओर साधारण जनता की बढती हुई कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील थे, इसलिए साधारण लोगो की भलाई के लिए उन्होने समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने जनता के उपभोग के स्तर को बढाने के लिए १० साल की अवधि निश्चित की। उन्होने कहा था कि साधारण लोगो के जीवन-स्तर को उठाने के लिए समुचित रूप से धन साधनो की उपलब्धि हो जाय तो १० साल के अन्दर भारत का पूर्णरूप से आर्थिक विकास हो जाय। इस सम्बन्ध मे एक ओर जहाँ उन्होने साधनों को जुटाने के लिये आशा व्यक्त की थी वहाँ दूसरी ओर लोगो से आवश्यकताओ को कम करने की भी अपील की। गांधी जी ने स्वय कोई सुगठित आर्थिक योजना नही बनाई थी। वास्तविक रूप से जो गाँधी योजना के नाम से पुकारी जाती है वह एस० एन० अग्रवाल द्वारा सकलित गाँधी जी के आर्थिक विचार हैं। अपने लेखो मे—प्रमुख रूप से 'हरिजन' और 'स्वराज्य' म—गाँधी जी ने कही-कही पर आर्थिक समस्याओ का विवेचन किया तथा आर्थिक कमजोरियों के सुधार के रूप मे कुछ आर्थिक पहलुओं का विवेचन जिनका आगे चलकर एस० एन० अग्रवाल ने अध्ययन किया और उनको क्रमिक रूप मे रखा। इस प्रकार गाँधी योजना की रूपरेखा तैयार हुई। यह एक स्वयसिद्ध बात है कि ऐसे आयोजनो मे मानव जाति से सम्बन्धित समस्त उद्देश्यो और कथनो का समावेश होता है। इस प्रकार गाँधी जी के उन विचारो को जो मनुष्य की भौतिक, नैतिक तथा सास्कृतिक उन्नति से सम्बन्धित हैं, उचित रूप से आँका गया है। इसके अलावा इस योजना मे यह भी सकेत किया गया कि सार्वजनिक कल्याण के सिद्धान्त सादगी, अहिंसा, श्रम की उचित महत्ता तथा मानव-मूल्य पर आधारित हैं। गाँधी जी के यही उपदेश इस योजना के मूल आधार थे।

इस योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थी :

(१) २६०० कलोरी शक्ति की क्षमता वाला सतुलित आहार, प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष २० गज कपडा, प्रति व्यक्ति के निवास के लिए १०० वर्गफुट जगह, मुफ्त बुनियादी शिक्षा, उचित स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ तथा सार्वजनिक उपयोग के लिए मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराना।

(२) प्रति व्यक्ति की सालाना आय मे कम से कम चौगुनी वृद्धि करना तथा अधिक से अधिक रोजगार की सुविधा प्रदान करना।

(३) योजना पूर्ति की १० साल की अवधि के लिए कम से कम ३५०० करोड रुपयो की आवश्यकता होगी। जिनमे से ११७५ करोड रुपये अकेली कृषि पर व्यय किये जायेंगे और १००० करोड रुपये मुख्य तथा बडे बडे उद्योगो पर व्यय किए जायेंगे। ३५० करोड रु० ग्रामीण उद्योग धन्धो पर, २०० करोड रु० यातायात के साधनो के विकास पर, २६० करोड रु० सार्वजनिक स्वास्थ्य पर, २९५ करोड रु० शिक्षा पर तथा २० करोड र० आविष्कार पर और बचे हुए २०० करोड रु० अन्य मदो पर खर्च किए जायेंगे।

(४) ग्रामीण जन-कल्याण पर अधिक जोर दिया जायगा। यह मुख्यत. अविकसित सभ्यता और सस्कृति के पुनरुत्थान के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये।

(५) ऐसा भी सुझाव दिया गया है कि आन्तरिक व्यवस्था और आर्थिक उत्थान के लिए गाँवो मे स्वय सचालित तथा ग्रामीणो द्वारा चुनी गाँव पचायतो की स्थापना होनी चाहिए जिन पर किसी प्रकार का दबाव नही होना चाहिए।

(६) खेती के सम्बन्ध मे कृषि की उत्पादक शक्ति को बढाने के लिए तथा किसानो की आमदनी बढाने के लिए खेती मे क्रान्तिकारी सुधार किये जाय . सामूहिक सहकारी खेती पर विशेष बल दिया जाय।

(७) बडे-बडे महत्त्वपूर्ण कारखाने तथा सार्वजनिक सेवाओ का सचालन राज्य द्वारा किया जाना चाहिए जिससे पूरे राष्ट्र का अधिक से अधिक हित हो।

(८) योजना की पूर्ति के लिए धन के बारे म कहा गया है कि २,००० करोड रुपया आन्तरिक ऋण के द्वारा लिया जाय, १००० करोड रु० मुद्रण से प्राप्त किया जाय तथा ५०० करोड रु० करो द्वारा प्राप्त किया जाय।

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि उपर्युक्त सभी सुझाव योजना के निर्माण काल की समस्याओ को सुलझाने के लिए पूर्ण उपयुक्त थे और उस समय यह योजना पूण सफल हो सकती थी किन्तु फिर भी यह आयोजन कार्य रूप मे परिणत नही किया गया। इसकी सफलता मे असख्य बाधाए थी। सच तो यह है कि यह योजना यथार्थ से काफी परे थी और महत्त्वपूर्ण आदर्शो से भरी हुई थी। और चूकि आदर्श कभी प्राप्त नही किया जा सकता इसलिए इस योजना के सिद्धान्तो को लागू नही किया गया।

४—सर्वोदयी योजना
(The Sarvodaya Plan)

जैसा कि 'सर्वोदय' शब्द से ध्वनित होता है, इस योजना के निर्माताओ ने ३० जनवरी सन् १९५० ई० मे यह प्रकाशित किया था कि सर्वोदयी योजना मनुष्य की सर्वाङ्गीण आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक उन्नति के उद्देश्य से

बनाया गया है। इस योजना की रूपरेखा तैयार करने का मुख्य श्रेय श्री जयप्रकाश नारायण को है। उन्होंने कहा था कि "यह योजना कोरी सिद्धान्तवादी नही है। अपितु रूढ़िवादी सामाजिक सीमाओं से परे, सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत का यह एक सुदृढ़ कदम है। एक नये समाज की तसवीर बनाने का यह पहला कदम है।" आगे चलकर उन्होंने कहा था कि सर्वाङ्गीण सामाजिक-आर्थिक उन्नति के अलावा इस योजना का मुख्य उद्देश्य एक अहिंसात्मक, शोषण-विहीन, स्वयं-सचालित सहकारी समाज की स्थापना करना है।" अर्थात् एक ऐसे समाज की स्थापना हो जिसमे *वर्ग-संघर्ष न हो और जिसमे समाज के प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए* उपयुक्त वातावरण हो।

सक्षेप मे इस सर्वोदयी योजना की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) कृषि भूमि के स्वामित्व का अधिकार उसके जोतने वाले को दिया जाय। जोतो की असमानताओं को दूर करने के लिए भूमि का पुर्नवितरण किया जाय। सभी आर्थिक जोतो को एक सहकारी फार्म मे मिला दिया जाय। भूमि जोतने वालों का शोषण होने मे रोका जाय और शोषण करने वालो को कडे से कडा दण्ड दिया जाय।

(२) राष्ट्रीय आय और सम्पत्ति का समान रूप से न्यायपूर्ण वितरण हो। आय की अधिकतम तथा न्यूनतम सीमा निर्धारित करदी जाय।

(३) विदेशी लाभ कमाने वालो को देश के बाहर खदेड दिया जाय अथवा उनसे उत्पादन *की प्रणाली, प्रबन्ध तथा उद्देश्यो को बदलने के लिए कहा जाय*— अथवा उनको राज्य के नियन्त्रण मे कार्य करने को कहा जाय।

(४) स्थापित उद्योगों का सचालन समाज को दे दिया जाय और वे स्वेच्छाचारी सघो अथवा सहकारी सघो के द्वारा चलाये जाय। विस्थापित उद्योगो मे उत्पादन के समस्त साधन या तो समाज द्वारा व्यक्तिगत रूप से एकत्रित किये जाय *या सामूहिक रूप से अथवा सहकारी सघो द्वारा।*

(५) हमारी वित्तीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य ऐसा हो कि राज्य की आय का ५० प्रतिशत भाग गाँव पचायतो द्वारा खर्च किया जाय और बचे हुए ५० *प्रतिशत से उच्च सत्ता के शासन का खर्च चलाया जाय।*

यह सर्वोदय योजना भारत की आर्थिक पहलुओ की कुछ विशेषताओ से सम्बद्ध है। यद्यपि अनुभव के आधार पर यह योजना परीक्षित नही की गई फिर भी भारत की पहली पचवर्षीय योजना के निर्माण तथा सफल सचालन मे इसने रास्ता प्रशस्त किया। प्रथम पचवर्षीय योजना बहुत कुछ सर्वोदय सिद्धान्त को लेकर बनी।

५—बम्बई योजना (औद्योगिक योजना)
[Bombay Plan[1] (Industrialists' Plan)]

भारत के उद्योग धन्धो के विकास के लिए कुछ विशिष्ट उद्योगपतियो द्वारा बनाये गए १५ वर्षीय कार्यक्रम को Bombay Plan की सज्ञा दी गई।

१—इस "१५ वर्षीय आर्थिक योजना" का सक्षिप्त विवरण :

इस योजना मे निम्न विषयो पर विचार किया गया था—

(अ) उद्देश्यो का मानसिक विश्लेषण किया गया था।

(ब) योजना की सफलता के लिए साधारण रूपरेखा तैयार की गई।

(स) योजना की माँग देश के साधनो पर आधारित।

२—योजना के लिए दिए गए सुझाव निम्नलिखित तथ्यो पर आधारित—

(अ) आर्थिक मामलो मे राष्ट्रीय सरकार की खुल कर रुचि हो।

(ब) आर्थिक रूप से भारत एक इकाई मे गठित हो।

३—योजना के निर्माण और सचालन के लिए एक कार्य-कारिणी का सुझाव दिया गया :

(अ) एक राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना हो जिसमें विभिन्न प्रकार की रुचियो से सम्बन्धित विचारो का प्रतिनिधित्व हो, तथा

(ब) योजना के प्रशासन के लिए एक सर्वोच्च आर्थिक सघ का निर्माण हो। उपर्युक्त दोनो सस्थाएँ केन्द्रीय सरकार की सत्ता के नियन्त्रण म कार्य करें। इन दोनो शाखाओ के कार्यो का मिलान तथा प्रान्तीय सरकारो से उनके अच्छे सम्बन्ध इस योजना की दो बहुत महत्त्वपूर्ण समस्यायें है। दोनो ही एक दूसरे के पूरक के रूप मे कार्य करने की अधिकारी हैं। इस योजना का मुख्य उद्देश्य जैसा कि योजना मे बताया गया, राष्ट्र की प्रति व्यक्ति औसत आय को १५ वर्षो मे दूना करना था और योजना के सफल सचालन के लिए इस १५ वर्ष के समय को ३ से ५ वर्ष की अवधि तक के समय मे बाँट दिया गया था। अनुमान लगाया गया कि देश की कुल मौजूदा राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति की सालाना आमदनी से तीन गुनी हो जाय। योजना निर्माताओ ने जीवन की सूक्ष्म रूप से आवश्यक आवश्यकताओ का सुन्दर सास्यकीय विवेचन किया जो मनुष्य की खाने, पहिनने, रहने तथा स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओ से सम्बन्धित है।

---

1. Brochure on Colombo Plan and India's Progress Towards Planning : Parliament Secretariat, Govt. of India, New Delhi, July 1952, pp. 13-19

योजना का आर्थिक स्वरूप—अधिकारियो द्वारा प्रस्तुत योजना का आर्थिक स्वरूप इस प्रकार है :—

उनके द्वारा निर्धारित उद्देश्य, १५ साल की योजना अवधि मे राष्ट्रीय आय को तीन गुना कर देने के हैं; अर्थात् योजना की शुरुआत से ३ से ५ वर्ष की अवधि से लेकर आखिर के १५ वर्षों तक राष्ट्रीय आय तीन गुनी हो जाय।

राष्ट्रीय आय की १९३१-३२ की दशा तथा योजना द्वारा वृद्धि की दशा का विवेचन नीचे की तालिका मे दिया गया है :—

(करोड रुपयो मे)

१९३१-३२ की आय		योजना की अवधि के पूर्ण होने पर आय			
आय के प्रमुख स्रोत	कुल आय	कुल आय का प्रतिशत	योजना काल की समाप्ति पर कुल आय	योजना के बाद की होने वाली आय का कुल प्रतिशत	योजना से होने वाली आय की प्रतिशत वृद्धि
उद्योग	३७४	१७	२,२४०	३३ ६	५००
कृषि	१,१६६	५३	२,६७०	४०·५	१३०
राजकीय सेवाये	४८४	२२	१,४५०	२२·०	२००
अवर्गीकृत आय	१७६	८	२४०	३ ६	३६
कुल योग	२,२००	१००	६६००	१००·०	२१६ ५ अनुमानित

यह योजना एक सन्तुलित अर्थव्यवस्था स्थापित करके राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के लिए बनाई गई। अर्थव्यवस्था मे सन्तुलन स्थापित करने के लिए योजना मे उद्योगो तथा सेवाओ से प्राप्त आय मे प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। यद्यपि इस प्रतिशत परिवर्तन के गठन के बावजूद भी देश की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही होगा और वह पूर्ववत् बनी रहेगी।

योजना के मार्ग की कठिनाइयाँ—योजना निर्माताओ द्वारा यह स्वीकार किया गया कि योजना की समाप्ति कठिनाइयो से भरी पडी है। उनमे से मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित है :—

१—योजना भारतीय जनता के सुदृढ अन्धविश्वास और नियमो के विरुद्ध कार्य करती।

२—इसमे व्यक्तिगत कठिनाइयो तथा त्याग की आवश्यकता थी।

३—राजनैतिक विशेषताओ के कारण योजना का विकास अवरुद्ध हो सकता।

योजना निर्माता, द्वितीय युद्ध के बाद उत्पन्न भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बहुसख्यक प्रभावो से पहले ही जागरूक थे। उन्होने इस बात की पहले ही घोषणा कर दी कि यह कार्यक्रम, वास्तविक रूप से, एक दम कायापलट कर देने वाला नही है। वित्त के बारे मे उनकी धारणा एकदम दूसरी है। उनका कहना था कि एक सुनियोजित अर्थव्यवस्था मे, वित्तीय-मदो के लिये प्राप्त किया जाने वाला धन देश की अर्थव्यवस्था का स्वामी या सदस्य न होकर उसका सेवक तथा साधन मात्र होता है।

योजना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षत्रो के बारे मे योजना निर्माता निम्न लिखित निष्कर्ष पर पहुँचे—

उद्योग —

१—इस आर्थिक नियोजन के लिये उद्योग धन्धे बहुत आवश्यक हैं। इसलिये योजना मे प्राथमिक उद्योगो का तीव्र गति से विकास किया जाय।

२—बड़े पैमाने के उद्योग धन्धो के साथ साथ छोटे पैमाने के कुटीर उद्योग-धन्धो के विकास के लिए पर्याप्त क्षेत्र दिया जाय—मुख्य रूप से उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन करने वाले उद्योगो पर बल दिया जाय।

३—पूँजी के शुद्ध उत्पादन का अनुपात (ratio) भिन्न-भिन्न उद्योगो मे उस सीमा तक भिन्न होता है जहाँ तक कि उसमे पूँजीवादी उत्पादन के साधनो तथा तकनीकी प्रगतियो का उपभोग होता है। जैसे पूँजी से शुद्ध उत्पादन' के क्रम को २ मान कर २,२४० करोड रुपये के शुद्ध औद्योगिक उत्पादन के लिये योजना मे ४,४८० करोड रुपये की पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी।

कृषि—योजना मे कृषि कार्यक्रमो के लिये १३ प्रतिशत विकास की आशा व्यक्त की गई किन्तु देश की जरूरतो को देखते हुय यह वृद्धि बहुत कम थी। योजना मे यह स्पष्ट किया गया कि योजना के प्रथम वर्षो मे कृषि पदार्थो के निर्यात के बारे मे कोई निश्चय नही किया जाएगा। देश की जनता के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री की पूर्ति के लिये योजना मे कृषि कार्य के अन्तर्गत भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। कृषि सम्बन्धी समस्याओ के बारे मे योजना मे कुछ प्रमुख सुझाव दिये गये थे। योजना निर्माताओ के अनुसार —

१—खेतो के दूर-दूर तथा छिटके होने की समस्या को दूर करने के लिये अनिवार्य रूप से सरकारी खेती अपनाई जाय।

२—'कृषि ऋण ग्रस्तता' को दूर करने के लिये, यह सुझाव दिया गया कि जहाँ तक सम्भव हो सके ऋण मे से ब्याज की रकम को समाप्त कर दिया जाय और बाकी के ऋण को चुकाने के लिये, सहकारी समितियाँ, किसानो को कम ब्याज पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करें।

३—योजना मे भूमि क्षरण को रोकने के लिये, भूमि को समतल करने तथा वन लगाने का सुझाव दिया गया।

कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए यह आशा व्यक्त की गई कि सिंचाई, फसलो के हेर फेर, उत्तम खाद, उन्नत बीज तथा कृषि औजारो के बारे मे कृषि का अभिनवीकरण करके प्रति एकड उपज मे सुधार किया जाय। मॉडल फार्म (Model farm) के सुव्यवस्थित कार्य-क्रम को भी पूर्ण उपयुक्त समझा गया।

योजना में कृषि क्षेत्र के लिये अनुमानित व्यय निम्नलिखित थे :

१,०९५ करोड रुपया अनावर्तक व्यय के रूप मे (Non-recurring)

१५० करोड रुपया आवर्तक व्यय के रूप मे (recurring)

यातायात के साधन और शिक्षा :

इन कार्य क्रमो के बारे मे निम्नलिखित व्यवस्था की गई —

रेलें—सन् १९३८ ई० मे रेलो की कुल लम्बाई ४१,००० मील थी। इस योजना मे ४३४ करोड की लागत की २१,००० मील लम्बी रेलवे लाइनो के विस्तार की और व्यवस्था की गई। इसके अलावा ९ करोड रुपया पुरानी रेलवे लाइनो मे सुधार के लिये रखा गया। इस प्रकार बम्बई प्लान मे कुल मिला कर ६२००० मील लम्बी रेलवे लाइनो के विस्तार की व्यवस्था की गई।

सडकें—ब्रिटिश शासन-काल मे भारत मे ७४,००० मील लम्बी पक्की तथा २,२६,००० मील लम्बी कच्ची सडके थी। ३०० करोड रुपये की लागत की ३,००,००० मील लम्बी सडको के निर्माण का कार्य क्रम रखा गया। २,२६,००० मील लम्बी वर्तमान कच्ची सडको को पक्का करने के लिए ११३ करोड रुपये की व्यवस्था की ईग।

जहाजरानी—बन्दरगाहो के विकास के लिए योजना मे ५० करोड रुपये के व्यय का सुझाव दिया गया है। इसके अतिरिक्त ५ करोड रुपया पुराने बन्दरगाहो के विकास के लिये निर्धारित किया गया।

इस प्रकार योजना मे यातायात के विकास के लिये ९९७ करोड रु० अनावर्तक (Non-recurring) व्यय के रूप मे तथा ४९ करोड रु० आवर्तक (recurring) व्यय के रूप मे व्यय करने की व्यवस्था की गई।

शिक्षा—एक सुव्यवस्थित आर्थिक कार्यक्रम के सफल सचालन के लिये जनता का सहयोग बहुत आवश्यक है। इसके लिये जनता मे साक्षरता एव समझदारी परम आवश्यक है। एक बडे पैमाने पर होने वाले ऐसे महान् और गहन कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिये बडी सख्या मे प्रौद्योगिक कार्यकर्ताओ, मजदूरो एव प्रशासको के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी।

हमारे प्राकृतिक साधनो—जैसे खनिज पदार्थो, विद्युत-शक्ति, एव भूमि आदि की अच्छी जाँच पडताल के लिये भी हमें बडी सख्या में विशेषज्ञो की आवश्यकता पडेगी।

शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न कार्यक्रम सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए– प्रायमरी शिक्षा, प्रौढ शिक्षा, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, विश्व विद्यालय की शिक्षा तथा वैज्ञानिक एव अनुसधान सम्बन्धी शिक्षा आदि। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि योजना काल मे निरक्षरता को दूर करने के साथ साथ सास्कृतिक एव व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाय। योजना में शिक्षा कार्यक्रम पर निम्नलिखित व्यय होगा—

१—२६७ करोड रुपया अनावर्तक (Non-recurring)
२—२३७ करोड रुपया आवर्तक (Recurring)

गृह-निर्माण कार्य

वर्तमान जनसख्या एव भविष्य की वृद्धि को देखते हुए आवास कार्यक्रम बहुत महत्त्वपूर्ण है। योजना मे गृहनिर्माण के लिए निम्नलिखित व्यय की व्यवस्था की गई :—

१—२२०० करोड रुपया अनावर्तक (Non recurring)
२—३१८ करोड रुपया आवर्तक (recurring)
इसके लिए २०० करोड रुपये की पूँजी की राशि आकी गई ।

योजना के विभिन्न कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए कुल मिलाकर निम्नलिखित वित्त की आवश्यकता पड़ती :—

करोड रुपया

कार्यक्रम	अनावर्तक व्यय Non recurring expenditure	आवर्तक व्यय Recurring expenditure	आवश्यक पूँजी (अनुमानित)
उद्योग	४,४८०	..	४ ४८०
कृषि	१,०९५ (८४५)	१५० (४००)	१,२४०
यातायात	८९७	४९	९४०
शिक्षा	२६७	२३७	४९०
स्वास्थ्य	२८१	१८५	४५०
गृह निर्माण	२,२००	३१८	२,२००
अन्य	२००	..	२००
	९,४२० (९,१७०)	९३९ (११८९)	१०,०००

योजना के लागत व्यय की प्राप्ति के लिए योजना निर्माताओ ने आय के निम्नलिखित दो प्रमुख स्रोत बतलाए —

१—बाह्य वित्त-व्यवस्था   २—आतरिक वित्त-व्यवस्था

बाह्य वित्त-व्यवस्था

देश के बाह्य वित्तीय साधनो द्वारा प्राप्त आय को २,६०० करोड रुपया आंका गया जो निम्न प्रकार था—

१—देश का साख सतुलन—पौण्ड पावना के रूप मे	१,००० करोड रुपया
२—स्वर्ण तथा खजाने के रूप में देश का वह सचित धन जो पूँजी के रूप मे विनियोजित होगा	३०० करोड रुपया
३—विदेशी ऋण	७०० करोड रुपया
४—४० करोड रुपये सालाना के आधार पर १५ वर्षो मे अनुकूल सन्तुलन से प्राप्त आय	६०० करोड रुपया
	२,६०० ,, ,,

आन्तरिक वित्तव्यवस्था :

देश के आन्तरिक साधनो से प्राप्त आय की रकम ७,४०० करोड रुपया आँकी गई जो निम्न प्रकार होती :—

बचत से प्राप्त आय	४,००० करोड रुपया
मुद्रा प्रचलन से प्राप्त आय	३,४०० ,, ,,
	७,४०० ,, ,,
	कुल १०,००० ,, ,,

योजना निर्माताओ का विश्वास था कि पूँजी अथवा वित्त व्यवस्था एक सुनियोजित अर्थव्यवस्था मे सहायक के रूप मे गौण कार्य करती है। इस बारे मे उन्होंने निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये थे .—

१—एक सुनियोजित अर्थव्यवस्था मे द्रव्य निर्माण (created money) अशुद्ध या अनुचित कोई चीज नही है। यह स्वचालित विशेषता से परिपूर्ण है।

२—नवीन मुद्रा की निकासी जनता की क्रयशक्ति तथा प्राप्त वस्तुओ के विस्तार मे अन्तर स्थापित करती है। इस अन्तर को छिपाना या पूरा करना बड़ा कठिन है तथा समाज के विभिन्न वर्गों पर इसके उचित बटवारे के लिए सरकार द्वारा कठोर नियन्त्रण करना आवश्यक हो जाता है।

द्रव्य को केवल देश के आतरिक साधनो को मानव-शक्ति एव सामग्री के रूप मे गतिशील बनाने के माध्यम के रूप मे अपनाया जाय।

योजना निर्माताओ ने विकास के स्तरों के सही निरूपण के लिए सुनिश्चित कार्यक्रम अपनाए थे, जिनके बारे मे उनका कहना था कि उनकी बहुत कुछ सफलता प्राकृतिक साधनो, श्रम, पूँजीगत वस्तुओ तथा प्रबन्धकीय क्षमता की उपलब्धि पर निर्भर होती है।

योजना के विभिन्न स्तर .

विकास सम्बन्धी कार्यक्रम के विभिन्न घटनास्थलो के निरूपण करते समय मुख्य रूप से दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिए, जो निम्न प्रकार है :—

(१) अन्य कार्यक्रमो के अलावा विकास के विशिष्ट कार्यक्रमो को प्राथमिकता दी जानी चाहिए; मुख्य रूप से आधारभूत उद्योगो के विकास को अधिक महत्त्व दिया जाय।

(२) "किसी भी प्रकार का नियोजन अश्रुनिपात से रहित नही है।" कुछ भी हो योजना इस तरह की हो कि योजना के कार्यकाल मे देश की अर्थ-व्यवस्था पर अत्यधिक बोझ न पडे। इस बारे में यह कहा गया है कि भारत की पचवर्षीय योजनाओ मे रूसी योजनाओं की तीन कमजोरियो को समाप्त कर दिया जाये और निम्न लिखित बातो का ध्यान रखा जाय —

(१) बृहद् उद्योगो पर अत्यधिक बल न दिया जाय। (२) उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन के बारे मे उदासीनता न बरती जाय। (३) ऐसे उद्योगो की स्थापना को प्रोत्साहन न दिया जाय जिनमे दीर्घकाल मे उत्पादन होने की सम्भावना हो।

इस आर्थिक नियोजन के १५ सालो के विकास कार्यों का विवरण निम्न प्रकार था —

करोड रुपया

मदें	मूल आय १९३१	प्रथम योजना		द्वितीय योजना		तृतीय योजना		१५ सालो का योग	
		पूंजी	आय मे वृद्धि	पूंजी	आय मे वृद्धि	पूंजी	आय मे वृद्धि	पूंजी	आय मे वृद्धि
उद्योग	३७४	७९०	३३०	१५३०	६३६	२१६०	९००	४४८०	१८६६
कृषि	११६६	२०	२४२	४००	४८४	६४०	७७४	१२४०	१५००
सेवायें	४८४	४१०	९३	९७०	२१९	२९००	६५४	४२८०	९६६
अवर्गीकृत	१७६		२१	..	२१	...	२२	....	६४
	२२००	१४००	६८६	२९००	१३६०	५७००	२३५०	१०,०००	४३९६

योजना निर्माताओ ने "राष्ट्रीय आय मे वृद्धि" की गणना नही की।[1] इस त्रुटि के बारे मे उनका यह कहना था कि योजनाकाल की पूरी अवधि मे राष्ट्रीय आय मे जो वृद्धि होगी, वह नवीन पूँजी के रूप मे विनियोजित धनराशि के बराबर

1. The Planners have not calculated "Increase in Income". (Accordii g to B K. Shah.)

होगी। व्यावहारिक रूप से यह सुझाव काफी अच्छा एवं महत्त्वपूर्ण है और योजना के विभिन्न घटनास्थलों पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि के लिए यह सर्वोत्कृष्ट है।

योजना के विभिन्न स्थलों पर राष्ट्रीय आय के विकास कार्यक्रमों का पिछले अनुच्छेदों में जो अनुमान किया गया वह निम्न प्रकार था :—

करोड़ रुपया

अर्थव्यवस्था के विभिन्न कार्यक्षेत्र	१९३१-३२	योजनाओं की समाप्ति तक		
		प्रथम पचवर्ष	द्वितीय पचवर्ष	तृतीय पचवर्ष
उद्योग धन्धे	३७४	७०४	१,३४०	२,२४०
कृषि	१,१६६	१,४०८	१,८९२	२,६६६
सेवायें	१,४८४	५७७	७९६	१,४५०
अवर्गीकृत	१७६	१९७	२१८	२४०
	२,२००	२,८८६	४,२४६	६५९६

६—कोलम्बो योजना

(Colombo Plan)

(अ) *योजना का जन्म*[1]—*कोलम्बो योजना की उत्पत्ति, जनवरी १९५० में राष्ट्रमण्डल की राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिनिधियों द्वारा आयोजित मन्त्रिमण्डलीय* सम्मेलन में हुई। यह सम्मेलन कोलम्बो में हुआ था। इस सम्मेलन ने विभिन्न देशों की तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए एक सलाहकार समिति (Consultative Committee) नियुक्त की जिससे संसार का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो।

इस समिति की बैठक मई, १९५० में आस्ट्रेलिया के सिडनी नगर में हुई; जिसका सभापतित्व, आस्ट्रेलिया के विदेशी मामलों के मन्त्री श्री स्पैंडर (Mr. Spender जो अब Sir Percy हैं), ने किया। इस सभा में सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया गया कि राष्ट्रमण्डल के समस्त राष्ट्र अपने अपने प्रदेशों के विकास

1. Colombo Plan (Reference paper No. 28, Govt. of Australia, Jan. 1957) Courtesy : The Australian High Commission in India, New Delhi.

के लिये जुलाई सन् १६५१ से ६ वर्षीय योजनाए बनावें। राष्ट्रमण्डल के अन्य देशो को भी इस अनुदान मे अपना अपना कार्यक्रम पेश करने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस प्रकार इन सब योजनाओ को मिलाकर आर्थिक विकास का एक विशद कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके साथ ही साथ योजना के कार्यों मे तकनीकी क्षमता के विकास एव उपलब्धि के लिए तकनीकी सहकारी कार्यक्रम को चलाने का निश्चय किया गया।

योजना मे निम्नलिखित देश सम्मिलित हैं—आस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान और इगलैण्ड—मलाया, सिंगापुर, उत्तरी बोर्नियो, ब्रूनई सरावक सघ को मिला कर। ये सब राष्ट्रमण्डल के सदस्य हैं। लेकिन योजना मे इस बात का कतई प्रयास नही किया गया कि उसमे केवल राष्ट्रमडलीय देश सम्मिलित हो"। योजना का दरवाजा अन्य राष्ट्रो के लिए भी समान रूप से खुला रखा गया है। इसी कारण सयुक्त राज्य अमेरिका ने इस योजना मे सन् १६५१ मे प्रवेश किया।

जो देश स्वेच्छापूर्वक योजना मे सम्मिलित हुए वे है—ब्रह्मा, कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, जापान, लाओस, नेपाल, फिलीपाइन, थाईलैन्ड तथा वियतनाम। इस प्रकार यह योजना एशिया के दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व स्थित समस्त देशो मे लागू है।

योजना की प्रवृत्ति[1]—भारत सरकार की ससदीय सचिव की बैठक मे योजना की प्रवृत्ति का जो निरूपण किया गया है वह इस प्रकार है—

कोलम्बो योजना का उद्देश्य—जैसा कि राष्ट्रमडल की सभाओ मे तय किया गया, दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के समस्त देशो के आर्थिक विकास के क्षेत्र एव गति को विकसित करके, उनकी समस्याओ का सामूहिक रूप मे हल करके तथा खाद्यान्नो के उत्पादन पर अधिक बल देकर लोगो के जीवन स्तर मे वृद्धि करना था। तत्कालीन परिस्थितियो को ध्यान मे रख कर तथा उपलब्ध साधनो के अनुमानो के आधार पर, मलाया सघ, भारत, उत्तरी बोर्नियो, पाकिस्तान तथा सरावक एव सिंगापुर की सरकारो ने ६ वर्षीय विकास कार्यक्रम की योजनाएं तैयार की। वर्तमान जीवनस्तर को गिरने से बचाने के लिए तथा आगामी विकास की आधार शिला तैयार करने के लिए इन विकास के कार्यक्रमो को करना नितात आवश्यक है। कुछ मामलो मे तो यह कार्यक्रम पूर्व के विकसित कार्यो की सतत् वृद्धि के रूप मे ही लागू किया गया है।

इस कार्यक्रम की व्यय लागत मुख्य रूप मे सार्वजनिक विनियोग से सम्बन्धित है और इसमे अधिकतर व्यय बडे पैमाने पर आर्थिक विकास के लिए सिचाई, जल-विद्युत, यातायात—रेल सडक, सवाद-वाहन के साधन तथा शिक्षा, स्वास्थ्य

1. Brochure on Colombo Plan and India's, Progress Towards Planning,—Govt of India, Parliament Sercretariate, New Delhi, P.2,

एवं गृह निर्माण जैसे सामाजिक कार्यों पर उन क्षेत्रों में होगा, जो राष्ट्र के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

उपर्युक्त समस्त कार्यक्रमों की ६ वर्षों की अवधि के लिए योजना मे १८६८ मिलियन पौण्ड के लागत व्यय का अनुमान किया गया था। योजना की रूपरेखा में विभिन्न देशों की विकास सम्बन्धी समस्त आवश्यकताओ का विवेचन नही किया गया। अलग-अलग देशो ने इस योजना में अपने उन कार्यक्रमो को सम्मिलित किया है, जिनको ६ वर्षो की अवधि मे आसानी से पूरा कर सकते है।

योजना के अन्तर्गत भारत की प्रगति[1]—भारत की ६ वर्षीय विकास योजना कुछ मूल-भूत आर्थिक मान्यताओं के आधार पर प्रतिपादित की गई, जिनमे से बहुतसी कोरिया में गृह-युद्ध छिड जाने के कारण समाप्त हो गई।

(१) उदाहरण के तौर पर कोलम्बो योजना के निर्माण के समय भारत ने अपने व्यापार सतुलन में सन् १९५०-५१ के आयात-निर्यात के आधार पर १,४०० मिलियन रु० की कमी (Deficit) का अनुमान लगाया था किन्तु वास्तव में उस वर्ष ६०० मिलियन रुपये का आधिक्य था।

(२) योजना के ६ साल की अवधि के आरम्भ मे औद्योगिक कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि हो जाने के कारण सितम्बर सन् १९५० से जुलाई १९५१ के बीच मे विकास कार्यो के घरेलू लागत व्यय मे काफी वृद्धि हुई। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि सब मिला कर कीमतो की वृद्धि, अर्थव्यवस्था मे सामान्य संतुलन लाने मे, काफी सहायक हुई।

(३) योजना मे उन प्राकृतिक प्रकोपो एव दुर्भाग्यपूर्ण अनावृष्टि की स्थिति का विवेचन नही हो सका, जिसके कारण सन् १९५१-५२ मे हमारे देश के अन्न उत्पादन को भारी आघात पहुँचा। सन् १९५१-५२ मे २½ मिलियन टन अन्न के आयात की व्यवस्था की गई, जो आवश्यकता को देखते हुए काफी कम थी। वास्तविक रूप से, एक नियन्त्रित अन्न पूर्ति की व्यवस्था के आधार पर भी, उस वर्ष ५½ मिलियन टन अन्न की आवश्यकता पड़ी; जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९५१-५२ मे भारत का व्यापार संतुलन काफी गिर गया।

संशोधित छः वर्षीय योजना से लागत व्यय

भारत के लिए संशोधित ६ वर्षीय कार्यक्रम के लिए २३,३३७ मिलियन रुपये की व्यवस्था की गई। यह सशोधन मुख्य रूप से उन विविध खोजो के आधार पर किया गया था, जो योजना आयोग द्वारा पंचवर्षीय योजना बनाते समय सभावित व्यय की उपलब्धि के बारे मे किया गया था। जुलाई सन् १९५१ मे प्रथम पचवर्षीय योजना की रूपरेखा प्रकाशित हुई, जिसमे विभिन्न विकास कार्यों पर पाँच वर्षो की

1. 'Brochure on Colombo Plan and India's Progress Towards Planning'. Govt. of India, Parliament Secretariate, New Delhi, pp 7—12.

अवधि के लिए १६,४३० मिलियन रुपये की सार्वजनिक व्यय[1] की व्यवस्था की गई। इसमे से १२,७१० मिलियन रुपये घरेलू साधनो द्वारा प्राप्त करने की आशा व्यक्त की गई। विनियोग की दर साथ ही साथ घरेलू व्यय का औसत इस ६ वर्षीय योजना की तुलना मे, पचवर्षीय योजना मे अधिक रहा, जिसमें पचवर्षीय योजना मे १५,३४० मिलियन तथा ६ वर्षीय योजना मे ८,५६० मिलियन रुपये की व्यवस्था की गई। समस्त योजनाओ की लागत का अनुमान सन् १६५० की कीमतो के आधार पर किया गया जिससे मूल्य परिवर्त्तनो के कारण उनकी लागत मे वृद्धि नही हुई। इस लागत वृद्धि का कुछ भाग नए कार्यक्रमो को सम्मिलित करने तथा कुछ पुराने चालू कार्यक्रमो को पूरा करने के कारण हुआ। किन्तु इस लागत व्यय की वृद्धि का अधिकाश भाग मुख्य रूप से लेखा जोखा रखने की प्रवृत्ति (Nature of Book-keeping) के कारण हुआ। यह उतना यथार्थ नही जितना कि स्पष्ट है। योजना के बनाते समय उन समस्त कार्यक्रमो को जो पहले से चालू थे और जिनको चालू रखना आवश्यक था निकाल दिया गया, किन्तु बाद मे पचवर्षीय योजना मे उन कार्यक्रमो को सम्मिलित कर लिया गया।[1]

नीचे की तालिका मे इस ६ साला योजना के वास्तविक तथा सशोधित व्यय का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। सामान्यत हम कह सकते हैं कि कृषि और सिंचाई, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी कार्यक्रम है, पर पूर्ववत ही ध्यान दिया गया। बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओ की लागत मे सशोधित वर्गीकरण के आधार पर कटौती की गई। इसी प्रकार उद्योग यातायात एव सवाद वाहन के साधनो की लागत मे भी कटौती की गई। इस प्रकार बचाए हुए साधनो की बडी मात्रा का उपयोग ईधन और शक्ति के विकास के लिए किया गया जिसके ऊपर उद्योग, यातायात एव सवाद वाहन के साधनो की उन्नति निर्भर है। सामाजिक निर्माण कार्यो के व्यय मे जो वृद्धि हुई, वह मुख्य रूप से केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के उन कार्यक्रमो को पूरा करने के कारण हुई जिनके बारे मे प्रस्तावित ६ वर्षीय योजना मे पूर्ण विज्ञप्ति नही थी।

छ वर्षीय योजना के प्रस्तावित तथा सशोधित व्यय

मिलियन रुपया

व्यय की मदें	१६५० की विज्ञप्ति के अनुसार अनुमानित लागत व्यय		कुल सशोधित व्यय	
	कुल लागत	कुल का प्रतिशत	कुल लागत	कुल का प्रतिशत
कृषि तथा सिंचाई	३,५७४ १	१६·४	३,६८१ १	१७ १

1 इसमें १५०० मिलियन रुपये की वह धन राशि भी सम्मिलित है। जो ६ साला योजना के अन्तर्गत रेलों के टूट-फूट के कार्यों पर व्यय की गई लेकिन योजना आयोग ने इसको पंचवर्षीय योजना के लागत व्यय में सम्मिलित नही किया।

सिंचाई एव विद्युत आदि सम्बन्धी बहुउद्देश्यी नदी योजनाएँ	२,५०५·५	१३ ६	२,२८४.१	९·८
यातायात व सवाद वाहन	७,०२७·४	३८·२	६,५१५·४	२७·९
ईधन एव शक्ति	५७५·६	३·२	१,४४३·४	६·२
उद्योग एवं खान	१,७९९·८	९·७	१,२३९·९	५·३
सामाजिक निर्माण कार्य तथा अन्य	२,९१२·७	१५·९	४,२६९·८	१८·३
अनिर्धारित[1]	......	......	३,६०० ०	१५·४
	१८,३९५·४	१००·०	२३,३३६·७	१००·०

पंचवर्षीय योजना तथा छ वर्षीय (कोलम्बो) योजना की तुलना

कोलम्बो योजना तथा पचवर्षीय योजना के कुछ कार्यक्रमो मे रद्दोबदल हो जाने के कारण उनकी सही रूप से तुलना करना सम्भव नही है। उदाहरण के तौर पर कोलम्बो योजना मे ६ साल की अवधि मे रैलो के विकास के लिए १५० करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी, किन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना मे इस कार्यक्रम के लिए अलग से व्यवस्था की गई और पाँच वर्षों की अवधि के कुल व्यय मे इसको सम्मिलित नही किया गया। इसी तरह से कृषि, ईधन एव विद्युत-शक्ति के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमो का भी पुर्ननिर्धारण हुआ, इस कारण दोनो योजनाओ के लागत व्यय की तुलना नही की जा सकती।

दोनो योजनाओ के आन्तरिक वित्तीय साधनो की तुलना करना कठिन है, इसमे मुख्य कठिनाई वर्गीकरण के कुछ परिवर्तनो के कारण आई। इस प्रकार जहाँ कोलम्बो योजना मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के चालू खाते के अन्तर्गत ४९० करोड रुपये की धनराशि आँकी गई और ११० करोड रुपया सार्वजनिक व्यय मे बचत करके प्राप्त हुआ; वहाँ प्रथम पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकार की आय लागत मे २४१ करोड रुपये की प्राप्ति हुई। राज्य सरकारो के आय खाते मे, २१३ करोड रुपये की कर द्वारा प्राप्त आय पर, ८१ करोड रुपया बचत के रूप मे प्राप्त हुआ।

आगे की तालिका मे इस 'नवीन' योजना को प्राप्त आन्तरिक आय के स्रोतो का वर्गीकरण किया गया है—

---

1. इस मद की लागत का अधिकाश उपयोग विदेशी विनिमय की उपलब्धि पर निर्भर है। अतः उस कार्यक्रम को योजना द्वारा बाद में प्रकाशित किया जाएगा।

केन्द्र	करोड़ रुपया
१—'लगान खाते' पर अतिरिक्त आय (बचत)	१३०
२—(सिविल एविएशन) प्रसारण, शिक्षा आदि, 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' तथा बेघरबार लोगो को बसाने आदि विकास कार्यों के लिए दी गई राज्य सरकारो को सहायता के लिए Revenue Account मे से निर्धारित किये हुए आय के साधन	११८
३—विकास कार्यो के लिए निश्चित पूँजीगत आय के साधन—	
(अ) सार्वजनिक ऋण	३५
(ब) छोटी २ बचतें व अप्राप्त कर्जे	२५०
(स) विविध	७८
४—रेलो की सामान्य आमद मे से रेलो के विकास के लिए निर्धारित आय के साधन	३०
५—केन्द्रीय सरकार को प्राप्त कुल आय के साधन	६४१
६—राज्य योजनाओ के अन्तर्गत राज्य सरकारो को दी गई केन्द्रीय सहायता	२११
७—केन्द्रीय विकास व्यय के लिए प्राप्त आय व साधन	४३०
राज्य	
८—कुल आमद पर प्राप्त अतिरिक्त (बचत)	८१
९—कृषि, सिचाई, जल-विद्युत, सड़क तथा सामाजिक सेवा आदि कार्यो के लिए कुल आमद मे निर्धारित आय के साधन	२७५
१०—विकास कार्यो के लिए निश्चित पूँजीगत आय के साधन	
(अ) सार्वजनिक ऋण, तथा	७९
(ब) अन्य	४५
११—केन्द्रीय सरकार से प्राप्त सहायता (राज्य योजना के अन्तर्गत)	२११
१२—राजकीय विकास व्यय के लिए प्राप्त आय साधन	६९१

कुल व्यय

जहाँ तक व्यय का सम्बन्ध है कृषि, सिचाई एव जलविद्युत के लिए कोलम्बो योजना मे समान रूप से बल दिया गया है लेकिन उसके कार्यक्रमो मे थोडी सी घटा बढी कर दी गई है। यद्यपि योजना काल मे रेलो के पुनर्निर्माण कार्यो के लिए अलग व्यवस्था की गई, फिर भी अधिकाश मामलो मे व्यय की राशि मे सशोधन कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप जहाँ योजना में ६ वर्षो के कायकाल के लिए १,८४० करोड रुपये की व्यवस्था की गई वहाँ नवीन पचवर्षीय आयोजन मे १,७९३ करोड रु० खर्च हुआ। दूसरे शब्दो मे,

नवीन पचवर्षीय आयोजन मे छ वर्षीय कोलम्बो योजना की अपेक्षा १०० करोड रुपया अधिक खर्च हुआ।

विदेशी सहायता—कोलम्बो योजना की तरह, जिसकी एक तिहाई वित्त की आवश्यकता विदेशी सहायता से पूरी हुई, नवीन पचवर्षीय योजना को दो भागो मे विभक्त किया गया। योजना के प्रथम भाग का कुल व्यय १४६३ करोड रु० था जिसमे वे कार्यक्रम भी सम्मिलित थे जो पहले के शुरू किए हुए थे तथा जिनको बिना विदेशी सहायता मिले भी पूरा करना आवश्यक था। बचे हुए ३०० करोड रु० की धन राशि दूसरे भाग के विकास कार्यों के लिए रखी गई, जो पूर्णरूप से विदेशी सहायता की प्राप्ति पर निर्भर थी। प्रथम भाग की विदेशी सहायता की निर्भरता को कम करने के लिए, कोलम्बो-योजना के कार्यक्रमो को निकाल कर अथवा उनके महत्व को कम करके कुछ नये तथा महत्त्वपूर्ण कार्यो को सम्मिलित कर लिया गया। कोलम्बो योजना के बम्बई स्थित 'कोयानः कार्यक्रम को नवीन योजना से निकाल देना, इसका ज्वलत उदाहरण है और हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

संक्षेप मे हम यह कह सकते है कि कुल मिलाकर यद्यपि प्रथम पचवर्षीय योजना अधिक विस्तृत रही तथा विभिन्न कार्यक्रमों की लागत को देखते हुए इसके परिणाम बहुत सुनिश्चित एव आगामी नियोजन की पृष्ठभूमि के रूप मे हुए, फिर भी दोनो योजनाओ की रूपरेखा समान रही। वास्तविक रूप से, योजना आयोग के शब्दो मे "प्रथम पचवर्षीय योजना पाँच वर्षो की अवधि मे ६ वर्षो के कार्यक्रम को पूरा करने की सूची है।"

अध्याय १७

प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलताएँ तथा असफलताएँ

(Achievements And Pitfalls of the First Five Year Plan)[1]

१—उद्देश्य और पहुँच
(Objectives And Approach)

प्रथम पचवर्षीय योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे—

१. युद्ध तथा देश के बँटवारे से उत्पन्न आर्थिक विषमता को दूर करना ;

२. बहुमुखी उन्नति का सतुलित विवरण तैयार करना—जिससे कि राष्ट्र की आय मे वृद्धि हो तथा एक निश्चित काल मे रहन-सहन का स्तर उच्च हो जाय। योजना मे जहाँ एक ओर इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया था कि पूँजी का विनियोग इस प्रकार का हो, जिससे कि उपलब्ध साधनो द्वारा तत्कालीन उद्देश्यो को पूरा किया जा सके, वहाँ दूसरी ओर इस बात का भी विवेचन किया गया था कि आगे आने वाले समय मे इन साधनो का समुचित विकास हो सके तथा वे अधिक से अधिक गतिशील बनें। यह सब एक लम्बे समय की पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया था। साथ ही इस बात की भी पूर्ण विवेचना कर दी गई थी कि नियोजन की प्रगति के साथ वर्तमान सामाजिक आर्थिक दशाएँ भी प्रगतिशील हो जायें और सविधान की प्रजातन्त्रात्मक नीति निर्धारण के आधार पर नियोजन का कार्यक्रम चलाया जाय। इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना नवीन दिशा के लिए एक ऐसी कार्यवाही थी जिसके अनुसार राज्य विकास की ओर उन्मुख हो तथा आर्थिक क्षेत्र के विकास कार्यो मे बड़े पैमाने पर सामजस्य स्थापित हो जाय।

प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण काल की आर्थिक स्थिति बड़ी विषम थी तथा पूँजी के विनियोग के लिए समुचित साधनो की कमी थी। अन्न का अभाव था। कच्चे माल की भारी कमी थी। कारखानो मे उनकी क्षमता के अनुसार उत्पत्ति नही हो रही थी। यातायात की दशा बडी दयनीय थी। बडी सख्या मे सीमा पार कर आए हुए विस्थापित लोगो ने एक नई उलझन पैदा कर दी थी और उनके पुनर्वास की समस्या ने हमारे देश की सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दशा को और भी अधिक जटिल बना दिया था।

---

1. *Review of the First Five Year Plan*—Govt. of India

जून १९५० मे कोरिया मे युद्ध छिड जाने के कारण तथा पैदावार कम हो जाने के कारण अन्न की महगाई बढ गई थी, जिसके कारण अकाल की स्थिति हो गई थी। १९५१ मे अन्न की कमी को दूर करने के लिए सरकार ने ४७ लाख टन अन्न का आयात किया जिससे विदेशी मुद्रा की कठिनाई उपस्थित हुई और हमारा व्यापार सतुलन बिगड गया, जिसके फलस्वरूप मुद्रा प्रसार करना पडा और कीमतें इतनी बढ गई कि उनको कम करना कठिन हो गया। १९३९ ई० की तुलना मे मार्च १९५१ में कीमतो का स्तर चार गुने से भी अधिक हो गया अर्थात् १९३९ म थोक वस्तुओ का जो निर्देशाङ्क १०० था, वह मार्च १९५१ के अन्त में ४६० हो गया। १९५१-५२ मे व्यापार सतुलन बिगड जाने के कारण देश के व्यापार खाते मे १६३ करोड रु० का घाटा रहा। युद्ध के उपरान्त किए गए विभिन्न विकास कार्यो के लिए वित्त की कमी पडी। राज्य द्वारा किये गए विकास कार्यो तथा केन्द्र द्वारा किय गए विकास कार्यो मे भी सामजस्य न रह सका यहाँ तक कि बहुत से नव निर्मित राज्यो की सरकारें तो जन कल्याण के साधारण कार्य करने मे भी असफल रही। इस प्रकार कहना न होगा कि प्रथम पचवर्षीय योजना द्वारा ही सर्वप्रथम देश का अर्थव्यवस्था की मूलभूत आवश्यकताओ तथा उपलब्ध साधनो मे सामजस्य स्थापित करने की कोशिश की गई।

प्रस्तुत सूची योजना के विभिन्न मुख्य मदो पर पाँच साल मे किये गए तथा निर्धारित खर्च का विवरण प्रस्तुत करती है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे विकास की विभिन्न मदो पर
कुल प्रस्तावित तथा निर्धारित व्यय[1]

व्यय के प्रकरण (मदें)	कुल प्रस्तावित व्यय		कुल निर्धारित व्यय	
	करोड रुपया	प्रतिशत	करोड रुपया	प्रतिशत
१ कृषि तथा समुदाय विकास सम्बन्धी	३५४	१४·९	२९९	१४·८
(अ) कृषि कार्यो पर	२४९	१०·५	२२७	११·३
(ब) सामुदायिक कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवाएँ	९०	३ ८	५७	२·८
(स) स्थानीय विकास कार्य	१५	०·६	१५	० ७

1 Review of the First Five Year Plan—Govt of India, Planning Commission, May 1957, Ch. I, pp. 1-13.

२. सिंचाई तथा शक्ति (बिजली) पर	६४७	२७·२	५८५	२६ १
(अ) बहुउद्देशीय योजनाओ पर	२५६	१०·८	२४१	१२ ०
(ब) सिंचाई योजना	२१३	९ ०	१९१	९·५
(स) बिजली योजनाएँ	१७८	७ ४	१५३	७ ६
३ उद्योग तथा खनिज	१८८	७·९	१००	५·०
(अ) कुटीर तथा लघु उद्योग धन्धे	४९	२ १	४४	२ २
(ब) बड़े पैमाने के उद्योग तथा खोज कार्य	१३९	५·८	५६	२ ८
४. यातायात तथा सवाद वाहन	५७१	२४ ०	५३२	२६ ४
(अ) रेलें	२६७	११·२	·६७	१३ ३
(ब) सडकें व सडक यातायात	१४७	६ २	१४७	७ ३
(स) जहाज, बन्दरगाह व अन्य यातायात पर	९७	४·१	७१	३ ५
(द) डाक तार, सचार तथा सवाद वाहन पर	६०	२ ५	४७	२ ३
५ सामाजिक सेवायें	५३२	२२·४	४२३	२१ ०
(अ) शिक्षा	१७०	७ २	१५३	७·६
(ब) स्वास्थ्य	१३८	५·८	१०१	५ ०
(स) गृह निर्माण	४९	२ १	३५	१ ७
(द) श्रम, श्रमकल्याण तथा पिछड़े वर्ग का कल्याण	३९	१ ६	३७	१·८
(य) पुनर्वास	१३६	५ ७	९७	४ ८
६. अन्य	८६	३ ६	७४	३·७
कुल योग	२,३७८	१००·०	२,०१३	१००·०

उत्पादन तथा अन्य विकास कार्यों का जो लक्ष्य योजना मे निर्धारित किया गया था वह केवल सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय से ही सम्बन्धित नही था अपितु निजी क्षेत्र के कुछ विशिष्ट कार्यक्रमो के सचालन से भी सम्बन्धित था। योजना मे इस क्षेत्र के लिए निर्धारित नियमितताओ का भी उल्लेख किया गया था तथा साथ ही उत्पादन की वृद्धि के लिए विकास नीति का भी उल्लेख किया गया था। निजी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लिए मांगी गई कुल पूँजी विनियोग की राशि २३३ करोड रु० आँकी गई थी। उपलब्ध आँकड़ो से ज्ञात होता है कि निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित विनियोग की प्रगति योजना के प्रारम्भ मे ही प्राप्त हो गई थी। सगठित उद्योगो के लिए निर्धारित विनियोग दर जो प्रथम दो वर्षों मे २६ करोड रु० प्रति वर्ष थी वह तीसरी साल मे ४४ करोड रु० हो गई, और चौथी तथा पांचवी साल मे क्रमश·

५० करोड रु० तथा ८५ करोड रु० तक हो गई। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र के लिए योजना मे निर्धारित परिणाम, अत्यधिक सतोषप्रद रहे।

२—उत्पादन की प्रवृत्ति

(Production Trends)

योजना द्वारा निर्धारित प्राथमिक उद्देश्यो की पूर्ति की दृष्टि से देखें तो योजना की उपलब्धियाँ काफी उत्साहवर्धक रही। निम्न तालिका मे कुछ प्रमुख क्षेत्रो मे हुए योजना के शुरु तथा अन्त के उत्पादन स्तर को दिखाया गया है।

उत्पादन के कुछ प्रमुख क्षेत्रो मे हुई प्रगति की सूची
१९५०-५१ व १९५५-५६

उत्पादन के कार्य	१९५०-५१	१९५५-५६	प्रतिशत वृद्धि १९५१-५६
१—कृषि उत्पादन			
१—खाद्य सामग्री (१० लाख टन)	५०·०	६४·८	२९·६
२—कपास (लाख गांठे)	२९ १	४० ०	३७·५
३—जूट („ „)	३२ ८	४२·०	२८·०
४—गन्ना गुड के रूप मे (लाख टन)	५६·२	५८ ६	४.३
५—तिलहन („ „)	५० ८	५६·६	११·४
६ तम्बाकू („ „)	२·५७	२ ५९	० ८
७—चाय (१० लाख पौण्डो मे)	६०७	६६८	१०·५
८—आलू (हजार टन)	१६३४	१८३९	१२·५
२—औद्योगिक उत्पादन			
१—पक्का लोहा (हजार टन)	९७६	१२७४	३०·५
२—कच्चा लोहा („ „)	१५७२	१७८७	१३·७
३—सीमेंट („ „)	२६८९	४५९२	७०·८
४—उर्वरक (*Fertilisers*)			
(अ) रासायनिक खाद (हजार टन)	४६	३९४	७५६·५
(ब) हड्डी आदि की खाद („ „)	५५	७१	२९·१
५—(Locomotives) लोकोमोटिव (तादाद)	३	१७९	
६—मशीन, यन्त्र (लाख)	३३·६४	७८·५४	१३३·५
७—डीजल इजन (सख्या)	५५३६	१०३६६	८७·३
८—Automobiles (नबर)	१६५१९	२५२७२	५३·०
९—Cables & wires A. C. S. R. Conductors (टन)	१३४९	९७३०	५४७ १

१०—अलमोनियम (टन)	३६७७	७३३३	९९.४
११—सूत उत्पादन			
(अ) Yarn (१० लाख पौण्ड)	११७९	१६३३	३९.०
(ब) मिल का कपड़ा (,, गज)	३७१८	५१०२	३७.२
(स) हाथ करघा वस्त्र (,, ,,)	८१०	१४४९	७९.०
१२—जूट उत्पादन (हजार टन)	८२४	१०५४	२८.०
१३—साईकिलें (हजार मे)	१०१	५१३	४०७.९
१४—सीने की मशीन (,, ,,)	३३	१११	२३६.०
१५—बिजली के लट्टू (,, ,,)	१५०००	२४२२८	६१.०
१६—अल्कोहल (१० लाख गैलन)	५.०	१०.४	१०८.०
१७—चीनी (हजार टन)	१०६४	१७०१	५९.९
१८—वनस्पति (,, ,,)	१५३	२७६	८०.४
१९—कागज तथा दफ्ती (,, ,,)	११४	१८७	६४.०
२०—चमड़े के जूते (हजार जोड़ा) (नए और पुराने ढग के)	५१९५	५६६५	९.०

(१) कृषि-उत्पादन

प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि मे कृषि के उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। योजना के अन्तिम वर्ष मे (सन् १९५५-५६ मे) अन्न का कुल उत्पादन ६४.८ मिलियन टन था जो योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य से ३ मिलियन टन अधिक था। कृषि उत्पादन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन सन् १९५३-५४ मे हुए जबकि अन्न का कुल उत्पादन ६८.८ मिलियन टन था जो पाँच वर्ष के औसत उत्पादन मे सबसे अधिक था। इसके बाद सन् १९५४-५५ मे भी अन्न का उत्पादन ६६.८ मिलियन टन था जो निर्धारित लक्ष्य से अधिकतम ही था। तिलहन, जूट और कपास के उत्पादन मे भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई किन्तु उत्पादन की मात्रा प्रतिवर्ष घटती बढती रही। १९४८-५० के कृषि उत्पादन निर्देशनाङ्क को १०० मान कर अगर तुलना करें तो हम देखते हैं कि जो निर्देशनाङ्क १९५०-५१ मे ९५.६ था वह १९५३ ५४ मे बढ कर ११४.३ तथा १९५४-५५ मे ११६.४ हो गया। यद्यपि योजना के अन्तिम वर्ष मे अन्न का उत्पादन १९५४-५५ की तुलना मे काफी गिर गया था फिर भी प्रथम वर्ष (१९५०-५१) की तुलना मे इसमे १९% की वृद्धि हुई जो आशा से अधिक थी।

(२) औद्योगिक उत्पादन

औद्योगिक उत्पादन मे भी तीव्र गति मे वृद्धि हुई। प्रारम्भिक साल की तुलना मे योजना के अन्तिम वर्ष मे यह वृद्धि ४० प्रतिशत थी। यह वृद्धि केवल एक क्षेत्र तक ही सीमित न थी अपितु सभी प्रकार के कारखानो द्वारा तैयार माल के उत्पादन मे वृद्धि हुई। मिल द्वारा बने हुए कपडे का जो उत्पादन सन् १९५०-५१

मे ३७१८ मिलियन गज था वह १९५५-५६ मे बढकर ५१०२ मिलियन गज हो गया। यह योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य से ४०० मिलियन गज अधिक था। चीनी, कपडे, सिलाई की मशीनो कागज व कागज की दफ्ती (Paper Board) तथा साइकिलो के उत्पादन का निर्धारित लक्ष्य पूरा हो गया था। बल्कि कहना यह चाहिए कि कुछ एक क्षेत्रो मे तो उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। १९५०-५१ मे सीमेन्ट का उत्पादन २ ७ मिलियन टन था जो १९५५-५६ मे ४·६ मिलियन टन हो गया। इसके साथ ही मशीनो के कल पुर्जे बनाने वाले कारखानो तथा बडी-बडी मशीन बनाने वाले कारखानो के उत्पादन मे भी वृद्धि हुई। कुछ नई वस्तुओ का भी उत्पादन शुरू किया गया और उनके उत्पादन मे हमे आशा से अधिक सफलता मिली। इनके लिय कुछ नये कारखाने, जैसे पैट्रोल साफ करने का कारखाना, जहाज बनाने का कारखाना, रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना, पेन्सिलीन बनाने का कारखाना, रासायनिक पदार्थो की उत्पत्ति का कारखाना तथा कीटाणु नाशक दवा (D.D T.) बनान का कारखाना, आदि की स्थापना हुई। सार्वजनिक क्षत्र म सिंदरी का खाद बनान का कारखाना (Sindri Fertilizer Factory), चित्तरजन का रेलव इ जन बनाने का कारखाना (Chittaranjan Locomotive Works), टेलिफोन फैक्टरी तथा 'इन्ट्रीगल कोच फैक्टरी' न भी सन्तोषजनक प्रगति की।

आर्थिक निर्माण कार्य — (Economic overheads)

योजना काल मे १६ ३ मिलियन एकड भूमि को सिंचित करने की व्यवस्था की गई थी, जिसमे से ६·३ मिलियन एकड भूमि सिंचाई के बडे बडे साधनो द्वारा सींची गई तथा करीब १० मिलियन एकड भूमि छोटे छोट साधनो द्वारा सींची गई। बिजली उत्पादन की क्षमता २·३ मिलियन किलोवाट से बढकर ३ ४ मि० किलोवाट होगई। रेलवे यातायात म भी आशातीत वृद्धि हुई। योजना मे १०३८ रेल के इ जन बनाने के, ५६७४ रेल के डिब्बे (coaches) तथा ४६,१४३ माल गाडी के डिब्बे बनाने की व्यवस्था थी किन्तु योजना की समाप्ति पर१५८६ इ जन, ४७५८ डिब्बे तथा ६१,२५७ माल के डिब्बो का निर्माण हुआ। इसके साथ ही साथ योजना के बाहर १९५१–५२ से १९५५–५६ के बीच मे २७ से लेकर १७८ इ जन, ३७०७ से लेकर १४,३१७ माल के डिब्बो तथा ६७३ से लेकर १२-१ सवारी डिब्बो का अतिरिक्त उत्पादन हुआ। ४३० मील लम्बी रेलव लाइनें जो युद्ध के समय मे अस्तव्यस्त होगई थी उनका पुनरुत्थान हुआ, ३८० मील लम्बी नई रेलवे लाइनें बनाई गई। ४६ मील लम्बी छोटी लाइना का विस्तार किया गया।

सडक निर्माण तथा सडक यातायात का कार्यक्रम योजना के साथ साथ पूरा होगया।

आर्थिक निर्माण कार्यों के लिए योजना मे जो रकम निश्चित की गई थी, वह योजना की समाप्ति तक प्राप्त होने वाली अनुमानित आय के अनुसार निश्चित

की गई थी। योजना-काल मे इन मदो पर जो धन व्यय किया गया था वह वास्तविक अनुमानित लागत से कुछ कम ही हुआ और उससे प्राप्त परिणाम भी ८० % से ८५ % तक ही हो सके। इस प्रकार यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि योजना मे जो कुछ लागत निश्चित की गई थी, वह अर्थव्यवस्था की बढती हुई जरूरतो को देखते हुए, बहुत कम थी। रेल मार्गों के पुनर्निर्माण का कार्य भी मुख्य रूप से पुर्नव्यवस्थापन का कार्यक्रम ही था। नई रेल लाइनो के विकास की कोई व्यवस्था नही की गई। शक्ति के साधनो का विकास भी बिजली की बढती हुई माँग को देखते हुए कुछ ही अंशो तक सतोषप्रद था। योजना मे खनिज पदार्थों (mineral resources) के विकास की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। जहाजरानी उद्योग के विकास के बारे मे भी लापरवाही बरती गई तथा योजना मे जहाज निर्माण के लिए जो कुछ थोडी बहुत रकम निश्चित की गई थी उसमे भी कटौती की गई। इस प्रकार इन आर्थिक कार्यों के विकास के सम्बन्ध मे योजना का कार्य सन्तोषजनक नही रहा।

सामाजिक सेवाएँ (Social Services)—

योजना की अवधि मे सामाजिक सेवाओ का विस्तृत रूप से बढाने का कार्यक्रम रखा गया। १९५०–५१ मे स्कूल मे पढने वाले लडको की कुल सख्या १८·७ मिलियन थी, जो १९५५–५६ मे बढ कर २४·८ मिलियन होगई अर्थात् ३२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। ६ वर्ष से ११ वर्ष की बीच के आयु वाले बच्चो की जो सख्या १९५०–५१ मे ४२ प्रतिशत थी वह १९५५–५६ मे ५१ प्रतिशत हो गई। ११ वर्ष से १४ वर्ष की आयु के पढने वाले बच्चो की सख्या १३.९ प्रतिशत (१९५०–५१) से १९५५–५६ मे १९·२ प्रतिशत हो गई। प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता की पूर्ति के लिए योजना काल मे अनेक प्रशिक्षण सस्थायें खोली गई। योजना काल मे स्नातकोत्तर परीक्षा के बाद इजीनियरी और तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की सख्या २२०० से ३७०० हो गई और 'डिप्लोमा' लेने वालो की सख्या २७०० से ४००० हो गई। जहाँ एक ओर सामुदायिक विकास कार्यों तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवाओ को बढ़ाने के लिए १४००० ग्राम सेवक (Village Level Workers) को कृषि, सहकारिता तथा अन्य विकास कार्यो का प्रशीक्षण दिया गया, उसके साथ दूसरी ओर ग्राम लेविल वर्करो (Village Level Workers) के लिए भी प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये, जिनमें से १८५० मनुष्यों को निरीक्षणात्मक प्रशिक्षण दिया गया। लघु तथा कुटीर उद्योग-धन्धो के विकास के लिए भी प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान की गई। जन स्वास्थ्य कार्यक्रम के बारे मे अस्पतालो तथा शफाखानो (Hospital & Dispensary) की सख्या मे विशेष वृद्धि नहीं हुई, फिर भी मलेरिया तथा हैजा आदि बीमारियो की रोकथाम के लिए व्यापक रूप से कार्य किए गए। इस प्रकार सामाजिक कार्यक्रमो के विकास मे कुल मिलाकर, औसत रूप से योजना सफल रही।

राष्ट्रीय आय (National Income)— योजना मे राष्ट्रीय आय के सम्पूर्ण परिणाम निम्न तालिका से प्रदर्शित किये जाते है :—

सन् १९४८–४९ की कीमतो के आधार पर मुख्य मदो से प्राप्त कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय (Rs. Abja)[1]

मदें	१९५०–५१	१९५१–५२	१९५२–५३	१९५३–५४	१९५४–५५	१९५५–५६[2]	७ वें कालम दूसरे कॉलम पर प्रतिशत वृद्धि
१—कृषि, पशु धन तथा अन्य सामान्य कृषि क्रियाएँ	४३·४	४४·४	४६·०	४९·८	५० ३	४९·८	१४ ७
२—खान, शिल्पकारी तथा अन्य छोटे उद्योग	१४·८	१५·२	१५·८	१६·५	१७·०	१७·५	१८ २
३—व्यापार, यातायात तथा सवाद वाहन के साधन	१६·६	१७·३	१७·९	१८·३	१९·१	१९·७	१०·६
४—अन्य सेवा कार्य	१३·९	१४·३	१५·०	१५·७	१६·४	१७·२	२३·७
५—कम लागत पर अन्य घरेलू उत्पादन	८८·७	९१·२	९४·७	१००·३	१०२·८	१०४·२	१७·५
६—प्रतिव्यक्ति औसत आय (रु०)	२४६·३	२५०·१	२५६·६	२६८·७	२७१·९	२७२·१	१०·५
७—जनसख्या करोडो मे	३५·९३२	३६·३३५	३६·८६७	३७·३२८	३७·८०८	३८·३००	६·६

1. Abja=100 crores
2. Preliminary

योजना काल के पाँच वर्षों की अवधि मे राष्ट्रीय आय मे १७.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि तथा सहायक (ancillary activities) उद्योगों के उत्पादन मे १४.७ प्रतिशत की वृद्धि हुई। खान (mining), शिल्पकारी तथा अन्य छोटे-छोटे उद्योगों के उत्पादन म १८.२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। यातायात, व्यापार तथा सवाद वाहनो के उत्पादन मे १८.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९५३–५४ मे कृषि का शुद्ध उत्पादन अधिक रहा। यद्यपि १९५३–५४ की तुलना मे यह वृद्धि नाममात्र की (nominal) ही रही। दूसरी ओर अन्य क्षेत्रों के उत्पादन म भी आशा से अधिक उन्नति हुई। इसम कोई सन्देह नही कि बडी मात्रा के उद्योगो मे, पिछले सालो को देखते हुए, इन पाँच वर्षों मे काफी वृद्धि हुई, फिर भी कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे, इनका उत्पादन कृषि उत्पादन की तुलना मे बहुत कम रहा। यद्यपि कुल राष्ट्रीय आय की मात्रा मे सन्तोषजनक वृद्धि हुई, किन्तु औसतन रूप से यह वृद्धि तीव्रगति से नही हुई। उदाहरण के तौर पर १९५३–५४ और १९५४–५५ मे राष्ट्रीय उत्पादन म जो वृद्धि हुई उसका मुख्य कारण अधिकतम कृषि उत्पादन था। इसी प्रकार कृषि उत्पादन की वृद्धि के फलस्वरूप ही प्रथम योजना के तीसरे वर्ष मे भी राष्ट्रीय आय मे १३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। अन्तिम दो वर्षों मे वृद्धि की दर काफी घट गई और १९५५–५६ मे तो वृद्धि की दर नाममात्र की (nominal) रही। योजना के आङ्कड़ (record) के अनुसार प्रति व्यक्ति औसत आय मे १०.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

यहाँ पर यह कह देना असगत न होगा कि प्रथम पचवर्षीय योजना मे प्रति व्यक्ति आय के औसत उपभोग मे बहुत कम वृद्धि हुई, अर्थात् आय का औसत उपभोग केवल ८ प्रतिशत ही रहा—जो योजना के इतने बडे विकास के लिए निर्धारित व्यय और लागत को देखते हुये बहुत कम था। योजना के अन्तिम दो वर्षों के उपभोग व्यय को देखा जाय तो हम देखते हैं कि सन् १९५३-५४ के उपभोग के स्तर(level of consumption) मे नही के बराबर वृद्धि हुई। खाद्यान्न का जो उपभोग सन् १९५०-५१ मे १२.६ औंस प्रति व्यक्ति प्रति दिन था वह १९५५-५६ मे १४.४ औंस प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हो गया और कपडे का उपभोग, जो १९५०-५१ मे ९.७ गज प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष था (जो बहुत कम था) १९५५-५६ मे १६.४ गज प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गया। चीनी का उपभोग जो १९५०-५१ मे ०.३७ औंस प्रति व्यक्ति था, वह बढ कर सन् १९५५-५६ मे ०.५७ औंस प्रति व्यक्ति हो गया। औद्योगिक वस्तुओं के उपभोग मे आशातीत उन्नति हुई। उदाहरण के तौर पर लालटेनो, साइकिलो, सीने की मशीनो, बिजली के बल्ब, रेडियो, तथा लाउड स्पीकर आदि की उत्पत्ति मे काफी वृद्धि हुई।

३—विनियोग तथा उत्पत्ति

(Investment and Output)

योजना मे विनियोगो की दर ५ प्रतिशत से बढ कर ७ प्रतिशत कर देने का

विचार था, जिससे कि राष्ट्रीय आय और विनियोग में सामजस्य स्थापित हो जाय। पाँच वर्षों मे विनियोग की कुल रकम ३५००-३,६०० करोड रुपये आँकी गई थी। सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) मे विनियोग की रकम १५०० करोड रु० थी जब कि निजी क्षेत्र (Private Sector) में विनियोग की कुल रकम १६०० करोड रु० के लगभग थी। कुल मिला कर ३१०० करोड रुपया के विनियोग की व्यवस्था की गई। योजना के अन्त मे विनियोग का यह स्तर (level of investment) सन् १६५०-५१ की तुलना मे प्राय दुगना हो गया।

सार्वजनिक क्षेत्र मे ५० प्रतिशत से अधिक विनियोग योजना के अन्तिम दो वर्षों मे हुआ। निजी क्षेत्र के विनियोग का स्तर भी इन्हीं वर्षों मे अधिक रहा। इस प्रकार विनियोग के अनुसार योजना के दो मुख्य पहलू (Phases) थे। प्रथम पहलू मे १६५१-५२ के विनियोग को सम्मिलित करते हुए भी सरकारी और निजी दोनो ही क्षेत्रो मे विनियोग बहुत कम रहा जब कि दूसरे पहलू मे विनियोग मे आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई। देखने मे यह आया कि १६५३-५४ मे उत्पादन बहुत अधिक हुआ किन्तु उसके बाद उत्पत्ति की वृद्धि की दर मे काफी कमी हो गई। इसका मुख्य कारण योजना के अन्तिम वर्षों मे हुई मूल्य वृद्धि का होना था।

राष्ट्रीय उत्पादन (National output)—यहाँ पर यह कह देना असगत न होगा कि बहुत कुछ विनियोगो के परिणाम योजना के अन्तिम वर्षो मे ही प्राप्त होते है, क्योकि विनियोग करने और उत्पादन होने मे कुछ समय लगता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि योजना काल मे उत्पादन मे जो वृद्धि हुई वह भाग्यवशात (Fortuitous) थी। योजना की रूपरेखा तैयार करते हुये कही कही तो इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि एक ऐसी सुव्यवस्थित तथा सुस्थिर अर्थव्यवस्था का निर्माण होगा जो आगे आने वाली योजनाओ का आधार (base) बन सके। इन सब बातो से यह प्रकट होता है कि प्रथम योजना काल मे जो वृद्धि हुई वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से काफी महत्त्वपूर्ण थी—वह वास्तव मे आगे आने वाले समूचे आर्थिक विकास के लिये अपने आप मे शुरूआत की आधार शिला के रूप मे थी। अथवा प्रथम पचवर्षीय योजना को भारत के क्रमबद्ध आर्थिक विकास का प्रारम्भिक परीक्षण कहा जाना चाहिये।

१६५३ मे शहरो मे रोजगार की दशा विशेष रूप से शोचनीय हो गई, जिसने कि योजना निर्माताओ को इस बात के लिए विवश कर दिया कि योजना की वास्तविक लागत मे, जो शुरू मे २,०६६ करोड रुपया रखी गई थी, ३०० करोड रुपये की और वृद्धि की जाय। यद्यपि रोजगार की इस कमी को दूर करने के लिये बहुत से सफल प्रयोग नियोजित किए गए; और इन प्रयोगो पर किए गये व्यय का दबाव भी सीमित रहा, सार्वजनिक व्यय भी सीमित रहा, निजी क्षेत्र मे विनियोग दर भी ऊँची रही फिर भी इन प्रयोगो और कार्यों के द्वारा रोजगार की समस्या को

दूर नही किया जा सका वल्कि बेरोजगारी मे उल्टी वृद्धि हुई। योजना की अवधि मे इन रोजगार के दफ्तरो (Employment Exchanges) मे रोजगारो के नाम लिखे जाने वाले रजिस्टरो मे निरन्तर वृद्धि होती रही। मार्च १९५१-५२ मे बेरोजगारो की जो सख्या ३,३७,००० थी वह मार्च १९५५-५६ मे बढ कर ७,०५,००० हो गई। रोजगार के यह आँकडे केवल शहरी बेरोजगारी से सम्बन्धित हैं। ग्रामीण क्षेत्र की बेरोजगारी की इनमें कोई गणना नही है।

योजना आयोग (Planning Commission) द्वारा की गई जाँच पडताल से पता चलता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना-काल मे सब मिला कर रोजगार के काफी अवसर प्रदान किए गये, और योजना के अन्त तक उनमे निरन्तर वृद्धि होती रही। यह एक अलग बात है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था मे बेरोजगार की कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है। फिर भी प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि के अन्तिम वर्षों में इसमे आधा सुधार हुआ और रोजगार की महत्त्वपूर्ण (significant) दशाएँ उत्पन्न की गई। वास्तविकता तो यह है कि उत्पत्ति के कुछ एक क्षेत्रो मे तो इतना अधिक विकास हुआ कि कुशल कारीगरो (skilled labour) और प्रशिक्षित व्यक्तियो (Trained Persons) की भारी कमी रही।

४—वित्तीय प्रकरण और कीमतें

(Monetary Indicators and Prices)

योजना की समाप्ति पर धन पूर्ति मे सब मिला कर १९७९ करोड रु० से लेकर २१८४ करोड रुपये तक की वृद्धि हुई, जो १० प्रतिशत से कुछ अधिक थी। योजना की समाप्ति पर, शुरुआत की तुलना मे, कीमतो मे १३ प्रतिशत की गिरावट हुई। मार्च १९५१ और १९५३ के बीच म पूर्ति मे २१५ करोड रुपये की कमी हुई। अगले १२ महीनो मे (अर्थात् सन् १९५४ मे) ३० करोड रुपये की वृद्धि हुई।

यही कारण था कि इन वर्षों मे हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) का सहारा लेना पडा, जबकि उत्पत्ति की वृद्धि दर काफी गिर गई थी।

कीमतो ने भी विस्तृत रूप से वही रुख (उत्पत्ति ह्रास का) अपनाया किन्तु उनमे कुछ अन्तर था। मार्च १९५१ म थोक वस्तुओं के मूल्य (Wholesale Price) का जो निर्देशनाङ्क (Index) ४५० था मार्च १९५२ मे ३७८ रह गया। यह एक ओर तो भारी सख्या मे किये गये आयात तथा दूसरी ओर मँहगाई को रोकने के लिए सरकार द्वारा किये गये उपायो और वित्तीय उपायो (Fiscal measures) के फलस्वरूप था। यहाँ तक कि मई १९५२ मे तो घट कर यह ३६७ ही रह गया। किन्तु इसके तुरन्त बाद थोडे समय के लिए कीमतो ने बढना शुरू कर दिया और १९५३-५४ मे कीमतें अपने पूर्ववत् स्तर पर पहुँच गई। किन्तु इसी वर्ष कृषि उत्पादन मे वृद्धि के कारण कीमतें पुन. गिरने लगी और मुख्य-रूप से अन्न तथा अन्य कृषि उत्पादन की वस्तुओ मे अधिक गिरावट हुई, जिसके फलस्वरूप सरकार ने उचित कीमतो

को बनाए रखने के लिए मजबूत कदम उठाये । जुलाई सन् १६५५ मे हमारे देश की अर्थव्यवस्था में एक नया परिवर्तन हुआ जिसके फलस्वरूप कीमतो ने बढना शुरू कर दिया और योजना-काल की समाप्ति तक कीमतो मे १४ प्रतिशत की वृद्धि हुई ।

जैसा कि सर्वविदित है उस समय से (जु० १६५५) कीमतो मे निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिसका मुख्य कारण पूर्ति की स्थिर सख्या पर बढती हुई माँग का दबाव है । सब मिला कर, सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि हमारी अर्थव्यवस्था में विकास कार्यक्रमो के कार्यान्वित करने से कोई नया सुधार नही हो सका । इसका सर्वप्रथम कारण तो यह था कि उत्पादन की वृद्धि योजना के मध्य मे हुई, यद्यपि १६५६ के शुरू तक अर्थव्यवस्था मे पूर्ण विकास हो चुका था । ऋण अदायगी की स्थिति योजना के प्रारम्भिक समय की अपेक्षा अन्तिम समय मे काफी अच्छी रही । योजना बनाते समय इस बात का सादा अनुमान किया गया था कि इस योजना मे ऋण अदायगी की राशि मे १८० से २०० करोड रु० तक की कमी रहेगी किन्तु वास्तविकता के आधार पर ऋण स्थिति काफी लाभदायक (favourable) रही । १६५१-५२ मे जो १६३ करोड रु० की कमी (deficit) थी वह आगे के वर्षो मे ही दूर हो गई और ६० करोड रु० तथा ४७ करोड रु० का क्रमश अतिरिक्त लाभ (surplus) हुआ । १६५४-५५ मे भी बाह्य साधनो के द्वारा ६ करोड रु० का लाभ रहा जो योजना के अन्तिम वर्ष (१६५५-५६) मे १५ करोड रु० होगा ।

कुल मिला कर योजना की अवधि मे ३० करोड रु० का घाटा (deficit) रहा जो कर्मचारी अनुदान (Official donations) के ६ करोड रुपये के ऋण को मिला कर था और हम अपने घरेलू उत्पादन की २६० करोड रुपया पौंड पावने की राशि मे तुलना करे, जो भारत-अमरीकी गेहूँ सन्धि (१६५१-५२) के अनुसार प्राप्त हुई, तो हम यह पाते हैं कि घरेलू उत्पादन की वृद्धि के कारण मँहगाई में वृद्धि हुई । मशीनो तथा अन्य पूँजीगत वस्तुओ का आयात कम हुआ जिसके फलस्वरूप ऋण अदायगी की स्थिति योजना की समाप्ति तक अनायास ही स्थिर बनी रही और हमारी अर्थव्यवस्था म अधिक उतार-चढाव नही हुआ ।

५—रचनात्मक तथा नीति सम्बन्धी पहलू
(Structural and Policy Aspects)

प्रथम योजना का प्राथमिक कार्य—जैसा कि योजना निर्माण के समय बताया गया था,—केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा उठाए गए विनियोग के कार्यक्रमो को पूरा करना होने पर भी इसके द्वारा प्राप्त परिणाम (Approach) बहुत ही विशद हुए । ऐसा अनुभव किया गया था कि अगर विकास कार्यक्रमो द्वारा उत्पादन की दर मे वृद्धि करना है तथा समुदाय के अन्तर्गत काम की दशाओ को सतोषप्रद करना है तो व्यापक पैमाने पर रचनात्मक तथा सस्थागत परिवर्तन करना अत्यन्त

आवश्यक है। इस बारे में योजना में बहुत से सुझाव दिए गए थे, जो इस उद्देश्य की प्राप्ति के रूप में सहायक हो सकें। ये सुझाव निम्नलिखित हैं — राष्ट्रव्यापी राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड (National Extension) तथा सामुदायिक विकास खण्डों (Community Development Programmes) की स्थापना, भूमि सुधार (Land Reforms) ऋण, व्यापार, गृह निर्माण तथा उत्पत्ति के अन्य कार्यक्रमों के लिए सहकारी संगठनों (Co operative Organizations) का विकास, साख तथा बैंक व्यवस्था का पुनरुत्थान तथा क्रमिक एवं सुसंगठित विकास के लिये सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में एक नए सामंजस्य की स्थापना आदि हो।

प्रथम योजना के कार्य काल में इन सब बातों का समुचित विकास हुआ और इसकी वृद्धि के और अधिक तथा तीव्रगामी परिवर्तनों को ध्यान में रख इस दिशा में और अधिक प्रयत्न किए गए। दिसम्बर १९५४ में संसद (Parliament) ने एक प्रस्ताव पास किया जिसके अन्तर्गत आर्थिक तथा सामाजिक नीति का मुख्य उद्देश्य 'समाजवादी समाज की स्थापना' (Socialistic Pattern of Society) रखा गया। अप्रैल १९५६ में औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव (Industrial Policy Resolution) पारित किया गया, जिसके अन्तर्गत औद्योगिक विकास का अधिकांश उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर रखा गया।

प्रथम योजना काल की अवधि में राज्यों को आर्थिक क्षेत्र में व्यापक रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया। जबकि औद्योगिक प्रगति की पूर्ण जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को सौंपी गई, फिर भी राज्य द्वारा इसके लिए कारगर कदम उठाए गए और साथ ही राज्य द्वारा उठाए गए इन कदमों की खूब सराहना हुई और सामान्य रूप से सबने यह समझ लिया कि राज्य द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करना, मार्ग प्रदर्शन करना, कहाँ तक उचित और अनुचित है।

यहाँ पर यह कह देना असंगत न होगा कि प्रथम योजना में विनियोग के सामान्य स्तर (Modest scale) और आर्थिक परिस्थितियों के परिवर्तन ने कृषि उत्पादन की वृद्धि तथा राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि पर बहुत कुछ प्रभाव डाला, जिसके कारण राज्य सरकार को उत्पादन को संगठित करने के लिये नियन्त्रण (Control) करना आवश्यक हो गया। १९५३ ५४ के अतिरिक्त अन्न उत्पादन के फलस्वरूप अन्न पर से नियन्त्रण उठा लिया गया। इसी प्रकार योजना काल के दूसरे वर्ष से ही ऋण अदायगी की स्थिति (Balance of Payment Position) में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। इसके फलस्वरूप द्वितीय योजना काल में विनियोग के समस्त कार्यक्रम बिना किसी रुकावट के सफल होते रहे और सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों में खुल कर पूँजी का विनियोग हुआ। योजना की सफलता ने इस बात को अन्तिम रूप में पहले से अधिक स्पष्ट कर दिया कि उपयुक्त नीतियों के निर्धारण के लिए तथा उनको कार्यरूप में परिणत करने के लिये सांख्यिकीय तथा विश्लेषण

(Statistical & Analytical) सम्बन्धी साधनो मे परिवर्तन करना आवश्यक है । इसके सदर्भ मे यह तो सर्वविदित है कि प्रथम योजना काल मे लाभ की दृष्टि मे विनियोग तत्कालीन उपलब्धि से काफी अधिक रहा । रोजगार की दशा के बारे मे प्राप्त आंकडे, विभिन्न क्षेत्रो मे विनियोग का स्तर और विकास सम्बन्धी विभिन्न आँकडे, विभिन्न शक्तियो के कार्य करने तथा उनसे प्राप्त परिणामो को प्रकट करने मे सर्वथा असमर्थ रहे है । विभिन्न लक्ष्यो का तथा क्षेत्र और उपक्षेत्रो का एक दूसरे से सामजस्य प्रकट करने का कार्य भी बडा दुरूह है । किन्तु विचार विमर्श करने के नए नए तरीको का विकास तथा उनका विश्लेषण और योजना बनाने के नये-नये तरीके खोजना तथा विभिन्न परिस्थितियो मे योजना की सफलता के कार्यक्रमो का निरूपण करना आजकल बहुत आसान हो गया है, तथा आगे आने वाली विकास योजनाओ की पूर्ति के लिए यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा । यही नही नई परिस्थितियो के अनुसार नये-नये विचार और योजनाएँ भी बनाई जायेंगी । इस प्रकार भावी योजनाओ की सिद्धि विचारो की समृद्धि पर ही आधारित है ।

६—उपसंहार
(Conclusion)

हम यह कह सकते हैं कि प्रथम पचवर्षीय योजना कृषि एव औद्योगिक दोनो ही प्रकार के उत्पादन के स्तर मे आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने मे काफी सफल रही है । इसके द्वारा बहुत रचनात्मक तथा सस्थागत परिवर्तन भी हुये हैं । योजना के अनुसार जनता की जिज्ञासा मे वृद्धि हुई है तथा उन्हे अधिक काम करने के लिए प्रोत्साहन मिला है और आजकल तीव्र विकास के लिए जनता मे काफी जोश व्याप्त है । प्रथम पचवर्षीय योजना विकास का पूर्व रूप से प्रथम कारगर उपाय था । हमे इस बात का हर्ष है कि साधनो की गतिशीलता तथा विभिन्न स्तरो पर साधनो की कमी होना तथा टूट फूट होना आदि बातें, जो अधिकतर विकास कार्यक्रमो के बारे मे घटित होती हैं, वे प्रथम पचवर्षीय योजना काल मे घटित नहीं हुई और यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि विनियोग की सापेक्षिक पूर्ति तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे सामजस्य होने से दोनो ही दृष्टिकोणो से जो कार्य हुआ वह आशा से बहुत बढ कर हुआ ।

———

अध्याय १८

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मूल्यांकन एवं आशायें[1]

(Appraisals and Prospects of the Second Five Year Plan)

१—कृषि और सामुदायिक विकास

(Agriculture & Community Development)

पहली पचवर्षीय योजना मे कृषि और सामुदायिक विकास (Agriculture and Community Development) के कार्यक्रमों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। दूसरी पचवर्षीय योजना मे कृषि उत्पादन को काफी महत्त्व दिया गया। जो लक्ष्य रखे गये थे वे आवश्यकता को देखते हुये काफी कम थे। दूसरी पचवर्षीय योजना मे कृषि उत्पादन के विकास सम्बन्धी कार्य-क्रमों पर 'स्टैंडिंग कमेटी ऑफ नेशनल डवलपमेंट काउन्सिल, (Standing Committee of National Development Council) द्वारा जनवरी सन् १९५८ मे पुनर्विचार किया गया। कमेटी द्वारा जो कागजात प्रस्तुत किये गये थे उनमे यह स्पष्ट कहा गया था कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे कृषि उत्पादन के जो लक्ष्य निर्धारित किए गये हैं वे आवश्यकता को देखते हुए बहुत ही कम हैं और राष्ट्रीय विकास की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुये यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषि उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रमो को यथेष्ठ महत्व दिया जाय। कमेटी ने १९४९-५० से लेकर १९५६-५७ के बीच के कृषि उत्पादन का सिंहावलोकन किया तो पाया कि कृषि उत्पादन के परिणाम विभिन्न राज्यों मे एक से नही रहे, साथ ही किसी किसी राज्य मे तो कुल लागत के बराबर भी उत्पादन नही हुआ। केवल २ प्रतिशत अथवा २ ५ प्रतिशत उत्पादन मे सालाना

1. Based on
   1. Achievements and Prospects of the Second Five Year Plan. Planning Commission, Govt. of India, 1959
   2. Progress Reports of the Second Five Year Plan (Govt. of India)
   3. Answers to Questions put in the Parliament (and subsequently published in newspapers)
   4. Newspapers and Journals.

वृद्धि हो जाने से किसी भी वस्तु के कार्यक्रम को पूर्ण नही समझा जा सकता। राष्ट्रीय विकास के लिये उत्पादन मे उत्तरोत्तर वृद्धि आवश्यक है। इस बारे मे उपरोक्त कमेटी द्वारा निम्न विचार प्रकट किये गए :

१—सिंचित क्षेत्र तथा वर्षा वाले क्षेत्रों मे प्रति एकड कृषि उत्पादन बढाने के लिए पर्याप्त प्रयत्न नही किया गया।

२—सिचाई की वृहत तथा मध्यम योजनाओ से प्राप्त जलविद्युत शक्ति का सही-सही तथा क्रमबद्ध उपयोग नही किया गया तथा उनका विकास भी सन्तोषप्रद नही रहा।

३—सिचाई की छोटी-छोटी योजनाएँ— जिनके विकास के बारे मे बहुत जोर दिया गया था और जिनके बारे मे कहा गया था कि इनके द्वारा मानव शक्ति का अधिक उपयोग होगा तथा सिंचाई की अधिक सुविधाएँ उपलब्ध होगी—की उन्नति विस्तृत रूप से न हो कर क्षेत्रीय रूप मे हुई और उसके लिये जो जन सहयोग अपेक्षित समझा गया था उसकी कमी रही। राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्डो तथा सामुदायिक विकास क्षेत्रो मे छोटी सिंचाई योजनाओ के लिए निर्धारित राशि का सही उपयोग नही किया गया और इस क्षेत्र मे जो छोटी सिंचाई योजनाओ को 'कृषि क्षेत्र की' लघु सिचाई योजनाओ, से सम्बद्ध करने का विचार था उसकी भी पूर्ण उपेक्षा की गई।

४—छोटी सिंचाई योजनाओ के निर्माण के लिये—मुख्य रूप से तालावो के निर्माण के लिये—योजना मे जो अधिकतम राशि निर्धारित की गई थी; वह भी सन्तोषप्रद नही थी।

५—कृषि बीज उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम की पूर्ण उपेक्षा की गई। इस बारे मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जहाँ तक हो सके कृषि बीज फार्मों (Seed farms) की स्थापना ग्राम्य स्तर पर हो और प्रत्येक ग्राम के लिये इस प्रकार की योजना बनाई जाय जिससे गाँव की समस्त जरूरतो को पूरा किया जा सके।

६—विदेशी विनिमय की कमी के कारण, रासायनिक खाद की पूर्ति उसकी माँग की वृद्धि के साथ मेल न खा सकी, और इस कमी को पूरा करने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि हरी खाद (Green manure), Organic manure तथा खाद बनाने की अन्य स्थानीय सामग्री का पूर्ण विकास किया जाये।

७—प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक कुटुम्ब को सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लाने के लिये ग्राम्य सस्थाओ जैसे पचायत तथा सहकारी समितियो की स्थापना की जाय। ग्राम्य नियोजन (Village Planning) के लिये भी इन संस्थाओ का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

८—कृषि उत्पादन के कार्यक्रमो तथा साख सम्बन्धी कार्यक्रम (Credit) मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। ये काय ग्राम्य स्तर (Village level) पर करना अत्यन्त आवश्यक है।

सिंचाई द्वारा उपलब्ध सुविधाओ का पूर्ण उपयोग उठाने मे कमी के कारणो का विवेचन करते हुए कमेटी ने कहा कि जहाँ पर सिंचाई के साधनो का पूण उपयोग नही उठाया गया है वहाँ पर सबसे प्रमुख बाधा नहरो की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न हुई। ऐसा देखने म आया कि जहाँ पर सिंचाई की बडी बडी योजनाओ को कार्यान्वित किया गया वहाँ पर खेतो तक पानी पहुँचाने के लिये नालियो तथा बम्बे बनाने के काम मे बडी ढील बरती गई और इस काम म सबसे बडी बाधा, किसानो की इन साधनो की उदासीनता और लापरवाही के कारण पैदा हुई। इस बारे मे यह तय किया गया कि जो काम अधूरा रह गया था उसको पूरा करने के लिये शीघ्र कदम उठाए जायँ और राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड तथा सामुदायिक विकास योजना के अन्तगत कृषि उत्पादन तथा छोटी सिंचाई योजनाओ के लिय जो धन राशि निर्धारित की गई थी, उसका उपयोग खेतो तक नाली और बम्बा बनवाने के लिये तथा तत्सम्बंधित कृषि कार्यक्रमो को पूरा करने के लिये किया जाय। गाँव मे नालियाँ बनाने की जिम्मेदारी योजना अधिकारियो (Project authorities) के ऊपर रखी जाय। इसके लिये स्वेच्छाचारी श्रम का सहारा लिया जाय। प्रशासकीय सलाहकार समिति (Administration Advisers' Committee) के कार्य क्रम की जो रिपोर्ट तैयार हुई उसमे विस्तृत रूप से यह सुझाव दिया गया था कि विभिन्न राज्यो मे सिंचाई सुविधाओ का पूण उपयोग उठाने के लिये व्यापक स्तर पर कार्य किया जाय। इसके अन्तर्गत समिति ने निम्नलिखित सुझाव पश किये थे —

(१) खेतो के लिये नालियो का निर्माण किया जाय तथा सिंचाई सम्बन्धी अन्य कामो को पूरा किया जाय।

(२) विभिन्न बांध योजनाओ द्वारा सिंचित क्षेत्रो का तीव्र गति से आर्थिक विकास किया जाय।

(३) आदर्श कृषि फाम (Demonstrative Plots) की स्थापना हो तथा सिंचाई युक्त जुताई के लिए उचित सलाह तथा स्तर निर्धारित किया जाय।

(४) जिन लोगो क खेतो को सिंचाई की पूण सुविधाएँ प्राप्त हो उनसे एक निर्धारित नियम के अनुसार अनिवार्य आबपाशी कर वसूल किया जाय।

(५) ग्राम्य स्तर पर मिली जुली बीज बोने की प्रणाली अपनाई जाय।

(६) हरी खाद के उपयोग के सम्बन्ध म बडे पैमाने पर एक आन्दोलन चलाया जाय।

(७) उन्नत बीज के उत्पादन को बढावा दिया जाय। सरकारी कृषि फार्मो पर इन बीजो का उत्पादन किया जाय और बीज भण्डारो की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाय।

राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) द्वारा दिये गये इन सुझावो और सुधारो को सन् १६५६-६० म वहुत महत्त्व मिला और इनका काफी प्रचार हुग्रा । कृषि उत्पादन और उसकी वृद्धि को घ्यान मे रख इन सिद्धान्तो का योजना निर्माताग्रो द्वारा स्वागत किया गया । ऐसा इसलिए किया गया क्योकि योजना के प्रथम दो वर्षो मे उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से काफी कम रहा, यद्यपि राज्य स्तर पर उत्पादन की वृद्धि के लिए ग्रनेक कार्य किए गये ।

योजना के कुछ वर्ष बीतने के पश्चात् कृषि उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रमो को पूरा करने के सम्बन्ध मे एक और महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया और सालाना स्तर पर उत्पादन बढाने के लिये प्रयत्न किए गये । फिर भी इस कार्यक्रम मे पूर्ण उत्साह से भाग नही लिया गया और इसमे काफी त्रुटियाँ रही । इस योजना के कार्यक्रम के प्रत्येक पहलू का सही विवेचन होना चाहिये था तथा प्रत्यक पहलू के बारे मे विस्तृत जानकारी के लिए समुचित ग्रांकडो (Statistics) की ग्रावश्यकता ग्रपेक्षित थी । प्राय ऐसा देखा जाता है कि उत्पादन की वृद्धि के जो ग्रतिरिक्त लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं वह वतमान उत्पादन की स्थिति को घ्यान म रख कर किये जाते है किन्तु कायक्रम की ग्रवधि के समाप्त होने पर जब बाद म हम इन लक्ष्यो की जाँच करते हैं तो वह विकास सूचना तथा वास्तविक परिस्थितियो के ग्राधार पर करते है । इसका नतीजा यह होता है कि हर कदम पर ग्रपूणता तथा ग्रसफलता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं । इस कमी का वास्तविक रूप हम १६५६-५७ के लक्ष्यो मे पाते हैं, जिसम योजना निर्माताग्रो ने सन् १६५६ ५७ के लिए १ ३ मिलियन टन प्रति वर्ष ग्रतिरिक्त उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया था किन्तु १६५७-५८ तक दो सालो म केवल २·३ मि० टन ग्रनिरिक्त ग्रन्न का ही उत्पादन हुग्रा । इन दो सालो मे हुए कृषि कार्यक्रम की ग्रन्य मदो के बारे मे योजना मे जो लक्ष्य निर्धारित किये गए वे नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं —

लाख टन

विभिन्न काय क्रम	योजनाग्रो द्वारा निर्धारित लक्ष्य	१६५६-५७ की प्राप्ति	१६५७ ५८ की कुल ग्रनुमानित प्राप्ति
१—वृहत् सिचाई योजनाएँ	३० २	१ ७	२ ७
२—लघु सिचाई योजनाएँ	१८ ६	३ ०	४·०
३—उवरक तथा खाद	३७·७	○ ६	७·७
४—उन्नत बीज	३४ ०	१ ७	२·०
५—भूमि विकास	६ ४	० ६	१ ७
६—भूमि सुधार सम्बन्धी काय	२४ ७	२ २	५ ०
कुल	१५४ ६	१३ १	२३ १

सन् १६५८-५६ म कृषि उत्पादन की प्रगति मे एक नया मोड ग्राया । कृषि उत्पादन मे जो वृद्धि हुई उसके निम्नलिखित कारण थे ·— १ मानसून का सहयोगी

रूप तथा रवी आन्दोलन के साथ किए गये अन्य विकास सम्बन्धी कार्यक्रम। केन्द्रीय कृषि एव खाद्य मन्त्रालय ने कहा था कि अन्न उत्पादन के निर्देशनाङ्क जो १९४९-५० मे १०० था, बढ कर १९५९-६० मे १३१·० हो गया अर्थात् १० वर्ष की अवधि मे ३१ प्रतिशत की वृद्धि हुई। सन् १९५७-५८ के उत्पादन की तुलना मे १० प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९५७-५८ की साल का निर्देशनाक १२३·६ था। इस वर्ष अनाज का उत्पादन ७२·५ *लाख टन हुआ, जो पिछले तीन वर्षो की तुलना मे सबसे अधिक था।* अन्य वस्तुओ जैसे जूट, तिलहन, गन्ना (कच्चे गुड के रूप मे) क्रमश. ५ २ मिलियन गाँठे, ६·९ मिलियन टन तथा ७·२ मिलियन टन उत्पादन हुआ, केवल कपास के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई और उसका उत्पादन १९५७-५८ के ही बराबर रहा।

दूसरी पचवर्षीय योजना के कृषि कार्यक्रम सम्बन्धी विकास के प्रभाव की चर्चा करते हुए यह कहा जा सकता है कि इसका सबसे अच्छा प्रभाव सन् १९५८-५९ मे हुआ। रिपोर्ट मे आगे कहा गया है कि केन्द्रीय सरकार को कृषि-विकास के लिये दी जाने वाली राज्य सरकारो की सहायता को बन्द नही करना चाहिये। कमेटी के सुझाव को मान कर केन्द्रीय सरकार ने सन् १९५९-६० के कृषि कार्यक्रमो के लिए ३६ ८७ करोड रुपये की रकम प्रदान की। इस प्रकार १७·४८ करोड रुपया दीर्घकालीन ऋण के रूप मे तथा ४ ३९ करोड रुपया अनुदान के रूप मे दिया गया। केन्द्रीय सरकार की इतनी बडी सहायता के फलस्वरूप दूसरी योजना मे छोटी सिंचाई योजनाओ के अन्तर्गत ९ मिलियन एकड भूमि की सिंचाई का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जो विभिन्न क्षेत्रो मे उपलब्ध मानव शक्ति की तुलना मे बहुत कम था। उसके बारे मे भी यह सन्देह व्यक्त किया जाता है कि योजना अवधि की समाप्ति तक शायद यह लक्ष्य पूरा नही हो सके क्योकि योजना काल के प्रथम दो वर्षो मे केवल ३·५ मिलियन एकड भूमि ही इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सिंचित की जा सकी।

१९५६-५७ म कृषि बीज फार्मो की सख्या केवल ३४३ थी, जब कि योजना का लक्ष्य ४१८५ बीज फार्मो को स्थापित करने का था। योजना काल की दूसरी साल मे (१९५०-५१) १४१६ कृषि फार्म खोलने का अनुमान किया था, जब केवल १०९४ कृषि फार्म ही निर्धारित किये जा सके। १९५९-६० मे बीज फार्मों की स्थापना के लिये सरकार ने ४ ७ करोड रुपये दिए जिनसे ७८८ फार्मो की स्थापना हो गई। इस प्रकार १९५९-६० तक २७०० कृषि फार्मों की स्थापना हुई जिनमे से २४०० पर उन्नत बीजो का उत्पादन आरम्भ हो गया।

कृषि बीज फार्मो की स्थापना के बारे मे आवश्यकता इस बात की है कि इनके लिए जो जमीन प्राप्त की गई है उसके शीघ्र उपयोग के लिए इन कार्यक्रमो को शीघ्र पूरा किया जाय, जिससे कि अल्पकाल म ही उन्नत बीज की बढती हुई माँग को पूरा किया जा सके। राज्यो से भी इस बारे मे आशा की गई कि वे सिंचित तथा वर्षा वाले क्षेत्रो मे शीघ्र से शीघ्र कृषि बीज फार्मो की स्थापना करें, साथ ही जिन क्षेत्रों की मुख्य उपज गेहूँ और चावल है, वहाँ पर उन्नत बीज के फार्म खोले जायँ।

साधारण तौर पर इन दो फसलो के लिए आज व्यापक क्षेत्र मे उन्नत बीज की सुविधाएँ प्राप्त है।

रासायनिक खाद की पूर्ति में विदेशी विनिमय की जो बाधा है वह वास्तव मे दुर्भाग्यपूर्ण है। पिछले ६ वर्षो मे अर्थात् १९५१-५२ से १९५६-५७ के बीच उर्वरक की माँग ३ लाख टन से बढ कर ९ लाख टन हो गई। योजना में अमोनियम सल्फेट के रूप में १८.५ लाख टन खाद्य प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था फिर भी खाद की बढती हुई माँग को देखते हुये यह बहुत कम था। सन् १९५७ के अन्त मे स्थानीय खाद बनाने के सम्बन्ध में दो योजनायें (schemes) बनाई गई। १९५७-५८ म स्थानीय खाद विकास कार्यक्रम ७४८ राष्ट्रीय प्रसार सेवा सामुदायिक खण्डो मे फैल गया तथा २०२३ पचायतो के क्षेत्र मे इस कार्यक्रम को अपनाया गया। इस दिशा म बडे ही ठोस कदम उठाए गए, उडीसा के तटवर्ती क्षेत्र मे मोनजाइट सैन्ड (Monazite Sand) की प्राप्ति हुई है जिसका प्रयोग थोरियम और यूरेनियम को बनाने के लिए किया जायेगा।

१९५६-५७ मे कृषि-उत्पादन के कार्यक्रम पर व्यय होने वाले धन का विवरण

करोड रुपया

खर्च की मदें	१९५६-५७ वास्तविक	१९५७-५८	
		निर्धारित लागत	कुल वास्तविक लागत
कृषि उत्पादन	६ ४	१६.४	१३ ३
लघु सिंचाई योजनाएँ	१३ ६	१६ ०	१५ २
भूमि का विकास	३ २	४.१	३.७
कुल	२३ २	३६ ५	३२.२

१९५६ से १९५९ तक तीन वर्षो म कृषि उत्पादन के लिए करीब ९५ करोड रु० का अनुमानित व्यय हुआ। कृषि उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रमो को और अधिक तीव्र करने के लिए यह सुझाव दिया गया था कि योजना की अवधि तक इनके लिए निर्धारित १७० करोड की रकम को बढा कर २१८ करोड रु० कर दिया जाय। इस वृद्धि की अधिकतम राशि अर्थात् (३० करोड रु०) छोटी सिंचाई योजनाओ

पर व्यय की गई और अन्य कार्यक्रमो पर केवल १२ करोड रु० खर्च किए गए। यह धनराशि, वास्तव में कृषि सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के लिए निर्धारित लक्ष्य मे अतिरिक्त वृद्धि के लिए खर्च की गई।

२—सामुदायिक विकास कार्यक्रम
(Community Development Programmes)

भारत सरकार ने इस बात का निश्चय किया है कि निर्धारित लक्ष्य के अनुसार सन् १९६३ तक समूचे देश को सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया जाय। इस बारे में सयुक्त राष्ट्र सघ के एक मिशन ने जो यह सुझाव दिया था कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सारे देश मे फैला दिया जाय, वह अस्वीकृत कर दिया गया है।

सन् १९५६-५७ मे ४६५ क्षेत्र (Blocks) तथा १९५७-५८ मे ५९७ विकास खण्डो को राष्ट्रीय प्रसारण योजना के अन्तर्गत लाया गया। इन दो वर्षो मे करीब ४४० सामुदायिक विकास खण्डो को राष्ट्रीय प्रसार सेवा मे परिवर्तित किया गया। सब मिलाकर दूसरी योजना के दूसरी साल की समाप्ति तक इन सामुदायिक विकास-खण्डो द्वारा १५० मिलियन जनसख्या वाले २७६००० गाँवो मे सेवा कार्य किया गया। इन दो वर्षों की अवधि मे इस कार्यक्रम पर करीब ५३ करोड रु० खर्च हुआ।

३—कृषि कार्यक्रम सम्बन्धी अन्य उपलब्धियाँ
(Other Achievements allied to Agriculture)

अन्न उत्पादन, सिंचाई योजना तथा सामुदायिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रम के अलावा कृषि उत्पादन के अन्य कार्यों मे भी काफी विकास हुआ। अक्तूबर १९५९ तक ६,६०० एकड भूमि ट्रैक्टरो द्वारा जोती गई। अकेले सन् १९५८-५९ की साल मे ६ ७९ लाख एकड भूमि केन्द्रीय ट्रैक्टर सघ के ट्रैक्टरो द्वारा जोती गई।

पशु पालन, डेरी उत्पादन, मत्स्य पालन तथा वन विकास कार्यक्रमो मे भी आशातीत प्रगति हुई। ग्राम्य विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत दूध का उत्पादन बढाने तथा पशुओ की उत्पादन क्षमता बढाने के लिए १९८ नए कृत्रिम पशु गर्भाधान केन्द्र खोले गए तथा १०७ पुराने गर्भाधान केन्द्रो का पुनुरुत्थान किया गया। ४५ ग्राम्य प्रसार केन्द्र खोले गए; १,७०४७ बछडो के पालन पोषण के लिए सहायता दी गई। पशुओ के चारे की व्यवस्था एव उनकी बिक्री की व्यवस्था के सम्बन्ध मे भी आवश्यक कदम उठाए गए।

कुक्कुट विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत बम्बई, उडीसा तथा मध्यप्रदेश मे ३ क्षेत्रीय कुक्कुट विकास केन्द्र खोले गए, इनके अतिरिक्त एक कुक्कुट केन्द्र दिल्ली प्रदेश मे पहले से ही स्थापित था। मछली उद्योग के विकास के लिए ग्राम्य स्तर पर बडे ही सराहनीय कार्य किए गए। इस सम्बन्ध मे बहुत से मछुओ को प्रशिक्षण दिया

गया तथा सहकारी समितियो के द्वारा भी मछली उद्योग के विकास के लिए भी सहायता दी गई। वन लगाने के सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारो को १६१ लाख रु० कर्ज तथा अनुदान के रूप मे दिया। भूमि क्षरण (Soil erosion) को रोकने के लिए राज्य सरकारो ने १८० स्थानो पर प्रयास किया, जिससे ८·४६ लाख एकड जमीन को फायदा हुआ तथा ३६ करोड रुपया खर्च हुआ। चकबन्दी विकास कार्यक्रम के लिए भी सराहनीय प्रयत्न किए गए। सन् १९५८-५९ के चकबन्दी कार्य के लिए राज्य सरकारो को ७९ २ लाख रुपयो की सहायता प्राप्त हुई।

सन् १९५८-५९ के लिए, योजना मे, ३६ करोड रु० इस कायक्रम के लिए निर्धारित किए गए। इस वर्ष म सामुदायिक विकास के लिए जो कायक्रम निर्धारित किए गए वह बहुत कुछ आयोजन समिति (Committee on Plan Projects) द्वारा सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्डो के लिए नियुक्त *निरीक्षण समिति* (Study Team) का सिफारिशो के आधार पर किए गए। इसी वर्ष इस *कायक्रम के अन्तर्गत सामुदायिक विकास के सम्बन्ध म* पुनर्विचार हुआ और सर्व-सम्मति से यह तय किया गया कि बजाय इसके कि द्वितीय योजना की अवधि की समाप्ति तक सब गाँवो मे सामुदायिक विकास खण्डो की स्थापना की जाय, (जैसा कि योजना के आरम्भ मे कहा गया था) आवश्यकता इस बात की है कि इस कार्य-क्रम को धीरे धीरे तथा सुचारु रूप से चलाया जाय तथा करीब १०७५ विकास खण्डो की स्थापना तीसरी पचवर्षीय योजना मे की जाय और इस कार्य को अक्टूबर १९६३ से पहले समाप्त न किया जाय।

दूसरी पचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिए और मुख्य रूप से कृषि उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सामुदायिक विकास कायक्रम पर अधिक बल दिया जाय, जो निम्नलिखित बातो पर आधारित है। इसके लिए निम्नलिखित बाते अनिवाय हैं —

(१) विभिन्न विकास खण्डो का, जो समान एजेन्सी के तौर पर सम्मिलित रूप मे कार्य करते है, विस्तार किया जाय।

(२) उन सार्वजनिक सस्थाओ का विस्तार किया जाय जो स्थानीय श्रम साधनो द्वारा स्थानीय विकास कायक्रमो को पूरा करन की जिम्मेदारी उठाती है।

(३) सहकारी समितियो के बारे मे यह सुझाव दिया गया है कि सन् १९६० ६१ तक २८००० साधन सहकारी समितियों की स्थापना की जाय। इसमे से १०,००० नई समितियाँ खाली जायें तथा बाकी का सहकारी पुनगठन किया जाय।

इन कार्यक्रमो के विकास कार्य की गति काफी धीमी रही। इसी कारण कृषि उत्पादन तथा छोटी सिचाई योजना सम्बन्धी कार्यक्रमो के बारे म व्यय की राशि पर पुनर्विचार हुआ और यह तय किया गया कि इन कार्यक्रमो के लिए निर्धारित १७१ करोड रु० की कुल लागत मे कटौती की जाय। फलस्वरूप, इनके विकास के

लिए उपयुक्त पैमाना निर्धारित कर विभिन्न मदो के खर्चे मे निम्नलिखित परिवर्तन किए गए :—

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे विकास कार्यक्रमो पर निर्धारित
वास्तविक तथा सशोधित व्यय

(रुपया करोडो मे)

विकास के कार्यक्रम	द्वितीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित वास्तविक रकम			योजना के अन्तर्गत पुनर्निर्धारित रकम		
	कुल	केन्द्र द्वारा	राज्यो द्वारा	कुल	केन्द्र द्वारा	राज्यो द्वारा
१—पशु पालन तथा दूध की पूर्ति	५६	५ ८	५०·७	३६	६	३०
२—जगलात (भूमि क्षरण रोकने के लिए)	४६	६ ०	४० ०	३६	६	३०
३—मत्स्य पालन	१२	३ ८	८ ०	१०	३	७
४—अन्न गोदाम, क्रय विक्रय तथा सहकारिता	४७	४ ०	४३ ०	४०	४	३७
५—विविध	१०	० ६	६ ५	७	१	६

४—सिंचाई एव जल-विद्युत शक्ति
(Irrigation & Power)

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जल तथा विद्युत शक्ति के विकास के लिए कुल लागत का १९ प्रतिशत भाग निर्धारित किया गया और इस लागत मे से ३६ प्रतिशत रकम राज्यो द्वारा व्यय करने का लक्ष्य रखा गया। १९५८ ५९ के अन्त तक इस सम्बन्ध मे कुल मिला कर ४७९ करोड रुपया खर्च हुआ, जिसमे से २५७ करोड रु० बहुउद्देश्यीय (Multi-purpose) सिचाई योजनाओ के लिए रखा गया। १९३ करोड रु० विद्युत शक्ति के विकास के लिए तथा बाकी का २९ करोड रुपया अन्य कार्यक्रमो के लिए निर्धारित किया गया। १९५६-५७ मे कुल व्यय १५० करोड रुपया हुआ। इसी प्रकार १९५७-५८ मे १६९ करोड तथा १९५८-५९ मे अनुमानित व्यय १६० करोड रुपया हुआ।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे छोटी-छोटी सिचाई योजनाओ के विकास को प्राथमिकता दी गई क्योकि एक तो इन पर व्यय कम होता है और दूसरे इनके द्वारा तत्काल ही अच्छे परिणाम प्राप्त हो जाते है।

प्रथम पचवर्षीय योजना म सिंचाई कार्य सम्बन्धी उपयोगिता एव उपलब्धि मे बहुत अन्तर रह गया था। प्रथम पचवर्षीय योजना मे ८५ मिलियन एकड जमीन को सीचन का लक्ष्य निर्धारित किया गया था किन्तु योजना की समाप्ति तक केवल

६ ३ मिलियन एकड भूमि ही सींची जा सकी। वास्तविक रूप से सिंचित क्षेत्र तो केवल ४ मिलियन एकड से कुछ ही ज्यादा था। दूसरी पचवर्षीय योजना मे सिंचाई सम्बन्धी इस कार्यक्रम को पूरा करने म दो समस्याएँ सामने आयी। (१) प्रथम कठिनाई प्रथम योजना द्वारा प्रारम्भ की गई सिंचाई योजनाओ को पूरा करने के सम्बन्ध मे आई। चूँकि पिछले कार्य को पूरा करना जरूरी था अत नए कार्य शुरू करने के सम्बन्ध मे देर हुई। (२) दूसरी मुख्य कठिनाई सिंचाई सुविधा द्वारा उपलब्ध उपयोग उठाने के लिए साधनो की कमी के बारे मे थी क्योकि किसी भी काम के लिए एक साथ साधन जुटाना बडा कठिन होता है।

उन क्षेत्रो मे जहाँ पर कि सिंचाई सुविधाओ के बदले में आबपाशी की व्यवस्था नही की गई थी सिंचाई कार्यक्रमो का पूर्ण लाभ न उठाया जा सका। और इस काम मे काफी ढील बरती गई। सरकारी तौर पर भी इस बात की व्यवस्था नही की गई कि प्रस्तुत क्षेत्र के समस्त खेतो को पानी लेना अनिवार्य है। यह बात मुख्य रूप से ट्यूब बैल (Tube Well) द्वारा सिंचाई के सम्बन्ध मे हुई। इसी प्रकार दक्षिणी पूर्वी क्षेत्रो के कुछ कार्यक्रमो के बारे मे भी यही कठिनाई आयी। जैसा कि रिपोर्ट से विदित होता है, सन् १९५९ तक ३००० 'नलकूपो' का निर्माण हुआ जिनम से २९७८ कुँओ द्वारा सिंचाई का कार्य शुरू हो गया और बाकी के कुँओ द्वारा भी शीघ्र ही सिंचाई कार्य शुरू हो जाने की आशा व्यक्त की गई।

द्वितीय योजना मे १२ मिलियन एकड भूमि की अतिरिक्त सिंचाई का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जिसम से ९ लाख एकड भूमि छोटी सिंचाई योजनाओ द्वारा सिंचित करन का कार्यक्रम था और ३ लाख एकड वृहद् सिंचाई योजनाओ द्वारा। किन्तु सन् १९५९ ६० तक हुई वास्तविक उन्नति को देखने से पता चलता है कि समुचित धन की उपलब्धि होने के बावजूद भी कुल मिलाकर योजना की अवधि समाप्त होने तक १० ४ मिलियन एकड भूमि के लिए ही सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध की जा सकी। सिंचाई सुविधाओ द्वारा वास्तविक तथा अनुमानित रूप मे सिंचित भूमि का विवरण इस प्रकार है

मिलियन एकडो मे

साल	दूसरी योजनाओ मे अतिरिक्त भूमि के लिए सिंचाई सुविधा	अपेक्षित अनुमानित भूमि के लिए सिंचाई सुविधा
१९५६–५७	२ ०	०·६८ वास्तविक
१९५७–५८	२ ०	१·११ (अपेक्षित)
१९५८–५९	२ ०	२ ०२ अनुमानित
१९५९–६१	६ ०	० ५६ लक्ष्य

सन् १९५९ के सिंचाई कार्यक्रमों के लिए योजना मे २० करोड रु० की व्यवस्था की गई, जिसके द्वारा २ लाख एकड भूमि की सिंचाई की गई। बाढ नियन्त्रण सम्बन्धी कायक्रमों के लिए योजना मे ६० करोड रुपये की लागत की व्यवस्था की गई जिसमे से करीब १२ करोड रुपया कोसी बाढ नियन्त्रण के लिए तथा दामोदर घाटी योजना (D V. C Projects) के लिए, तथा करीब ४८ करोड रुपया अन्य बाढ नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यक्रम के लिए निर्धारित किया गया। कोसी बाँध के सम्बन्ध म ऐसी आशा व्यक्त की गई कि यह १९६२ से पहले ही बन कर तैयार हो जायगा। नेपाल, भूटान तथा सिक्किम की सरकार ने मिलकर ८१ विद्युत तथा ऋतु विज्ञान केन्द्रो की स्थापना की जिनमे से ५८ केन्द्र नेपाल मे तथा २३ भूटान म है।

विद्युत शक्ति सम्बन्धी कार्यक्रम

जब द्वितीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार की गई तो उस समय बिजली की क्षमता के दीर्घकालीन उद्देश्य की प्राप्ति के लिए १९५० की ७ मिलियन किलोवाट की उत्पादन शक्ति को बढा कर १९६५ मे १५ मिलियन किलोवाट कर देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके साथ ही दूसरी योजना म अतिरिक्त विद्युत शक्ति का लक्ष्य ३ ५ मिलियन किलोवाट रखा गया, जिसमे से २ ९ मिलियन किलोवाट का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा हुआ, ३००,००० किलोवाट बिजली का उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा तथा औद्योगिक सस्थाओ के लिए आवश्यक ३००,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन स्वय औद्योगिक केन्द्रो द्वारा किया गया। दामोदर घाटी क्षत्र की २२५,००० किलोवाट बिजली की आवश्यकता की पूर्ति के साथ ही साथ १२५,००० किलोवाट अतिरिक्त उत्पादन बढाने का निश्चय किया गया। यह निश्चय इसलिए किया गया, ताकि रेलो तथा अन्य उद्योगो की बिजली सम्बन्धी जरूरतो को आसानी से पूरा किया जा सके।

योजना मे विद्युत शक्ति के विकास के लिए ४२७ करोड रुपये के विनियोग की व्यवस्था की गई, जिसमे से १९५६-५७ तथा १९५७-५८ मे क्रमश ७५ करोड तथा ८५ करोड रुपया व्यय हुआ तथा १९५८-५९ मे ८३ करोड रुपया व्यय हुआ। इस प्रकार १९५६ से १९५९ तक के तीन वर्षों मे करीब २४० करोड रुपया बिजली उत्पादन पर व्यय हुआ जिससे ७७०,००० किलोवाट बिजली का कुल उत्पादन हुआ। जिसमे से १७८,००० किलोवाट अकेले १९५६-५७ मे पैदा की गई तथा ३१०,००० किलोवाट १९५७ ५८ मे पैदा की गई, बाकी का उत्पादन १९५८-५९ मे हुआ।

निजी क्षेत्र मे, योजना के प्रथम तीन वर्षों का बिजली का उत्पादन १५७,००० किलोवाट आंका गया, जिसमे से १५०,००० किलोवाट का उत्पादन टाटा विद्युत शक्ति कम्पनी (Tata Power Company) के ट्रॉम्बे स्कीम (Trombay

Installation) द्वारा किया गया। इस सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विद्युत शक्ति कार्यक्रम मे सबसे बडी बाधा विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) की है; जिसके द्वारा बडी विद्युत मशीनो का आयात होता है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि पिछले कुछ वर्षों मे मोटर तथा अन्य मशीनरी सम्बन्धी कलपुर्जो के उत्पादन करने वाले कारखानो मे जो वृद्धि हुई वह भी विदेशी विनिमय द्वारा आयात की गई विद्युत मशीनो द्वारा ही हुई। नवीन अनुमानो के अनुसार "Core Project" की सूची मे सम्मिलित विद्युत योजनाओ के लिए ३६ करोड रुपये की विदेशी विनिमय राशि रखी गयी तथा अन्य योजना के लिए केवल ३४ करोड रुपया की विदेशी विनिमय की राशि निर्धारित की गई। इस लागत के अलावा ३ करोड रुपया के विदेशी विनिमय की प्रतिवर्ष अतिरिक्त आवश्यकता समझी गई, जिसके द्वारा पूर्व स्थापित बिजली घरो की मरम्मत का कार्य किया गया।

यद्यपि इन समस्त कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए व्यापक पैमाने पर हर सम्भव कदम उठाए गए किन्तु फिर भी इस कार्य मे बहुत कुछ विलम्ब हुआ और नए बनाए गए बिजली घरो द्वारा १९५९-६० तक कोई लाभ नही उठाया जा सका। अनुमान यह है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई नवीन योजनाओ का पूर्ण लाभ, योजना अवधि के समाप्त होने से पूर्व, नही उठाया जा सकता। वर्तमान उपलब्धियो के आधार पर, सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा स्थापित बिजली घरो मे, योजना की समाप्ति तक केवल २५ मिलियन किलोवाट बिजली प्रतिवर्ष प्राप्त हो जायगी और निजी क्षेत्र द्वारा १७५,००० किलोवाट बिजली की क्षमता का ही उपभोग हो सकेगा। इसमे औद्योगिक सस्थाओ द्वारा उत्पादित ३००,००० किलोवाट बिजली की मात्रा भी शामिल होगी, जो उद्योगो के निजी उपभोग के लिए होगी। इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कुल मिला कर करीब ३ मिलियन किलोवाट बिजली का उत्पादन हो सकेगा, जबकि योजना का लक्ष्य ३ ५ मिलियन किलोवाट बिजली पैदा करने का था अर्थात् करीब ५००,००० मिलियन की कमी रहेगी।

योजना मे सम्मिलित बिजली के तारो को लगाने तथा बनाने का जो लक्ष्य रखा गया था उसमे सतोषजनक सफलता मिली। योजना का लक्ष्य ३०,००० मील लम्बी तार की लाइन बनाने का था जिसमे से १० ००० मील लम्बी तार की लाइन का निर्माण तो अकेले १९५६-५७ तथा १९५७-५८ की साल मे ही हो गया। इस प्रकार दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १०,००० गाँवो को बिजली प्रदान करने के लिए ७५ करोड रुपये की घनराशि रखी गयी, जिसमे से प्रथम दो वर्षो मे करीब ४५०० गाँवो को बिजली प्रदान की गई। सन् १९६० मे भारत-कनाडा अणु सस्थान द्वारा एक जाँच आयुक्त की नियुक्ति की गई जिसका मुख्य उद्देश्य भू-भौतिक इजीनियरी तथा Isotope के उत्पादन के सम्बन्ध मे खोज करना था जो कृषि उद्योग एवं दवाइयो के विकास के लिए आवश्यक रूप से सहायक सिद्ध हुई। इस समय केन्द्रीय

सरकार कोयला की खानो से दूर बिजली घर बनाने के सम्बन्ध में विचार कर रही है और ऐसा बिजली घर सर्वप्रथम राजस्थान में स्थापित होगी जहाँ पर कि पानी और कोयले की बहुत कमी है।

५—गाँव और कुटीर उद्योग धन्धे
(Village & Cottage Industries)

कुटीर उद्योग और छोटे उद्योग हमारे देश के आर्थिक ढाँचे और राष्ट्रीय योजना के ऐसे महत्त्वपूर्ण अंग है जिनकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहली पंचवर्षीय योजना में इन उद्योगो के विकास के लिए केवल ५० करोड़ रुपया की राशि रखी गई जो इनकी उपयोगिता को देखते हुए बहुत कम थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इन उद्योगो के विकास के लिए २०० करोड़ रुपया की राशि रखी गई। विभिन्न उद्योगो के लिए मोटे तौर पर इस रकम का विभाजन इस प्रकार से किया गया है।

उद्योग	करोड़ रुपया
हाथ करघा	३६·०५
छोटे पैमाने के उद्योग	४६·००
औद्योगिक संस्थान	१५·००
दस्तकारी	९·००
खादी तथा ग्रामोद्योग	६५·००

अम्बर चर्खे के कार्यक्रम का खर्च इसमे शामिल नही है। इस कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य एक सुव्यवस्थित, सुसचालित, विकेन्द्रित औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण करना है; जिसके द्वारा रोजगार की अधिक से अधिक दशाएँ उपलब्ध हों, तथा जनता की उपभोग सम्बन्धी समस्त जरूरतें पूरी हो सकें। जून १९५६ मे निर्धारित सूती वस्त्र उत्पादन का लक्ष्य ६७०० मिलियन गज से बढा कर १९५६ मे ८४०० मिलियन गज कर दिया गया। अम्बर चर्खा के कार्यक्रम के अन्तर्गत हाथ करघा के द्वारा कपड़े के उद्योग को बढाने के बारे मे विचार विमर्श किया गया और इसके लिए १५० मिलियन गज कपडे का प्रतिवर्ष उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

१९५६-५७ मे हाथ करघे द्वारा १६०० मिलियन गज कपडे का उत्पादन हुआ; जो १९५५-५६ की तुलना मे १३० मिलियन गज अधिक था। १९५७-५८ मे करीब १,६५० मिलियन गज कपडे का उत्पादन हुआ। इन दो वर्षों के उत्पादन को देखने से यह अनुमान लगाया गया कि पाँच वर्षों की अवधि में हाथ करघे के कपडे का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है वह शायद पूरा न हो सके; क्योंकि प्रथम दो वर्षों मे अम्बर चर्खा द्वारा ७·० मिलियन गज कपड़े का उत्पादन हुआ, जबकि पाँच सालो के उत्पादन का लक्ष्य १५० मिलियन गज रखा गया था। इसी प्रकार बिजली यन्त्रभट्टियों द्वारा सचालित छोटे उद्योग धन्धो के उत्पादन का लक्ष्य भी

अपूर्ण ही रहेगा। द्वितीय योजना मे ६२ औद्योगिक सस्थान स्थापित करने की व्यवस्था की गई जिसमे से ११ औद्योगिक सस्थान पहले दो वर्षो मे ही कायम कर दिये गये तथा १९ सस्थान तीसरी वर्ष मे खोलने की व्यवस्था की गई। छोटे उद्योगों को 'मार्केटिंग' तथा प्रशिक्षण की सुविधाएँ देने के सम्बन्ध मे क्षेत्रीय ४ लघु उद्योग सस्थाएँ, १२ बडी सस्थाएँ, २ शाखा सस्थाएँ तथा २७ प्रसारण केन्द्रो की स्थापना १९५७-५८ की समाप्ति तक हो गई। १९५८-५९ मे एक और क्षेत्रीय सस्था, २ बडी सस्थाएँ, ३३ अन्य प्रसारण केन्द्रो की स्थापना की गई।

योजना के प्रथम दो वर्षो मे लघु उद्योग तथा ग्राम उद्योगों पर कुल ५९ करोड के करीब रुपया खर्च हुआ। तीसरी साल मे यह खर्च बढकर ६१ करोड रुपया हो गया। सन् १९५--५९ मे इस बारे मे एक नई समस्या आयी,—वह इन कार्यक्रमो को चलाने के लिए केन्द्रीय राज्य सरकारो के पास धन की कमी के सम्बन्ध मे थी। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि राज्यों मे लघु उद्योगो को चलाने के सम्बन्ध मे जो कार्यक्रम बनाए गए, उनके लिए निर्धारित रकम के अलावा और अधिक धन की आवश्यकता पडी, जिसका वास्तविक आमदनी पर गहरा प्रभाव पडा। वर्तमान प्रगति की दर के दृष्टिकोण के आधार पर, योजना के अन्तिम दो वर्षो मे, इन कार्यक्रमो को चलाने के लिए काफी धन की आवश्यकता अपेक्षित समझी गई है।

इसी प्रकार हथ करघा उद्योग के उत्पादन के सम्बन्ध मे यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अगर, इस उद्योग के लिए निर्धारित ७०० मिलियन गज कपडे के लक्ष्य को पूरा करना है तो इसके लिए अन्तिम दो वर्षो मे काफी धन जुटाना पडेगा अथवा मिल के कपडे का उत्पादन बढाना होगा। इस हथ करघा उद्योग मे प्रयुक्त बिजली सस्थानो के कारण भी काफी असुविधा आयी जिसको देखते हुए यह आशा व्यक्त की गई कि हथ करघा उद्योग के उत्पादन म तीव्रता लाना असम्भव ही रहेगा। लघु उद्योगो के लिए निर्धारित राशि का पूर्णरूप से उपभोग किया गया। औद्योगिक सस्थानो की स्थापना के बारे म भी जो लक्ष्य निर्धारित किए गए उनको पूरा करने के पूर्ण प्रयास किए गए, फिर भी पाँच वर्ष की अवधि तक लक्ष्य को पूरा करन के लिए राज्यो को अतिरिक्त धन की आवश्यकता महसूस हुई और अब तो यह कहा जाता है कि धन की कमी के कारण समस्त औद्योगिक सस्थानो की स्थापना नही हो सकेगी तथा कुछ सस्थानो की स्थापना का कार्यक्रम तीसरी योजना के लिए छोड दिया जायेगा।

६—विशाल तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग

(Large and Medium Industries)

पहली पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास का जो कार्यक्रम रखा गया था वह विकास की दृष्टि से सतोषजनक नही था। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे

औद्योगिक विकास के लिए—सार्वजनिक तथा निजी दोनो ही क्षेत्रों के लिए—१०९४ करोड रुपये की राशि की व्यवस्था की गई। यह प्रथम योजना मे निर्धारित २९३ करोड रुपये की रकम से ३½ गुनी अधिक थी। औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि के सम्बन्ध मे करीब ४९ प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि प्रथम पचवर्षीय योजना मे उत्पादन का केवल ३८% ही था।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे प्राथमिक उद्योगो, जैसे लोहा तथा इस्पात उद्योग, भारी रासायनिक उत्पादन के उद्योग, भारी इजीनियरी का सामान तथा मशीने बनाने वाले उद्योग को काफी महत्व दिया गया। इस प्रकार, दूसरी योजना का कुल लागत का ८० प्रतिशत भाग भारी उत्पादक वस्तुओ के उद्योगो के ऊपर खर्च किया गया। दूसरा महत्वपूर्ण स्थान राष्ट्र के वर्तमान महत्वपूर्ण उद्योग जैसे, पटसन, सूती कपडा और चीनी के उद्योगो को आधुनिक रूप देने तथा अभिनवीकरण करने को दिया गया। इस कार्यक्रम के लिए योजना मे १५० करोड रुपये की व्यवस्था की गई। साधारण उत्पादन के कार्यक्रमो तथा उपभोग्य पदार्थो के उत्पादन-ध्येयो को सम्मुख रख बहुत कुछ उद्योगो का विकेन्द्रीकरण किया गया।

७—सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रम

(Industrial Projects in the Public sector)

सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रम के प्रत्यक्ष विनियोग के लिए योजना मे ५२४ करोड रुपये की राशि निर्धारित की गई। इसमे से ६०-६५ करोड रुपये राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) की स्थापना के लिए दिए गए। लोहा तथा इस्पात के उद्योग के लिए २२९ करोड रुपये के विदेशी विनिमय की व्यवस्था की गई थी, वह बढाकर ३०२ करोड रु० करदी गई।

१९५६-५७ तक, प्रथम योजना द्वारा परिचालित, बहुत से औद्योगिक कार्यक्रम पूरे हो गए, जो इस प्रकार थे अलवाई का डी० डी० टी० बनाने का कारखाना, दिल्ली के डी० डी० टी० कारखाने का विस्तार, हिन्दुस्तान यान्त्रिक कारखाने का विस्तार, Expansion of Hindustan Antibiotics तथा सरकार द्वारा सचालित मैसूर की पोर्सलेन फैक्टरी (The Porcelain Insulators schemes at the Government Porcelain Factory at Mysore) का विस्तार करना, बगलोर स्थित सरकारी साबुन बनाने की फैक्टरी; मैसूर स्थित नल पाइप बनाने का लोहे तथा इस्पात का कारखाना नेपा (NEPA) औद्योगिक सस्थान के अन्तर्गत विहार सुपर फास्फेट फैक्टरी का निर्माण आदि। इन कार्यक्रमो के पूरा होने के परिणाम स्वरूप डी० डी० टी० उत्पादन की क्षमता २१०० टन की हो गई है, पेन्सिलीन की १९२ मिलियन मीगा इकाइयो मे तथा सुपर फास्फेट की ३३००० टन। नेपा मे इस समय ३० हजार टन अखबारी कागज तैयार किया जाता है और

१९५९-६० मे २५००० टन प्रतिवर्ष इन्सूलेशन की उत्पादन क्षमता की व्यवस्था की गई। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इन कार्यक्रमो पर लगभग ३ करोड रु० खर्च किया जाएगा।

१९५९ के अन्त तक निम्नलिखित औद्योगिक कार्यक्रमो को पूरा करने की आशा व्यक्त की गई —

योजनायें	नवीन या अतिरिक्त क्षमता
१—सिन्द्री खाद फैक्टरी का विस्तार	४७,००० टन नत्रजन का उत्पादन
२—भिलाई और रूरकेला मे प्रथम लौह भट्टी का निर्माण	७००,००० टन ढलवां लोहे का प्रतिवर्ष उत्पादन
३—पश्चिमी बगाल मे दुर्गापुर स्थित कोक फैक्टरी का निर्माण	२८५,००० टन (Hard Coke) प्रतिवर्ष उत्पादन
४—भारी औद्योगिक मशीनें बनाने वाले हिन्दुस्तान यान्त्रिक कारखाने का विस्तार	४०० Lathes, औद्योगिक मशीनो तथा उनके पुर्जो का प्रति वर्ष उत्पादन (पूर्ण-क्षमता के आधार पर)
५—हिन्दुस्तान केबिल तथा लोहे के बडे तार तैयार करने का कारखाना	५३० मील लम्बे तार (Cable) तथा ३०० मील लम्बे (Co-axil) तार तैयार करना

योजना आयोग द्वारा ऐसी आशा व्यक्त की गई है कि निम्नलिखित औद्योगिक सस्थानो मे तो दूसरी योजना की समाप्ति तक उत्पादन शुरू हो जाएगा :—

औद्योगिक कार्यक्रम	नवीन या अतिरिक्त उत्पादन क्षमता
१—भिलाई रूरकेला तथा दुर्गापुर के इस्पात के कारखाने	२ २ मिलियन टन इस्पात, ६००,००० टन कच्चा लोहा।
२—नगल का खाद का कारखाना	७०,००० टन नत्रजन।
३—खदान सम्बन्धी लिगनाइट योजना	३.५ मिलियन टन लिगनाइट।
४—हिन्दुस्तान एन्टिवायोटिक विस्तार के अन्तर्गत स्ट्रैप्टोमाइसिन का कारखाना	४५,००० कि० ग्रा० स्ट्रैप्टोमाइसिन
५—मैसूर के लोह इस्पात उद्योग के विस्तार के अन्तगत फैरो सिलकन का उद्योग	१५,००० टन फैरो सिलिकन
६—बिजली प्रोक्लेन इन्सुलेटर उद्योग विहार	२,००० टन इन्सुलेटर
७—हिन्दुस्तान शिप यार्ड का विस्तार	८ से १० जहाज प्रतिवर्ष निर्माण करने का विचार
८—उत्तर प्रदेश की सरकारी सीमेण्ट फैक्टरी का विस्तार	२३१,००० टन सीमेंट प्रतिवर्ष

जिनमे से कुछ पहिया यन्त्रो के कारखानो का निर्माण १९६१ के मध्य तक होने की आशा व्यक्त की गई है।

दूसरी योजना के अन्तर्गत, इन समस्त कार्यक्रमो के लिए ५५८ करोड रु० की रकम आँकी गई थी तथा करीब ३२८ करोड रु० विदेशी मुद्रा के खर्च का अनुमान लगाया गया था। इनमे से १९६ करोड रु० के लागत खर्च तथा १०७ करोड रु० के विदेशी मुद्रा के खर्च के कार्यक्रमो को तृतीय योजना के शुरू तक पूरा करने की आशा व्यक्त की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकाश औद्योगिक कार्यक्रमो की पूर्ति म काफी समय लगेगा और उन पर विनियोग किए गए रुपये का लाभ तृतीय योजना के आरम्भ से पहले नही उठाया जा सकता। इस कारण से यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि इन कार्यक्रमो को शीघ्र पूरा करने के लिए कुछ उद्योगो—जैसे खाद निर्माण, भारी औद्योगिक मशीन-निर्माण आदि के लक्ष्यो मे से कटौती करना अनिवार्य होगा। जैसा कि योजना-निर्माताओं ने योजना बनाते समय पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि "सम्मिलित वित्त की उपलब्धि के लिए जो अनुमान लगाए हैं, उनके सर्वथा सही होने का दावा नही किया जा सकता और उनका पूरा होना अनेक ऐसे मदो पर निर्भर करता है, जिनकी ठीक-ठीक कल्पना करना आज आसान प्रतीत नही होती।"

निजी क्षेत्र मे औद्योगिक प्रगति :

सार्वजनिक क्षेत्र की भाँति निजी क्षेत्र मे भी लोहे तथा इस्पात के उद्योगो के लिए विशेष महत्व दिया गया है। निजी क्षेत्र मे उद्योग-धन्धो की स्थापना के लिए दूसरी योजना मे ६८५ करोड रु० की राशि निर्धारित की गई है। इसमे से ५३५ करोड रु० का नवीन विनियोग होगा तथा १५० करोड रु० पुराने कारखानो की टूट-फूट सम्बन्धी कामो मे लगाए जाएँगे। इस क्षेत्र के विकास के लिए ३२० करोड रुपये के विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडेगी जिसमे से २५० करोड रुपये नवीन विनियोग मे लगाए जायगे। किन्तु १९५९–६० मे जब योजना पर पुनर्विचार हुआ तब निजी क्षेत्र के उद्योगो के लिए निर्धारित ६८५ करोड रु० की लागत को बढाकर ८४० करोड रु० कर दिया गया तथा १२० करोड के लगभग की वृद्धि विदेशी विनिमय की राशि मे की गई।

योजना का अध्ययन करने मे पता चलता है कि योजना काल के प्रथम वर्ष मे ही करीब १३५ से १४० करोड रुपये के बीच मे विनियोग हुआ। इतना ही विनियोग अगली साल किया गया। औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) ने भी इस कार्य म काफी सहायता की। उक्त निगम द्वारा १९५६–५७ मे १०·४ करोड रुपया निजी क्षेत्र के उद्योगो को कर्जे के रूप मे दिया जबकि

१९५५–५६ मे केवल २ २ करोड रुपये का ही कर्ज दिया गया था। इसी प्रकार इस्पात के उद्योग के विकास के लिए तथा कैलटैक्स ऑयल शुद्धि कारखाने के लिए, विदेशी पू जी के अन्तर्गत, काफी सहायता मिली।

इतनी अधिक रकम की प्राप्ति के बावजूद भी निजी क्षेत्र के उद्योगो के लिए विदेशी विनिमय की कठिनाई बनी रही। योजना काल के प्रथम वर्ष, अर्थात् १९५६ मे ही विदेशी विनिमय की एक बहुत बडी राशि निजी क्षेत्र के उद्योगो के विकास मे ५७ खप गई। इसी प्रकार दूसरी वर्ष अर्थात् १९५७–५८ मे भी विदेशी विनिमय की रकम का काफी विनियोग हुआ किन्तु आगे के वर्षो मे, इस क्षेत्र के लिए विदेशी विनिमय की काफी कमी होती गई। निजी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के सम्बन्ध मे दूसरी बाधा विद्युत शक्ति की कमी के कारण पैदा हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि इस क्षत्र मे जल विद्युत विकास का जो कार्यक्रम निर्धारित किया गया उसमे काफी लापरवाही बरती गई तथा प्रस्तावित रकम का दुरुपयोग किया गया। इन सब कमियो का कारण विदेशी विनिमय की कठिनाई थी।

इस तरह, इन सभी विषम परिस्थितियो के कारण, निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित औद्योगिक कार्यक्रम सफलता पूर्वक नही चलाए जा सके। यहाँ पर यह कहना कठिन है कि इन सब परिस्थितियो का एकमात्र कारण विदेशी विनिमय की कठिनाई था किन्तु वास्तविकता के आधार पर तो इसके और भी कई कारण थे। योजना के अन्तिम वर्षो मे कुछ विशिष्ट उद्योगो के लिए, विदेशी विनिमय की काफी सुविधा प्रदान की गई जो निम्न प्रकार है —

१—वे औद्योगिक कार्यक्रम जो (केन्द्रीय उपाय) कोर स्कीम (Core Plan) से सम्बन्धित हैं जैसे रिफ्रैक्टरी उद्योग, रेल के डिब्बे बनाने वाले उद्योग आदि।

२—उन औद्योगिक कार्यक्रमो के लिए, जो उन्नति के शिखर तक पहुँच गए है तथा जिनमे बहुत साल पहले स ही विदेशी विनिमय के द्वारा ही उत्पादन होता रहा है।

३—उन औद्योगिक कार्यक्रमो के लिए भी जो बहुत ही थोडे समय मे विदेशी विनिमय की राशि को कमा कर लौटा देगे, विदेशी विनिमय की सहायता दीगई है।

अब हम विभिन्न उद्योगो मे हुई उत्पादन की वृद्धि का विवरण देते है।

विभिन्न उद्योगों में उत्पादन की मात्रा को प्रकट करने वाली तालिका

उद्योग-धन्धों के नाम	इकाइयाँ	उत्पादन क्षमता		विकास कार्यक्रम के अनुसार १९६१ तक प्राप्त होने वाली क्षमता	कौलम पाँच की क्षमता पूर्ति के लिए अतिरिक्त विदेशी विनिमय की राशि	कौलम६के अतिरिक्त अन्य विदेशीविनिमय की राशि जो कालम ३के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये होगी।
		योजना का लक्ष्य	१९५० की उत्पादन क्षमता			
					करोड रु०	करोड रु०
लोहा तथा इस्पात उद्योग(बिक्री का इस्पात)	मिलियन टन	२.३	१.३	२.३	Nil	Nil
अल्यूमिनियम	टन	३०,०००	७,५००	२०,०००	१.५०	६.५
फैरो मैंगनीज	,,	१७०,०००	१२,०००	१,१४,०००	१.२५	१.२५ से १.५
सुपर फास्फेट (P_2O_5)	हजार टन	१२०.०	५०	८०*	०.४	२.५ से ३.०†
सल्फ्यूरिक एसिड	,,	५००	२५२	४२०	०.३	०.५
सोडा एश	,,	२५३	१०८	३२०	१.०	Nil
कास्टिक सोडा	,,	१५०	४५	१२४	(Neg)	१.२५
औद्योगिक विस्फोरक	,,	५	...	५	,,	....
पैट्रोल का शोधन	मिलियन टन	४.३	४.३	४.३	,,	....
प्लास्टिक, सिन्थेटिक बनाने वाला चूर्ण	टनो मे	१२,८१०	३,७३०	१३,२००	०.१५	...
सीमेन्ट	मिलियन टन	१६.०	६.६३	९.३	१.८	३.३.००
रिफ्रैक्टरीज	१००० टन	१००० (१२५०)	४९८	८२०	०.५	२.०
रबर उत्पादन (मोटर गाडियो के टायर)	१००० नबर	१,४५०	१,०६२	१,७७४	(Neg)	... Nil
डाईस्टफ तथा मध्य पूरित डाईज	मिलियन टन	२७.०	११.७	१२.०	,,	१.०
सूती वस्त्र बनाने वाली मशीनें	करोड रुपया	१७.००	७.५	१०.०	१.५	२.०
जूट उत्पादन मशीनरी	,,	२.५	०.४	१.०	०.१०	Nil

*तथा अमोनियम सल्फेट के रूप मे P_2O_5-३७०० टन लोहे का उत्पादन। † विविध फास्फेटिक खाद पर विनियोजित ३६०००P_2O_5का उत्पादन

सीमेण्ट उत्पादन मशीनरी	करोड़ रुपया	२·०	०·५	०·७५	०·२५	०·७१
चीनी उत्पादन मशीनरी	" "	२·५	०·४	२·५	१·०	Neg.
कागज उत्पादन मशीनरी	" "	४·०	Nil	Nil	Nil	२·०
मोटर गाडियाँ	सख्या	५७,०००	३६,०००	६०,०००†	Neg.	१२·००††
रेल के इन्जन	सख्या	१००	६७	५न्तकन्प्र,मा.	०·५	Nil
रेलवे वैगन	"	२५,०००	अप्राप्य	२५,०००	०·६ }	४·०
'स्ट्रक्चरल फैब्रीकन्स'	'००० टन	५००	१४३	२८६	२·२ }	
साईकिलें	'०००सख्या	८६५	६२७	१३५०	०·३	Neg.
डीजल इजन ५० तथा अधिक अश्वशक्ति के	'००० H P	२०से३०	Nil	३६	Nil	Neg.
ट्रान्सफोर्मर्स	०००के.वी.ए.	१५०० (२२००)	६३४	१४६५	०·१०	१·०
मोटरें	००० H P.	६००(१२००)	३३६	७३६	०·१०	१·५
केबिल तथा तार						
ए.सी एस आर कन्डक्टर्स (A.C.S.R.)	टन	२१५७०(३०,०००)	१३३७०	२३६००	०·१३ }	१·५
VIR तथा प्लास्टिक कोटेड	मिलियन गज	३३४५००से६००	१५७	२४२	० २० }	
पेपर इन्सूलेटेड पावर	मील	७८४	Nil	१,१०४	Neg. }	
रेडियो रिसीवर यन्त्र	'०००सख्या	२१३(३००)	२१३	३००	Neg. }	
चीनी	'०००टन	२५००	२०१०	२२५०	Neg	१०·०
सूती वस्त्र उत्पादन—(अ) (Spindleage)	मिलि. सख्या	१३·६२१(१४ १५)	१२·६	१४·१५ }	१५·००	...
(ब) (Loomage)	'०००सख्या	२०३(२२१)	...	२२१ }		५·०
कागज तथा कागज की दफ्ती	'००० टन	४५०	२५२	४१०	१·०	...
काँच उद्योग	'००० टन	३३५	२६५	३४३	०·२	...
नकली रेशम—कच्चा (फिलामेंट) धागा	लाख पौण्ड	६८·० (१००·०)	३४·०	७६·८	१·६ }	१०·०
पक्का धागा	" "	३२·०	३२ ०	४०·०	... }	
रासायनिक लुगदी	'००० टन	३०·०	००	३०·०	Neg. }	
वनस्पति	'००० टन	४४५	वृद्धि नहीं	...	४००	...
वनस्पति तेल	'००० टन	६४	१७	५८	०·५	०·१०
पेण्ट तथा वार्निश	'००० टन	६५·०	६५·०	६५·०	...	...

† करीब ४० प्रतिशत स्वदेशी पूर्ति । †† करीब ८० प्रतिशत मोटरों की स्वदेशी पूर्ति ।

योजना के प्रकाशन के बाद कपास उत्पादन के लक्ष्य मे परिवर्तन कर दिया गया। इसके सम्बन्ध मे सरकार ने २'१ मिलियन तकुग्रो (Spindles) तथा १८,००० स्वचालित चर्खो को लायसेन्स देने का निर्णय किया था। इस सन्दर्भ म योजना द्वारा जो ३० करोड रुपया विनियुक्त रखे गई थी उसको बढाकर ६० करोड रु० कर दिया गया। सभी नए लगाए गए तकुग्रो को लायसेंस दिया गया। चीनी उद्योग के बारे मे २ १५ लाख टन उत्पादन का अनुमान किया गया, जिसकी १९६०-६१ तक पूरा हो जाने की आशा व्यक्त का गई। इस उद्योग की क्षमता बढाने के लिए विदशी विनिमय की आवश्यकता भी अपेक्षित नहीं रही। कागज उद्योग के सम्बन्ध म ऐसी आशा व्यक्त की गई कि यदि इसको १० करोड रु० के विदेशी विनिमय की सहायता मिल जाय तो इसकी उत्पादन क्षमता ४१०,००० टन हो जाय। यद्यपि इस उद्योग की क्षमता म ५०,००० टन की कमी रही किन्तु फिर भी ३५० ००० टन की उत्पादन क्षमता की प्राप्ति भी सन्तोषजनक हो सकती है।

नकली रेशम तथा नाइलोन उद्योग की उत्पादन क्षमता को बढाने का विचार किया गया तथा इसकी उत्पादन क्षमता ७७ ० मिलियन पौण्ड होगई जो योजना के निर्धारित लक्ष्य से काफी बढ कर थी। इस सम्पूर्ण उत्पादन क्षमता मे ४ लाख पौण्ड नकली रेशम का कच्चा धागा तथा ०'४८ लाख पौण्ड नाइलोन का धागा सम्मिलित है, जिसमे से कुछ धागे का प्रयोग मछली उद्योग की जाल बनाने सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए किया जाएगा।

भारी औद्योगिक मशीनरी के उद्योगो की स्थापना के लिए भी विदेशी विनिमय की व्यवस्था की गई है और उद्योगो के लिए ३०,००० टन की फालतू लुगदी (Dissolving Pulp) के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया ताकि नकली रेशम तथा स्टेपिल फाइबर उद्योग' (Staple Fiber Industry) के लिए विदेशो से जो कच्चा माल आयात किया जाता है उसकी निर्भरता समाप्त हो जाय।

निजी क्षेत्र म औद्योगिक कार्यक्रम की प्रमुख विशेषता कपास तथा जूट उत्पादन सम्बन्धी उद्योगो का अभिनवीकरण करने का कार्यक्रम (Modernization Programme) था। योजना के अन्तगत चीनी उद्योग के विकास के लिए भारी जोर दिया गया और इसके पुनुरुत्थान के लिए ५० करोड रु० की राशि रखी गई। इस प्रकार लोहे तथा इस्पात उद्योग सहित इन समस्त उद्योगो के अलावा अन्य बहुत से छोटे-छोटे पैमाने के उद्योगो के पुनुरुत्थान के लिए भी विचार विमर्श हुआ और उनके विकास के लिए करोडो रु० का अनुदान दिया गया। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि दूसरी पचवर्षीय योजना की द्वितीय वर्ष की अवधि के समाप्त होने तक कपास तथा जूट उद्योग के लिए, मशीनरी के आयात मे, ३५ करोड रु० खर्च होगा किन्तु चीनी उद्योग की मशीनो के लिए सम्भवत इतनी बडी धन राशि की आवश्यकता नहीं पडेगी और काफी विदेशी विनिमय की बचत होगी। अगर विदेशी

विनिमय की बचत होगी। अगर विदेशी विनिमय की जरूरत के बारे मे वास्तविक अनुमान सही निकलते है तब भी बजट के सन्तुलन के लिए ३५ करोड रु० अतिरिक्त विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडेगी। किन्तु इस बारे मे यह कहना कठिन है कि इसकी प्राप्ति किस हद तक हो सकेगी क्योंकि यह बहुत कुछ सीमा तक कपास तथा जूट उद्योग के लिए दी गई अमरीका की आर्थिक सहायता तथा जापानी ऋण-राशि पर आधारित है।

सुविधा के तौर पर हमे यहाँ पर निजी क्षेत्र के विकास कार्यक्रम के कुछ प्रमुख तथ्यों को प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा —

(अ) ऐसा अनुमान लगाया गया है कि अगर ३२ करोड रु० की विदेशी विनिमय की राशि प्राप्त हो जाय तो पूर्व तालिका के कालम नम्बर ५ की उत्पादन क्षमता का लक्ष्य प्राप्त हो जाय और इसी सदर्भ मे ऐसी आशा व्यक्त की गई थी कि अगर सन् १९५८–५९ तथा १९५९–६० मे इनमे से कुछ उद्योगो के लिए दी जाने वाली अमरीकी आर्थिक सहायता तथा जापानी ऋण राशि प्राप्त हो जाती तो ३२ करोड की विदेशी विनिमय की राशि को प्राप्त करना कुछ असम्भव न होता परन्तु ऐसा नही हो सका। इसके अलावा १०० करोड की अतिरिक्त धन राशि की आवश्यकता पडेगी क्योकि पूर्व की तालिका के कालम ३ मे वर्णित उत्पादन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काफी विदेशी विनिमय की आवश्यकता अपेक्षित समझी गई थी जो वास्तविकता के आधार पर न्यायसगत थी।

(ब) कालम ५ में वर्णित लक्ष्यो की प्राप्ति के बारे में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं —

१—अल्युमिनियम, फैरोमैगनीज तथा कास्टिक सोडा के बारे मे जो उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किए गए थे उनको सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नही किया जा सकेगा।

२—भारी रासायनिक पदार्थों के लिए जो उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किए गए थे (कुछ रासायनिक घोल तथा कास्टिक सोडा को छोडकर) वे पूर्णरूप से प्राप्त हो जायेगे किन्तु सीमेंट तथा डाईस्टफ के उत्पादन लक्ष्यो की प्राप्ति मे थोडी कमी रह जायगी। इसी प्रकार रिफ्रैक्टरी के लक्ष्यों मे भी अपेक्षाकृत कुछ कमी रह जायगी।

३—इजीनियरिंग उद्योगो के क्षेत्र मे 'स्ट्रक्चरल फैब्रीकेशन' तथा चीनी के लिए आवश्यक मशीनो को छोडकर अन्य सभी प्रकार की मशीनो के उत्पादन लक्ष्य की प्राप्ति म कुछ कमी रहेगी किन्तु रेल के इन्जन, वैगन तथा बाइसिकलो के उत्पादन लक्ष्य पूर्ण रूप मे प्राप्त हो जाएंगे। मोटर गाडियों के उत्पादन मे काफी कमी रहेगी तथा इसके उत्पादन लक्ष्य की प्राप्ति मे ८० प्रतिशत तक ही आत्म-निर्भरता मिल सकेगी।

४—विद्युत इजीनियरिंग उद्योगो के लक्ष्य पूर्ण रूप से प्राप्त हो जायेगे तथा कुछ

क्षेत्रो मे तो लक्ष्य से भी अधिक प्राप्ति हो जाएगी किन्तु विर (VIR) तथा प्लास्टिक केबिल्स के सम्बन्ध मे कुछ कमी रहेगी।

५—उपभोग्य वस्तु उत्पादन करने वाले उद्योगो के लक्ष्य भी लगभग प्राप्त हो जायेंगे, केवल कागज, अखबारी कागज, नकली रेशम के कच्चे धागो—(Filaments) तथा चीनी के सम्बन्ध मे कुछ मामूली सी कमी रह जायगी। नकली रेशम उद्योग के प्रारम्भिक लक्ष्यो की प्राप्ति मे आधिक्य रहेगा तथा चीनी उत्पादन के लक्ष्यो की भी पूर्ण रूप से प्राप्ति हो जायेगी।

पूर्ण विवेचन के आधार पर, मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्षेत्र के सभी कार्यक्रमो के प्रारम्भिक लक्ष्यों की, ७० से ८० प्रतिशत तक, प्राप्ति हो जाएगी। जब ३५ करोड रु० के विदेशी विनिमय की प्राप्ति हो जाएगी तो उद्योगो के अभिनवीकरण तथा पुनरुत्थान सबधी सभी कार्यक्रम पूरे किए जा सकेंगे।

८—औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि[1]

सन् १६५६ मे वाणिज्य तथा उद्योग के क्षेत्र मे—औद्योगिक उत्पादन, निर्यात आय (Export Earning), मशीन निर्माण उद्योग तथा अन्य औद्योगिक कार्यों मे—सार्वजनिक तथा निजी दोनो ही क्षेत्रो मे—तीव्र विकास हुआ। वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय की सन् १६५६ ६० की वार्षिक 'रिपोर्ट' मे कहा गया है कि विदेशी विनिमय की कठिनाई होते हुए भी औद्योगिक उत्पादन मे किसी प्रकार की कमी नही होने दी जाएगी। सन १६५६ का औद्योगिक उत्पादन पिछले वर्षो की तुलना मे काफी अधिक था।

सच तो यह है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे, औद्योगिक उत्पादन की सूची मे वर्णित वस्तुओ के अलावा काफी वृद्धि हुई है। पेनिसिलिन जिसका कि सन् १६५१ से उत्पादन हो रहा है, औद्योगिक सूची मे नही है। इसी प्रकार सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग तथा चीनी उद्योग के विकास बारे मे भी सूची म पूर्ण विवरण दिया गया है जो आजकल काफी उत्पादन कर रहे है।

अन्य औद्योगिक वस्तुएँ जिनका कि दूसरी पच वर्षीय योजना मे महत्वपूर्ण विकास हुआ है इस प्रकार है—चीनी उद्योग, डीजल इन्जन, मशीनो के छोटे-छोटे कल पुर्जे, औटो मोबाइल्स सल्फूरिक एसिड, लोहा तथा इस्पात, अलूमोनियम, सुपरफास्फेट, सोडा एश, सीमेंट, साईकिल, कागज तथा कागज की दफ्ती (Board) आदि। ३१ सितबर १६६० को उद्योग मन्त्रालय की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है जिसमे कहा गया है कि उपर्युक्त वस्तुओ के उत्पादन लक्ष्य जो दूसरी पच वर्षीय

---

1 Hindustan Times, dated 23 3 60

योजना मे निर्धारित किए गए थे, योजना की अवधि तक उनकी पूर्णरूप से प्राप्ति हो जाएगी।

इस्पात तथा लोहे की खपत को बढाने के लिए इन्जीनियरिंग उद्योगो के उत्पादन को बढावा दिया गया है। कास्टिक सोडा, सोडा एश, सल्फूरिक ऐसिड सीमेन्ट तथा कैल्शियम कार्बाइड की उत्पादन क्षमता मे काफी वृद्धि हुई है और उत्पादन की बहुत सी नई दिशाएँ परिचालित की गई हैं जिनमे 'हाइड्रोजन पैरोक्साइड' (Hydrogen Peroxide) उद्योग और खानो के खोज कार्य, एमोनियम नाइट्रेट तथा एसीटोन (Acetone) आदि प्रमुख हैं।

भारी उद्योग—उन भारी उद्योगो मे, जो निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ मे हैं, भोपाल का विद्युत शक्ति का भारी कारखाना—जो ब्रिटिश सरकार की सहायता से स्थापित किया गया है—इस्पात के उद्योग की मशीन सम्बन्धी जरूरतो को पूरा करेगा। साथ ही इसकी मशीनो की उत्पादन क्षमता को ४५,००० टन से बढाकर ८०,००० टन प्रतिवर्ष कर देने का निश्चय किया गया है।

इन दो बडे कारखानो के अतिरिक्त अन्य मशीनो के उत्पादक कारखानो को—जिनमे खान खोदन की मशीनें, बडी-बडी प्लेट और 'वैसल' बनाने वाले कारखाने और दो अन्य विद्युत उत्पादन के कारखाने सम्मिलित हैं—भी सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया गया और योजना ने भी इनके तत्काल विकास के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

सावजनिक क्षेत्र के अन्य कारखानो मे जो तृतीय पचवर्षीय योजना मे उत्पादन कार्य शुरू कर देंगे, खाद उत्पादन के कारखाने मुख्य है, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे स्थापित किए जाएँगे। इसके अलावा दवाइयाँ बनाने के कारखाने, रासायनिक उद्योगो को कच्चे माल की पूर्ति करने के कारखाने, एक्सरे, फिल्म तथा सिनेमा की मशीन बनाने के कारखानो का कार्य भी हाथ मे लिया गया है।

रिपोट मे आगे कहा गया है कि पिछले कुछ वर्षों से औद्योगिक सस्थान की स्थापना के सम्बन्ध मे लायसेन्स प्राप्त करने के बहुत से प्रार्थना पत्र आए जिनमे बहुतो को औद्योगिक (विकास तथा कानून) नियम (Industries Development and Regulation Act) के अनुसार लायसेन्स दिये गये। विभिन्न उत्पादन मे काफी वृद्धि हो रही है। कुछ प्रमुख उद्योगो के उत्पादन का विवरण नीचे दिया जाता है --

वस्तुएं	उत्पादन प्रतिवर्ष
ट्रासफोरमर्स	२,३००,००० KVA
औद्योगिक ढाँचे (Structurals)	२०,००० टन प्रतिवर्ष
इस्पात कास्टिंगस (Steel Castings)	१८,००० टन प्रतिवर्ष
अल्यूमीनियम	७५,००० टन प्रतिवर्ष

सरकार ने दुर्गापुर, भिलाई और रूरकेला के इस्पात के कारखानों के विस्तार और विकास करने का कार्य अपने हाथ में ले लिया है। सितम्बर १६५६ के अन्त तक रूरकेला और भिलाई में कच्चे लोहे (Pig iron) का कुल उत्पादन क्रमशः १,७३, ०१६ मैट्रिक टन तथा ३,२१, ०४६ मैट्रिक टन हुआ। भिलाई कारखाने में उत्पादन प्रथम दो वर्षों में ही लक्ष्य से अधिक होने लगा है।

तेल पड़ताल के अन्तर्गत ४ कुएँ सम्भात क्षेत्र (Campay Area) में—तथा ६३ कुएँ नाहर कटिया, हुगरीजन तथा मुरान क्षेत्र में बनाए जा रहे हैं। इसके साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी तेल प्राप्ति के लिए कुएँ खोदे जाएँगे। उपर्युक्त ४ कुँओं में से ३ पर उत्पादन कार्य शुरू हो गया है, नाहर कटिया हुगरीजन, मुरान क्षेत्र के ४२ कुँओं से तेल निकाला जा रहा है, २ से गैस उत्पादन की जाती है, ६ सूखे पड़े हैं तथा १० कुँओं का पुनः परीक्षण होगा।

घड़ियों का निर्माण—बैंगलोर में घड़ियों का कारखाना स्थापित होने जा रहा है जो सार्वजनिक क्षेत्र में होगा तथा ½ मिलियन घड़ियाँ प्रति वर्ष बनाई जाएँगी। यह कारखाना जापानी सहायता से चलाया जाएगा। इसके अलावा फ्रान्स भारत समझौते के अन्तर्गत सरकार दो अन्य घड़ियों के कारखाने खोलने का विचार कर रही है जो निजी क्षेत्र में स्थापित किए जाएगे।

चिकित्सालय सम्बधी उपकरण—अभी हाल में ही एक्स-रे व विद्युत-चिकित्सालय (Electro-medical) के (औजार बनाने) के लिए चार कार्यक्रम स्वीकृत किए गए है। सरकारी अस्पतालों के लिए औजार बनाने के लिए लखनऊ में एक कारखाना स्थापित करने की स्वीकृति दी गई है। १६५६ में क्लिनीकल थर्मामीटर बनाने के लिए ३ अन्य कार्यक्रमों की भी स्वीकृति दी गई है। सर्जरी का सामान बनाने के लिए रूस के सहयोग से एक कारखाने की स्थापना का सुझाव दिया गया है। उच्चकोटि का सरजरी का सामान बनाने के लिए लघु उद्योग सेवा संस्था (Small Industries Service Institute) के अन्तर्गत बम्बई में एक कारखाना स्थापित किया गया है।

(Antibiotics Plant) एक अमरीकी फर्म ने यह सुझाव दिया है कि Antibiotics का एक 'प्लांट' एवं वायु को शुद्ध करने वाले यन्त्रों (Tetracyclines) के निर्माण के लिए एक कारखाना चंडीगढ़ में स्थापित किया जाय। भारत सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है।

सीमेन्ट उत्पादन—१६६०-६१ तक सीमेन्ट का उत्पादन बढ़कर १० मिलियन टन हो जाएगा और वार्षिक उत्पादन ६ मिलियन टन हो जाएगा। १६५६ में सीमेन्ट का कुल उत्पादन ६.८२ मिलियन टन हुआ था।

दुर्गापुर में एक 'मैकेनिकल इन्जीनियरिंग इन्स्टीट्यूट (Mechanical Engineering Institute) की स्थापना की जा रही है। इसके लिए अमरीकी विशेष

कोष द्वारा ६,६१,४०० डॉलर की रकम सन् १९६० से आगामी चार वर्षों के लिए सहायता के रूप मे दी जाएगी। इस राशि के अन्तर्गत, वैज्ञानिक यत्र (apparatus) तथा उपकरणों (equipment) की लागत, मशीनो तथा औजारो की लागत, फैलोशिप तथा विशेषज्ञों की सेवा का व्यय भी सम्मिलित है।

धूपकिरण की प्रयोगशाला (Cosmic Ray Laboratory)—सरकारी तौर पर यह तय किया गया है कि कश्मीर मे सूर्य की किरणों की खोज के लिए ऊँचाई पर एक प्रयोगशाला स्थापित की जाए। इसी सदर्भ मे गुलमर्ग अफरबात (Apharbat) मे दो प्रयोगशालाएँ स्थापित की जा रही है, जिनमे गुलमर्ग की प्रयोगशाला का निर्माण कार्य शुरू हो गया है।

रबर उत्पादक उद्योग (Rubber Products Plants)— वाशिंगटन की निर्यात आयात बैंक ने पजाब के गुडगाँव जिले के वल्लभगढ स्थान पर एक औद्योगिक सस्था की स्थापना के लिए २२५ करोड रुपये का कर्ज दिया है। बैंक ने यह कर्ज मुख्य रूप से रबर के टायर बनाने के लिए दिया है। इसके अलावा रबर की अन्य वस्तुओ के उत्पादन के लिए भी विभिन्न स्थानों पर कारखाने की स्थापना के बारे म भी विचार विमर्श हो रहा है।

उद्योगों मे विनियोग (Investment in Industries)—दूसरी योजना के प्रथम तीन वर्षो मे सावजनिक तथा निजी दोनो ही क्षेत्रो मे सगठित उद्योगो की स्थापना मे क्रमश ४२७ करोड तथा ५६३ करोड रुपए का विनियोग हुआ।

१९५९ म इस्पात के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई। १९५९ मे इस्पात का कुल उत्पादन १,७६७ ६६२ टन हुआ जबकि १९५८ म कुल उत्पादन १,३६१,२८४ टन ही था।

धातु के छोट छोटे टुकडों का उत्पादन (Production of billets)—भिलाई के इस्पात कारखाने का कुल उत्पादन ७७०,००० टन था जिनमे से १५,००० टन के धातु के छोटे छोटे टुकडो का उत्पादन हुआ। इसके अलावा जमशेदपुर, वर्नपुर तथा दुर्गापुर मे भी धातु के टुकडो का उत्पादन होगा, जो देश की वर्तमान आवश्यकता को पूरा कर सकगे। पिछले दो वर्षो म ४८४ इस्पात उद्योग के इ जीनियरो को उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करान के हेतु विदेश भेजा गया। इन इन्जीनियरो (अभियताओं) ने इगलैड, सयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, पश्चिमी जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया मे प्रशिक्षण प्राप्त किया।

सूती वस्त्र उद्योग—सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन मे १९५९ ६० तक ३५ मिलियन पौंड सूत की वृद्धि हुई है। १९५९ मे सूत कारखानो द्वारा १७२० मिलियन पौण्ड सूत का उत्पादन हुआ जबकि १९५८ मे कपडे का उत्पादन १६८५ मिलियन पौण्ड था। १९५९ मे मिल के कपडे का उत्पादन ४९२७ लाख गज हुआ।

प्लास्टिक उद्योग—इस उद्योग के लिए कच्चा माल जैसे पौलेस्टर्न (Polysterne) व पौलेथंलीन (Polyethelene) आदि का उत्पादन पहले से ही हो रहा है और यह आशा है कि निकट भविष्य में हम बड़ी मात्रा म प्लास्टिक के तैयार माल का निर्यात करने मे सफल हो जायेंगे। सरकार ने प्लास्टिक उद्योग के लिए आवश्यक स्वदेशी कच्चे माल जैसे रासायनिक वस्तुए के उत्पादन के लिए भी कदम उठाए हैं। प्लास्टिक पर आधारित फाउन्टेन पेन, आँखो के चश्मे तथा चमड़े के निर्यात व्यापार का काम देश म बहुत दिनो स चालू है।

लाख का उत्पादन—१९५९ में लाख का कुल उत्पादन ११ लाख मन से भी अधिक हुआ। कुल उत्पादन का ७५ प्रतिशत अकेले बिहार और मध्यप्रदेश में हुआ।

शक्ति-साधनों का वितरण—भारत सरकार सम्पूर्ण देश म शक्ति साधनो के विकास एव वितरण के लिए एक उच्च स्तरीय कार्यक्रम (Supergrid system) तैयार कर रही है। जल विद्युत शक्ति आयोग (The Water Power Commission) पूर्व अनुभव के आधार पर दक्षिणी भाग के लिये एक क्षेत्रीय ढाँचे का गठन कर रही है जिसम आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा केरल प्रदेश शामिल होंगे।

रेडियो Isotope के कार्यक्रम के अन्तर्गत भारतीय कृषि अनुसधान शाला (Indian Agriculture Research Institute) द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कोर्स चालू किया गया है, जिसके द्वारा कृषि कार्यों को रेडियो Isotope से सचालित किया जावेगा। भारत सरकार ने यह कोर्स सर्वप्रथम यूनेस्को UNESCO, एफ० ए० ओ० (F A O) तथा अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति सस्था (International Atomic Energy Agency) की सहायता से चलाया था।

अणुशक्ति केन्द्र—अनुमान है कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम अणुशक्ति उत्पादन केन्द्र की स्थापना पश्चिमी भारत मे, बम्बई और अहमदाबाद के बीच की जाएगी। इसके अलावा देश के उन भागों म, जो कोयला क्षेत्र से दूर हैं—जैसे दिल्ली तथा मद्रास और राजस्थान के बीच—अणुशक्ति के केन्द्रो का स्थापित किया जाना विचाराधीन है। अब एक केन्द्र चालू हो गया है।

मोटर ठेले —सन् १९५९ तक ३६,४६८ मोटर ठेलो का निर्माण हुआ जो अन्य सालो की तुलना में काफी अधिक था। दूसरी योजना की पूरी अवधि के लिये ६५,००० मोटर ठेलो के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया था किन्तु १९६०-६१ तक केवल ६२,०९० मोटर ठेलो का ही निमाण हो सकेगा।

स्कूटर—स्कूटरो के उत्पादन के लिए सरकार दो और कारखानो को लाइसेंस देन का विचार कर रही है। इस समय स्कूटरो का उत्पादन ६०० स्कूटर प्रतिमास है, किन्तु स्कूटर के जब दोनो कारखानो द्वारा काम चालू किया जायेगा तो १५०० स्कूटर प्रतिमास बनाए जाएंगे। स्कूटर निर्माण करने का

दूसरा कारखाना १९६० के अन्त तक खुल जाने की आशा है। इसके अतिरिक्त तीसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चैकोस्लोवाकिया के सहयोग से मैसूर मे एक तीसरा कारखाना भी खोला जायेगा। इस प्रकार स्कूटरो का निर्माण द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य—१५०० स्कूटर प्रतिवर्ष—से अधिक होने लगेगा।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भारी विद्युत सम्बन्धी कार्यक्रम—विद्युत सम्बन्धी भारी सामान बनाने के लिए, भारत सरकार ने चैकोस्लोवाकिया की सहायता के द्वारा, एक कारखाना खोलने का निश्चय किया है। इसके साथ एक दूसरा कारखाना रूस की सहायता द्वारा भी स्थापित किया जायेगा। भोपाल के विद्युत यत्र कारखाने म जुलाई १९६० से उत्पादन कार्य शुरू हो गया है। निश्चय यह किया गया है कि विद्युत यत्रो के सामूहिक उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर कार्य किया जाय तथा इन उद्योगो का उत्पादन २५ करोड रु० प्रतिवर्ष से बढाकर ५० करोड रुपया प्रतिवर्ष कर दिया जाय।

सिलाई की मशीनें—सन् १९५९ मे कुल मिलाकर २,९०,००० सिलाई की मशीनो का उत्पादन हुआ जिनमे से २०,३५,००० रु० की कीमत की १७-१५ मशीनो का विदेशो को निर्यात कर दिया गया।

टैलीप्रिन्टर्स (Teleprinters)—देश के औद्योगिक वर्ग ने यह इच्छा प्रकट की है कि भारत सरकार ने उनसे विचार विनिमय कर लिया है और यह आशा की जाती है कि १९६१-६२ तक, टैलीप्रिन्टर्स बनाने का कारखाना खुल जाएगा।

सल्फर (Sulphur)—भारत सरकार ने यह निश्चय किया है कि एन० आई० डी० सी० (N I. D C) के अन्तर्गत बिहार म एक ऐसे निगम की स्थापना की जाय जो पाइरिट्स (Pyrites) से सल्फर (Sulphur) बना सके। इस कार्यक्रम के सम्बन्ध मे निकट भविष्य म लगभग २,००० टन कच्चा सल्फर (Ore' नार्वे का परीक्षण के हेतु भेजी जा रही है। इसके परीक्षण के बाद औद्योगिक ढांचे तथा मशीनो के तैयार करने मे काफी मदद मिलेगी।

अनाज का सग्रह—गेहूँ का अधिक मात्रा मे सग्रह करने के लिए, ऊपर उठाने के यन्त्रो से सज्जित भडार (Silos) बनाने का सुझाव दिया गया है। य भडार कलकत्ता के पास कल्याणी तथा बम्बई के पास बॉरिविली (Borivlli) मे स्थापित किये जायेंगे। इसके अलावा कुछ प्रमुख बन्दरगाहो पर, जहाँ विदेशो से गेहूँ आयात होकर आता है, भी गेहूँ के भडार बनाये जाएगे। यदि उपयुक्त भूमि मिल जाय तो ऐसे भडार बम्बई, कलकत्ता तथा कादला आदि बन्दरगाहो पर बनाये जाएगे।

रेडियो सैट—रेडियो सैट के निर्माण का कार्य प्रस्तुत वर्ष (१९६०-६१) के अन्त तक पूरा हो जाएगा। फिलहाल कुछ फर्मो ने ट्रामसीटर बनाने के कारखानो की स्थापना के लिए लायसेंस के हेतु प्रार्थनापत्र भेजे हैं। इसके अलावा

सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थित बगलौर की भारत इलेक्ट्रोनिक लि० कम्पनी ने भी ट्रासमीटर व रेडियो बनाने का काम अपने हाथ मे ले लिया है।

ट्रैक्टरों का निर्माण—ट्रैक्टरो के उत्पादन का कार्य इस समय दो कारखानो मे हो रहा है। इसके अलावा ब्रिटिश मॉडिल के १,२५० ट्रैक्टर बनाने के लिए भी एक फर्म को लायसेंस दिया गया है। कृषि कार्य की ट्रैक्टर सम्बन्धी जरूरतो को पूरा करने के लिए एक जर्मन फर्म से समझौता किया गया है। इस प्रकार ट्रैक्टरो की बढती हुई जरूरतो को पूरा करने के लिए देश मे बड़े पैमाने पर ट्रैक्टर बनाने के बारे म विचार किया जा रहा है।

मशीनो के औजार (Tools)—मशीनो के छोटे छोटे औजारो की बढती हुई माँग को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने बगलौर की हिन्दुस्तान मशीन उपकरण के कारखाने की उत्पादन क्षमता को दुगुना करने का विचार किया है जो तृतीय पचवर्षीय योजना मे पूरा हो जावेगा।

फाउ टनपैन—१६५६ मे भारतवर्ष म करीब ११-१२ मिलियन फाउ टेन पैनो का निर्माण हुआ जिनकी कीमत १,५७,००० रुपया थी।

६—खनिज साधनो का विकास
(Development of Mineral Resources)

प्रथम पचवर्षीय योजना म कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थो के बारे मे सुनियोजित सर्वेक्षण और ब्यौरेवार पडताल की व्यवस्था की गई थी, ताकि यह पता लगाया जा सके कि देश मे ये पदार्थ किस-किस किस्म के और किस मात्रा मे उपलब्ध हो सकते है। द्वितीय योजना म औद्योगिक विकास पर जो विशेष बल दिया गया है, उसके कारण इस बारे मे पूरे-पूरे ब्यौरे का पता लगाना और भी आवश्यक हो गया है, कि देश मे कितना और किस प्रकार का खनिज भडार है। दूसरी योजना के खनिज विकास कार्यक्रम मे कोयल को प्रथम स्थान दिया गया है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि दूसरी पचवर्षीय योजना क अत मे कोई ६ करोड टन कोयले की माँग होगी। इस कारण कोयले के उत्पादन, कोयले की धुलाई तथा सफाई (Coal washeries), तेल की जाँच पडताल और खोज सम्बन्धी कार्यक्रमो को विशेष महत्त्व दिया गया है। इन कार्यक्रमो को पूरा करने की जिम्मेदारी भारत सरकार के भूसर्वेक्षण विभाग (Geological Survey Deptt) तथा खनिज सर्वेक्षण कार्यालय के ऊपर रखी गई है। इस सम्बन्ध मे दूसरी पचवर्षीय योजना मे ७२ ५ करोड रु० की राशि निर्धारित की गई है। इसके साथ ही ३६.६ करोड रु० के विदेशी विनिमय के खर्च की लागत निर्धारित की गई।

१६५५-५६ मे कोयले का कुल उत्पादन ३८ मिलियन टन हुआ और पचवर्षीय योजना मे २२ लाख टन से ६० लाख टन तक बढाने का लक्ष्य रखा गया। इसमे

से १२ लाख टन का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में होगा तथा १० लाख टन का उत्पादन निजी क्षेत्र मे होगा। इन दोनो क्षेत्रो का कार्यक्रम योजना के मुख्य भाग (core) में सम्मिलित किया गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रम के लिये मोटे तौर पर ६० करोड रुपए की राशि निर्धारित की गई जिसमे मे १२ करोड रुपया गृह निर्माण के लिए रखा गया; यद्यपि योजना की शुरूआत मे केवल ४० करोड रुपये ही रखे गए थे। कुल लागत में से करीब १२ करोड रुपया प्रथम तीन वर्षो तक खर्च हो गया।

१९५६-५७ मे कोयला उत्पादन मे १'८४ मिलियन टन की वृद्धि हुई। १९५७-५८ मे वृद्धि का लक्ष्य ३'२ मिलियन टन था। इस साल के प्रथम ११ महीनो मे प्रति माह औसत उत्पादन ४३ ३ मिलियन टन हुआ जोकि १९५६-५७ के साल के उत्पादन मे ३ मिलियन टन अधिक था। सन् १९५९ मे दोनो ही क्षेत्र मे कोयले का उत्पादन ४७ मिलियन टन के लगभग हुआ जिसमे से सार्वजनिक क्षेत्र मे ६'७५ मिलियन तथा निजी क्षेत्र मे ४०'३३ मिलियन टन हुआ। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि योजना काल की पूरी अवधि मे कोयले के ६० मिलियन टन के उत्पादन लक्ष्य मे ३ से ४ मिलियन टन की कमी रह जाएगी। किन्तु सन् १९६०-६१ मे १५-१६ मिलियन टन की कमी महसूस की जा रही है। फूले हुए कोक कोयले की मात्रा *बढ़ाने के लिए योजना में कोयला साफ करने के ४ कारखाने खोलने का विचार किया गया है।* कारागली के कोयला साफ करने के कारखाने समेत अन्य सभी कारखानो का निर्माण योजना अवधि की समाप्ति के साथ साथ पूरा हो जाएगा। बढती हुई जरुरतो को देखते हुए इस तरह के कोयले का उत्पादन बढाना अत्यत आवश्यक है। तेल की पडताल का कार्य भी योजना के प्रारम्भ से ही बडे जोर शोर से किया जा रहा है। १९५६-५९ मे इस कार्य पर ७ करोड रुपया खर्च किया गया। फिलहाल मे भूगर्भ वेत्ताओ ने अनेक तेल क्षेत्रो का पता लगाया है और इस सम्बन्ध मे अभी भी कार्य जारी है। *१९६०-६१ तक तेल निकालने के ५ नए कुओं का निर्माण हो चुका है।* यह कार्य स्तेनवेक भारतीय समझौते (Indo Stanvac Agreement) के अन्तर्गत किया जा रहा है और इस समय पश्चिमी बगाल तथा विहार के तेल क्षेत्रो की जाँच हो रही है। अभी हाल मे ही वर्मा तेल कम्पनी के साझे मे एक नई रूपी कम्पनी (Rupee Company) का निर्माण किया गया है जिसके द्वारा नाहौर कटिया तेल क्षेत्र का निर्माण होगा तथा तेल निकालने के लिए नल लगाए जाएँगे। यह कार्य दो अन्वितियों (Stages) मे पूरा होगा। प्रथम अन्विति के अन्तर्गत नाहौर कटिया से गौहाटी तक एक पाइप लाइन बनाई जाएगी तथा ०'७५ लाख टन की क्षमता वाले एक तेल साफ करन के कारखाने की स्थापना होगी। द्वितीय अन्विति (Stage) के अन्तर्गत बरौनी (Barauni) तक पाइप लाइन का विस्तार होगा और वहाँ १'५ से २'० मिलियन टन की क्षमता वाले एक तेल साफ करने वाले कारखाने

की स्थापना होगी। सरकारी हिस्सेदारी से बनी रूपी कम्पनी तथा गौहाटी के तेल साफ करने के कारखाने के निर्माण पर योजना काल मे, २४ करोड रु० की राशि खर्च की जाएगी। साथ ही पश्चिमी जर्मनी भूगर्भसामग्री तथा भूगर्भवेत्ताओ द्वारा तेल उद्योग के विकास के लिए जांच पड़ताल की जाएगी।

कोयला उत्पादन के विकास के सम्बन्ध मे बहुत कुछ उन्नति हुई है। यद्यपि भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग तथा खनिज सर्वेक्षण कार्यालय के विकास कार्य मे काफी ढील बरती जा रही है जिसके कारण भू-भौतिक तथा भू रसायनिक तरीको और उपयोगो का तथा जाँच पड़ताल का कार्य उस स्तर से नही चल रहा है जैसी कि आशा व्यक्त की गई थी। जुलाई सन् १९६० से इस काम मे कुछ तेजी अवश्य आ गई है और वर्तमान अनुमानो के आधार पर ऐसी आशा व्यक्त की जा रही है कि इस कार्य पर करीब ८५ करोड रु० खर्च हो जायगा।

८—यातायात और सवाहन

(Transport & Communication)

यातायात और सवाहन के लिए द्वितीय योजना मे १३ अरब ८५ करोड रुपया स्वीकार किया गया है जिसमे से ९ अरब के लगभग रुपया रेलवे पर खर्च किया जाएगा। नीचे हम यातायात के विभिन्न साधनो का वर्णन करते है :

रेल (Railways) :

दूसरी योजना मे रेलवे यातायात का अत्यधिक विस्तार करने का निश्चय किया गया है क्योंकि यातायात का अधिकतम भार उसे ही वहन करना पडता है तथा भविष्य के लिए भी ऐसी ही सम्भावनाएँ है। इस दृष्टि से रेलो के विकास के लिए योजना मे ११२५ करोड रु० की राशि निर्धारित की गई है जिसमे २२५ करोड रु० का घिसावट व्यय (depreciation) भी शामिल है। इसी सदर्भ मे ४२५ करोड रुपये का विदेशी विनिमय भी स्वीकार किया गया है।

यद्यपि यह अनुमान लगाया गया था कि योजना के अतिम वर्ष तक सामान यातायात (Freight Traffic) का वजन ६१ मिलियन टन हो जाएगा और कुल वजन ले जाने के सम्बन्ध मे १८१ मिलियन टन की वृद्धि होगी लेकिन योजना मे वजन के सम्बन्ध में निम्नलिखित सीमा निर्धारित कर दी गई थी :

	मिलियन टन
१. कोयला	१३
२. फौलाद—कोयले को छोडकर कच्ची सामग्री सहित	१८
३. सीमेन्ट	४
४. फुटकर माल	७
कुल	४२ लाख टन

यात्री गाडियो के सम्बन्ध मे प्रतिवर्ष ३ प्रतिशत तथा योजना की कुल अवधि म १५ प्रतिशत वृद्धि करने का निश्चय किया गया है फिर भी इससे बढती हुई भीड का सामना करन की कोई आशा व्यक्त नही की गई है।

ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि रेल कार्यक्रम के लिए जो ११२५ करोड रुपया स्वीकार किया गया था मूल्य वृद्धि के कारण उसमे १०० करोड रुपए की वृद्धि और होगी। चूँकि आय के सीमित साधनो को देखते हुए इस बडी हुई राशि का जुटाना सम्भव नही है। साथ ही विदेशी विनिमय की भी कमी है। अत: इस कारण रेल के कुछ कार्यक्रमो को फिलहाल स्थगित कर देना पडेगा। स्थगित होने वाले कुछ कार्यक्रम नीचे दिये जाते है—

१. कलकत्ता क्षेत्र के सियालदा डिवीजन तथा टम्बारम-विलूपुरम विभाग का विद्युतीकरण कार्यक्रम,

२. मीटर गेज कोच फैक्टरी (Metre Gauge Coach Factory)

३. इन्टीग्रल कोच फैक्टरी (Integral Coach Factory-Furnishing Unit)

४. गुना तथा उज्जैन के बीच मे नई रेल लाइन का निर्माण।

रेलवे बोर्ड ने इस बात पर अपनी स्वीकृति दे दी है कि विदेशी विनिमय मे ४८ करोड रुपए की बचत की जाय। इसके बारे मे योजना के प्रारम्भ मे कोई ध्यान नही दिया गया था। लक्ष्यो की पूर्ति के सम्बन्ध मे ऐसी आशा व्यक्त की जाती है कि सन् १९६०-६१ तक रेलें ४२ मिलियन टन अतिरिक्त माल की ढुलाई करने मे समर्थ हो जाएगी किन्तु इस मात्रा के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। सवारी गाडियो के सम्बन्ध मे जो ३ प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था वह भी योजना की अवधि तक पूरा हो जाएगा। रेलवे विकास के लिए दूसरी योजना की कुल लागत, प्रथम तीन वर्षों मे हुए अनुमानित व्यय तथा आखिरी दो वर्षो मे होने वाले अनुमानित व्यय का ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत रेलवे विकास पर हुए व्यय की सारिणी

करोड रुपया

विकास कार्यक्रम	योजना मे निर्धारित लागत	१९५६-५७ का व्यय	५७-५८ का पुनर्निर्धारित व्यय	५८-५९ की बजट लागत	५६ से ५९ तक का अनुमानित व्यय	१९५९-६१ तक के व्यय का अनुमान	कुल व्यय १९५६ से ६१ तक का
रेलें	९००·००	१३४·००	१६०·००	२१५·००	५३६·००	३७५·५०	८९६·५०

नोट—इसमें २२५ करोड रुपये की वह राशि सम्मिलित नही है जो घिसाई व्यय खाते से उपलब्ध की गई है। इस ६०० करोड रु० की योजना लागत मे ३ ५ करोड रु० विशाखापट्टम बन्दरगाह रेल निर्माण की व्यय सम्मिलित है किन्तु अब विशाखापट्टम बन्दरगाह रेल निर्माण की जिम्मेदारी रेल मत्रालय से यातायात मत्रालय को सौप दी गई है। (w.e f, 1. 10. 56)

विदेशी लोग जो भारत मे परिभ्रमण के लिए आते थे उनकी सख्या मे सन् १६५१ की तुलना मे चार गुनी वृद्धि हुई। १६५८ मे पाकिस्तानियो को छोड कर ६२,२०२ विदेशी यात्री भारत में आए। १६५६ में प्रथम ग्यारह महीनो मे ७५,५१२ विदेशी यात्री भारत मे आए। रिजर्व बैंक आॉफ इण्डिया की गणना के अनुसार १६५६, ५७, ५८ मे इनसे क्रमश १५'५, १६ ०० तथा १७ ५ करोड रुपयो की आमदनी हुई।

विदेशी व्यापार (Fareign Trade)—कमेटी की रिपोर्ट मे कहा गया है कि सन् १६५६ मे विदेशी व्यापार आय मे काफी वृद्धि हुई। सन् १६५६ मे विदेशी व्यापार को ६२६ करोड की आय हुई। पिछले वर्ष की तुलना मे १०'२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। सबसे अधिक वृद्धि साल के पिछले पाँच महीनो मे हुई, यह वृद्धि ५२ करोड रुपया प्रति माह थी। जबकि १६५७ मे यह आय ५३'० करोड और १६५८ की ५३'४ करोड रुपया थी।

सन् १६५६ तक बहुत सी वस्तुओ के निर्यात मे वृद्धि हुई। सबसे अधिक वृद्धि कारखानो के तैयार माल, सूती वस्त्र, हाथ करधा क वस्त्र, चमडे की वस्तुओ तथा खाल के निर्यात मे हुई। पिछली साल से सीमेन्ट तथा कच्चे लोहे तथा कुछ इन्जीनियरिंग के सामान का निर्यात भी शुरू हो गया है।

कृषि की व्यापारिक फसलो की आय मे कोई वृद्धि नही हुई। चाय, कपास, तम्बाकू तथा तिलहन के निर्यात मे कोई वृद्धि नही हुई अपितु कुछ अंशो तक इनके निर्यात मे काफी गिरावट हुई।

राष्ट्रीय आय—राष्ट्रीय आय की वृद्धि का रूप विभिन्न क्षेत्रो मे हुए उत्पादन के विकास मे देखा जा सकता है। दूसरी योजना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे इतनी वृद्धि करना था जिससे कि देश के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाय और प्रति व्यक्ति औसत आय मे भी वृद्धि हो जाय। इस दृष्टिकोण के आधार पर योजना की ५ साल की अवधि मे २५ प्रतिशत राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना था।

सन् १६५८-५६ मे भारत की राष्ट्रीय आय, १६४८-४६ की कीमतो के आधार पर, ११,६६० करोड रुपया थी, १६५७-५८ मे १०,८६० करोड रुपया तथा १६५५-५६ मे १०,४८० करोड रुपया थी। इसी प्रकार १६४८-४६ की कीमतो के आधार पर प्रति व्यक्ति औसत आय, सन् १६५८-५६, ५७-५८ तथा ५६-५७ मे क्रमश: २६३ ६ रु०, २७७ १ रु०, तथा २७३ ६ रु० हुई। १६५८-५६ की राष्ट्रीय आय की सीमा केवल अनुमानो के आधार पर ही की गई है जो १६५६ की साल के अक्टूबर महीने तक की उत्पादन-प्रगति पर ही आधारित है।

सन् १६५७-५८ मे कृषि उत्पादन मे काफी कमी हुई जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे भी कमी हुई। इसी प्रकार कृषि उत्पादन की कमी के कारण सन् १६५८-५६ में भी राष्ट्रीय आय मे जो वृद्धि हुई वह भी पिछली वर्ष की तुलना मे काफी कम थी। १६४८-४६ की कीमतो के आधार पर १६५८-५६ मे राष्ट्रीय आय मे ८०० करोड रु० की वृद्धि हुई जिसमे ५७० करोड रु० की वृद्धि अकेले कृषि उत्पादन के कारण हुई। दूसरे शब्दो मे १६५७-५८ को तुलना मे सन् १६५८-५६ मे राष्ट्रीय आय मे ७·३ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

निम्नलिखित तालिका मे सन् १६४८-४६ की कीमतो के आधार पर पिछले ११ वर्षों की राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति औसत आय का विवरण दिया गया है :

वर्ष	कुल राष्ट्रीय आय (करोड रुपयो मे)	प्रति व्यक्ति औसत आय (रु०)
१६४८–४६	८,६५०	२४६·६
१६४६–५०	८,८२०	२४८·६
१६५०–५१	८,८५०	२४६·३
१६५१–५२	६,१००	२५०·१
१६५२–५३	६,४६०	२५६·६
१६५३–५४	१०,०३०	२६८·७
१६५४–५५	१०,२८०	२७१·६
१६५५–५६	१०,४८०	२७३·६
१६५६–५७	११,०००	२८३·५
१६५७–५८	१०,८६०	२७७ १
१६५८–५६	११,६६०	२६३ ६

प्रस्तुत तालिका से ज्ञात होता है कि दूसरी योजना के प्रथम ३ वर्षों अर्थात् १६५६-५६ तक राष्ट्रिय आय मे वास्तविक रूप से ११·६ प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि प्रतिवर्ष वृद्धि के आधार पर तीनो वर्षो मे १५ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए थी। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि प्रथम पचवर्षीय योजना काल की पाँच वर्षो की अवधि मे अर्थात् १६५१-५६ से १६५५-५६ तक राष्ट्रीय आय मे १८·४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

दोनो योजनाओ की ऊपर कही कुछ अवधि मे प्रतिव्यक्ति की औसत आय मे क्रमशः ७·३ तथा ११·१ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

वर्तमानी कीमतो के आधार पर सन् १९५८-१९५९ मे १२,४७० करोड रु० तथा १९५७-५८ म ११,४०० करोड रु० की राष्ट्रीय आय हुई जबकि १९५५-५६ मे यह आय केवल ९९८० करोड रुपया थी। इसी प्रकार वर्तमान कीमतो के आधार पर, १९५८-५९, ५७-५८, तथा ५६-५७ मे क्रमश ३१३ २, २९०'१, २९० ६ रु० की प्रतिव्यक्ति औसत आय हुई।

३१ दिसम्बर सन् १९५९ तक भारतीय जहाजरानी की वहनीय मात्रा मे अनुमानत ७'२९ लाख टन की अभिवृद्धि हुई जबकि सन् १९५८ का कुल उत्पादन ६'२८ लाख टन था। उक्त आंकडे सरकारी यातायात विभाग द्वारा प्रकाशित किए गए हैं।

प्रस्तुत वर्ष सन् १९५९-६० मे मर्चेण्ट शिपिंग एक्ट आफ १९५८ के अनुसार १ करोड रु० की लागत से जहाजरानी विकास कोष की स्थापना की गई जिसमे से कोष की समिति (Fund Committees) ने ५२ लाख र० १९५९-६० मे व्यय किए तथा ७ ३५ लाख रुपए सरकार द्वारा कर्ज के रूप मे दिए गए।

जहाजरानी उद्योग

युद्ध के बाद जहाजरानी की प्रगति होने की जो आशा की गई थी वह बहुत ही धीमी रही है। दूसरी योजना मे जहाजरानी के विकास के लिए ४५ करोड रुपया रखा गया है जिसम ८ करोड रुपया प्रथम पचवर्षीय योजना के अधूरे कार्य-क्रमो को पूरा करने के लिए रखा गया है। योजना मे १८०,००० जी० आर० टी० टन के लिए नए जहाज बनाने का निश्चय किया गया है जिससे पुराने जहाजो को हटाया जा सके। योजना की अवधि मे इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ४५ करोड रु० की अतिरिक्त आवश्यकता पडेगी।

निम्नलिखित तालिका मे जहाजरानी विकास के लिए निर्धारित राशि को बताया गया है। योजना के प्रथम ३ वर्षों का खर्च तथा अन्तिम २ वर्षों के खर्च को अलग-अलग प्रदर्शित किया गया है।

करोड रुपया

प्रकरण	कुल लागत	५६ ५७ का व्यय	५७-५८ का प्रस्तावित व्यय	५८ ५९ का बजट लागत	५६ से ५९ का अनुमानित व्यय	५९ से ६१ का अनुमानित व्यय	५६ से ६१ तक का कुल व्यय
जहाजरानी	४५ ००[1]	८'९७	९ ४३	९ ८८	२८ २८	२५'००	५४ १८

1 जिसमें जलवाहक जेहाज उद्योग मैरीन नॉटीकल इन्जीनियरिंग कालिज तथा अन्डमन द्वीप के जहाजों का खर्च सम्मिलित नहीं है।

बन्दरगाह एव गोदी (Harbours and Ports)

दूसरी पचवर्षीय योजना मे बडे-बडे बन्दरगाहो, जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, विशाखापट्टम, कोचीन तथा कांदला आदि के विकास और विस्तार के लिए ४३·५ करोड रु० रखा गया है । किन्तु समस्त बन्दरगाहो के विकास के लिए ७९·९ करोड रु० की राशि रखी गई है इसके अलावा जो अतिरिक्त धन की आवश्यकता पडेगी वह बन्दरगाहो के निजी साधनो द्वारा पूरी की जाएगी । बन्दरगाहो की निजी देन १८ करोड रुपया आँकी गई है किन्तु बन्दरगाहो के पुनर्निर्धारित कार्यक्रमो के लिए १० करोड रु० के खर्च का अनुमान लगाया गया है । इस प्रकार उपलब्ध आय के स्रोत तथा अनुमानित अतिरिक्त व्यय मे काफी अन्तर है । १०० करोड रु० के विदेशी विनिमय की जो आवश्यकता समझी गई थी उसमे से भी केवल ३५ करोड रुपया प्राप्त हो सकेगा ।

योजना मे बन्दरगाहो के द्वारा माल ढोने के सम्बन्ध मे २५ मिलियन टन से ३२ मिलियन टन प्रतिवर्ष के लदान का निश्चय किया गया । किन्तु मुख्य बन्दरगाहो द्वारा १९५८-५९ मे कुल माल का आयात-निर्यात २८·७ मिलियन टन ही हुआ जबकि पिछली साल (१९५७-५८) मे ३१ मिलियन टन माल ढोया गया ।

१९५९-६० के सरकारी बजट मे बन्दरगाहो के विभिन्न कार्यक्रमो के लिए निम्नलिखित व्यय का निर्धारण किया गया था—

१४५ लाख रुपया	कांदला बन्दरगाह के विकास के लिए ।
२८ " "	गान्धी नगर-निर्माण योजना के लिए (जो बन्दरगाह या गोदी से सम्बन्धित होगा) ।
६० ,, ,,	का ऋण कलकत्ता तथा बम्बई आदि बडे-बडे बन्दरगाहो के विकास के लिए सहायता के रूप मे दिया जावेगा ।

इसी प्रकार १९६०-६१ के केन्द्रीय बजट मे बन्दरगाहो के विकास के लिए निम्नलिखित धन-राशि निर्धारित की गई है —

१८२ लाख रु०	कांदला बन्दरगाह के लिए ।
२५ ,, ,,	गान्धी नगर-निर्माण कार्य के लिए ।
७७ ,, ,,	विशाखापट्टनम् के केन्द्रीय विकास के लिए ।

इसके साथ ही ३०० लाख रु०, बडे-बडे बन्दरगाहो के केन्द्रीय विकास कार्य-क्रम के लिए (जिसमे कि कलकत्ता और कोचीन के बन्दरगाह आते हैं) दिया जावेगा ।

इस प्रकार योजना की अवधि मे अब तक जो कार्य किए गए हैं तथा आगे के कार्य क्रम के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है उससे अनुमानो के आधार पर यह आशा व्यक्ति की जाती है कि पूरे पाँच वर्ष मे लगभग २ करोड ५० लाख टन माल का आयात हो सकेगा । इसके साथ ही इस बात का भी निश्चय किया गया है

कि बन्दरगाहो सम्बन्धी दीर्घकालीन कार्यक्रमो को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया जायेगा तथा ऐसे कार्यक्रम को, जो थोडे ही समय मे पूरे हो सकें, हाथ मे लिया जावेगा। दूसरे योजना म जो बडा ध्येय स्वीकार किया गया है उसके अनुसार पहली योजना द्वारा हाथ लिए कार्यों को पूरा किया जावगा। गोदियो का आधुनिकीकरण करके उन्हे आवश्यक सामान से सज्जित किया जायेगा जिससे देश मे होने वाले औद्योगिक एव आर्थिक विकास की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकेंगी। योजना में प्रमुख बन्दरगाहो से सम्बन्ध रखन वाले सब कार्यों के लिए ४३·५ करोड रुपया रखा गया है। जो काम पहली योजना मे शुरू किए गए कार्यक्रमो के पूरा करने के साथ किए जाएँगे उनम कुल ७६ ६ करोड रुपये खच होन का अनुमान है। समुद्री यात्रा सस्थानो के छोटे छोटे हिस्सों का विकास करने के लिए पारादीप, मगलौर और मालपी मे सबऋतु गोदियो की व्यवस्था करने के समस्त कार्यों को करन के लिए और सेतु समुद्रम योजना के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक काम करने के लिए जिसम तुतुकुडि का विकास भी सम्मिलित है, योजना म ५ करोड रु० के लगभग की व्यवस्था की गई है। योजना के अनुसार नए प्रकाश स्तम्भो का निर्माण और वर्तमान प्रकाश-स्तम्भो का आधुनिकीकरण इस दृष्टि से किया जायेगा जिससे उनको वर्तमान साधनो से लैस किया जा सके।

योजना के अन्तर्गत कुल लागत व्यय का ब्यौरा निम्नलिखित सूची मे दिया गया है जिसमें प्रथम ३ वर्षों का तथा अतिम दो वर्षों के खर्च को अलग-अलग बताया गया है—

करोड रुपया

खर्च का प्रकरण	योजना मे प्रस्तावित लागत	५६-५७ का व्यय	५७-५८ का अनुमानित व्यय	५८-५९ की बजट लागत	५६ से ५९ तक का अनुमानित व्यय	५९ से ६१ तक के खर्च का अनुमान	५६ से ६१ तक की कुल लागत
बृहद बदरगाह	४०·००* १८·००†	८·०१	८ २६	९ ००	२५·३०	१८·२०	४३·५० १८·००†

सडक यातायात

दूसरी पचवर्षीय योजना मे सडको के विकास के लिए २४६ करोड रु० रखा गया है। इसके अलावा २५ करोड रुपया केन्द्रीय सडक कोष (Central Road

---

* इसमें ३५ करोड रु० का विशाखापट्टनम का व्यय सम्मिलित नहीं है जो पहले रेलवे कार्य क्रम में सम्मिलित था।

† यह १८ करोड का राशि बन्दरगाहों के निजी आय के स्रोतों द्वारा प्राप्त की जाएगी।

Board) से प्राप्त होगा। इसमे से ६४·७ करोड रु० केन्द्रीय सडक निर्माण कार्य-क्रम के अन्तर्गत यातायात मन्त्रालय द्वारा दिया जायेगा तथा १५१·४ करोड रुपया राज्य सरकारो द्वारा खर्च किया जायेगा। योजना मे २०,००० मील लम्बी पक्की सडको का निर्माण होगा। इसके अलावा अन्य छोटी कच्ची तथा पक्की सडको, बडे-बडे पुलो तथा पुलियों का भी निर्माण होगा। यह आशा की जाती है कि इस धन राशि से नागपुर योजना के अनुसार स्थिर किया गया कार्यक्रम करीब करीब पूरा कर लिया जायेगा।

पहली पचवर्षीय योजना मे बडी राष्ट्रीय सडको के विकास के लिए जिनमे जम्मू और काश्मीर की बनिहाल सुरग भी सम्मिलित है, २८ करोड रुपया रखा गया था। दूसरी पचवर्षीय योजना मे इसके लिए ५५ करोड रुपया रखा गया है। कार्य को मितव्ययता से करने तथा निरन्तर जारी रखने के लिए योजना की अवधि मे वस्तुत ८७ करोड ५ लाख रुपया का काम हाथ मे लिया जाएगा। पहली योजना मे शुरू किए काम को जारी रखने के लिये ६०० मील लम्बी नई सडकें—एक दूसरे से आपस मे मिलाने के लिए तथा ६० बडे पुल बनाए जायेंगे। केन्द्रीय सरकार ने पहली योजना की अवधि मे राष्ट्रीय सडको के अतिरिक्त कुछ अन्य आवश्यक सडको के निर्माण का कार्य भी शुरू हुआ है। यह कार्य दूसरी योजना की अवधि मे भी जारी रहेगा। इनमे पासी बरदपुर सडक, पश्चिमी तटवर्ती सडक तथा पठानकोट ऊधमपुर के बीच की एक दूसरी सडक भी सम्मिलित है। १९५४ मे शुरू की गई वे अन्तर्राष्ट्रीय सडकें भी इस कार्यक्रम मे सम्मिलित हैं, जिनका निर्माण आर्थिक दृष्टि से आवश्यक था। विभिन्न राज्यो मे गाँवो की सडको के निर्माण एव सुरक्षा व्यवस्था और उन पर विभिन्न सूत्रो द्वारा किए जाने वाले कार्यो मे समन्वय पैदा करने के लिये पूरी सावधानी रखने के कार्य को भी दूसरी योजना के कार्यक्रम मे शामिल किया गया है।

दूसरी याजना मे सडक यातायात पर किए गए कुल व्यय की सूची

खच के प्रकरण	योजना लागत	५६–५७ का व्यय	५७–५८ का प्रस्तावित व्यय	५८–५९ का बजट अनुमान	५६ से ५९ तक का अनुमानित व्यय	५९ से ६१ तक का अनुमानित व्यय	कुल व्यय ५६ से ६१ तक का
केन्द्रीय कार्य-क्रम (केन्द्रीय प्रा० को छोडकर)	८२·००	१४·२३	१३·१५	१८ ६७	४०·०५	२९ ००	६९·०५

राज्य सरकारो की योजना (पाडिचेरी व केद्रीय प्रात समेत)	१६४ १२	२८ ४८	३१ १७	२६ ५६	८७ २१	६३ ००	१५० २१
कुल व्यय	२४६ १२	४२ ७१	४४ ३२	४२ २३	१२७ २६	६२ ००	२१६ २५

सचार और प्रसारण

योजना म सचार साधना एव प्रसारण के विकास के लिए ११० करोड रुपये की व्यवस्था की गई है जिसमे से ५१ करोड रुपया विदेशी विनियम से प्राप्त होगा। पूरे व्यय का ब्यौरे वार वणन इस प्रकार है

करोड रुपया

व्यय की विभिन मदें (Items)	कुल लागत	विदेशी विनिमय से प्राप्ति
१—डाक व तार विभाग	६३ ००	१७ ८६
२—भारताय टेलीफोन उद्योग	० ५०	० ७०*
३—वैदेनिक सचार सेवाएँ	२ ००	१ १०
४—भारतीय ऋतु विज्ञान विभाग (Indian Meteorological Deptt)	१ ५०	० ८४
५—Civil Aviation Deptt	१२ ५०	५ ६८
६—Indian Airlines Corporation	१६ ००	७ ७५
७—Air India International	१४ ५०	१६ ८२†
योग	११० ००	५० ७८

डाक व तार विभाग के कायक्रम म स्थानीय तार सेवाओ की योजना पर २६ करोड रुपया व्यय होगा और ८ ५ करोड रुपया टक फोन व सावजनिक फोनो पर व्यय होगा। बचे हुए ४२ ६४ करोड रुपये डाकखानो पर व्यय किए जायगे। इसके अलावा १ करोड ८५ लाख रुपया डाक तार विभाग अपनी आमदनी म से योजना की अवधि मे नए डाकखाने खोलने पर व्यय करेगा। इन दोनो कायक्रमा मे विदेशी विनिमय की राशि भी सम्मिलित है। स्थानीय तार सेवाओ व सम्बन्ध मे ऐसी आशा

* यह रुपया २८ लाख रुपए के अनुमानित व्यय से अलग है जिसका अधिकाश भाग उद्योगों के निजी साधनों द्वारा प्राप्त होगा।

† इसमें कुछ रकम वह भी है जो निगम के निजी साधनों द्वारा एकत्र की जायगी।

व्यक्त की गई है कि योजना की अवधि मे १,८०,००० नए फोन लगाए जा सकेंगे। योजना मे सारे देश मे ट्रक फोन की व्यवस्था का यथेष्ट रूप से प्रबन्ध किया गया है। योजना के अन्तर्गत बम्बई-दिल्ली कलकत्ता, दिल्ली अमृतसर, अम्बाला शिमला, और थाना-पूना के बीच लम्बे भूमिगत तार बिछाने का कार्यक्रम अपने हाथ मे लिया है।

टेलीफोन के विस्तार का कार्यक्रम मुख्यत देश मे टेलीफून के यन्त्र और ऐक्सचेज लाइन बनाने तथा भारतीय टेलीफोन उद्योगो के उत्पादन कार्यक्रमो पर निर्भर करता है। दूसरी योजना मे मोटे तौर पर भारतीय टेलीफोन उद्योगो के कार्यक्रम मे ४० हजार एक्सचेंज लाइन तथा ६० हजार टेलीफोन यन्त्र प्रतिवर्ष बनाने का निश्चय किया गया है। उड्डयन विभाग के लिए योजना मे १० ५ करोड रुपया की राशि निर्धारित की गई है। इसके बारे मे यह कहा गया है कि विदेशी विनिमय की कमी के कारण उड्डयन विभाग के कुछ कार्यक्रम स्थगित करने पडेंगे और इस सम्बन्ध मे योजना द्वारा प्रस्तावित रकम मे वृद्धि करनी पडेगी। उड्डयन निगम के जो दो कार्यक्रम है उनका विकास पूर्ण रूप से हो सकेगा।

प्रसारण—प्रसारण के विकास के लिए योजना मे ६ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है जिसमे से ३ ५२ करोड रुपया विदेशी विनिमय से प्राप्त होगा। योजना मे प्रत्यक भाषा के क्षेत्र मे कम से कम एक सप्रेषण केन्द्र के कायम किए जाने और देश के सभी क्षेत्रो को प्रसारण कायक्रम के अन्तर्गत लाने की व्यवस्था की गई है। दूसरी योजना का लक्ष्य यह है कि इस समय प्राप्त सेवाओ का विस्तार सभी भाषाओ के लिए यथासम्भव अधिक से अधिक क्षेत्र मे बाँट दिया जाए। राष्ट्रीय कार्यक्रमो के लिए बढती हुई माँग और राष्ट्रीय प्रसारण के देशव्यापी सप्रेषण की आवश्यकता को देखते हुए, यह प्रस्ताव किया गया है कि दिल्ली मे १००-१०० किलोवाट के शार्ट-वेव तथा मीडियम वेव सप्रेषण केन्द्र लगाए जाँय जिनसे वैदेशिक प्रसार सेवाओ की अतिरिक्त सुविधाएँ प्राप्त हो जाएँगी। इसी प्रकार कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास मे भी ५०-५० किलोवाट के सप्रेषण केन्द्र बनाए जाएँगे। देहाती क्षेत्रो म १ हजार से अधिक आबादी वाले गाँवो मे सामुदायिक अथवा पचायती रेडियो लगाए गए है। स्टुडियो तथा टेलीविजन के निर्माण कार्यक्रम को स्थगित कर दिया गया है।

योजना की अवधि मे सचार व प्रसारण सम्बन्धी निम्नलिखित व्यय होगा

मदें	योजना द्वारा प्रस्तावित लागत	५६-५७ का व्यय	५७-५८ का प्रस्तावित व्यय	५८-५९ का बजट अनुमान	५६ से ५९ तक का अनुमानित व्यय	५९ स ६१ तक के व्यय का अनुमान	५६ से ६१ तक का कुल व्यय

सचार प्रसारण	९'०० ११०'००	१'४५ १८ ५०	१'१७ २०'१४	१'३० २१'७७	३'९२ ६०'४१	२'५० ३७'००	६'५ ९७'५

९—'कोर' कार्यक्रम

(Core-project)

१९५७ मे ही इस बात की आवश्यकता समझी गई थी कि योजना की उन प्रायमिकताओ को सही रूप से प्रकट कर दिया जाय जो विदेशी विनिमय पर आधारित हैं ताकि योजना की नींव मजबूत करने वाले अर्थात् योजना की पृष्ठभूमि तैयार वाले कार्यों को सफलतापूर्वक चलाया जा सके। 'कोर' कार्यक्रम (Core Project) मे निम्नलिखित कार्य-क्रम सम्मिलित हैं· लोहा तथा इस्पात उद्योग, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के कोयला तथा लिग्नाइट (Lignite) सम्बन्धी कार्यक्रम, बड़े-बड़े बन्दरगाहो तथा रेलवे विकास के कार्यक्रम, कुछ चुने हुए विद्युत सम्बन्धी कार्यक्रम जो कि बहुत समय पूर्व से ही विदेशी सहायता द्वारा चलाए जा रहे हैं।[1]

सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमो के लिए 'Core Project' मे १९०० करोड़ रुपए की विदेशी विनिमय की राशि निर्धारित की गई है, जिसमे से करीब १,१३० करोड रुपया प्रथम तीन वर्षों मे खर्च होने की आशा व्यक्त की गई थी।

सार्वजनिक तथा निजी दोनो ही क्षेत्रो मे Core Project के अन्तर्गत ९९२ करोड के विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडेगी। इस रकम के सम्बन्ध मे विस्तृत विवरण नीचे की तालिका मे दिया गया है·

करोड रुपया

Projects	द्वितीय योजना की कुल विदेशी विनिमय की लागत	३१-३-५८ तक हुआ कुल वास्तविक व्यय	कार्यक्रम को पूरा करने के लिए आवश्यक अतिरिक्त धनराशि
इस्पात			
(अ) सार्वजनिक क्षेत्र			
१-भिलाई का इस्पात का कारखाना	८५ ६७	८०'९८	४ ९९
२-रूरकला ,, ,,	१२० ००	१०७'३५	१२ ६५
३-दुर्गापुर ,, ,,	९५'९०	९०'९०	५'००
४-मैसूर लोहे तथा इस्पात कार्यक्रम का फैरो सिल्कन उद्योग	०'६५	०'६५	... ...
(आ) निजी क्षेत्र	८६'३५	७४'४३	११'९२

कोयला			
(अ) सार्वजनिक क्षेत्र			
१—एन० सी० डी० सी० (N.C.D.C.)	१५·००	५·८३	९·१७
२—सिंगरैनी कालरीज	०३·२५	१·८५	१·४०
(आ) निजी क्षेत्र	१०·००	३·३०	६·७०
१—कोयला साफ करने के कारखाने	७ ५०	२·५०	५·००
२—(Neiveli) नेवली लिग्नाइट प्रोजेक्ट (खदान कार्य)	१०·५०	६·७०	३ ८०
रेलवे (विदेशी विनिमय की आवश्यकता वाले कार्यक्रम)	४३१·६३[1]	२५८ ००[2]	१७३ ६३[2]
बन्दरगाह (बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विजगापटनम तथा अन्य) (Dredger Pool)	३५ ००	८ ८९	२६·११
विद्युत शक्ति सम्बन्धी कार्यक्रम	६०·४०	२४ ४०	३६·००
	९६१·८५	६६५·४८	२९६ ३७

'Core Project' के सम्बन्ध मे आवश्यक विदेशी विनिमय की अन्य जरूरतो के लिए ८० करोड रुपया रखा गया है जिसमे से कटौती करने की कोई घोषणा नही की गई है। इस प्रकार द्वितीय योजना मे अधिकाधिक प्रयत्न इस बात का किया गया है जिसमे 'Core Project' की सभी मदो को विदेशी सहायता सम्बन्धी अपनी (निजी) जरूरतो को बिना किसी हिचकिचाहट के पूरा करने का सुअवसर मिल सके तथा जो योजनाएँ विदेशी सहायता प्राप्त करने मे असमर्थ रहेगी उनके लिए सरकार द्वारा निर्धारित विदेशी विनिमय से सहायता दी जावेगी।

१०—सामाजिक सेवाएँ
(Social Services)

प्रत्येक स्वतन्त्र देश की केन्द्रीय सरकार का यह कर्तव्य है कि देश के आर्थिक विकास के लिए समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यो को वह स्वय पूरा करे। इस प्रकार समाज कल्याण सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यो का व्यय सरकार स्वय सहन करती है। ऐसे समय मे, जबकि किसी देश का तीव्रगति से व्यापक पैमाने पर, औद्योगिक विकास किया जा रहा हो, समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों को करना नितात आवश्यक है जिससे कि रहन-सहन के स्तर मे जो विषमताएँ हैं व दूर हो जायें तथा सबको उन्नति

१. विद्युत सम्बन्धी विदेशी सहायता का पूरा विवरण सिचाई एवं जल विद्युत विभाग के तृतीय अनुभाग में दिखलाया गया है।

२ इसमें रेलवे विद्युतीकरण कार्य क्रम के अंतर्गत हुए डाक व तार सम्बन्धी जरूरतों का ९·६२ करोड़ रु० भी सम्मिलित है।

करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें और नए विकास कार्यों से अधिक से अधिक लोगों को लाभ प्राप्त हो। सामाजिक सेवाओं के कार्य क्षेत्र में सरकारी साधनों के अलावा अन्य साधनों जैसे व्यक्तिगत सेवा कार्य, स्थानीय सामुदायिक विकास कार्य तथा स्वेच्छाचारी श्रम से भी प्रगति होगी। जनतन्त्रीय प्रणाली का दावा है कि देश के अन्दर वर्तमान सभी साधनों को अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करना चाहिए। द्वितीय योजना के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा सामाजिक कल्याण के लिए जो साधन प्रदान किए जाएँगे उनसे ९४५ करोड़ रुपये की आय होगी अर्थात् योजना की कुल लागत का १९·७ प्रति भाग सामाजिक सेवाओं पर खर्च किया जायेगा। इसमें से ४५६ करोड़ रुपया राज्य सरकारों द्वारा खर्च किया जायगा तथा ३६६ करोड़ रुपया केन्द्रीय सरकार द्वारा व्यय किया जावेगा। सामाजिक सेवाओं की विभिन्न मदों पर योजना में जो रकम निर्धारित की गई तथा १९५८-५९ में जो उसका पुनर्निर्धारण किया गया उसका ब्यौरा निम्न लिखित तालिका में दिया गया है।

विभिन्न सामाजिक सेवाएँ	द्वितीय योजना की प्रस्तावित लागत व्यय			योजना द्वारा दुबारा निर्धारित की गई धन राशि (व्यय)		
	कुल व्यय	केन्द्रीय व्यय	राज्यों का व्यय	कुल व्यय	केन्द्रीय व्यय	राज्यों का व्यय
१—शिक्षा	३०७	९५	२१२	२८५	७५	२१०
२—स्वास्थ्य	२७४	९०	१८४	२५५	७५	१८०
३—गृह-निर्माण	१२०	४७	७३	१००	२७	७३
४—पिछड़ी जातियों का कल्याण	९१	३२	५९	८३	२४	५९
५—पुनर्वास	९०	९०	...	९०	९०	....
६—सामाजिक कल्याण श्रम, श्रम-कल्याण तथा शिक्षित बेरोजगारी का कार्यक्रम	६३	४२	२१	५०	३०	२०

सन् १९५९ में योजना पर जब पुनर्विचार हुआ तो सामाजिक सेवाओं के लिए १८ प्रतिशत खर्च की व्यवस्था की गई जबकि योजना का लक्ष्य १९·७ प्रतिशत खर्च का था जैसा कि उपर्युक्त तालिका को देखने से विदित होता है।

शिक्षा (Education) :

आर्थिक विकास की गति जितनी तेज की जा सकती है और उससे जो लाभ उठाए जा सकते हैं, उनको निश्चित करने में शिक्षा-पद्धति का विशेष महत्त्व होता

है। इसी उद्देश्य से दूसरी पचवर्षीय योजना मे शिक्षा के तीव्र विकास के लिए ३०७ करोड़ रुपए की व्यवस्था की है जबकि पहली योजना मे केवल १६६ करोड़ रुपए की धनराशि रखी गई थी।

सन् १६५६-५७ मे शिक्षा के विकास पर २३ करोड रुपया खर्च किये गये। १६५७-५८ मे बढकर ये खर्च ३७ करोड रुपये हो गया और करीब ५० करोड रुपया सन् १६५८-५६ मे व्यय हुआ। वर्तमान प्रगति के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि तक शिक्षा पर केवल १०६ करोड रुपए खर्च किये जा सकेंगे जबकि योजना मे ३०७ करोड रुपया खर्च करने का लक्ष्य रखा गया था। इसमें से करीब २७ करोड रुपया राज्यों द्वारा तथा ८० करोड रुपया केन्द्रीय सरकार द्वारा व्यय किया जायगा। निम्नलिखित तालिका मे योजना की प्रथम तीन वर्षो की शिक्षा-प्रगति का ब्यौरा दिया गया है.

प्रकरण (Item)	इकाई	पचवर्षीय योजना लक्ष्य	१६५६-५७ की प्रगति	१६५७-५८ की वास्तविक प्रगति	१६५८-५६ की प्रगति का निर्धारित लक्ष्य	१६५६ से ५६ तक प्रगति
१—विभिन्न आयु वालो के लिए स्कूल सम्बन्धी सुविधाएँ	लाख					
६—११	,,	७७·२८	२०·००	२१·२५	२२·५०	६३·७५
११—१४	,,	१२ ६३	२·७०	३·००	३·३५	६·०५
१४—१७	,,	७ ६७	२·६०	२·६०	२·६०	७·८०
२—शिक्षा सस्थाएँ	कुल					
१—प्राइमरी स्कूल	सख्या	५२,७६२	२२,२००	२३,६००	२५,०००	७०,८००
२—जूनियर बेसिक मिडिल स्कूल	,,	२७,४४०	-,६५०	४,७००	६,७००	१४,०५०
३—सीनियर बेसिक मिडिल स्कूल	,,	३,४५५	१,३५०	१,५००	१,६७५	४,५२५
४—हाई स्कूल या हायर सेकेण्डरी (उच्चतर माध्यमिक विद्यालय) स्कूल	,,	१५२५	१,४४०	१,४४०	१,४४०	४,३२०
५—बहु उद्देशीय शिक्षा सस्थाएँ	,,	८३७	११७	१३३	१५०	४००

तक्नीकी शिक्षा (Technical Education) के लिए योजना मे ४८ करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी जो बढा कर ५७ करोड कर दी गई। इस कार्यक्रम पर प्रथम तीन वर्षों मे २२ करोड रुपया खर्च किया गया। अभियता अधिकारी समिति (Engineering Personnel Committee) ने तक्नीकी शिक्षा के विकास के लिए डिग्री पाठ्यक्रम की २,७६४ सीटें तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमे (Diploma Courses) की ८,२२१ सीटें बढाने की सिफारिश की। प्रस्तुत सीटे वर्तमान शिक्षा सस्थाओ का विस्तार करके बढाई जाएँगी। १८ नये विद्यालय तथा ६२ प्रशिक्षण सस्थाएँ स्थापित की जाएँगी। प्रस्तुत तालिका म योजना के प्रथम तीन वर्षों की शिक्षण सस्थाओ की प्रगति का विवरण दिया गया है, जिससे विदित होता है कि शिक्षा विकास क वर्तमान लक्ष्य, पूर्व निर्धारित लक्ष्यो से काफी बढा चढा कर घोषित किए गए है :

विकास का कार्यक्रम	१९५६-६१ की योजना का लक्ष्य	Original Est (वास्तविक अनुमान)	१९५६-५७ की प्रगति	१९५७-५८ की प्रगति	१९५८-६१ का सामयिक लक्ष्य (Provisional targets)
इजीनियरिंग कॉलेज (सख्या)		१६	८	२	६
अतिसित प्रशिक्षण	१०१०	५४८८	८४०	२६४६	२००२
प्रोद्योगिक बहुउद्द-शीय प्रशिक्षण सस्थाएँ (Polytechnics) (सख्या)	२३	५५	११	१२	३२
अतिरक्त प्रशिक्षण	२६००	११७९६	१३२०	५६७०	४८०६

कमेटी की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसम देहाती क्षेत्र मे और अधिक प्राथमिक एव प्रारम्भिक पाठशालाए खोलने का सुझाव दिया गया है। इसके लिए अधिक अध्यापको की नियुक्ति की सिफारिश की गई है। योजना मे २३४,००० प्राथमिक पाठशालाओ के अध्यापको की नियुक्ति का लक्ष्य रखा गया था, उसमे से करीब २००,००० अध्यापको की नियुक्ति योजना के प्रथम तीन वर्षो मे हो की गई। शिक्षा की वर्तमान बढती हुई माँग को देखकर यह कहना कठिन है कि अभी कितनी और पाठशालाए खोली जायँ और कितने व्यक्तियो को प्राथमिक पाठशालाओ के लिए अध्यापन कार्य का प्रशिक्षण दिया जाय। फिर अब तक की हुई प्रगति को देखकर ऐसी आशा व्यक्त की जाती है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे काफी व्यक्तियो को प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षित कर दिया जावेगा।

स्वास्थ्य (Health) :

द्वितीय योजना मे स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमो के लिए २७४ करोड रु० की व्यवस्था की गई थी , जिसमे से १०८ करोड रु० योजना के प्रथम तीन वर्षो मे खर्च हुआ । इसमे से ६८ करोड रु० राज्यो द्वारा तथा ४० करोड रुपया केन्द्र द्वारा व्यय किया गया। केन्द्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित मदो पर खर्च किया गया .— मलेरिया नियन्त्रण, शहरी जल व्यवस्था, आरोग्य-शिक्षा, चिकित्सा प्रशिक्षण एव परिवार नियोजन। राज्यो द्वारा अस्पताल तथा शफाखाने, शहरी तथा ग्रामीण जल व्यवस्था एव स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यो, रोगो की रोकथाम तथा प्रशिक्षण आदि कार्यो पर व्यय किया गया ।

दूसरी योजना मे करीब ३००० प्राथमिक स्वास्थ्य सस्थाए खोलने का विचार किया गया, जिनमे से ११२० सस्थाए सामुदायिक विकास कायक्रम के अन्तर्गत तथा बाकी को राष्ट्रीय प्रसार खडो के अन्तर्गत स्थापित की जायेंगी । करीब ६०० प्राथमिक सस्थाए योजना के प्रथम दो वर्षो मे स्थापित की गई । योजना की अवधि मे ६ नये मेडीकल कॉलिज खोलने तथा १४ पुराने कॉलिजो का विस्तार करने का प्रस्ताव रखा गया था। इसी कायक्रम मे २५०० परिवार नियोजन केन्द्र खोलने का विचार था। सन् १९५८-५६ तक करीब ६३५ परिवार नियोजन केन्द्र स्थापित किए गये। स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए सशोधित व्यय की राशि २५५ करोड रु० रखी गयी।

११—गृह-निर्माण कार्य

(The Housing Programme)

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गृह-निर्माण कार्य के लिए १२० करोड रुपए की राशि निर्धारित की गई। योजना मे इस कार्यक्रम के लिए कुल प्रस्तावित व्यय एव मकानो की सख्या का विवरण निम्नप्रकार है —

विवरण	योजना द्वारा प्रस्तावित व्यय (करोड रु०)	पचवर्षीय नियोजन का लक्ष्य (मकानो की सख्या)
१—सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास	४५	१,२८,०००
२—कम आय वालो के लिए आवास	४०	६८,०००
३—बागान मजदूरो के लिए आवास	२	११,०००
४—गन्दी बस्तियो को हटाने और हरिजनो के लिए आवास	२०	१,१०,०००
५—ग्रामीण आवास	१०	१,३३,०००
६—मध्यम आय वाले लोगो के लिए आवास	३	

अनुमान है कि द्वितीय योजना के प्रथम ३ वर्षों मे करीब ४० करोड रु० खर्च हुआ। सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास कार्यक्रम के अन्तर्गत १९५६-५९ मे ४२,६०० इकाइयों का निर्माण, कम आय वालो के लिए आवास कार्यक्रम मे ३२,३०० इकाइयां तथा गन्दी बस्तियों को हटाने और हरीजनो के लिए आवास मे २२,००० इकाइयो का निर्माण हुआ। ग्रामीण आवास का कार्यक्रम सन् १९५८-५९ से आरम्भ किया गया। गृह-निर्माण के लिए सशोधित व्यय की धन राशि १०० करोड रु० रखी गई है अर्थात् निर्धारित व्यय म २० करोड रुपए की कटौती की गई। गृह-निर्माण के लिए जो ८४ करोड रुपया रखा गया था, उसमे से ६४ करोड रुपया राज्य सरकारो द्वारा तथा २० करोड रुपया केन्द्रीय सरकार द्वारा खर्च किया जायेगा। विभिन्न मदो पर राज्य तथा केन्द्र द्वारा व्यय की जाने वाली धन राशि का विवरण नीचे की तालिका मे दिया जाता है.

करोड रुपया

गृह निर्माण कार्यक्रम	केन्द्र द्वारा व्यय	राज्यो द्वारा व्यय
सहायता प्राप्त औद्योगित आवास	२ ५	२४·५
ग्रामीण आवास	६ ०	० २
गन्दी बस्तियो को हटाने का कार्यक्रम	११ ५	४ ०
बागान मजदूरो के लिए आवास	...	०·६
कम आय वाले लोगो के लिए आवास	...	३५ ०

व्यय के उपर्युक्त प्रकरण एव धन राशि को देखने से पता चलता है कि योजना के अतिम वर्षो मे आवास के विभिन्न कार्यक्रमो की गति काफी धीमी रहेगी जैसा कि सन् १९५८ ५९ के लिए निर्धारित व्यय मे काफी कटौती की गई। इसी आधार पर अन्य सालो मे भी कटौती करने का अनुमान है।

१२—अन्य सामाजिक सेवाएं
(Other Social Services)

इस कार्यक्रम मे पिछले वर्गो का कल्याण, समाज कल्याण सेवाएं तथा श्रमनीति के कार्यक्रम सम्मिलित है। पिछले वर्गो के कल्याण के लिए दूसरी योजना मे ९१ करोड रु० के व्यय की व्यवस्था की गई, जिसमे से ५९ करोड रुपया राज्यो द्वारा तथा ३२ करोड रुपया केन्द्र द्वारा व्यय करने का लक्ष्य रखा गया। सन्

१९५६ से ५९ तक इस कार्य पर करीब ३५ करोड रुपया खर्च हुआ। १९५८-५९ में सशोधित व्यय की राशि ८३ करोड रुपया रखी गई है जिसमे से ५९ करोड रुपया राज्यो द्वारा व्यय किया जावेगा। समाज कल्याण कार्य, श्रमनीति कार्यक्रम तथा शिक्षित बेरोजगारी को दूर करने के सम्बन्ध मे १९५६ से ५९ तक करीब १५ करोड का रु० खर्च किया गया। इस सम्बन्ध मे योजना के अन्तिम वर्षो के कार्यक्रम के लिए सन् १९५९-६० मे एक घोषणा की गई, जिसके अनुसार योजना के कार्य-काल मे दस्तकारी प्रशिक्षण का लक्ष्य ३०,००० मनुष्यो से बढाकर ५०,००० मनुष्य कर दिया गया।

अध्याय १६

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—आलोचनात्मक अध्ययन

(Second Five Year Plan—A critique)

दूसरी पंचवर्षीय योजना के मसविदे पर विचार करने का कार्य अप्रैल सन् १९५४ मे आरम्भ हुआ तथा १९५६ मे इस पर कार्य आरम्भ किया गया। उस समय से लेकर अब तक योजना की कटु आलोचना की गई। आलोचना के कुछ अग तो बिलकुल निराधार एव भद्दे हैं लेकिन आलोचना के कुछ अश तो ऐसे हैं जो समय और साधनो की दृष्टि से उपयुक्त एव सत्य हैं।

सर्वप्रथम द्वितीय पचवर्षीय योजना को विशद रूप से महत्वाकांक्षी योजना बतलाया गया। इसके बारे मे यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि द्वितीय पचवर्षीय योजना का प्रस्तावित व्यय ४८०० करोड है जबकि प्रथम योजना मे केवल २२४८ करोड रुपए की धन राशि ही थी। इस प्रकार द्वितीय योजना का लागत व्यय पहली योजना की तुलना मे दुगुना हो गया। लागत व्यय म हुई दुगुनी वृद्धि ने हमारी अर्थव्यवस्था को बहुत बुरी तरह से प्रभावित किया। क्याही अच्छा होता यदि योजना पर अंतिम निर्णय करने से पहले योजना अधिकारी निम्नलिखित तथ्यो को ध्यान म रखते —

१—देश में पूँजी की वर्तमान वृद्धि की दर को देखते हुए क्या यह सम्भव है कि योजना लागत के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए है वे प्राप्त हो जाएगे ?

२—क्या घाटे की अर्थ व्यवस्था करने से तथा नोटो के अधिक प्रचलन से मुद्रा प्रसार (Inflation) में वृद्धि नही होगी ?

३—क्या हम आशा करें कि दूसरी योजना मे विदेशी सहायता की जो आवश्यकता अपेक्षित समझी गई है, वह हम पूर्व रूप से मिलती रहगी और उसम कोई गडबडी नही पडेगी ?

४—योजना म समाजवादी समाज का जो लक्ष्य रखा गया है उसके अन्तर्गत राष्ट्र के मुख्य मुख्य तथा महत्वपूर्ण उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की नीति से तथा "सभी उद्योगो का १० वर्ष के अन्दर राष्ट्रीयकरण कर दिया जावेगा" की घोषणा से क्या यह आशा की जा सकती है कि निजी क्षेत्र के लिए योजना

मे जो पूँजी के विनियोग की दर निश्चित की गई है, वह निर्धारित दर पर मिलती रहेगी ?

५—क्या योजना मे निर्धारित राष्ट्रीय आय की दर को प्राप्त किया जा सकता है ? इस सम्बन्ध मे बी० आर० शिनॉय ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया है ' it is built on the basis of 25 to 27 per cent increase in the National Income in 5 years This would require an increase in net investment from 6 75 per cent of the National Income to 10 95 per cent in 1960 61' [1]

दूसरी योजना के पाँच वर्षों मे राष्ट्रीय आय मे २५ प्रतिशत से २७ प्रतिशत तक वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए सन् १९६०-६१ तक विनियोग की दर मे ६ ७५ प्रतिशत से लेकर १० ९५ प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी किन्तु अगर हम नीचे की तालिका को देखें तो मालूम होगा है कि हमारे ध्येय बहुत ही ऊँचे तथा अप्राप्य है .

विशुद्ध घरेलू पूँजी के उत्पादन की तालिका

करोड रुपया

वर्ष	शुद्ध घरेलू पूँजी उत्पादन	राष्ट्रीय आय	दूसरे कालम का तीसरे पर प्रतिशत
१९४८-४९	४४६	८,५५०	५ २
१९४९-५०	५२४	९,०००	५ ८
१९५० ५१	५८९	९,५००	६ २
१९५१-५२	६७२	१०,०००	६ ७
१९५२-५३	६५९	९,८००	६ ७
१९५३-५४	७१९	१०,५००	६ ८

(B R Shenoy)

'योजना आयोग इन प्रश्नो का सतोषजनक उत्तर देने मे समर्थ नही , क्योकि वह 'अनाप शनाप' खर्च को सही साबित करने मे असमर्थ रहा । दूसरी योजना समाप्त होने को है और अगर कोई दैवी घटना घटित न हो तो योजना काल मे उसके आदर्श प्राप्त नहीं किए जा सकते , जैसा कि योजना आयोग ने अब आकर स्वय अनुभव किया है। योजना आयोग की विज्ञप्ति मे—जो जून सन् १९६० को प्रकाशित हुई थी—कहा गया था कि "कुछ विशिष्ट कार्यक्रमो को छोडकर योजना के शेष उद्देश्य अधूरे रह जायेंगे।"

1 B R Shenoy, in his note of dissent to the Planframe of Second Plan

हमारे देश की जनता के प्रत्येक वर्ग म इस महत्त्वाकांक्षी अनुमानित योजना की सफलता के बारे म काफी सन्देह व्याप्त है। लोगों की यह धारणा है कि अगर नौकरशाही पद्धति एव सगठन पर ही अधिक जोर दिया गया तो योजना के लक्ष्य कभी प्राप्त नही हो सकते क्योंकि भारत की शासन पद्धति इतनी अनुशासित एव योग्य नही है कि योजना म निर्धारित सम्पूर्ण अनुमानों (gues es) को पूरा कर सके। इतनी सहज कल्पना प्रथम योजना की उन्नति को देखकर की जा सकती है (¹) जैसा कि प्रथम पचवर्षीय योजना का लक्ष्य निर्धारित करते समय कहा गया था कि वर्तमान शासन पद्धति से, अथवा इसके थोडे से परिष्कृत रूप से अच्छे परिणामो की आशा करना व्यर्थ है

योजना के लक्ष्य प्राप्त करने के बारे म एक और बडी कठिनाई जन सहयोग की है कि दूसरी पचवर्षीय योजना के बारे म सरकार ने तरह तरह का प्रचार किया किन्तु फिर भी वह जनता को विश्वास दिलाने म असमर्थ रही कि पचवर्षीय योजना द्वारा सरकार जो कुछ कर रही है वह जनता की भलाई के लिए ही है। इसका एक कारण सच्चे नेतृत्व (Leadersh p) का अभाव है। ए० हैरी (Harry A) ने सच्चे प्रजातान्त्रीय नेताओ के जो गुण बतलाए हैं वे भारत के अधिकाश नेताओं म नही मिलते—

नेता वह होता है जो विचारो को कायरूप म परिणत करदे [1]

एक नेता म चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो क्रियात्मक शक्ति होनी चाहिए। उसे केवल विचारशील नही होना चाहिए—साथ ही केवल ऐसे विचार नही रखने चाहिए जो औसत रूप से वास्तविकता स परे हो—उसके अन्दर उन विचारो को काय रूप म परिणत करने एव व्यवहारिक बनाने की भी क्षमता होनी चाहिए अर्थात् विचार एव भावना म सामजस्य स्थापित करने की क्षमता होनी चाहिए। भारत के अधिकाश नेताओ मे ये गुण नही पाए जाते यही कारण है कि उनके द्वारा निर्धारित योजनाए एव विचार कोरे आदर्श बन कर रह जाते हैं। इस प्रकार इन योजनाओ का सफलता के लिए जो जनता का समर्थन अपेक्षित है वह नही मिल पाता। अपने देश की योजनाओं के लिये प्राप्त इस जन सहयोग की अगर हम अन्य देशों—जैसे पोलण्ड सयुक्त अरब गणराज्य चीन जनतन्त्र तथा सोवियत रूस म प्राप्त जन सहयोग—से तुलना करें तो हम पाते हैं कि वहा की जनता म नियोजन के प्रति विशेष उत्साह एव लगन है जिसके कारण वहा की योजनाए सवदा सफल रहता है और योजना के लक्ष्य समय से पहले ही पूरे हो जाते हैं।

---

1. The leader is one who must turn ideas into accomplishment (HARRY A OVER Street in leadership Democracy)

(Continued on page 327)

दूसरी पचवर्षीय योजना मे भ्रष्टाचार, पक्षपात, 'भाई भतीजावाद' (Nepotism) और कुछ अशो तक जातिवाद एव प्रान्तीयता को दूर करने का कोई प्रयत्न नही किया गया । परिणामस्वरूप योजनाएँ व्यापक रूप से असफल रही है । परम्परानुसार सरकारी उच्च अधिकारी सरकारी धन को शोषण का प्रमुख साधन मान कर खूब दुरुपयोग करते है और आम जनता भी उन्ही का अनुसरण करती है । इस प्रकार वे लोग सरकारी रुपये को निजी खर्च मे लाते हैं । इस अन्दरूनी कमजोरी के कारण देश शनै शनै अवनत अवस्था को प्राप्त होता जा रहा है । जैसा कि महान् इतिहासकार—टॉयनवी (Toynbee) का कथन है —"ससार की महान् सभ्यताओ के नष्ट होने के कारण, बाहरी आक्रमण न हो कर देश के अन्दर व्याप्त आन्तरिक भ्रष्टाचार होते है ।"[1] यद्यपि योजना आयोग ने इस बात का उल्लेख किया है किन्तु उसने यह नही बतलाया कि इस भ्रष्टाचार को समाप्त करने अथवा सरकारी धन व सामग्री का शोषण रोकने के लिए क्या कदम उठाय जायँ ?

दूसरी पचवर्षीय योजना की एक अन्य मुख्य कमजोरी साख्यिकी पर अधिक बल देने के सम्बन्ध मे है । अधिकतर सरकारी आँकडो एव विभिन्न विकास कार्यो की गणना साँख्यिकी के आधार पर की जाती है । परन्तु हमारे देश मे साँख्यिकी के जो आँकडे प्राप्त है वे काफी कम, दोषपूर्ण एव अधूरे है, इस प्रकार इन दोषपूर्ण सूचनाओ के आधार पर जो गणना की जाती है उससे विश्वसनीय परिणाम प्राप्त नही होते ।

'समाजवादी समाज' की स्थापना के साथ ही योजना मे मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) को अपनाने का आश्वासन दिया गया, किन्तु इस आदर्शपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए योजना मे जो कदम उठाये गये, वे कडी आलोचना के विषय बन गए, जैसा कि योजना मे वर्णित शब्दो से विदित होता है

"नवीन उत्पादक वस्तु उद्योगो (New Producers' goods Industries) का विकास मुख्य रूप से सावजनिक क्षत्र मे होगा निजी क्षत्र प्राथमिक उद्योग जैसे—सीमेंट तथा रासायनिक वस्तुओ के उत्पादन के विकास मे महत्वपूर्ण योग दान देता रहेगा"[2]

(*Continued from page 326*)

a leader in any field must have creative courage He must not have only ideas that go beyond the average and beyond what is accepted—He must be willing and able to put them to a test "

1 The great civilization are destroyed not as a result of external aggression but as a consequence of inner corruption "
—*Toynbee*

2. ' The new producers' goods industries would be developed in the public sector The private sector would continue to play an important part in the development of basic Industries like cement, chemicals etc "

सन् १६४८ की औद्योगिक नीति के अनुसार—जिसकी कि दिसम्बर सन् १६५४ मे व्याख्या की गई थी—"मूल और सामरिक महत्त्व के सारे उद्योग और लोकोपयोगी सेवाओ का विकास सार्वजनिक क्षेत्र मे होगा। अन्य ऐसे उद्योग भी जो राष्ट्रीय विकास के लिये परमावश्यक है और जिनके लिये ज्यादा पूँजी की आवश्यकता होती है, सार्वजनिक क्षेत्र मे ही चलाए जायेंगे।"[1]

समाजवादी ढग की समाज व्यवस्था के द्रुत विकास के लिए निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक विकास आवश्यक है" सार्वजनिक आय की वृद्धि के लिए सरकार आवश्यकता पडने पर किसी भी उद्योग को अपने हाथ मे ले सकती है—इनमे बैंक, बीमा (Insurance), कुछ चुनी हुई वस्तुओ के विदेशी व्यापार तथा आन्तरिक व्यापार सम्बन्धी कार्य हैं। ''' कर प्रणाली का इस तरह से निर्धारण हो और ऐसे परिवर्तन किये जायें कि समाज के पास उद्यम करके जो वैधानिक फायदे की रकम बचे उसका अधिक से अधिक हिस्सा सार्वजनिक सत्ता के हाथ मे आए। ''''''सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया जाय।[2]

दूसरी योजना मे वर्णित उपर्युक्त कुछ उद्धरणो से सिद्ध होता है कि दूसरी पचवर्षीय योजना मे निजी क्षेत्र के लिये विनियोग एव विकास के लिये जो धन-राशि निर्धारित की गई थी वह काफी कम थी। हमारा मुख्य लक्ष्य पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से धीरे धीरे समाजवादी अर्थ व्यवस्था की ओर अग्रसर होना है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि हम सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करें। इसके लिए और भी रास्ते हैं।

यह तो सर्वविदित है कि पूँजी निर्माण मे अभी कोई विशेष वृद्धि नही हुई है और वर्तमान आर्थिक ढाँचे मे विकास की दर को देखते हुए भविष्य मे भी इसमे वृद्धि होने की कोई सम्भावना नही है। इसके साथ ही साथ योजना मे राष्ट्रीय आय

---

1 "Key Industries would be established and developed in Public Sector generally in accordance with the Industrial Policy Declaration of 1948 as interpreted on December 1954. Government would also take up the production of certain consumers goods, which are of strategic importance for the growth of National Economy."

2 The Public Sector must be expanded rapidly and relatively faster than the Private Sector for a steady advance to a Socialistic Pattern of Society to increase income, the government will be prepared to enter into such activities as banking, insurance, foreign trade or internal trade in selected commodities . . the taxsystem would be directed towards collection of an increasing part of the growing national income. the Public sector will be extended ." Second Five Year Plan—Target (aim)

की वृद्धि का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है उसके प्राप्त होने की भी बहुत कम सम्भावनाएँ हैं।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे विभिन्न विकास कार्यों के लिए विदेशो से काफी पूँजी तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी सहायता अपेक्षित समझी गई है किन्तु परिवर्तनशील राजनैतिक वातावरण में, जब कि देश तीव्र गति से समाजवादी अर्थव्यवस्था की ओर बढ रहा हो, विदेशो से किसी प्रकार की पूँजी सम्बन्धी या तकनीकी सहायता प्राप्त करना एक दम असम्भव नही तो भ्रामक अवश्य है। यह बात मुख्य रूप से पश्चिमी गुट—जो पूर्ण रूप से पूँजीवादी विचारधारा के अनुयायी तथा समर्थक हैं सम्बन्ध में कही जा सकती है।

निजी पूँजी की प्राप्ति भी अनुमानित दर पर प्राप्त नही हो सकेगी। क्योकि पूँजी का विनियोग खास तौर से उन उद्योगो में बहुत कम होगा जो प्राथमिक महत्त्व के हैं, किन्तु जो निकट भविष्य में सरकार द्वारा चलाये जाने वाले हैं। इसका परिणाम यह होगा कि बहुत सी पूँजी यातो बेकार पडी रहेगी अथवा उन उद्योगो की ओर उन्मुख होगी जो महत्वपूर्ण नही है। यही नही, दूसरी पचवर्षीय योजना में उत्पादन तथा उपभोग पर विभिन्न प्रकार के कर लगाए गए है जिनकी दर भी बहुत अधिक है। आज चारो ओर बेरोजगारी फैली हुई है और प्रतिव्यक्ति औसत आय भी बहुत कम है, दूसरे बढती हुई कीमतो की वृद्धि के कारण लोगो के रहन सहन का खर्च बहुत बढ गया है, जिसके फलस्वरूप ऐसे लोग बहुत ही कम रह गए है जो बचत कर सकते हैं। यह तो सुनिश्चित है कि बिना बचत के पूँजी का निर्माण नही हो सकता और बिना पूँजी के निजी क्षेत्र में विनियोग नही बढ सकता।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे सर्वसाधारण की दिन प्रति दिन की समस्याओ की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया—मुख्य रूप से प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि की ओर अपर्याप्त ध्यान दिया गया है। जीवनोपयोगी वस्तुओ, जैसे रोटी, कपडा और मकान आदि की पूर्ति के लिए बहुत कम ध्यान दिया गया है, जिससे विदित होता है कि उपभोग स्तर को तो एक दम भुला दिया गया है।

गृह निर्माण की समस्याएँ[1]—आजकल हमारे देश मे मकानों की भारी कमी की समस्या उत्पन्न हो गई है। यह समस्या अनाज की कमी की समस्या से कम महत्त्वपूर्ण नही है। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि हमारे देश की अधिकाश जनता गरीब तथा आर्थिक रूप से पिछडी हुई है, जिसके फलस्वरूप उपलब्ध साधनो का वाछित लाभ नही उठाया जा सकता। समाज मे अच्छे मकान की बडे पैमाने पर कमी है; किन्तु यह कारण तो उस पेचीदा समस्या का केवल एक पहलू है। जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि ने, दूसरे महायुद्ध तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास के कारण औद्योगीकरण के विकास ने, तथा देश के बँटवारे के कारण

1. S D. Punekar : Hindustan Times, dated 3rd April, 1960

पाकिस्तान से आए हुए हजारों शरणार्थियों ने, शहरों तथा देहातों में विद्यमान मकानों की समस्या को, और भी जटिल बना दिया है।

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार हमारे देश में उस समय ६४४ मिलियन मकान थे जिनमें मनुष्य निवास करते थे। उसमें से ५४० मिलियन मकान देहातों में, तथा १०४ मिलियन शहरों तथा कस्बों में थे। इन मकानों द्वारा २९५ मिलियन देहाती जनसंख्या को आवास सुविधाएँ प्राप्त थी। आवास का औसत, ५.४ व्यक्ति प्रति मकान देहातों में तथा ६ व्यक्ति प्रति मकानों शहरों में था। प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले बीस सालों से हमारे देश की आबादी ३ से ४ प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी है, लेकिन गृह-निर्माण हर वर्ष २ से २.५ प्रतिशत तक बढ़ा है।

गृह निर्माण की समस्या, आज जिस रूप में हमारे देहातों तथा शहरों में विद्यमान है, वह स्वभाव, परिणाम तथा महत्त्व की दृष्टि से भिन्न है। गाँवों में एक ओर तो मकानों की संख्या कम है, दूसरी ओर अच्छे ढंग के मकानों की कमी है, जबकि शहरों में मुख्य रूप से मकानों की संख्या कम है। एक मकान प्रति परिवार के अनुसार, सन् १९५१ में २.५ मिलियन मकानों की कमी का अनुमान लगाया गया था। सन् १९५१ से १९६१ तक की दशाब्दी में ८—९ मिलियन मकानों की कमी का अनुमान लगाया गया है, इस कमी का अनुमान सन् १९५१-१९६१ के बीच हुई ३३ प्रतिशत जनसंख्या की वृद्धि के आधार पर किया गया है जिसके अनुसार सन् १९६१ के अन्त तक ४४ मिलियन नये मकानों के निर्माण की आवश्यकता रहेगी। इसके अलावा पुराने मकानों का पुनर्निर्माण करने तथा गन्दी बस्तियों को हटाने के लिए ५ मिलियन मकानों की अतिरिक्त आवश्यकता महसूस की गई है। किन्तु इतनी अधिक जरूरतों के बावजूद भी दूसरी पंचवर्षीय योजना तक शहरी क्षेत्र में केवल ३ मिलियन मकानों का ही निर्माण हुआ। इस प्रकार सन्१९६१ तक ५९ मिलियन मकानों के निर्माण की कमी रहेगी (८९—३०=५९) जिसके लिए अतिरिक्त वित्तीय, प्रशिक्षण तथा समान सम्बन्धी साधनों की खोज करनी पड़ेगी।

दूसरे महायुद्ध के बाद तथा पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत से देश में व्यापार तथा उद्योग धन्धों का काफी विकास हुआ है। विशेषरूप से सन् १९५१ के बाद से शहरों के विकास के कारण तेजी से मकान निर्माण की आवश्यकता महसूस की गई है।

तेजी से विकसित होने वाली शहरी आबादी को थोड़े से समय में ही आवास प्रदान करने की समस्या ने शहरों में उपलब्ध स्थानों पर काफी प्रभाव डाला है, जिसके फलस्वरूप शहरों में मकान बनाने के प्लाटों की कीमत काफी बढ़ गई है। इसके अलावा मकानों के किराए 'गहन आवास' अस्वास्थ्यकर आवास तथा गन्दी बस्तियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। दूसरे पुराने तथा जीर्णशीर्ण मकानों

के उद्धार का कार्य भी बहुत धीमी गति से हुआ है जिसके कारण शहरी आवास की समस्या और भी अधिक जटिल हो गई है।

शहरी आवास व्यवस्था में कमी का मुख्य कारण यह है कि गृह निर्माण के लिये पूँजी विनयोग की दर काफी कम है। किन्तु इस समस्या का पूर्णरूप से जिम्मेदार केवल यही कारण नही है। पूँजी विनियोग के कमी के सदर्भ में अनेक कारण हैं, जैसे—जमीन के मूल्य मे वृद्धि, गृह निर्माण के लिए ईटों के मूल्य मे वृद्धि, जिसके फलस्वरूप शहरी पूँजी का एक बहुत बडा भाग इनमे खप जाता है। इसके अलावा, सम्पति कर उत्तराधिकारी कर तथा आय कर के अन्तर्गत मकानो से होने वाले लाभ पर सरकार ने रोक लगादी है, जिसके कारण गृह निर्माण सम्बन्धी समस्त सरकारी नियम असफल हो रहे हैं। इस प्रकार इन समस्त तथ्यों के कारण शहरो मे गृह-निर्माण तीव्र गति से नही हो रहा है।

दूसरी पचवर्षीय योजना-काल मे, शहरी गृह-निर्माण समस्या को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इसके समाधान के लिए तत्काल प्रयत्न किए गए। इस कार्यक्रम मे मुख्य रूप से कम आय वाले तथा मध्यम आय वाले लोगो के लिए और जो पाकिस्तान से भाग कर आने वाले लोगों के लिए आवास व्यवस्था को सम्मिलित किया गया। इस कार्य को इस तरह करने का विचार किया गया जिसमे लोगो की आमदनी के अनुसार उसे कम किराए पर मकान मिल सकें। साथ ही गन्दी बस्तियों को हटाने तथा गन्दगी को रोकने के लिए स्थानीय अधिकारियों को कर्ज तथा अनुदान के रूप मे दी जाने वाली धनराशि मे वृद्धि की गई। मध्यम आय वाले लोगो के लिए आवास कार्यक्रम—जिसके लिए दूसरी योजना मे ३ करोड रुपये की व्यवस्था कीगई—विशेष प्रगति नही हुई। इसके मुख्य कारण थे भूमि की स्थिति के अनुसार उसकी कीमत के निर्धारण की असुविधा, मकान बनाने योग्य भूमि की कमी, राज्य द्वारा भूमि की उचित दर निर्धारित न करना, कीमतो की वृद्धि के कारण गृह-निर्माण पर बढता हुआ व्यय तथा मजदूरी की वृद्धि आदि। कुछ राज्यों मे तो मध्यम वर्ग के लोगों के लिए उपयुक्त गृह-निर्माण कार्यो में बिलकुल लापरवाही बरती गई। इसका मुख्य कारण यह था कि उन राज्यों मे गृह निर्माण कार्य पर धन व्यय करने की जिम्मेदारी केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं को सौंपी गई। इस वर्ग से सहकारी संस्थाओं के सदस्य भी बहुत कम बने, क्योंकि एक तो बेरोजगारी के कारण इस वर्ग के लोगो पर सामाजिक भार अधिक बढ गया था, दूसरे जीवन-निर्वाह सम्बन्धी खर्च म भी काफी वृद्धि होगई थी।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत सरकार ने कम आय वाले लोगो के लिए आवास के कार्यक्रम पर २१·५३ करोड रुपया व्यय करने का निश्चय किया था, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा ४०,६४२ मकानो का निर्माण करने का लक्ष्य रखा गया था किन्तु योजना की अवधि म केवल ३,६३० मकानो का निर्माण हुआ जिन पर केवल ११ १४ करोड रुपया व्यय हुआ। द्वितीय योजना के प्रथम तीन -

वर्षों मे केन्द्रीय सरकार द्वारा ३२,३०० इकाइयो के निर्माण के लिए धन-राशि प्रदान की गई, किन्तु इन तीन सालो की प्रगति को देखने से पता चलता है कि योजना की अवधि समाप्त होने तक गृह-निर्माण कार्य के लक्ष्य प्राप्त नही हो पाएँगे। इस कार्य मे सफलता प्राप्ति न होने के कारण हैं :—१—कच्चे माल की कमी, २—विकसित भूमि की दुर्लभता, ३—इस वर्ग के लोगो द्वारा सहकारी समितियाँ न बनाना, आदि तथा इन समिति के सदस्यो मे पर्याप्त उत्साह की कमी।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के कार्यक्रम के लिए, जो सन् १९५२-५३ से शुरू किये गये थे, राज्य सरकारो ने ४½ प्रतिशत तथा ५ प्रतिशत ब्याज पर कर्ज देने तथा कुल लागत का ५० प्रतिशत व्यय ऋण के रूप मे देने का आश्वासन दिया था मालिको और औद्योगिक कर्मचारियो की सहकारी समितियो को लागत का २५% व्यय सहायता के रूप मे तथा ३७½% से लेकर ४० प्रतिशत कर्ज के रूप मे दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना म, जहाँ इस कार्य के लिए २२·६ करोड रुपए की व्यवस्था की गई थी, जिसमे से ११·७ करोड रु० सहायता के रूप मे तथा १०·९ करोड रु० कर्ज के रूप मे था, वहाँ योजना की समाप्ति तक केवल १३·३६ करोड रु० ही खर्च हुआ—अर्थात् ८·७७ करोड रु० कर्ज के रूप मे तथा ४·५९ करोड रु०, सहायता के रूप मे मिला। प्रथम योजना मे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ७९,९७९ इकाइयाँ बनाने का लक्ष्य था, जबकि योजना की समाप्ति तक कुल ४३,८३४ इकाइयो का निर्माण हुआ। कुल इकाइयो के निर्माण मे से ३७,२१७ इकाइयाँ राज्यों द्वारा, ७०७९ मालिको द्वारा, तथा ५३८ सहकारी समितियो द्वारा निर्मित की गई। १९५८-५९ तक, ४२,६०० औद्योगिक कर्मचारी-आवास-इकाइयो को कर्ज तथा सहायता प्रदान की गई।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास कार्यक्रम के विकास पर तीव्र औद्योगीकरण के सन्दर्भ म विचार करे तो हम देखते है कि द्वितीय योजना मे इस कार्यक्रम की प्रगति काफी धीमी रही। औद्योगिक कर्मचारियो को अच्छी आवास सुविधा प्रदान करने म एक कठिनाई यह है कि मजदूरी की दर कम होने के कारण वे मकानो का किराया देने मे असमर्थ है। उदाहरण के लिए पजाब मे अधिकतर मजदूर अस्वास्थ्य-कर मकानो और गन्दी बस्तियो मे रहना पसन्द करते है। उनका कहना है कि वहाँ पर साफ सुथरी मजदूर बस्तियो के मकानो का किराया देना पडता है, जो उनकी आमदनी की स्थिति को देखते हुए असुविधाजनक है।

गन्दी बस्तियो को हटाने और हरिजनो के आवास का कार्यक्रम दूसरी पंचवर्षीय योजना मे बहुत देर से शुरू किया गया। योजना मे इस कार्य के अन्तर्गत ११०,००० इकाइयो के निर्माण के लिए २० करोड रुपए की व्यवस्था की गई। इस कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार ने कुल लागत का २५ प्रतिशत सहायता के रूप मे तथा ५० प्रतिशत दीर्घकालीन ऋण के रूप मे देने का वचन दिया। गन्दी बस्तियो को हटाने का कार्य इसलिये शुरू किया गया जिससे लोगो को अधिक से अधिक कठिनाई

दूर हो जायें और उनके रहने के लिए ऐसे आवास बनाए गए जिनके लिए पैसा खर्च करने मे उन्हे अधिक मुसीबत न उठानी पडे तथा उनके रोजगार की स्थिति पूर्ववत् चलती रहे। किन्तु इस कार्य की गति भी काफी धीमी रही। इसके मुख्य कारण उपयुक्त भूमि की प्राप्ति मे विलम्ब तथा मुआवजे की ऊँची दर, प्राथमिक सामान जैसे इस्पात आदि की कमी, मेहतरो द्वारा गन्दी बस्तियों को छोडने मे उत्साह प्रकट न करना तथा, आवश्यक सेवा कार्य योग्य मैदानो की कमी आदि थे। गन्दी बस्तियों के पुनरुत्थान के लिए जो उप-समिति नियुक्त की गई, उसका कहना है कि इस कार्य की सफलता मे प्रमुख बाधा गृहनिर्माण कार्य को सचालन करने वाले लोगों मे आपसी सहयोग की कमी है।

विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास कार्यक्रम के अन्तर्गत, प्रथम पचवर्षीय योजना म पुनर्वास मन्त्रालय ने ३२३,००० इकाइयो के निर्माण के लिए प्रत्यक्ष अथवा सहायता रूप मे अपना योग दिया। दूसरी पचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों मे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ९५००० इकाइयो का निर्माण हुआ। सन् १९५१ से अब तक, शहरों तथा गांवो में मकान की इकाइयो के लिए इस मन्त्रालय ने करीब ९५ करोड रुपया कर्ज या सहायता के रूप मे व्यय किया है। पाकिस्तान से आए हुए विस्थापित व्यक्तियों ने जब से शहरों मे रहने की इच्छा प्रकट की है, तब से उनके लिए शहरों मे १९ पूर्ण विकसित बस्तियों तथा १३६ कालोनियों का निर्माण हुआ है, जिनमे विभिन्न स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी एव नागरिक सम्बन्धी अन्य अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसके अलावा करीब १,००,००० मकान की इकाइयो का निर्माण देहाती क्षेत्र मे हुआ है।

देहातों के लिए योजनाएँ—ग्रामीण गृह-निर्माण की समस्या को सुलझाने का कार्य कुछ ही वर्षों से शुरु हुआ है। इस कार्य का मुख्य अग ग्राम-नियोजन (Village Planning) को है। यह बडे हर्ष की बात है कि हमारे गावो मे गृह निर्माण की समस्या अधिक गम्भीर नही है। इसका मुख्य कारण यह है कि गाँवो की अधिकाश जनता शहरों की ओर भागती है, दूसरे गाँवो मे जनसख्या वृद्धि की दर भी काफी कम है। यह बात इस उदाहरण से स्पष्ट है कि सन् १९४१ और १९५१ के बीच ग्रामीण जनसख्या म केवल ८.९ प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि उसी समय मे शहरी जनसख्या की वृद्धि की दर ४१.२% थी। गांवा म, व्यापक क्षेत्र म, बडे-बडे मकान हैं, जो काफी लम्बे चौडे तथा पुराने जमाने के बने हुए हैं, जिनका गढी, किला, घेर या अहाता कहते हैं। इनको सुधारने का कार्य भी आवश्यक है ताकि इनमे निवास करने को अधिक से अधिक स्वास्थ्यवर्धक और आरोग्यप्रद सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें और इस कार्य को शीघ्र करने की आवश्यकता है।

इस समय ग्रामीण गृह-निर्माण कार्य के अन्तर्गत मुख्य रूप से ३ कार्यक्रम चालू हैं: १—ग्रामीण गृह योजना सम्बन्धी कार्यक्रम (Village Housing Projects Scheme) २—खेतिहर मजदूरों के लिए आवास के कार्यक्रम (Agricultural

Labour Housing Scheme) ३—देहातों में शरणार्थियों के लिए पुनर्वास सम्बन्धी कार्यक्रम (The Rehabilitation of Refugees in Rural Area Scheme) इस काय की प्रगति में भी अनेक बाधाएँ हैं, जैसे—ग्रामीण जीवन की विविध समस्याएँ, सरकारी वित्त की कमी, आदि। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय में आपस में मिल कर काय करने की भावना उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न किए जायें। साधनों की अतिरिक्त वृद्धि के लिए ग्रामीण श्रम तथा सामान में गतिशीलता उत्पन्न की जाय और सरकार से वित्त सम्बन्धी अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त की जायें।

प्राय देखने में यह आया है कि इन विकास कार्यक्रमों को करने के लिए ग्रामीण जनता में उत्साह की कमी है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण गृह-निर्माण योजना में कार्य करने वाले अधिकारियों का रवैया दोषपूर्ण तथा सहानुभूति-रहित है। उनमें अच्छी तरह से पथ प्रदर्शन करने तथा उत्साह पैदा करने की कमी है। इस कमी को दूर करने का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि ग्रामीण गृह-निर्माण कार्य पचायतों को सौंप दिया जाय। पचायतों के लिए यह आवश्यक कर दिया जाय, कि वे श्रम को गतिशील बनाने, ग्रामीण जनता को सहकारिता के आधार पर गृह निर्माण करने की शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक कदम उठाएँ और समय-समय पर उनका सर्वेक्षण करती रहें।

निर्माण दर की वर्तमान धीमी गति इस बात की ओर सकेत करती है कि गृह-निर्माण कार्य की नीति का निर्धारण इस तरह से हो, जिससे कि विभिन्न आय-समूहों की आवश्यकता को विभिन्न आवास इकाइयाँ द्वारा पूरा कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति की सफलता राज्य द्वारा उठाए गए उन क्रियात्मक कदमों पर निर्भर करती है जिनके द्वारा सरकार निजी साहसियों द्वारा मध्यम आय वाले लोगों के आवास सम्बन्धी कार्यक्रमों की रूढ़िवादी, प्रशासकीय तथा वित्तीय कठिनाइयों को दूर करती है; कम आय वाले लोगों के लिए गाँवों तथा शहरों में गृह-निर्माण की जिम्मेदारी निभाती है तथा शहरी क्षेत्र से गन्दी बस्तियों को हटाने के कार्यक्रमों की पृष्ठ-भूमि तैयार करती है। गृह-निर्माण की नीति इस तरह की होनी चाहिए जिसके द्वारा बड़े पैमाने पर गृह निर्माण सम्बन्धी सामग्री के कारखानों का विकास हो तथा गाँवों में सहकारिता के आधार पर स्थानीय साधनों द्वारा गृह निर्माण सम्बन्धी सामग्री का उत्पादन हो, जिससे बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा किया जा सके।

इसके अलावा गृह-निर्माण सम्बन्धी नीति का औद्योगिक विकास की विकेन्द्री-करण की प्रवृत्ति से सामंजस्य स्थापित कर दिया जाय। शहरी क्षेत्र में मकानों की कमी का एक मुख्य कारण यह है कि अधिकाश उद्योग-धन्धे और कारखाने ऐसे सकुचित तथा सकीर्ण स्थानों पर बने हैं जहाँ कि उन कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के लिए समुचित तथा आरोग्यवर्धक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं की जा सकतीं। अतः औद्योगिक विकेन्द्रीकरण का गृह निर्माण के कार्यक्रम से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

अन्त में गृह-निर्माण की नीति को रोजगार कार्यक्रम से सम्बद्ध कर देना भी

नितान्त आवश्यक है। हमारी पचवर्षीय योजनाओ का मुख्य उद्देश्य शहरी क्षेत्र की बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्र की अर्ध बेरोजगारी की कठिनाइयो को दूर करना है। गृह निर्माण एक ऐसा कार्य है, जो बेरोजगार लोगो को व्यापक रूप से बहुत शीघ्र रोजगार दिला सकता है, और हमारी सामाजिक नीति के लिए एक महत्वपूर्ण हथियार सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इस कार्य मे बडे पैमाने पर श्रम को गतिशील बनाने एव उसका उचित उपयोग करने की शक्ति सन्निहित है। एक ऐसे देश मे, जहाँ की जनसख्या निरन्तर बढती रहती है गृह-निर्माण का कार्य ही एक ऐसा सस्ता साधन है, जिसके द्वारा अधिक से अधिक रोजगार की दशाएँ उत्पन्न की जा सकती है।

ऊपर कही गई गृह-निर्माण नीति को कार्यरूप मे परिणत करने और सफल बनाने के लिए कुछ अतिरिक्त साधनो का होना अत्यन्त अनिवार्य है। इस सन्दर्भ मे केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि वह ऐसा कानून बनाए, जिससे प्रत्येक राज्य मे एक गृह निर्माण वित्त-निगम (Housing Finance Corporation) की स्थापना हो और जो केन्द्रीय वित्त सस्था (Financial Agency) के रूप मे कार्य करे। यह वित्त-निगम अपनी धन सम्बन्धी आवश्यकताओ को जनता द्वारा पूरा करे, तथा गृह-निर्माण करने वाले लोगो को कम ब्याज पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करे। इसके लिए जीवन बीमा निगम तथा छोटी बचत योजनाओ,वाले सघ अधिक मात्रा मे धन प्रदान करे जिससे कि गृह-निर्माण करने वाली कम्पनियों की विनियोग दर बढे, जैसा कि सयुक्त अरब गण राज्य मे होता है। वहाँ पर मध्यम आय वाले लोगो के लिए आवास-व्यवस्था सम्बन्धी खर्च जीवन बीमा निगम द्वारा दिया जाता है।

गृह-निर्माण कार्य म नवीन विनियोग को हतोत्साहित करने वाला प्रमुख कारण, स्थानीय सस्थाओ (Local authorities) द्वारा लगाए गए करो का भार है। खास तौर से बड़े-बडे नगरो, जैसे—बम्बई और कलकत्ता, म तो इन करो का भार बहुत अधिक है, जबकि जायदाद कर (Property Tax) मे कर की वृद्धि प्रणाली (Progression) को लागू करने का क्षेत्र बहुत ही सीमित है। गृह-निर्माण के कार्य म विनियोग की दर को बढाने तथा विनियोग करने वालो को उत्साहित करने के लिए सरकार को चाहिए कि कम किराया मिलने वाले मकानो पर सम्पत्ति कर की दर मे थोडी सी कटौती कर दे।

गृह निर्माण कार्य को तीव्र करने के लिए स्थानीय सस्थायें अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान करें। इसके लिए वे भूमि के विकसित खण्डो (Plots) को घटी हुई कीमत पर सहकारी आवास सस्थाओ, निजी सस्थाओ (Private Companies) या व्यक्तियो (Individuals) को बेचे अथवा किराये पर दे। इस छूट के फलस्वरूप मध्यम तथा कम आय वाले लोगो को गृह निर्माण मे काफी सहायता मिलेगी।

अन्य सुझावो के अनुसार मकान के किराये मे नियमितता हो अथवा हर एक तरह के मकान की किराए की दर निश्चित करदी जाय तथा मकान सम्बन्धी कार्यों मे वर्तमान तरीको को अपनाया जाय।

गृह-निर्माण कार्यक्रम के सफल सचालन के लिए श्रम तथा धन सम्बन्धी प्रयत्न अनिवार्य है। देश की जनता को गृह-निर्माण कार्य का प्रशिक्षण दिया जाना तथा इस कार्य को मिल जुल कर करने का प्रोत्साहन दिया जाना आवश्यक है। यह सुझाव मुख्य रूप से देहाती क्षेत्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है, जहाँ पर आपसी सहयोग से बडे-बडे कार्यक्रम पूरे किए जा सकते हैं। आपसी सहयोग की इस प्रवृत्ति को विकसित करने के लिए सामाजिक शिक्षा का सहारा लिया जाय और विभिन्न सामाजिक सस्थाओ की कार्य क्षमता की वृद्धि के लिए उन्हे आत्मविश्वास तथा सहकारिता की शिक्षा दी जाय।

शिक्षा—शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए दूसरी पचवर्षीय योजना मे उस पर बहुत कम ध्यान दिया गया। योजना मे साधारण तथा टेक्नीकल दोनो ही तरह की शिक्षा को देश मे विकसित करने के लिए यद्यपि एक लम्बी रकम निर्धारित की गई, किन्तु वास्तविक आवश्यकता को देखते हुए यह बहुत कम रही। मोटे तौर पर एकदम अपूर्ण रही। देखने मे यह आता है कि जब कभी कोई योजना अधिकारी योजना के खर्च मे कटौती करने की सोचते हैं तो वे सबसे पहले शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के व्यय के बजट मे भारी कटौती करते हैं—मानो राष्ट्रीय विकास मे यह कोई कम महत्त्वपूर्ण अग हो लेकिन सच तो यह है कि शिक्षा का महत्त्व ठीक इसके विपरीत है। दूसरी पचवर्षीय योजना के शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमो के बारे मे भी यही बात चरितार्थ होती है। ससार का कोई भी राष्ट्र तब तक सामाजिक, आर्थिक अथवा नैतिक दृष्टि से उन्नति नही कर सकता जब तक कि शिक्षा और शिक्षा-प्रणाली पर उचित बल न दिया जाय।

दूसरी योजना मे सिवाय इस मामूली सी घोषणा, कि "बाढ़ों की रोकथाम के लिए महत्त्वपूर्ण उपायो को प्रयोग मे लाने से सम्बन्धित कार्यों की ओर प्रमुख ध्यान दिया जाएगा" के अतिरिक्त अन्य बातो जैसे—फसलो को नष्ट करने वाले कीडे मकोडों और रोगों की रोकथाम तथा किसानों की दशा को सुधारने के लिये कोई ध्यान नहीं दिया गया। कृषि कार्यक्रम के सम्बन्ध मे बहुत सी कठिनाइयाँ हैं, जैसे—फसलो मे कीडे-मकोडो का लगना, टिड्डियो का आक्रमण, बाढ, सूखा, भूमि-क्षरण तथा सिंचाई की कमी आदि। किन्तु योजना मे इन कठिनाइयो का सही रूप से निरूपण नही किया गया और उनके लिए समुचित धन व्यय नही हुआ। जैसा कि बी० आर० शैनोय ने कहा है कि 'दूसरी योजना मे यह स्पष्ट रूप से नही कहा गया कि बाढो की रोकथाम किस तरह हो तथा इस सम्बन्ध मे किये जाने वाले कार्यों पर कितनी धन राशि व्यय की जाय।" देखने मे यह आया है कि सरकार ने बाढ-नियन्त्रण के लिए अब तक जो कार्य किये है वे सब अपूर्ण रहे हैं और अब तो हमारा योजना आयोग यह सोचने लगा है कि "बाढो की कभी रोक थाम नही हो सकती, यह तो दैवी प्रकोप है, केवल इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है।" किन्तु योजना आयोग का इस तरह सोचना एक भारी भूल है क्योंकि अगर कठिन

मेहनत और पूरी लगन के साथ कार्य किया जाय तो दुनिया की हर बुराई तथा कमजोरी को दूर किया जा सकता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programmes)—सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रारम्भ किए ८ वर्ष हो चुके है, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि यह अपने सभी लक्ष्यो को प्राप्त करने मे समर्थ रहा है। कार्यक्रम की रूपरेखा देहाती क्षेत्रो के लिये विकास एव कल्याण कार्यो के हेतु बनायी गई थी—ग्रामीण लोगो की आशाओ और आकाक्षाओ का पूरा ध्यान रखा गया था। इस बात की आशा की गई थी कि यह ग्रामो मे आर्थिक क्रान्ति लाने मे सफल होगा और इस प्रकार सारा देश लाभान्वित होगा। इस कार्य को निर्धारित किए जाने के पूर्व देश के लब्ध-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने इन कारणो का अनुसन्धान किया, कि युद्ध काल मे और युद्धोपरान्त जो 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन छेडा गया था, वह आखिर सफल क्यो नही हुआ ? इस सम्बन्ध मे अनेक विकास क्षेत्रो मे—विशेष रूप से इटावा मे—अध्ययन किये गए।

इस बात की आशा की गई थी कि एक विशद् कार्यक्रम तैयार करने से ग्रामवासियो की आर्थिक स्थिति मे सुधार होगा और बेरोजगारी तथा अर्ध-बेरोजगारी के कारण जो अपार मानव शक्ति का उपयोग नही हो पा रहा है उसका उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकेगा। इससे आर्थिक क्रान्ति का सूत्रपात होगा। कृषि उत्पादन मे वृद्धि इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य रहा।

इसमे सन्देह नही कि इस कार्यक्रम मे कुछ सफलताएँ मिली हैं, लेकिन सफलता का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया था वह अपूर्ण रहा। २ अक्तूबर, सन् १९६० तक की ८ वर्षो की अवधि मे १९.२ करोड की आबादी वाले ३,८०,००० गाँवो मे सामुदायिक विकास कार्य किया गया। १ अप्रेल सन् १९६० तक १७३२५ करोड रुपए का सरकारी व्यय हुआ। ८७ करोड रुपया सर्व साधारण के योग से प्राप्त हुआ। सहकारिता आन्दोलन की प्रगति इस प्रकार हुई—सन् १९५८-५९ तक प्राथमिक सहकारी समितियाँ, १०५००० थी। १९५०-५१ मे यह सख्या बढ कर १८३००० हो गई। समितियो की सदस्य सख्या ४४ लाख से बढ कर १·२ करोड हो गई। सिंचाई का क्षेत्र १९५०-५१ मे ५७५ लाख एकड था, वह सन १९६०-६१ तक ७०० लाख एकड हो गया। ३९ लाख एकड अनुत्पादक भूमि मे खेती जुताई गई जब कि दूसरी योजना का लक्ष्य ६० लाख एकड का था। इसी प्रकार अन्य विकास कार्यों के लक्ष्य भी अधूरे ही रहे।

दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यद्यपि कृषि-उत्पादन मे कुछ सुधार हुआ फिर भी कृषि का उत्पादन अब भी मौसम पर ही निर्भर करता है। आबादी की तीव्र वृद्धि को ध्यान मे रख कर, योजना मे अन्न उत्पादन का लक्ष्य नही रखा गया। जो भी हो, जितनी यह बात १० वर्ष पूर्व सच थी उतनी ही आज भी सच है कि कृषि-

प्रधान देश होते हुए भी भारत अपनी खाद्य सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति नही कर पा रहा है ।

देशी तथा विदेशी प्रेक्षकों ने यह सही ही कहा है कि भारत की पचवर्षीय योजना मे जो विकास कार्यक्रम तैयार किए गए, वे लोगो के मन मे योजनाओ के प्रति श्रद्धा और उल्लास उत्पन्न करने मे असमर्थ रहे हैं। योजना आयोग के 'मूल्याकन कार्यक्रम सगठन' ने अप्रैल सन् १६६० मे अपनी वार्षिक रिपोर्ट मे कहा था कि लोग हर एक विकास कार्यक्रम को 'सरकारी फायदे की स्कीम' समझते हैं । यही कारण है कि अधिकाश ब्लॉकों मे सर्वसाधारण का रवैया विकास कार्यक्रम की सफलता के पक्ष मे नही है।

इसमे अधिकाश दोष अधिकारियो का है साथ ही राज्य विधानसभाओ और ससद मे जनता के प्रतिनिधियो का भी दोष है । उन्हे विकास के कार्यों मे जनता का नेतृत्व करना चाहिए । इनके साथ ही बहुत कुछ दोष उन राज्य सरकारो का है, जो शासन के विकेन्द्रीकरण के लिए तत्पर नही । प्रजातन्त्र मे विकास योजनाओं के प्रति जनता में विश्वास पैदा करने के लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है । केवल आन्ध्र और राजस्थान में ही इस दिशा मे कदम उठाए गए हैं । यद्यपि वहाँ पर कुछ दिक्कतें आई हैं किन्तु इस बात के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए हैं कि लोगो में जिम्मेदारी की भावना बढ रही है । उत्तर प्रदेश सरकार भी अपने जिला परिषद् और क्षेत्र समिति बिल के द्वारा जिला परिषदो और क्षेत्रीय समितियो को कुछ अधिकार देने जा रही है, पर शासन का तत्व अपने पास ही रखेगी—इसका नाम जनतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण होगा ।

औद्योगिक प्रगति (Tight money checks Industrial expansion)—२६ मार्च १६५७ को हुई इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री की सालाना बैठक में औद्योगिक प्रगति के बारे मे बोलते हुये श्री एल० एन० बिरला ने कहा था कि हम द्वितीय योजना के वर्ष को पूरा कर रहे हैं, किन्तु योजना के प्रथम वर्ष से पहले ही 'द्रव्य बाजार' मे जो सचित धन (funds) की कमी शुरू हो गई थी, वह अब इतनी अधिक बढ गई है जितनी पहले कभी नही थी । यहाँ तक कि मन्दी काल (off seasons) म भी बाजार में द्रव्य की कमी रहती है । रिजर्व बैंक द्वारा खुले बाजार म द्रव्य के लेन देन की अनिश्चितता के कारण 'बाजार की सुरक्षा' (Security market) तो बिल्कुल लुप्त सी ही हो गई है । शेयरो और सिक्योरिटियों के भावो (मूल्यो) मे भारी गिरावट हुई है। देश की वित्तीय प्रवृत्ति को मापने का सारा कार्य stock exchange करता है । उद्योगो की वित्त सम्बन्धी कठिनाइयाँ इतनी अधिक हैं कि अच्छे अच्छे कारखानो तक में उधार का आधार १०-१२ प्रतिशत ब्याज पर रह गया है । उधार की इस दर को देखते हुए भावी औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है ।

विदेशी विनिमय की कठिनाई भी एक बड़ी समस्या है... .. ..किन्तु इससे भी अधिक विकट समस्या आतरिक वित्त (internal finance) की है। जब तक देश मे द्रव्य के आन्तरिक साधनो की उपलब्धि न होगी तब तक बड़ी मात्रा में मिलने वाली विदेशी विनिमय की धनराशि किसी काम की नही होगी। जब हम किसी कारखाने मे १ करोड रुपये का विनियोग करते है, तो उसका ५० प्रतिशत देश के आन्तरिक साधनों पर व्यय करना पडता है और बाकी का ५० प्रतिशत बाहर मशीनरी तथा अन्य कल पुर्जो में व्यय करते है जिसके लिए हमे पूर्ण रूप से देश के बैंक द्रव्य की सहायता नही मिलती, जब कि किसी भी नये उत्पादन कार्य को शुरू करने के लिये हमे ६० प्रतिशत से लेकर ६५ प्रतिशत तक आतरिक पूँजी व द्रव्य की आवश्यकता पडती है। इसलिए जब तक देश के आतरिक साधनो का विकास नही किया जायेगा, तब तक हमारे लिये योजना मे निर्धारित, निजी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लक्ष्यो को, पूरा करना कठिन होगा और जब निजी क्षेत्र योजना के लक्ष्यो को पूरा करने में असमर्थ रहता है तो सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य भी प्राप्त नही हो पाते, क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र की आय का मुख्य स्रोत निजी क्षेत्र ही है।

बचत कार्य मे कमी

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में बैंकिंग व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कार्य करती है, लेकिन धन सम्बन्धी जरूरतो की अन्तिम पूर्ति बचत द्वारा होती है। कर की वृद्धि के कारण निजी बचत का क्षेत्र एकदम सकुचित हो गया है। द्रव्यपूर्ति का दूसरा साधन सामूहिक बचत (Corporate Saving) है, किन्तु तत्कालीन सरकारी कदमो के फलस्वरूप यह स्रोत समाप्त हो रहा है। सन १९६० के बजट पर बोलते हुए वित्तमन्त्री ने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया था।

विदेशी विनियोग के द्वारा भी द्रव्य की पूर्ति मे सहायता मिलती है, लेकिन विदेशी पूँजी तब तक प्राप्त नही की जा सकती जब तक कि देश के अन्दर उसके लिए उपयुक्त वातावरण न बनाया जाय। जिन लोगो ने चीन का भ्रमण किया है वे जानते है कि योजनाओ की सफलता के लिए चीन मे विदेशी पूँजी किस तरह प्राप्त करते है। वहाँ पर ७०% पूँजी की आवश्यकता को दीर्घकालीन आधार पर पूँजी गत वस्तुओ के रूप मे प्राप्त करते हैं। लेकिन पश्चिमी देशो से हम इस तरह का सम्पर्क स्थापित नही कर सकते। जब तक हमारे देश मे विदेशी पूँजी को आकर्षित तथा प्रोत्साहित करने के लिए उचित वातावरण पैदा नही किया जाएगा तब तक विदेशी पूँजी से प्राप्त सहायता की धन राशि मे कमी होती जायगी।

ऐसा सुझाव दिया गया है कि द्रव्य बाजार को सरल बनाने के लिए मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को बढावा दिया जाय। कभी कभी लोगो की क्रयशक्ति पर रोक लगाकर और द्रव्य पर आवश्यक नियन्त्रण करने का भी सुझाव दिया गया है, जिसके फलस्वरूप उपभोग मे कमी हो और कृत्रिम रूप से वस्तुओ की पूर्ति बढ

जाय। किन्तु ये कार्य योजना के उद्देश्य के विपरीत है। सब कुछ होते हुए हमारे रोजगार की अधिक से अधिक सुविधाएँ उत्पन्न करना तथा लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। हम कीमतो को कम करने की कोशिश करते हैं, जिससे बेरोजगारी फैलती है और लोगो का जीवन स्तर गिरता है। इतने सब कार्यो के होते हुए भी, हम देखते है कि कृषि पदार्थो की कीमतें बढती है। इस प्रकार एक ओर तो औद्योगिक उत्पादन की वस्तुओं जैसे, कपडे की कीमतें गिरती है, मिलो के पास स्टॉक समाप्त हो जाता है, उपभोग कम होता जाता है और दूसरी ओर कृषि उत्पादन की वस्तुओ की कीमत ऊँची दर पर स्थिर हो जाती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मुद्रा सकुचन अथवा साख नियन्त्रण का कृषि वस्तुओ पर कोई प्रभाव नही पडता। इन वस्तुओ की कीमतो की वृद्धि को रोकने के लिए सर्वोत्तम ढग यह है कि कृषि उत्पादन म वृद्धि की जाय।

एक विकसित अर्थव्यवस्था मे अगर थोडा सा मुद्रा स्फीति कर भी दिया जाय तो कोई अनुचित बात नहीं है। औद्योगीकरण से तीव्र मुद्रा स्फीति होता है। यह बात सर्वविदित है कि जहाँ पर किसी आदमी के लिए आकर्षण होता है वह उसी तरफ उन्मुख हो जाता है, इसी तरह थोडी सी मुद्रा स्फीति से अधिक औद्योगीकरण को आकर्षण मिलता है, जबकि लोगो की क्रयशक्ति को नियन्त्रित करने अथवा साख पर नियन्त्रण करने से औद्योगीकरण की वृद्धि मारी जाती है।

बैंकिंग सम्बन्धी अडचनें (Banking Bottleneck)

सरकार विभिन्न स्थानो द्वारा 'द्रव्य-बाजार' से द्रव्य को वापस ले लेती है—उत्पादन कर के रूप मे, कर्ज के द्वारा तथा 'अतिरेक बजट' (Surplus budgets) के द्वारा। इस तरह से इकट्ठा किया हुआ धन बैंको के पास शीघ्र नहीं लौटता। अन्य देशो मे एक रुपये के नोट ६ बार बाजार मे चलने को आते है जबकि हमारे देश मे ऐसा नही होता। अधिकतर सरकारी व्यय या तो विदेशो से माल खरीदने म व्यय किया जाता है या देहाती क्षेत्र के उन लोगो पर व्यय किया जाता है जो बैंको से कोई सम्बन्ध नही रखते अथवा जिनमे विनियोग करने की प्रवृत्ति नहीं होती।

हमारी बैंकिंग व्यवस्था भी इतनी सगठित नही है कि वह देहाती क्षेत्र से धन आकर्षित कर सके। नतीजा यह होता है कि बैंकिंग तथा विनियोग करने वाला वर्ग, जो देश के औद्योगीकरण मे तथा धन मे वृद्धि करना है, भूखो मरता है, जबकि देहाती क्षेत्र की जनता के पास धन की इतनी अधिक मात्रा हो जाती है जिससे मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को आसानी से रोका जा सकता है। मुद्रा स्फीति का यह चक्र औद्योगीकरण मे काफी वृद्धि कर सकता है अगर अतिरिक्त धन रखने वाली ग्रामीण जनता भी विनियोग करने वालो की मदद करे। उपर्युक्त सुझाव ही केवल

मुद्रा सकट को दूर करने के लिए काफी नही है किन्तु अगर उपर्युक्त साधनो को सरकारी अफसरो द्वारा सतकता से अपनाया जाय तो वे 'द्रव्य बाजार' मे विद्यमान समस्त कमियो को दूर कर सकते हैं और इस तरह मुद्रा स्फीति मे सहायक हो सकते हैं।

औद्योगिक उत्पादन के निर्यात मे वृद्धि (Developing export of Industrial Product)

फैडरेशन ऑफ इडियन चैम्बरस ऑफ कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री के अध्यक्ष लक्ष्मीपत सिंहानियाँ का कहना है कि भारतीय इतिहास के इस कठिन युग मे हमारे राष्ट्र का सम्पूर्ण ध्यान अर्थव्यवस्था के निर्माण सम्बन्धी महान् कार्य पर केन्द्रित होना चाहिए, हमको सावजनिक तथा निजी क्षत्र के निर्धारण के लिए बहस अथवा कटुता की ओर अपना ध्यान नही लगाना चाहिय।

फैडरेशन के ३० वें सालाना अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए श्री सिंहानियाँ ने कहा था—' आर्थिक प्रगति नियन्त्रित तथा सकुचित क्षत्र द्वारा न तो कभी हुई और न आगे ही हो सकती है तथा क्षत्र निर्धारण के लिये व्यर्थ का विवाद करने से तो यह प्रगति कदापि नहीं हो सकती। यह एक ऐसा कार्य है, जिसमे विकास के प्रत्यक स्तर के लिए सभी क्षत्रो के आन्तरिक सम्बन्ध की आवश्यकता निहित है।'[1]

उन्होंने नवीन नियात उद्योगो की स्थापना तथा वतमान उद्योगो के विकास पर भी जोर दिया। उन्होने कहा था कि हम एक ऐसे स्तर पर पहुँच गये हैं जबकि औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन और निर्यात स्तर के विकास पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।[2] यह अनिवाय ही है कि निर्यात के विकास का सम्मिलित राष्ट्रीय जिम्मेदारी के रूप मे निभाया जाय। प्रतियोगिता पूण विश्वबाजार म, वस्तु की किस्म, कीमत और बिक्री के ढग को गणना सर्वप्रथम की जाती है। इसलिए हमारे उत्पादन के तरीके एकदम नवीन और आधुनिक होने चाहिए। इसलिए सरकार तथा श्रमिक दोनो ही से यह अपील करता हूँ कि वे कम लागत पर अच्छे किस्म का उत्पादन करने म उद्योगा की मदद

---

1 'Economic advancement does not and cannot proceed through rigid and water tight sectors, much less through—acrimonious discussion It is a process which involves—interpretation of sectors at each state of development'

Speech of L Sighania (Hindustan Times 24 3 57)

2 "We have reached a stage when more attention must be given to developing the export of Industrial product"

करे। उद्योग और व्यापार की भी अपनी बहुत बडी जिम्मेदारी है। केवल मशीनें ही उत्पादन की क्रियाशील पूंजी नही है। दिमागी सूझबूझ इस कार्य मे बडे पैमाने पर सहायक है। अगर उद्योगो का प्रबन्ध सुचारु रूप से किया जाय और खूब सोच विचार कर काम किया जाय तो बिना किसी सन्देह के हम अपने प्रयास मे सफल हो सकते हैं, अन्यथा नही।

प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी और प्रशिक्षण के क्षेत्र मे भारतीयो की अज्ञानता के बारे मे विचार व्यक्त करते हुए श्री सिंहानिया ने कहा था कि यद्यपि हमारे देश मे चतुर कारीगरो के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं, फिर भी इस दिशा मे अभी बहुत कुछ करना बाकी है। कारीगरो को प्रशिक्षण देने के सम्बन्ध मे सतर्कतापूर्ण विस्तृत कार्यक्रम की आवश्यकता है। उनका कहना था कि मांग और पूर्ति की स्थिति को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की क्षमता वाले वर्गों के विकास पर अत्यधिक ध्यान देना आवश्यक है।

विदेशी विनिमय

देश के लिए विदेशी विनिमय (मुद्रा) सम्बन्धी कठिनाई को दूर करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए श्री सिंहानिया ने कहा था कि सन् १९५६–५७ मे चाय और मूंगफली को छोड अन्य वस्तुओ के निर्यात में काफी कमी हुई। इसके अतिरिक्त सूती वस्त्र उद्योग की वस्तुओ, मैंगनीज और कपास तथा तेल के निर्यात व्यापार मे भी काफी कमी हुई।

श्री सिंहानिया ने कहा, "यह स्पष्ट है कि अगर द्वितीय पंच वर्षीय योजना की वृद्धि दर मे कोई कटौती न की गई तो देश के अन्दर विद्यमान मुख्य-मुख्य उद्योगो के कच्चे माल मे निरन्तर वृद्धि होगी और पूंजीगत वस्तुओ का आयात भी प्रतिवर्ष बढता रहेगा, जिससे विदेशी मुद्रा विनिमय की कठिनाई बढेगी। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि सरकार पूंजीगत वस्तुओ तथा अन्य मशीन सम्बन्धी कल-पुर्जों के आयात पर रोक लगाये। इसके लिए मैं यह समझता हूँ कि सरकार पदाधिकारियो और उद्योगपतियो की एक छोटी सी समिति नियुक्त करे जो सार्वजनिक तथा निजी दोनो ही क्षेत्रों की आयात सम्बन्धी जरूरतो के बारे मे विचार करे; और इस बात की निगरानी करे कि अनधिकृत वस्तुओ की पूर्ति मे किस तरह वृद्धि हो; साथ ही यह कमेटी प्राथमिक वस्तुओ के क्रम को पूर्ववत रखने के सम्बन्ध मे कुछ खास-खास वस्तुओ के आयात मे कटौती के बारे मे भी विचार विमर्श करे।"

आगे श्री सिंहानिया ने कहा कि सरकारी नीतियो का निर्धारण इस तरह हो, जिससे निजी साहसियो को प्रोत्साहन मिले और उनके विस्तृत औद्योगिक कार्यक्रम मे किसी प्रकार की बाधा न हो। हम देखते हैं कि आज हमारे देश मे औद्योगिक विकास की ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं और समाज का एक ही वर्ग इस दिशा मे जोखिम उठाने के लिए कार्य करता है। आर्थिक कार्यों के विकास से

पता चलता है कि औद्योगिक विकास की ओर से बहुत से लोगो की रुचि अनावश्यक रूप से घटती जा रही है। इसका मुख्य कारण हमारा आर्थिक रूप से पिछडापन न होकर आर्थिक स्रोतो का एक ही शक्ति के हाथो केन्द्रित हो जाना है। आज सरकारी नीतियो के कारण लोगो मे उद्योगो की स्थापना के लिए जोखिम उठाने मे बहुत सी आशकाए व्याप्त हैं। परिणामस्वरूप, आज अगर कोई व्यक्ति नवीन उद्योग की स्थापना करना चाहे तो, विभिन्न कम्पनी एक्ट तथा विभिन्न श्रम कानूनो को समझाने वाले सलाहकारो को रखे बिना, इस कार्य मे वह कभी सफल नही हो सकता।

पूँजी निर्माण (Capital formation) :

पूँजी का निर्माण बचत पर निर्भर करता है और बचत का विकास सरकार की वित्त सम्बन्धी नीति के उचित निर्धारण पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध मे उद्योग और व्यापार से बहुत कुछ योगदान की आशा की जा सकती है, जिसके लिए अनावश्यक रूप से उच्च कर की दर तथा साख नियन्त्रण सम्बन्धी कदमो को एक दम समाप्त कर दिया जाय।

"यह सत्य है कि जब कभी देश मे मुद्रास्फीति का दबाव बढे तो उसे शीघ्र कम कर देना चाहिए। किन्तु मूल्य वृद्धि एक वरदान के समान है इससे उत्पादन मे वृद्धि होती है। इसके साथ ही ध्यान रखने योग्य दूसरी बात यह है कि मूल्य वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय व्यय मे भी वृद्धि हो जाती है, जिससे देश के अन्दर निर्माण कार्य द्रुतगति से होने लगता है। द्वितीय योजना के पूर्वार्द्ध का अनुभव बतलाता है कि सन् १९५६-५७ तथा १९५८-५९ के बीच मे सरकारी नीति और साख नियन्त्रण कार्यो का उद्देश्य कीमतो की वृद्धि रोकना था जबकि औद्योगिक विस्तार द्वारा उत्पादन वृद्धि पर बहुत कम ध्यान दिया गया।"

आज कल विनियोग की दर मे सबसे बडी बाधा कर की ऊँची दर है। नियन्त्रित वित्त नीति के अपनाने का मुख्य कारण यही है। जैसा कि श्री सिंहानिया ने कहा है कि "कर की ऊँची दर पूँजी बाजार की स्वस्थ प्रगति को रोकती है। अगर कर की दर पूर्व अवस्था म ही रहे, तब भी पूर्ण विकसित पूँजी के बाजार की क्रियाशीलता मे बाधा पडती है।"[1]

श्री सिंहानिया के अनुसार भारत जैसे एक अर्द्ध-विकसित देश मे, उपभोग को बढाने के साथ साथ बचत बढाने की भी एक विकट समस्या है। उद्योग और व्यापार का पूर्ण विकास तभी हो सकता है जबकि औद्योगिक उत्पादन की खपत के लिए विस्तृत बाजार हो, और उत्पादन की यह खपत मुख्य रूप से लोगो की आय-बचत और उपभोग पर निर्भर है।

---

1 " The higher rate of taxation check the healthy growth of capital market even as it is, we do not have a well developed capital market "— Mr Singhania

स्टेट बैंक के कार्यों का ग्रामीण क्षेत्र में विस्तार किया जाय । श्री सिंहानिया के अनुसार "यह एक बहुत लाभदायक बात होगी, क्योंकि इससे शहरी क्षेत्र के व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।" इस सन्दर्भ में उनका कहना है कि "ग्रामीण क्षेत्रों पर स्टेट बैंक द्वारा जो व्यय किया जाय वह शहरी खर्चे पर न किया जाय क्योंकि औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में धन की अब भी बहुत कमी है ।"

सिंहानिया के कथनानुसार "हमारा ध्येय बचत को इस तरह से संगठित करने का होना चाहिए, जिससे पूँजी की मात्रा में वृद्धि हो तथा यह बचत आर्थिक साधनों का उपभोग करने में समर्थ हो। साथ ही साथ जनता के लिए अधिक से अधिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध हों ।"

योजना के पुर्ननिर्धारण की आवश्यकता[1]
(Need to Reshape the Plan)

सन् १९५९ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के मसविदे पर विचार करने के लिए लोकसभा में विचार विमर्श हुआ । प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री अशोक मेहता ने योजना के पुर्ननिर्धारण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा था कि जब हम यहाँ पर भारतीय जनता के नये भाग्य के निर्धारण पर विचार करने बैठे हैं, तो हमें योजना के तथ्यों की स्पष्ट जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। द्वितीय योजना के प्रथम चार अध्यायों में नियोजन के तथ्यों का बड़े ही सुन्दर तथा सामंजस्यपूर्ण ढंग से विवेचन किया गया है, इसके साथ ही उनमें जनतन्त्र के ढाँचे के विकास सम्बन्धी समस्याओं तथा सीमाओं का भी विवरण है । "मुझे यह देख कर बहुत ही आश्चर्य हुआ, कि योजना के २६ अध्याय प्रथम चार अध्यायों के आधार पर ही तैयार किए गए हैं। २६ अध्यायों में क्रमिक विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं वे किसी न किसी रूप से प्रथम चार अध्यायों द्वारा प्रभावित हैं तथा उन्मीलित हैं। मैं नहीं समझता कि योजना आयोग ने जो समस्याओं और उसके स्वरूप की पूरी तथा स्पष्ट जानकारी रखता है, ऐसी भूल क्यों की, जबकि योजना का प्रत्येक अध्याय विकास सम्बन्धी सुदृढ़ कार्यक्रमों तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित है ।"

"प्रधान मन्त्री ने हमको अपना दृष्टिकोण विकसित करने को कहा है । उन्होंने हमको कुछ पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए आमन्त्रित किया है। हम उनके इस विचार से पूर्ण सहमत हैं कि उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने के पश्चात् आने वाली मुसीबतों को सहन करने योग्य बनाने के लिए तथा उसके अन्त के बारे में सोच लेना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु हमारे प्रधान मन्त्री आगे बढ़ने की जल्दबाजी में, यह अनुभव करना भूल जाते हैं कि आगे आने वाली दो योजनाएँ भी हमारे लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। स्वयं दूसरी योजना में यह कहा गया

1. Need to Reshape the Plan—Lok Sabha Debate by Asoka Metha Published from National House, Apollo Bunder, Bombay

है कि उन्नति करने मे अभी दस वर्ष लगेंगे । उन्नति के प्रवेश मार्ग को पार करना बहुत जरूरी है। विकास की वास्तविकता आर्थिक कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओ के सही सचालन मे निहित है। अपने-अपने समय और स्थान पर सभी योजनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसमे कोई सन्देह नही है कि एक विशाल दृष्टिकोण को अपनाकर ही हम दरिद्रतारूपी दलदल से निकल कर सम्पन्नता की चमकीली चट्टान पर पहुँच सकते है । किन्तु पूर्ण विकास के कार्य मे एक समय लगता है, जो बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और यही वह महत्त्वपूर्ण समय है जबकि हम उन्नति के द्वार (Threshold) को पार करते हैं।'

इस प्रवेश मार्ग को पार करने की कुछ मुख्य विशेषताएँ है । मैं देखता हूँ कि माननीय प्रधान मन्त्री जी ने इस प्रवेश मार्ग को पार करने के महत्त्व पर उचित ध्यान नही दिया है। इसका महत्त्व द्वितीय योजना के प्रस्ताव मे पृष्ठ २१ पर दिया गया है, जिसमे योजना आयोग ने कहा है

१. "हमारा ध्यान मुख्य रूप से साधनों की गतिशीलता पर केन्द्रित होना चाहिए, न कि योजना मे निर्धारित लक्ष्यो से प्राप्त उपलब्धियो पर।

२. 'अगर हम इस प्रवेश मार्ग को पार करना चाहते हैं तो हम अपने जीवन स्तर मे वृद्धि नही कर सकते। यह विकास का एक प्रमुख (Imperative) नियोजन है। हम विकास के तर्क से भी अपना ध्यान नही हटा सकते। अगर साधारण जनता की औसत आय मे वृद्धि होती है तो विकास के लक्ष्य और गतिशीलता मे एक-दम कमी हो जायगी जिसका परिणाम यह होगा कि प्रवेश मार्ग एक दम विस्तृत तथा बडा हो जाएगा और तब हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने मे असमर्थ हो जाएँगे। इसी कारण से यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम अपनी अन्ध विश्वास तथा भोली-भाली जनता के बारे मे इस बात का पता लगायें कि वह किस तरह से इस तथ्य को हृदयगम करके, अपनी जिम्मेदारी को ध्यान मे रख कर, योजना के लक्ष्यो को पूर्ण करने मे योगदान देती है। प्रथम पचवर्षीय योजना को सफल बनाने मे जनता ने काफी सहयोग दिया । प्रथम योजना काल मे प्रतिव्यक्ति औसत उपभोग का व्यय ९ प्रतिशत हुआ, जिसकी वृद्धि दर ३-४ आना सालाना प्रति व्यक्ति रही । जनता की जरूरतो को देखते हुए यह वृद्धि बहुत कम रही। अतः स्वभावतः यह प्रश्न उठा कि दूसरी योजना मे वृद्धि की दर क्या हो ? इसी तथ्य को ध्यान मे रख कर, हमने एक बडी और शक्ति-शाली योजना बनाई है। देखें इसके परिणाम क्या होगे ?"

योजना के परिणाम निम्न प्रकार होगे . अनाज के उपभोग मे एक औंस प्रति व्यक्ति की वृद्धि होगी, कपडे के उपभोग मे १ या २ गज की वृद्धि होगी। इस बारे मे अपनी जनता को अधिक कुछ नहीं कर सकते। सामाजिक उत्थान की प्राप्ति मे निस्सन्देह अच्छी वृद्धि होगी—उदाहरण के तौर पर सडको, स्कूलो तथा उद्योगो

की सख्या मे काफी वृद्धि होगी किन्तु इस दिशा मे भी हम अधिक आगे नही बढ सकेंगे और जनता के लिए हमारी देन साधारण ही रहेगी, तथा यह उस प्रकार के वातावरण के सर्वथा विपरीत है । साथ ही यह उन समस्त कठिनाइयो के विपरीत है जो विकास कार्यो को चलाने मे उठानी पडती हैं । यही कारण है कि प्राचीन काल मे सरकार विकास कार्यो को सगठित करने का प्रयत्न पूँजीवादी तरीको द्वारा करती थी जहाँ पर उत्पादन का समस्त कार्य अनहस्तक्षेप की नीति (Laissez faire) से 'जगन्नाथ जी के रथ अथवा तानाशाही के रूप मे होता था, जिस पर पर्दे डाल दिये जाते थे जिससे कि लोग अन्दर की घटनाओ के बारे मे न जान सके। अथवा कम से कम खुले रूप म बढने अथवा आलोचना तथा विरोध करने से रोका जा सके।

हम सब लोगो का यहाँ पर आह्वान एक नवीन प्रयोग के बारे मे विचार करने के लिए हुआ है। यह एक ऐसा प्रयोग है जिसमे जनतन्त्र को विकास से सम्बद्ध करना है, जो पहले कभी सिद्ध नही किया गया। जिस स्तर से हमको आगे बढना है उसको एक तरफ छोड दो। इतिहास मे सम्भवत यह पहला ही प्रयत्न है जबकि किसी देश ने अपने विकास कार्यों को राजनैतिक प्रजातन्त्र द्वारा हल करने का बीडा उठाया हो। अगर इस काय को करना है तो यह निश्चय है कि बहुत शीघ्रता से और थोडे समय मे हम अपने देशवासियो के जीवन स्तर मे वृद्धि नही कर सकते।

द्वितीय विशेषता

दूसरी पचवर्षीय योजना की दूसरी विशेषता, जिस पर योजना आयोग ने सही रूप से गौर नही किया है, इसके बारे मे श्री अशोक मेहता ने आर्थर-लुईस (Arthur Lewis) की पुस्तक The Theory of Economic Growth के २३५ व पेज का उद्धरण दिया है, जिसमे श्री लुईस (Lewis) कहते हैं —

"इसका मतलब यह हुआ कि किसी भी औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) की व्याख्या अथवा कहना चाहिए कि पूँजी उत्पादन मे यकायक वृद्धि करने का सबसे सरल साधन द्रव्य कमाने की (opportunities) दशाओ म यकायक वृद्धि कर देने मे निहित है—चाहे ये नवीन दशाएँ नयी खोजो (Invention) के ही अथवा सस्थाओ के परिवर्तनो के कारण—जो वतमान सम्भावनाओ का शोषण करना सरल बना देती है। इगलैण्ड, जापान तथा रूस मे जो भी औद्योगिक क्रान्तियाँ हुई, वे सब इसी स्तर पर घटित हुई। इन समस्त मामलो मे प्रत्याशित फल यह होता है कि उत्पादन वृद्धि से लाभ होता है, वह ऐसे वर्ग—मजदूर किसान—को नही मिलता जो अपना उपभोग बढा सकें, परन्तु यह सारे का सारा लाभ या तो निजी लाभ मे अथवा सार्वजनिक कर के रूप में चला जाता है, जहाँ पर कि वह पूँजी के निर्माण और वृद्धि मे सहायक होता है। इससे लाभ यह होता है कि मजदूरो को बडी सख्या मे रोजगार मिल जाता है लेकिन उनकी वास्तविक मजदूरी म उत्पादन के अनुसार—वृद्धि नही होती।"

"अर्थव्यवस्था का सार्वजनिक क्षेत्र के अलावा एक और क्षेत्र होता है जो पूँजी का उपभोग करने वाला क्षेत्र कहलाता है। यह पूँजी का उपभोग करने वाला ही क्षेत्र होता है, जो अर्थव्यवस्था को एक बड़े पैमाने पर लाभान्वित करता है। आर्थिक विकास की एक मुख्य बात यह होती है कि वितरण के अन्य साधनों—मजदूरी, लगान और वेतन—के बजाय लाभ बहुत तेजी से बढ़ता है। लाभ विकास का आधार है, अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग श्रमिक है। एक पूर्ण रूप से राजतन्त्र (Totalitarian) देश मे इस उत्पादन का सारा उपभोग तथा निर्धारण राज्य द्वारा किया जाता है। एक अनहस्तक्षेप की विचार धारा वाले देश में इस *उत्तोलक* का उपभोग पूँजीपतियों द्वारा किया जाता है। अब सवाल उठता है कि हमारे देश की सरकार, जो कि हमारी अर्थ-व्यवस्था को समाजवाद के आधार पर विकसित करने को उत्सुक है, किस तरह '*उत्तोलक*' को काम मे लाएगी ? इस तथ्य के बारे मे योजना आयोग ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया है।"

"अब योजना की पूर्ति के साधनों मे वृद्धि करने का सवाल उठता है। यहाँ एक मुख्य बात ध्यान रखने की यह है कि साधनों का विकास इस तरह से हो जिससे कि जिन लोगो के जीवन स्तर मे वृद्धि न हो वे यह अनुभव करे कि साधनों के विकास से देश के अन्दर वर्तमान असमानताओं में कोई वृद्धि नहीं हुई। मुझे यह जान कर बड़ा आश्चर्य होता है कि योजना आयोग ने योजना के प्रारम्भिक तत्वों को बिल्कुल भुला दिया। योजना आयोग विकास के मुख्य तत्व को भुला कर, कर की मात्रा और दर मे औसत से अधिक वृद्धि कर रहा है। कर की प्राप्ति राष्ट्रीय आय की अपेक्षा अधिक तेजी के साथ बढ रही है।"

"दूसरा सवाल मुद्रा प्रसार का है। मुद्रा प्रसार से साख के प्रचलन मे वृद्धि होती है। साख का प्रचलन अधिकतर बैंकों से होता है, जो बड़े पूँजीपतियों और व्यापारियों के अधिकार मे है। वित्तमन्त्री सम्भवत इसलिये बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने के विचार से सहमत नहीं हैं। प्रधान मन्त्री सोचते हैं कि हम इन सब बातो का सुझाव राष्ट्रीयकरण की नीति को अव्यावहारिक (Theoretical) रूप से सन्तुष्ट करने के लिए देते हैं, और चूँकि हम अपनी अर्थव्यवस्था के कूड़े कर्कट (Junk) को इकट्ठा करके फेंकने की इच्छा रखते है।"

"दूसरी योजना के बारे मे एक और तथ्य है। ८३ पेज पर योजना आयोग ने लिखा है कि " ···राज्य को प्रत्यक्ष रूप से अतिरेक कर अथवा राजकीय उद्योगों से लाभ के रूप में प्राप्त सार्वजनिक बचत की मात्रा जितनी ही कम होगी, उपभोग के स्तर को नीचा रखने के साधनों अथवा कम करने के तरीकों को अपनाने की आवश्यकता उतनी ही बढती जाएगी।"

"दूसरी योजना के बारे मे लोगो ने बहुत ही जिज्ञासापूर्ण रुख अपनाया है। वे करो का विरोध करते हैं, राजकीय उद्योगो के लगान मे वृद्धि नहीं होने देना चाहते

हैं तथा हर प्रकार के नियन्त्रण के विरुद्ध हैं। अगर हम इन लोगो को नाराज रखेंगे तो हम कभी उन्नति नही कर सकते। योजना आयोग के सभी सदस्य जनमत मे फैले भ्रामक विचारो का निवारण करने के लिए उत्सुक दिखाई देते है लेकिन इसके लिए वह तैयार नही होते। वे यह नही कहते कि नही, अगर हमे अपने विकास कार्यक्रमो को पूरा करना है, अगर हमे अभाव और गरीबी के वातावरण से अलग हट कर समृद्धि के साम्राज्य को प्राप्त करना है, तो कर इसी दर से लगाने चाहिए और नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य भी इसी ढग से करने होगे।"

"अगर देश मे उन्ही लोगो को एकत्रित करना है, जो देश की आजादी केलिए लडे थे अथवा केवल उन्ही लोगो का सम्मेलन करना है जो आजादी की इस लडाई को गरीबी और अभाव को दूर करने के लिए आगे भी जारी रखना चाहते हैं, और अगर हमे यह कार्य करना है,—तो हमको प्रजातन्त्र और विकास (development) के बीच मे एक आध्यात्मिक नहर (Spiritual Suez) का निर्माण करना चाहिए जिससे, गरीबी से अमीरी तक की मानवयात्रा की दूरी कम हो जाय और किसी को किसी प्रकार का अभाव न रहे।"

दूसरी योजना की वित्तीयपूर्ति के लिए कालडोर की कर-नीति का प्रस्ताव

(Kaldor's Tax Proposals For Financing The Second Plan)[1]

योजना आयोग ने दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास कार्यक्रमो पर व्यय करने के लिए ४५० करोड रुपया के अतिरिक्त कर लगाने का सुझाव दिया है। करो की यह वृद्धि ३५० करोड रु० के उस अतिरिक्त धन से भी अधिक होगी, जो बशर्ते करो की दर और ढाचे मे कोई परिवर्तन न किया जाय। योजना काल मे इस अतिरिक्त धन राशि की वृद्धि केन्द्र तथा राज्यो मे ५०-५० प्रतिशत के आधार पर होगी।

इस कराधिक्य के अलावा केन्द्रीय सरकार ४०० करोड रु० की अतिरिक्त धन राशि को जुटाने का प्रयत्न करेगी, जो योजना के वित्तीय पहलू मे खाई (gap) के रूप मे छोड दी गई है।

इस प्रकार कुल मिलाकर योजना काल मे केन्द्रीय सरकार को ४५०×½ +४०० करोड=६२५ करोड रु० की व्यवस्था करनी होगी, जो बहुत ही दुष्कर है। प्रोफेसर कालडोर ने भारत की विभिन्न परिस्थितियो का अध्ययन किया और उसके बाद यह सुझाव दिया कि 'द्वितीय योजना की वित्तीय माँग को पाच वर्षों मे

1. Based on Mr. Kaldor's Report.

प्राप्त १२५० करोड रु० के अतिरिक्त करो द्वारा पूरा नही किया जा सकता।"[1] आगे उन्होने कहा कि "वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था, पाँच वर्ष के कायकाल मे, ८०० करोड रु० मे अधिक घाटे के व्यय की राशि को वहन नही कर सकती .. . इस आधार पर योजना मे ४५० करोड रु० अतिरिक्त कर के रूप मे, ४०० करोड रु० 'गैप' (gap) के रूप मे, ४०० करोड रु० अतिरिक्त व्यय के रूप मे प्राप्त करने की व्यवस्था की है, इस प्रकार कुल मिलाकर दूसरी योजना मे १२५० करोड रु० की धन राशि को करो द्वारा प्राप्त करने की व्यवस्था की गई, इसमे से २२५ करोड रु० के राज्यो के हिस्से को निकाल कर (१२५०-२२५= १०२५) केन्द्रीय सरकार को १०२५ करोड रु० की व्यवस्था करनी होगी।

अतिरिक्त करो की प्राप्ति की सम्भावनाओ के बारे मे प्रो० कालडोर का मत यह था कि "भारतवर्ष मे आय कर की वर्तमान प्रणाली बडी कठिन, साथ ही साथ बहुत उदार है। यह कठिन इसलिए है कि आय कर की अधिकतम सीमा, कुल आय का ६२ प्रतिशत रखी गई है, जिससे कर प्रवर्तन मे कमी होकर कर बचत मे वृद्धि होती है। यह प्रणाली उदार इस कारण है क्योकि इसने आय की बहुत सी दोषपूर्ण तथा गलत परिभाषायें अपनायी हैं। जिससे कर दाता जानबूझ कर अपने लाभ तथा जायदाद की आय पर कर देने से आसानी से बच जाता है।"

इस बारे मे उनके सुझाव निम्नलिखित हैं —

(१) "आय की परिभाषा में विद्यमान सभी कमजोरियो (loop holes) को दूर करने के लिए एक ऐसी प्रणाली अपनायी जाय जो जायदाद और पूँजीगत परिवर्तनो के बारे मे पूरी-पूरी जानकारी दे तथा उससे ठोस फल की प्राप्ति हो।"

(२) "१०,००० से ऊपर होने वाली वार्षिक व्यक्तिगत आय का तथा ५०,००० से ऊपर की व्यवसायिक आय का समुचित रूप से आवश्यक तौर पर लेखा जोखा हो।"

(३) "वर्तमान आय कर को समाप्त करके उसके स्थान पर—पूँजीगत लाभ कर, दान कर, तथा व्यक्तिगत व्यय कर के रूप मे समस्त पूँजी पर सालाना कर लगाये जाँय। इन सब पर एक साथ कर निर्धारित (Assessment) किया जाय।"

(४) "२५००० रु० से ऊपर की आय पर कर की दर ४५ प्रतिशत से अधिक न रखी जाय। १५ लाख रु० से ऊपर की जायदाद पर लाभ कर की दर $1\frac{1}{2}\%$ हो, दान कर की अधिकतम दर, (४० लाख से अधिक मूल्य की जायदाद पर) ८० प्रतिशत, व्यय कर की दर, प्रति व्यक्ति के ५०,००० रु० के सालाना व्यय पर, ३००% हो। पूँजी पर लाभ के कर की दर आयकर की दर के अनुसार हो।

1 "The requirement of the Second Plan could not be met without any additional taxation of Rs 1250 crores in five years"—Kaldor

(५) "ये समस्त कर प्रगतिशील (Progressive) होनी चाहिए।"

(६) "जायदाद पर कर की कम से कम छूट की सीमा १ लाख रु० हो, तथा व्यक्तिगत व्यय की सीमा १० ००० रुपया हो।"

(७) "जायदाद कर, दान कर तथा व्यक्तिगत व्यय कर की दर कम से कम क्रमश ½%, १०% तथा २५% हो।"

प्रोफेसर कालडोर का अनुमान था कि अगर इन समस्त करो को प्रस्तावित दर पर एक साथ लगाया जाय तो इनसे प्रतिवर्ष ६० से १०० करोड रु० की अतिरिक्त आय होगी।

भारत की राष्ट्रीय आय के प्राप्त आँकडो के आधार पर प्रोफेसर कालडार ने यह अनुमान लगाया था, कि कृषि तथा उससे सम्बन्धित कार्यो को छोड कर, इस समय करीब ५७६ करोड रुपये की आय की न तो कोई गणना होती है और न उस पर कर (Tax) ही लगाया जाता है। अगर समस्त राष्ट्रीय आय का सही रूप से हिसाब लगाया जाय, तो आयकर मे २०० से ३०० करोड रु० की अतिरिक्त आमदनी हो।

अन्त मे श्री कालडोर ने कहा कि "कर से बचने की समस्त कमियो को पूर्णरूपेण दूर करना, करो की आय पर अत्यधिक जोर देना तथा समस्त करो को क्रमिक रूप से उठाना बडा ही कठिन है। ' अगर प्रत्यक्ष करो मे ही किये गये सुधार सफल हो गए तो भी उनके द्वारा कर, आय सम्बन्धी जरूरतो को पूर्णरूप से सन्तुष्ट नही किया जा सकता।"

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना की वित्तीय लागत को पूरा करने के लिए सरकार के पास केवल दो ही उपाय शेष रह जाते है—

(१) योजना के लागत व्यय मे कटौती की जाय और इस प्रकार तीव्र आर्थिक विकास की सम्भावनाओ को कम किया जाय, या

(२) घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit financing) का सहारा लिया जाय जिसके कारण मुद्रा प्रसार के दबाव मे तीव्र अभिवृद्धि हो।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने योजना के कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए दूसरे साधन को अपनाया है। अर्थात् दूसरी योजना के कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए सरकार ने घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लिया है।

विश्व बैंक मिशन द्वारा द्वितीय योजना की आलोचना[1]

(Criticism of the Second Plan by the World Bank Mission)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा अधिकोषण (Bank) का विकास तथा पुनर्निर्माण से सम्बन्धित जो मिशन—द्वितीय योजना की अन्तिम विज्ञप्ति के प्रकाशन के तुरन्त बाद

1. Based on their Memorandum to the Govt of India

भारत मे आया, उसने दूसरी योजना के बारे मे भारत सरकार को एक पत्र (Memorandum) दिया था। उस स्मरण-पत्र मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये गये थे—

(१) योजना का आकार बहुत ही विस्तृत है।

(२) योजना के आकार को देखते हुए कीमतो को स्थिर रखने तथा अन्न पूर्ति के विकास के लिए जो प्रबन्ध किए गए हैं वे नाकाफी हैं।

(३) योजना का ढाँचा—मुख्य रूप मे यातायात की जरूरतो के बारे मे असन्तुलित है।

(४) छोटे-छोटे कारखानो के प्रभावशाली विकास का योजना के सन्तुलन पर बहुत बुरा प्रभाव पडा है।

(५) १२०० करोड रुपये की घाटे की व्यवस्था के कारण मुद्रा की पूर्ति मे अनावश्यक रूप से वृद्धि होगी, जो हमारी अर्थव्यवस्था की वास्तविक जरूरतो को देखते हुए काफी अधिक होगी।

(६) "योजना निर्यात विकास की एक सुनियोजित नीति का सहारा चाहती है।"[1]

(७) योजना मे पाँच साल की अवधि मे, १०० करोड रुपये के निजी क्षत्र के निजी विनियोग (विदेशो से) की आवश्यकता वाछित समझी गई है, जो सच एवं व्यावहारिक नही है। क्योकि वतमान समय मे सरकार ने विकास की जो नीतियाँ एव रुख अपनाया है वह विदेशी पूँजी को आकर्षित करने मे समर्थ नही है।

(८) व्यक्तिगत व्यवसाय के महत्त्व को अच्छी तरह से नही समझा गया है और योजना मे इसके विकास के लिये कोई घोषणा प्रकाशित नही की गई है।

द्वितीय योजना और घाटे की अर्थव्यवस्था

(Deficit Financing and the Second Plan)

अधिकाश लोगो के विचार मे घाटे की अर्थव्यवस्था मुद्रा प्रसार को तीव्र करती है। ये लोग मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) के अनुयायी हैं। उनके अनुसार "घाटे की अर्थव्यवस्था के कारण द्रव्य की कुल मात्रा मे अनावश्यक रूप से वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप सामान्य कीमतों के स्तर मे भी वृद्धि होने लगती है और जैसा कि स्पष्ट है पूर्ण रोजगार के स्तर पर, उत्पत्ति की लोच मे नही के बराबर परिवर्तन होता है। अर्थात् पूर्ववत् दशा बनी रहती है।"[2]

---

1. "The plan need is wanting in a well conceived export promotion policy."
2. Indian Economics—P N. Chatterjee, pp. 622—623.

डाक्टर V K R V Rao के मतानुसार "घाटे की वित्तीय व्यवस्था मुद्रा स्फीति के समानार्थी (Synonymous) के रूप मे कार्य करती हैं। क्योंकि अल्पकाल मे विनियोग और बचत मे जो अन्तर होता है वह कीमतो की वृद्धि के कारण ही होता है। दीर्घकाल मे जब कि आर्थिक विकास तेजी से होता है, और बचत विनियोग का यह अन्तर समाप्त होजाता है यह काय मुख्य रूप से स्वेच्छाचारी बचत के द्वारा सम्पन्न होता है। इस प्रकार दीर्घकाल मे मुद्रा स्फीति का प्रभाव समाप्त होता जाता है।'

प्रोफेसर बी० आर० शैनोए (Prof B R Shenoy) ने अपने 'Note of Dissent' मे कहा है कि "वित्तीय घाटे से विनियोग और बचत की दर मे जो असन्तुलन (disequilibrium) पैदा होजाता है उसके कारण कीमतो म वृद्धि होकर मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न होजाती है।" आगे श्री शैनॉय का कहना है कि "अगर तीव्र आर्थिक विकास के लिए घाटे की वित्तीय व्यवस्था आवश्यक ही है, तो उसकी गति धीमी रखी जाय, जिससे कि विनियोग और बचत की दर मे सामजस्य स्थापित किया जा सके और मुद्रा स्फीति को समाप्त किया जा सके।"

कुछ लोग ऐसे भी है, जो उपर्युक्त विचार से सहमत नही हैं। उनके विचार मे देश के आर्थिक विकास के लिए घाटे की वित्तीय व्यवस्था का होना नितात आवश्यक है। डाक्टर ए० दास गुप्ता के अनुसार 'एक अल्प विकसित देश के आर्थिक विकास के लिए घाटे की वित्तीय व्यवस्था परम आवश्यक है। यह वह अस्त्र है जिसके द्वारा, एक अर्द्ध विकसित देश की केन्द्रीय सरकार, एक ही समय मे पूँजी निर्माण तथा रोजगार की दशाएँ उत्पन्न करने मे, दो महत्वपूर्ण उद्देश्यो को प्राप्त कर सकती है।" उन्होने द्वितीय योजना के निर्माण के सम्बन्ध मे Economic Weekly' मे एक लेख प्रकाशित किया था, जिसमे लिखा था कि द्वितीय योजना मे १२०० करोड रुपये की जो वित्तीय घाटे की व्यवस्था की है उससे कीमतो मे कोई गम्भीर वृद्धि नही होगी। उनके अनुसार इस समय देश मे १,३०० करोड रु० की मात्रा के कागजी नोटो का प्रचलन है। वित्तीय घाटे के कारण द्रव्य की मात्रा मे १,२०० करोड रु० की और वृद्धि हो जाएगी। इसमे से २०० करोड रु० पौण्ड पावने की राशि से प्राप्त होगा। इस प्रकार कुल मिलाकर १३०० करोड रुपये के करीब कागजी मुद्रा का प्रचलन होगा, जो वतमान मुद्रा प्रचलन मे ७७% अधिक होगा। योजना मे उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य २५ प्रतिशत रखा गया है। द्रव्य प्रचलन की गति (Velocity) को स्थिर मान कर तथा साख मुद्रा को कम रख कर कीमतो मे कुल मिलाकर ९% से ११% तक की सालाना वृद्धि होगी। रोजगार की अनेक दशाओ की उपलब्धि को देखते हुए कीमतो की यह वृद्धि कोई विशेष हानिकारक नही होगी।"

वादविवाद की प्रकृति चाहे जो हो, किन्तु इस बात को हम कदापि अस्वीकार नही कर सकते कि दूसरी योजना मे वित्तीय घाटे की जो व्यवस्था कीगई है उसके कारण बहुतसी वस्तुओ और सेवाओ के मूल्य मे तीव्र वृद्धि हुई है। एक देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए थोडी मात्रा के घाटे की वित्तीय व्यवस्था लाभदायक है किन्तु घाटे की मात्रा जब बढ जाती है तो इसकी कीमतो की वृद्धि के रूप में गम्भीर परिणाम निकलते हैं, जैसा कि दूसरी पंच वर्षीय योजना काल मे हुआ।

योजना मे उत्पादक वस्तुओ के उद्योगो के विकास पर कोई बल नही दिया गया है और जब तक उत्पादक वस्तुओ के उत्पादन पर विशेष बल नही दिया जायगा, तब तक देश को इन वस्तुओं के लिए विदेशो पर अवलम्बित रहना पडेगा। ये उद्योग दीर्घकाल मे उपभोग की वस्तुओ के उद्योग पर प्रभाव डालते हैं, अतः क्याही अच्छा होता कि दूसरी पंच वर्षीय योजना मे उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन पर बल न देकर उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया जाता। सच तो यह है कि द्वितीय योजना के प्रत्येक कार्यक्रम मे बहुतसी कमियाँ तथा बुराइयाँ भरी हुई हैं। उदाहरण के तौर पर असन्तुलन, असहयोग, अकर्मण्यता तथा साधनो की कमी आदि। इनमे से कुछ तो काफी महत्त्वपूर्ण है और कुछ बहुत कम। इन सब दोषो की ओर दृष्टिपात न करके हम केवल इतना कह सकते हैं कि हमारे योजनाधिकारी विषम परिस्थितियो के विपरीत कार्य कर रहे है, यही कारण है कि वे निर्दोष सर्वाङ्गीण उन्नति प्राप्त करने मे असफल रहे हैं। क्या हम आशा करें कि हमारी आगे आने वाली योजनाओ मे ये दोष नही रहेगे ?

तृतीय पंचवर्षीय योजना
The Third Five Year Plan

१—योजना की रूपरेखा[1]

(The Planframe)

तीसरी योजना के उद्देश्यो का, और मोटे रूप से जिन आर्थिक विचारो को सामने रख कर इसके परिमाण और पूँजी विनियोग के रूप का निश्चय किया गया है, उनका उल्लेख पहले अध्यायो मे हो चुका है। इस अध्याय का उद्देश्य, सक्षेप मे, इस योजना की प्राथमिकताओ को बतलाना, विकास के विभिन्न क्षेत्रो मे लगाई गई पूँजी के विभाजन का चित्र प्रस्तुत करना और योजना के लक्ष्यो का प्रारम्भिक मूल्य आकना है। इसमे यह बतलाने का यत्न भी किया जाएगा कि केन्द्र और राज्यो मे योजना के व्यय का प्रारम्भिक विभाजन कैसे होगा। विभिन्न क्षेत्रो के जिन लक्ष्यो का यहाँ सकेत किया जाएगा, वे सब अस्थायी होगे। उनका मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि उनसे केन्द्र और राज्यो को आगे अध्ययन करने मे सहायता मिले। परियोजनाओ, कार्यक्रमो और उन्हे पूरा करने के क्रम का अध्ययन अगले कुछ महीनो मे पूरा हो जाएगा और उसके परिणाम योजना की अन्तिम 'रूप' मे प्रस्तुत कर दिये जायगे।

प्राथमिकताएँ

किसी भी पचवर्षीय योजना के पूँजी-विनियोग के रूप से पता चल सकता है कि योजनाकाल मे उसकी प्राथमिकताएँ क्या रहगी और उसके विभिन्न भागो मे से किस पर कितना जोर दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त, इनका निश्चय, उस समय विद्यमान आर्थिक परिस्थिति और सम्भावित प्रवृत्तियो का विचार करके, देश की बुनियादी आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ का विश्लेषण करके और दीर्घकालीन लक्ष्यो को देख कर भी किया जाता है। इसलिए इनका निश्चय करते समय अनेक विचारो मे सन्तुलन रखने की होशियारी भी बरतनी पडती है।

---

1 तृतीय पचवर्षीय योजना, रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार (अध्याय ३)

विकास के नक्शे में स्वभावतः सबसे प्रथम स्थान कृषि का है। देश को अन्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बना देना और उद्योगों तथा निर्यात की आवश्यकताएँ पूरी कर देना तीसरी योजना का एक प्रधान लक्ष्य है। इसलिए कृषि के उत्पादन को यथासम्भव उच्चतम स्तर तक उठाना होगा, ताकि ग्रामीण लोगों की आमदनी और रहन-सहन का स्तर भी अन्य क्षेत्रों के लोगों के साथ-साथ ऊँचा उठे। कृषि उत्पादन का स्तर देख कर यह भी पता लगता है कि समस्त अर्थ-व्यवस्था की तरक्की किस रफ्तार से हो रही है। यों भी, कृषि अर्थ-व्यवस्था का विस्तार और ग्रामीण जन-शक्ति तथा अन्य साधनों का उपयोग करने में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। यह तीसरी योजना का एक बड़ा लक्ष्य भी है। इसी कारण, इस योजना में कृषि और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास के लिए पर्याप्त साधन मुहय्या करने का प्रयत्न किया गया है। सोचा गया है कि यदि योजना के आगे बढ़ने पर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की प्रगति और तेज करने के लिए, विशेषकर ग्रामीण जन-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिए, और साधनों की आवश्यकता पड़े, तो वे भी जुटा दिये जाय।

सामान्य विचारों के द्वितीय वर्ग का सम्बन्ध योजना में उद्योग, बिजली और परिवहन के क्षेत्र को प्रदान की गई प्राथमिकता से है। अर्थ-व्यवस्था को उच्चतर स्तर पर ले जाने और उसकी गति को तीव्र करने के लिए इन क्षेत्रों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। यह मानी हुई बात है कि आगे बढ़ने के क्रम में एक मंजिल ऐसी आ जाती है कि उससे आगे कृषि की उन्नति और जन-शक्ति का विकास उद्योगों की प्रगति पर ही निर्भर करने लगते हैं। इसलिए, कृषि और उद्योगों को सदा विकास की एक ही प्रक्रिया का समवाय अंग मान कर चलना चाहिए। जब तक अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी गति की दशा में नहीं पहुँच जाती, तब तक औद्योगिक विकास के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बड़ी मात्रा में पड़ती ही रहेगी।

चूँकि बड़ी परियोजनाओं में लगाई हुई पूँजी से, उत्पादन-वृद्धि-रूपी फल की प्राप्ति, बहुधा बहुत समय के पश्चात् होती है, इसलिए उनकी योजना काफी पहले से बना लेनी चाहिए और दीर्घकाल पश्चात् तथा अपेक्षाकृत कम समय में फल देने वाली परियोजनाओं में एक उचित अनुपात रख लेना चाहिये।

उद्योग, बिजली और परिवहन आदि प्रत्येक क्षेत्र में प्राथमिकताओं का निश्चय सावधानीपूर्वक कर देना चाहिए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनमें तुरन्त ही हेर फेर किया जा सके। दूसरे, इन क्षेत्रों के कार्यक्रमों का संचालन समन्वयपूर्वक होना चाहिए। परस्पर-सम्बद्ध परियोजनाओं की पूर्ति एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुये कार्यों की भांति करना चाहिए, ताकि काम सन्तोषजनक सोपानों में बाँट कर किया जा सके और परियोजनाओं के प्रत्येक वर्ग पर किये गए व्यय से अधिकतम लाभ मिल सके।

औद्योगिक क्षेत्र की योजना, समस्त अर्थ-व्यवस्थाओं की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को ध्यान में रख कर बनाई जा रही है और वैसा करते समय

योजना के सरकारी और निजी क्षेत्रो को एक मान लिया गया है। उपलब्ध प्राकृतिक साधनो और देश की बढती हुई आवश्यकताओ का तकाजा है कि बुनियादी उद्योगो पर—विशेषकर इस्पात, यन्त्र-निर्माण, ईधन और बिजली पर—ज्यादा जोर दिया जाए। इन उद्योगो और कृषि मे जो उन्नति होगी, बहुत-कुछ उस पर ही यह निर्भर करेगा कि हमारी अर्थ-व्यवस्था भविष्य मे अपना विकास अपने ही साधनो से कहाँ तक कर सकती है।

तीसरी योजना मे प्राथमिकताओ के एक अन्य जिस वर्ग पर ध्यान दिया जा रहा है, वह समाज सेवाओ और उनमे सम्बद्ध विकास-क्षेत्रो से सम्बन्धित है। आर्थिक और सामाजिक विकास के पलडो को बराबर रखने के लिए इन पर ध्यान देना परम आवश्यक है। अनुभव बतलाता है कि देश की जन-शक्ति का विकास करने, लोगो मे उत्साह भरने और उन्हे समझा-बुझाकर काम मे लगाने के लिए, शिक्षा और समाज-सेवाओ के महत्त्व का बखान शब्दो मे नही किया जा सकता।

इस वर्ग मे सम्मिलित कई विकास-कार्य तो—जैसे, वैज्ञानिक अनुसन्धान, तकनीकी शिक्षा, कारीगरो का प्रशिक्षण और औद्योगिक क्षेत्रो मे मकान बनवाना तथा बस्तिया बसाना, आदि—ऐसे है, जिनका आर्थिक विकास के साथ सीधा सम्बन्ध है। कुछ और कार्य व्यापक सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य है—जैसे, शिक्षा की सुविधाओ का विस्तार, रोगो की रोकथाम और स्वास्थ्य तथा चिकित्सा-सेवाओ की व्यवस्था, परिवार-नियोजन, गावो और शहरो मे पीने के पानी की व्यवस्था और जनता के पिछडे हुए वर्गो के लिए कल्याण-कार्यो की व्यवस्था। योजना मे, उपलब्ध साधनो की सीमा का ध्यान रखते हुए, इन सब सेवाओ की व्यवस्था रखी गई है। योजना के आगे बढने पर, कम से-कम कुछ कार्यो मे अधिकाधिक प्रगति करने का प्रयत्न किया जाएगा।

तीसरी योजना मे साधनो का विभाजन करते समय इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पादन का और जनता मे बचत का स्तर वर्ष-प्रति-वर्ष ऊँचा होता चला जाये। यह भी आवश्यक है कि पूँजी के एकत्र होने और उसके उपयोग मे लगने मे अनावश्यक बिलम्ब न हो। सरकारी और निजी, दोनो क्षेत्रो मे हर कदम पर यह ध्यान रखना चाहिये कि जो पूँजी पहले लग चुकी है और जो आगे तीसरी योजना मे लगाई जाएगी, उससे उत्पादन वृद्धि के रूप मे अधिकतम लाभ उठाया जा सके।

व्यय और पूँजी विनियोग का विभाजन

योजना म, सरकारी और निजी, दोनो क्षेत्रो के व्यय की चर्चा की गई है। सरकारी क्षेत्र मे पूँजीगत व्यय और चालू व्यय मे अन्तर किया गया है—'चालू व्यय' से मतलब कर्मचारियो के व्यय और घाटा बराबर करने के लिए दी गई सरकारी सहायता, आदि से है। तीसरी योजना मे सब मिलाकर १०,२०० करोड रु० पूँजी-विनियोग करने का विचार है। इसमे से ६,२०० करोड रु० सरकारी

क्षेत्र में और ४,००० करोड रु० निजी क्षेत्र में लगाये जायगे। सरकारी क्षेत्र मे अन्दाजन १,०५० करोड रु० का चालू व्यय होगा। उसे मिलाकर इस क्षेत्र का समस्त व्यय ७,२५० करोड रु० हो जायगा। निजी क्षेत्र मे पूंजी-विनियोग मे २०० करोड रु० की वह राशि भी शामिल है, जो पूंजी-सग्रह के प्रयोजन से सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र मे ले जाई जायगी। नीचे की तालिका में तीसरी और दूसरी योजनाओ के व्यय और पूंजी-विनियोग की तुलना की गई है।

दूसरी और तीसरी योजनाओ का व्यय और पूंजी-विनियोग[1]

(करोड रुपये)

	सरकारी क्षेत्र			निजी क्षेत्र[2]	समस्त पूँजी-विनियोग
	योजना का व्यय	चालू व्यय	पूंजी-विनियोग		
दूसरी योजना	४,६००	६५०	३,६५०	३,१००	६,७५०
तीसरी योजना	७,२५०	१,०५०	६,२००	४,०००	१०,२००

इससे प्रकट है कि तीसरी योजना का समस्त पूंजी-विनियोग दूसरी योजना के पूंजी विनियोग से लगभग ५१ प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार, सरकारी क्षेत्र के पूंजी-विनियोग और प्रस्तावित व्यय में क्रमश लगभग ७० प्रतिशत और ५८ प्रतिशत की, और निजी पूंजी-विनियोग मे लगभग २९ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है।

नीचे की तालिका मे तीसरी योजना के प्रस्तावित व्यय और पूंजी-विनियोग का विभाजन दिखलाया गया है।

---

1. यहाँ बार-बार प्रयुक्त दो शब्दों का अभिप्राय संक्षेप में समझ लेना चाहिए :
(१) 'पूँजी-विनियोग' वह व्यय है, जो भवनों, मशीनों और इसी प्रकार के अन्य उपकरणों, आदि भौतिक सम्पदा पर किया जाता है। इसमें सम्पदा के निर्माण में लगाये गये लोगों पर होने वाला व्यय भी शामिल है। यह शब्द मोटे हिसाब से पूँजी खाते होने वाला व्यय के लिए प्रयुक्त हुआ है।
(२) 'चालू व्यय' मोटे हिसाब से योजना के कार्यों पर राजस्व खाते पर किया गया व्यय है। यह व्यय 'पूँजी विनियोग' से भिन्न है।
2. इन अंकों में वह पूंजी-विनियोग शामिल नहीं है, जो सरकारी क्षेत्र से हस्तान्तरित साधनों से किया गया हो।

तीसरी योजना में प्रस्तावित व्यय और पूँजी-विनियोग

(करोड रुपये)

विकास का विभाग	सरकारी क्षेत्र: योजना का प्रस्तावित व्यय	सरकारी क्षेत्र: चालू व्यय	सरकारी क्षेत्र: पूँजी-विनियोग	निजी क्षेत्र का पूँजी-विनियोग	समस्त पूँजी-विनियोग
१ कृषि, छोटी सिंचाई और सामुदायिक विकास	१,०२५	३५०	६७५	८००	१,४७५
२. बडे और मध्यम सिंचाई-कार्य	६५०	१०	६४०	—	६४०
३. बिजली	९२५	—	९२५	५०	९७५
४. ग्रामीण और छोटे उद्योग	२५०	९०	१६०	२७५	४३५
५ उद्योग और खानें	१,५००	—	१,५००	१,०००	२,५००
६. परिवहन और सचार	१,४५०	—	१,४५०	२००	१,६५०
७. समाज सेवाएँ	१,२५०	६००	६५०	१,०७५	१,७२५
८ इन्वेण्टरियाँ	२००	—	२००	६००	८००
सर्वयोग	७ २५०	१,०५०	६,२००	४,०००	१०,२००

पहली योजना के समय देश की अर्थव्यवस्था मे वार्षिक पूँजी-विनियोग लगभग ५०० करोड रु० से बढते-बढते कोई ८५० करोड रु० तक पहुँच गया था। दूसरी योजना के अन्त तक वार्षिक पूँजी-विनियोग के १,४५० करोड रु० से १,५०० करोड रु० तक पहुँच जाने की आशा है। तीसरी योजना की समाप्ति पर वार्षिक पूँजी-विनियोग का विस्तार शायद २,५०० करोड रु० के आसपास पहुँच जाएगा। पहली योजना मे सरकारी पूँजी-विनियोग लगभग २०० करोड रु० प्रतिवर्ष से आरम्भ होकर योजना-समाप्ति तक ४५० करोड रु० हो गया था। दूसरी योजना के अन्त तक इसके लगभग ८०० करोड रु० और तीसरी योजना के अन्त तक कोई १,५०० करोड रु० हो जाने की आशा है।

तीसरी योजना में भी पूँजी-विनियोग का सामान्य रूप वही रहेगा, जो दूसरी योजना में था, परन्तु सरकारी क्षेत्र में कृषि, उद्योग, बिजली और समाज-सेवा के कुछ पहलुओं पर ज्यादा जोर दिया जायगा। दूसरी और तीसरी योजनाओं में विभिन्न कार्यों के लिए जो व्यय प्रस्तावित किया गया है, उसका विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है।

योजना के सरकारी क्षेत्र में प्रस्तावित व्यय का
विभिन्न कार्यों में विभाजन

(करोड़ रुपये)

	प्रस्तावित व्यय		सारे व्यय का प्रतिशत	
	दूसरी योजना	तीसरी योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना
१. कृषि और छोटे सिंचाई कार्य	३२०	६२५	६·६	८·६
२. सामुदायिक विकास और सहकारिता	२१०	४००	४·६	५·५
३. बड़े और मध्यम सिंचाई-कार्य	४५०	६५०	६·८	९·०
४. योग १, २ और ३ का	९८०	१,६७५	२१·३	२३·१
५. बिजली	४१०	९२५	८·९	१२·८
६. ग्रामीण और छोटे उद्योग	१८०	२५०	३·९	३·४
७. उद्योग और खानें	८८०	१,५००	१९·१	२०·७
८. परिवहन और सचार	१,२९०	१,४५०	२८·१	२०·०
९. योग ५, ६, ७ और ८ का	२,७६०	४,१२५	६०·०	५६·९
१०. समाज-सेवाएँ	८६०	१,२५०	१८·७	१७·२
११. इन्वेण्टरियाँ	—	२००	—	२·८
सर्वयोग	४,६००	७,२५०	१००	१००

योजना के निजी क्षेत्र का पूँजी-विनियोग मोटे हिसाब से दो भागों में बँटा हुआ है—(१) उद्योगों, खानों बिजली और परिवहन के सगठित कारोबार में लगा हुआ और (२) कृषि, ग्रामीण और छोटे उद्योगों और ग्रामीण तथा शहरी मकानों-सरीखे विभिन्न कामों में बिखरा हुआ। दूसरे भाग के विषय में जानकारी स्वभावतः बहुत अनिश्चित है, परन्तु हाल के वर्षों में निजी क्षेत्र के सगठित कारोबार की जानकारी अधिक निश्चित और स्पष्ट हो गई है। निजी क्षेत्र के विविध कार्यों में विभक्त पूँजी-विनियोग का विवरण साधन-विषयक अध्याय में दिया गया है।

सरकारी क्षेत्र के लिए प्रस्तावित व्यय

इस समय प्रस्तावित व्यय-विभाजन स्वभावतः अस्थायी हैं। यहाँ इनके निर्देश का प्रयोजन यह है कि केन्द्र और राज्य-सरकारो को अपने कार्यक्रमो और परि-योजनाओ की विस्तृत परीक्षा करने और विकास के प्रत्येक क्षेत्र मे प्राथमिकताओ का क्रम निश्चित करने मे सहायता मिले। योजना के जिन भागो की जिम्मेदारी मुख्यतः राज्यो के ऊपर है, उनके व्यय का अन्तिम निश्चय राज्य-सरकारो द्वारा बनाई गई योजनाओ और उनके द्वारा विविध कार्यक्रमो पर डाले गए जोर को देख कर किया जायगा। राज्य-सरकारें भी यह जोर इन कार्यक्रमो के दावो की तुलना करके और उपलब्ध वित्तीय साधनो को देख कर ही डालेंगी। कई क्षेत्रो मे योजना के लक्ष्य का निश्चय जिलो और विकास-खण्डो की योजनाओ को देख कर किया जाएगा—उदाहरणार्थ, कृषि के कार्यक्रमो, सहकारिता के विकास, ग्रामोद्योगो, गाँवो मे पीने के पानी की व्यवस्था और ग्रामीण जन शक्ति का पूरा उपयोग करने के लिए शुरू किए जाने वाले कामो का। इस रूपरेखा के कई भागो मे प्रसगवश ऐसे कई क्षेत्रों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है, जिनमे शीघ्र विकास करने के प्रयोजन से वर्त-मान लक्ष्यो को ऊँचा करना और उनके लिए नियत व्यय मे यथोचित परिवर्तन करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, खयाल है कि कृषि, ग्रामीण तथा छोटे उद्योगो, प्राथमिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और जन-शक्ति का उपयोग करने के लिए शुरू किए गए खास निर्माण-कार्यो के जो कार्यक्रम और लक्ष्य निश्चित किए जा चुके हैं, उनकी जब राज्य सरकारो और केन्द्रीय मन्त्रालयों-द्वारा परीक्षा की जायगी, तब उनके लिए अतिरिक्त स्वदेशी साधन उपलब्ध करने की आवश्यकता प्रतीत होगी और इसलिए उन्हे आवश्यक साधन दे दिए जायँगे। जिन स्वीकृत परियोजनाओ के लिए बडी मात्रा मे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है, उनके लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा उपलब्ध हो जाने पर उन्हे आवश्यक स्वदेशी साधन देने का भी पूरा प्रयत्न किया जायगा।

प्रस्तावित व्यय के केन्द्र और राज्यो मे विभाजन का पूरा रूप तब ज्ञात होगा, जब राज्यो की योजनाओ पर उनके साथ विचार होगा। परन्तु अपनी योजनाएँ बनाने मे राज्यो की सहायता करने के लिए यहाँ व्यय का अस्थायी विभाजन प्रस्तुत किया जा रहा है।

केन्द्र और राज्यो मे व्यय का विभाजन

(करोड रुपये)

	योग	केन्द्र	राज्य
१—कृषि, छोटे सिंचाई-कार्य और सामुदायिक विकास	१,०२५	१७५	८५०
२—बडे और मध्यम सिंचाई-कार्य	६५०	५	६४५
३—बिजली	९२५	१२५	८००

४—ग्रामीण और छोटे उद्योग	२५०	१००	१५०
५—उद्योग और खानें	१,५००	१,४७०	३०
६—परिवहन और संचार	१,४५०	१,२२५	२२५
७—समाज-सेवाएँ	१,२५०	३००	९५०
८—इन्वेण्टरियाँ	२००	२००	—
सर्वयोग	७,२५०	३,६००	३,६५०

यह विभाजन यह मान कर किया गया है कि सामान्य सिद्धान्त यह रहेगा कि जिन विकास-कार्यो की राज्य-सरकारे पूरा करेंगी, वे राज्यो की ही योजनाम्रो के भाग होगे, और केवल कुछ प्रकार के कार्य मन्त्रालयो की योजनाम्रो मे केन्द्र-द्वारा प्रवर्तित दिखलाए जाएँगे । इस प्रकार, आशा है कि राज्यो की योजनाम्रो का क्षेत्र विस्तृत कर राज्यो के विभिन्न कार्यक्रमो को एक साथ मिला कर पूरा किया जा सकेगा ।

विदेशी मुद्रा

नीचे की तालिका मे दिखलाया गया है कि विकास के विभिन्न कार्यों के लिए कितनी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी और उनमे से प्रत्येक मे कितनी पूँजी लगाने की बात सोची जा रही है । इस तालिका मे सरकारी और निजी क्षेत्रो की आवश्यकताम्रो को इकट्ठा ही दिखलाया गया है ।

विदेशी मुद्रा की आवश्यकता

(करोड रुपये)

	पूँजी-विनियोग	विदेशी मुद्रा की आवश्यकता
१—उद्योग और खानें (छोटे उद्योगो को शामिल करके)	२,९३५	१,१६०
२—बिजली	९७५	२७०
३—परिवहन और सचार	१,६५०	३००
४—कृषि, सामुदायिक विकास और सिंचाई	२,११५	७५
५—समाज-सेवाएँ (निर्माण-कार्य शामिल करके)	१,७२५	८०
६—इन्वेण्टरियाँ	८००	—
सर्वयोग	१०,२००	१,९१५

परियोजनाम्रों का सोपानों में विभाजन

तीसरी योजना के समान विशाल और विस्तृत योजना का विकास करते समय उसकी विभिन्न परियोजनाम्रो और व्ययो को ठीक-ठीक सोपानो मे बाँट लेना निहायत जरूरी है । इसके बिना यह सम्भव नही है कि योजना पर चुस्ती से अमल

हो, पूँजी-विनियोग का हर वर्ष मिलने वाले स्वदेशी और विदेशी साधनो के साथ मेल बैठता रहे और इस बात का निश्चय हो कि योजना के हर सोपान मे कुछ परियोजनाओ पर अमल हो रहा है और योजना निरन्तर आगे बढ रही है और फायदा पहुँचा रही है। परियोजनाओ और कार्यक्रमो को सोपानो मे बाँटने का भारी कार्य हल्का करने के लिए निम्नलिखित मोटी कसौटियाँ रखी गई हैं

१—परियोजनाओ का सोपानो मे विभाजन दृढता से योजना की भौतिक आवश्यकताओ के अनुसार, विशेषकर जन-शक्ति तथा कच्चे माल की उपलब्धि और बिजली तथा परिवहन, आदि सम्बद्ध सेवाओ को देख कर ही करना चाहिए,

२—जो परियोजनाएँ हाथ मे हो अथवा इसी योजना से बच रही हो, उन्हे पहले और जल्दी पूरा करना चाहिए। ये परियोजनाएँ न्यूनतम आवश्यक समय मे पूरी हो जाएँ, इसके लिए वार्षिक योजनाओ मे पर्याप्त साधनो की व्यवस्था कर देनी चाहिए,

३—उत्पादन वर्ष-प्रति-वर्ष निरन्तर जारी रहना चाहिए। सोपानो मे कार्य-विभाजन ऐसा होना चाहिए कि हर कदम पर पूँजी-विनियोग से अधिकतम लाभ मिलने का निश्चय होता रहे और बिलम्ब से फल देने वाली तथा अपेक्षाकृत शीघ्र फल देने वाली परियोजनाओ मे उचित सन्तुलन रहना चाहिए,

४—विभिन्न परियोजनाओ मे समस्त अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करते समय इन वस्तुओ की उपलब्धि पहले हो जाने का ध्यान रखना चाहिए

(क) कृषि का उत्पादन जल्दी बढाने के लिए आवश्यक वस्तुएँ—जैसे, उर्वरक,

(ख) जिन वस्तुओ के समय पर न मिलने पर सभी काम रुक जाने का भय हो—जैसे, परिवहन, बिजली और कच्ची धातुएँ गलाने का कोयला, आदि,

(ग) निर्यात की योजना पूरी करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ;

(घ) जो वस्तुएँ अनिवार्य रूप से आयात की जाने वाली वस्तुओ के स्थान पर काम दे सकें—जैसे, मशीन, मिश्रित धातुएँ और पुर्जे बनाने का इस्पात, आदि, और

(च) तकनीकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण के कार्यक्रम।

प्रत्येक क्षेत्र की परियोजनाओ को सोपानो मे बाँटने के लिए तो ऊपर लिखी कसौटियाँ सामने रखी ही जाएँगी, परन्तु समस्त योजना की दृष्टि से आवश्यक होगा कि सोपानो के स्वीकृत क्रम को पूरा करने के लिए जिन साधनो की (विदेशी मुद्रा

की भी) आवश्यकता पडे, वे सब वार्षिक योजनाएँ बना कर अवश्य पूरे कर दिए जाएँ। इसी प्रकार, इस्पात, सीमेण्ट और बिजली, आदि मौलिक आवश्यकता की वस्तुओ की प्रति वर्ष जितनी आवश्यकता हो, उतनी मात्रा मे उनकी प्राप्ति का प्रबन्ध अवश्य कर दिया जाए।

राष्ट्रीय विकास की पंच-वर्ष-व्यापिनी योजना के प्रारम्भ मे प्रस्तावित वित्तीय व्यय से योजना का सारा चित्र स्पष्ट नही हो सकता—उससे अधिक-से-अधिक एक ऐसे ढाचे की ही कल्पना हो सकती है, जिसमे रह कर कार्यकर्त्ताओ के विभिन्न संगठन अपने कार्यक्रम बना लें और उन्हे पूरा करने का निश्चय कर लें। इन कार्यक्रमों के लिए वर्ष-प्रति-वर्ष जो वित्त-राशि दी जाएगी, वह भी अनिवार्यत काम की प्रगति, कुशलता और सफलता को देख कर ही दी जाएगी। इसलिए मूल समस्या यह रहेगी कि विकास के प्रत्येक क्षेत्र मे, दिए हुए व्यय से अधिकतम लाभ किस प्रकार उठाया जाए। प्रत्येक क्षेत्र मे इसका भी ध्यान रखना पडेगा कि जिन लक्ष्यो की पूर्ति अत्यावश्यक है, उन्हे अपेक्षाकृत गौण लक्ष्यों से पृथक् कर दिया जाए। सब क्षेत्रो मे मुख्य कसौटी यह रहेगी कि पचवर्षीय योजना से जो साधन उत्पन्न हो अथवा मार्ग निकले, उनसे यथाशीघ्र पूरे लाभ प्राप्त होने लगें।

बहुत-से विकास-कार्यों को पूरा करते समय सरकारी अनुदान अथवा घाटा उठा सकने के लिए सरकारी सहायता का आश्रय लिया जाता है। जहाँ कही ऐसी सरकारी सहायता दी जाए, वहाँ अच्छी तरह देखभाल कर यह निश्चय कर लेना चाहिए कि कार्य के उद्देश्य की हानि किए बिना सहायता को बन्द अथवा कम किया जा सकता है या नही। यह भी देखा गया है कि बहुत-से विकास-कार्य स्थानीय लोगो के सहयोग से अथवा उनसे लाभ उठाने वालो की सहायता से किए जा सकते हैं, परन्तु व्यवहार मे इस ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता। इस पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। अन्तिम बात यह कि प्रत्येक कार्यक्रम और परियोजना के निर्माण मूलक भाग की जाँच योजना बनाने के समय ही बारीकी से कर लेनी चाहिए, ताकि निर्माण के काम मे ज्यादा-से-ज्यादा किफायत की जा सके।

योजना के लक्ष्य

विकास के विभिन्न क्षेत्रो के लिए प्रस्तावित भौतिक लक्ष्यो का रूप अभी अस्थायी है। अभी योजना के निजी क्षेत्र मे विभिन्न उद्योगो के प्रतिनिधियो के साथ सलाह मशविरा चल रहा है। उसके पूरा हो जाने पर ही सरकारी और निजी, दोनो क्षेत्रो की औद्योगिक योजना का पूरा चित्र सामने आ सकेगा। उद्योगो, खानो और परिवहन तथा संचार की बहुत-सी परियोजनाओ की जिम्मेदारी केन्द्रीय मन्त्रालयो पर है। उनकी तफसील तय होना अभी बाकी है—अभी तो उनके विषय मे जाँच और प्रारम्भिक तैयारी का ही काम हो रहा है। राज्य-सरकारों की योजनाओं—

विशेषकर कृषि, छोटे उद्योगो, सडको और समाज-सेवाओ सरीखे विभागो—की रूप-रेखाएँ बाद मे प्राप्त हो सकेंगी और तब उनमे जिलों की स्थानीय योजनाओ और अन्य अध्ययन के आधार पर सशोधन किए जाएगे। इन परिस्थितियो मे, इस रूपरेखा मे निर्दिष्ट भौतिक लक्ष्यो को, तीसरी योजना के लिए किए जाने वाले प्रयत्न की विशालता का सूचकमात्र समझना चाहिए। उन्हे पेश कर देने का बडा लाभ यह है कि उससे सारा चित्र सामने आ जाता है और योजना की असगतियो अथवा निर्बलताओ की ओर ध्यान आकृष्ट हो जाता है।

राष्ट्रीय आय और रोजगार

योजना के विविध भागो के लिए पेश किए गए विकास के लक्ष्यो पर विचार करने से पता चलता है कि राष्ट्रीय आय मे ५ प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक वृद्धि हो जाने की सम्भावना है। रोजगार के सम्बन्ध मे स्थिति यह है कि तीसरी योजना के पाच वर्षो मे लगभग १ करोड ५० लाख नए श्रमिक बढ जाएँगे। उनमे से लगभग १ करोड ५ लाख कृषि-भिन्न रोजगारो मे और ३५ लाख कृषि मे खप सकेंगे।

सन्तुलन और लचीलापन

इस योजना का ढाचा तैयार करते समय ऐसा प्रयत्न किया गया है कि देश की अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक भाग मे उचित सन्तुलन बना रहे। उदाहरणार्थ, इस्पात, कोयला, बिजली और अन्य वस्तुओ की आवश्यकता का अन्दाजा एहतियात के साथ लगा कर, योजना मे उसे पूरा करने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार, रेलो की योजना बनाते समय, विभिन्न विकास कार्यों के कारण ट्रैफिक मे जितनी वृद्धि हो जाने की सम्भावना है, उसका खयाल रखा गया है। जब योजना का काम वर्तमान प्रारम्भिक अन्दाजो से आगे बढ जाएगा और परियोजनाओ के सोपानो और विभिन्न प्रदेशो की आवश्यकताओ तथा साधनो पर विचार किया जाएगा, तब न केवल प्रस्तावित भौतिक लक्ष्यो, अपितु उनके लिए रखे गए वित्तीय व्यय मे भी, अवश्य परिवर्तन करना पडेगा।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, कई क्षेत्रो मे कार्यक्रमो के सोपान निश्चित करते समय एक बडा खयाल यह रखना पडता है कि विदेशी मुद्रा कितनी मिल सकती है। चूँकि इस सम्बन्ध मे स्थिति काफी समय के बाद ही स्पष्ट होगी, इसलिए इस समय ऐसा उचित समझा गया है कि जिन परियोजनाओ के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पडेगी, उन्हे योजना म शामिल करने का निश्चय करते समय उदार दृष्टि रखी जाए। इसीलिए, औद्योगिक परियोजनाओ को निम्नलिखित पाच वर्गो मे बाट दिया गया है

(१) वे परियोजनाएँ, जिन्हे कार्यान्वित किया जा रहा है और जो दूसरी योजना मे शुरू की गई थी।

(२) वे नई योजनाएँ, जिनके लिए विदेशी सहायता मिलने का निश्चय हो चुका है।

(३) वे नई परियोजनाएँ, जिन्हें इस समय योजना में सम्मिलित माना जा सकता है। इनमें से अधिकतर की तैयारी काफी आगे तक हो चुकी है, परन्तु उनके लिए अभी विदेशी मुद्रा की व्यवस्था नहीं हुई।

(४) वे नई परियोजनाएँ, जिनकी तैयारी का काम अभी बहुत आगे तक नही पहुँचा और जिनके लिए अभी विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध भी नही हुआ। इन्हें योजना मे शामिल करने का पक्का निश्चय अभी नही किया गया, परन्तु इनकी तफसील पूरी करके, इन्हें योजना मे शामिल करने के बारे में पीछे विचार किया जाएगा।

(५) वे परियोजनाएँ, जो कुछ उलझी हुई है और जिनकी पूर्ति कुछ ऐसी परिस्थितियो पर निर्भर करती है, जो इस समय पूरी तरह स्पष्ट नही हैं।

इनके अतिरिक्त भी अन्य कुछ लक्ष्य इसके निर्माण में अपनाये गये हैं। किन्तु सभी के विषय में विशद रूप से वर्णन करना इस स्थान पर सम्भव नही हैं।

कृषि और सिंचाई

कृषि का उत्पादन तीसरी योजना मे ३० से ३३ प्रतिशत तक बढाया जाएगा, परन्तु यह उन लक्ष्यो पर निर्भर करेगा, जो क्षेत्रीय कृषि-योजनाओं का विवरण देख लेने के बाद निश्चित किए जाए गे।

कुछ महत्वपूर्ण कृषि-वस्तुओं के अतिरिक्त उत्पादन के लक्ष्य निम्नलिखित हैं।

कृषि-वस्तुओं के अतिरिक्त उत्पादन के लक्ष्य

वस्तु	अतिरिक्त उत्पादन	वृद्धि का प्रतिशत
खाद्यान्न (करोड टन)	२·५ से ३	३३-४०
तिलहन (लाख टन)	२० से २३ तक	२८-३२
गन्ना (गुड के रूप में लाख टन)	१८ से २० तक	२५-२८
कपास (लाख गाठें)	१८	३३
पटसन (लाख गाठें)	१०	१८

इसके अतिरिक्त, फल, सब्जी, दूध, मछली, मास और अण्डे सरीखे खाद्य-पदार्थों और नारियल, सुपारी, काजू, काली मिर्च, छोटी इलायची, तम्बाकू, लाख और इमारती लकडी-जैसी अन्य वस्तुओं का भी उत्पादन बढाने के उपाय किए जाएगे।

खाद्यानो के उत्पादन का जो लक्ष्य रखा गया है, उससे प्रत्येक व्यक्ति को प्रति दिन लगभग साढे सात छटाक अनाज और डेढ छटाक दाल खाने को मिलने के बाद, सकट के समय के लिए कुछ बच भी जाएगा। आशा है कि कपास का लक्ष्य पूरा हो जाने पर प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष १७.५ गज सूती कपडा मिल जाने के बाद निर्यात के लिए भी कुछ बच जाएगा।

कृषि का विकास करने के लिए जो विशिष्ट कार्यक्रम रखे गए हैं, उनमें बडे तथा छोटे सिंचाई कार्यो से २ करोड एकड अतिरिक्त भूमि को सिंचाई का लाभ पहुँचने लगेगा। यह अन्दाजा इस बात की गुजायश रखकर लगाया गया है कि कुछ पुराने सिंचाई-कार्य अशत या पूर्णत बन्द हो जाएगे या इसी तरह के कुछ और बिघ्न पड जाएगे। इसे मिलाकर, तीसरी योजना के अन्त तक सिंचाई का कुल क्षेत्रफल ९ करोड एकड हो जाएगा। लगभग ४ करोड एकड मे बिना सिंचाई के खेती करने की विधियो का प्रयोग किया जाएगा। भूमि-रक्षा के उपायो का विस्तार और भी एक करोड ३० लाख एकड भूमि मे कर दिया जाएगा। नत्रजन के हिसाब से नत्रजनयुक्त उर्वरको की खपत बढा कर १० लाख टन और फास्फेटवाले उर्वरको की खपत ४ से ५ लाख टन तक कर दी जाएगी। ५ करोड एकड अतिरिक्त भूमि मे हरी खाद से खेती की जाएगी और ७ करोड ५० लाख एकड क्षेत्र मे पौधो की रक्षा के उपायो का विस्तार किया जाएगा।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का विस्तार अक्तूबर १९६३ तक देश के सभी गावो मे कर दिया जाएगा। सहकारिता-विकास के कार्यक्रम को नवम्बर १९५८ मे राष्ट्रीय विकास-परिषद् द्वारा निर्दिष्ट दिशा मे अधिक तीव्र कर दिया जाएगा और कृषि के विकास मे सहकारी सस्थाओ द्वारा दी हुई वित्तीय सहायता बडा काम करने लगेगी।

उद्योग और बिजली

औद्योगिक क्षेत्र मे खास जोर उन उद्योगो के विकास पर दिया जाएगा, जिनसे अर्थ-व्यवस्था के स्वावलम्बी बनने मे सहायता मिलती है, अर्थात् इस्पात, यन्त्र निर्माण और उत्पादक-सामग्री का उत्पादन। उपभोक्ता पदार्थो का उत्पादन बढाने के लिए भी आवश्यक उपाय किए जाते रहेंगे।

लोहे और इस्पात का विकास इस्पात की सिल्लियो के १ करोड २ लाख टन और विक्री के लिए कच्चे लोहे के १५ लाख टन के लक्ष्य के साथ जुडा हुआ है। आशा है कि इस क्षेत्र मे अतिरिक्त उत्पादन और क्षमता की पूर्ति अधिकतर सरकारी क्षेत्र मे ही हो जाएगी। भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर के इस्पात-कारखानो का और विस्तार करने की बात सोची जा रही है, और ये मिलकर इस्पात की ५५ लाख

टन सिल्लियां तैयार कर सकेंगे । सरकारी क्षेत्र मे लोहे का चौथा कारखाना बोकारो मे स्थापित किया जाएगा । आशा है कि इस्पात की २ लाख टन सिल्लिया लोहे की कतरन गलाने वाली बिजली की भट्टियों से और २ लाख टन कच्चा लोहा छोटी धमन-भट्टियो से भी मिल सकेगा । ये सब भट्टिया योजना के निजी क्षेत्र मे खोलने का विचार है । २ लाख टन मिश्र धातुए और पुर्जे बनाने का खास इस्पात तैयार करने के लिए भी उपाय किए जाएगे ।

मशीनो और इजीनियरी उद्योगो की तीसरी योजना की अवधि मे महत्व-पूर्ण उन्नति होगी । इस विभाग के लिए दिए हुए सुझावो मे ये परियोजनाए भी शामिल हैं—भारी मशीनें बनाने का कारखाना, ढलाई का कारखाना, कोयला-खानो की मशीनें बनाने का कारखाना, भारी इमारती समान बनाने का कारखाना, धातु की भारी चादरें और जहाज बनाने का कारखाना, मशीनो के भारी औजार बनाने का कारखाना, बगलौर के 'हिन्दुस्तान मशीन टूल्स' कारखाने का उत्पादन दुगुना करना, भोपाल के बिजली का भारी सामान बनाने वाले कारखाने का विस्तार, बिजली का भारी सामान बनाने के दो नए कारखाने और भारी दबाव वाले बायलर और सूक्ष्म यत्र बनाने के कारखाने खोलना ।

आशा है कि योजना के निजी क्षेत्र मे भी मशीन बनाने के कुछ कार्यक्रम पूरे किए जा सकेंगे और वे सरकारी क्षेत्र के इन कामो के पूरक साबित होंगे । कपडा, चीनी, सीमेण्ट, कागज, आदि कुछ उद्योगो के कारखानो मे १९६५-६६ तक मशीनों की जितनी माग होने की सम्भावना है, उसके आधार पर ऐसे कार्यक्रम बना लिए गए हैं कि इन उद्योगों के लिए कारखानो के पूरे यत्र विदेशों से मगाने की आवश्यकता काफी घट जाए । दूसरी योजना के अन्त मे नत्रजन के हिसाब से नत्रजनयुक्त उर्वरको का उत्पादन २,१०,००० टन रहेगा, जिसे बढाकर तीसरी योजना के अन्त तक १० लाख टन कर दिया जाएगा । फास्फेटवाले उर्वरकों का उत्पादन भी काफी बढा देने का विचार है । दूसरी योजना मे कोयले के उत्पादन का लक्ष्य ६ करोड ७० लाख टन अतिरिक्त कोयले का उत्पादन करके, उसका परिमाण ९ करोड ७० लाख टन तक पहुँचा देने का विचार है ।

अब तक जितना तेल भूगर्भ मे विद्यमान होने का निश्चय हो चुका है उसके आधार पर आशा है कि नहरकटिया के इलाके मे प्रतिवर्ष २७.५ लाख टन कच्चा तेल निकलेगा । नहरकटिया का यह कच्चा तेल साफ करने के लिए नूनमती और बरौनी मे तेल साफ करने के कारखाने पूरे करने की व्यवस्था कर दी गई है । इसके अतिरिक्त, जिन खम्भात, आदि जिन इलाको मे तेल निकलने के लक्षण अनुकूल जान पडते हैं, वहा अनिरिक्त कच्चा तेल खोजने की भी व्यवस्था की गई है ।

अब तक जो अन्य लक्ष्य प्रस्तावित हुए हैं, उनमे से कुछ ये हैं ।

कतिपय महत्वपूर्ण वस्तुओ के उत्पादन लक्ष्य

	वार्षिक उत्पादन	
	१६६०-६१	१६६५-६६
अलुमीनियम (हजार टन)	१७	७५
सीमेण्ट (लाख टन)	८८	१३०
कागज (हजार टन)	३२०	७००
गन्धक का तेजाब (हजार टन)	४००	१,२५०
कास्टिक सोडा (हजार टन)	१२५	३४०
चीनी (लाख टन)	२२ ५	३०
मिल के सूती वस्त्र (करोड गज)	५००	५८०
बाइसिकिलें (सगठित कारखानो मे निर्मित) (हजार)	१,०५०	२,०००
सिलाई की मशीनें (हजार)	३००	४५०
मोटरगाडिया	५३,५००	१,००,०००

दूसरी योजना के अन्त तक बिजली की उत्पादन क्षमता ५८ लाख किलोवाट हो जाने की सम्भावना है। तीसरी योजना के अन्त तक बढा कर १ करोड १८ लाख किलोवाट कर देने का विचार है। बिजली के कार्यक्रम मे परमाणु-शक्ति-द्वारा भी ३ लाख किलोवाट बिजली तैयार करने की परियोजना शामिल है। आशा है कि तीसरी योजना के समय १५ हजार और कस्बो तथा गावो से बिजली पहुँचाई जा सकेगी। तब, इस प्रकार के कस्बो और गावो की सख्या ३४ हजार हो जाएगी।

राज्य-सरकारें और छोटे उद्योगो के अखिल भारतीय बोर्ड छोटे उद्योगो के विकास के लिए व्यापक कार्यक्रम तैयार कर रहे है, और उनमे औद्योगिक बस्तियो की स्थापना, खादी (अम्बर-खादी शामिल करके) तथा ग्राम उद्योगों हथकरघो, हस्तशिल्पो, रेशम और नारियल के रेशो के कार्यक्रम भी शामिल हैं। मोटे तौर पर, उद्देश्य यह है कि निजी और सहकारी सस्थाओ को प्रशिक्षण, तकनीकी जानकारी, कर्ज और कच्चे माल, आदि की सुविधाए देकर उत्पादन बढाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। अस्थाई रूप से लक्ष्य यह रखा गया है कि विकेन्द्रित क्षेत्र का, अर्थात् हाथ तथा बिजली के करघो के कपडे और खादी का उत्पादन १६६०-६१ के २६१ करोड गज के लक्ष्य से बढाकर १६६५-६६ मे ३५० करोड गज और रेशम का ३७ लाख पौण्ड से बढाकर ५.० लाख पौण्ड कर दिया जाए। औद्योगिक बस्तियो की सख्या दूसरी योजना मे ६० थी, जो तीसरी योजना के अन्त तक ३६० कर दी जाएगी। छोटे उद्योगो के कार्यक्रमो मे जोर इस बात पर दिया जाएगा कि उनका विकास छोटे कस्बो और गावों मे हो और उनका सहायक उद्योगो के रूप मे, बडे

उद्योगो के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध जोड दिया जाय। हस्तशिल्पो और नारियल के रेशो से बनी चीजो के कार्यक्रम विशेष रूप से इस तरह रखे जाएँगे कि उनके माल अधिक बढिया बनें और विदेशो को निर्यात किए जा सकें।

परिवहन और संचार

आशा है कि तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष मे रेलें लगभग २३ करोड ५० लाख टन तक माल ढोने-योग्य हो जाएँगी। इसकी तुलना मे, वे १९६० मे १६ करोड २० लाख टन तक ही पहुँच पाए गी। इसी अवधि मे, १,२०० मील लम्बी नई रेल-लाइने बिछाई जाए गी। १९६०-६१ के अन्त तक, आशा है कि, पक्की सडको की लम्बाई १,४४,००० मील हो चुकेगी। तीसरी योजना के समय इनमें २०,००० मील सडको की और वृद्धि कर दी जाएगी। सडको पर माल की ढुलाई का विस्तार प्राय निजी क्षेत्र के ही जिम्मे रहेगा। माल ढोनेवाली गाडियो के सम्बन्ध में मोटा अन्दाजा यह है कि तीसरी योजना की अवधि मे उनकी सख्या २ लाख से बढकर ३ लाख हो जाएगी। पानी के जहाजो का वजन तीसरी योजना के अन्त मे ६ लाख ग्रौस रजिस्टर्ड टन होने की आशा है। इस समय उसमे २ लाख रजिस्टर्ड टन की वृद्धि कर देने का विचार किया जा रहा है, परन्तु इस लक्ष्य को अपर्याप्त माना जा रहा है और इस पर और अधिक विचार किया जाएगा।

समाज-सेवाएँ

हाल के वर्षो मे समाज-सेवा की दिशा मे कितनी प्रगति हुई है, इसका पता इस बात से लग सकता है कि समाज सेवाओ के लिए अधिक साधनो की माग होने लगी है और लोग उनसे अधिक आशाए करने लगे है। तीसरी योजना मे, समाज-सेवा के कई कार्यों मे बडी प्रगति हो जाने की आशा है। ६ से ११ वर्ष तक की आयु के सभी बालको के लिए प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य कर देने का विचार है। कई पिछड़े हुए इलाको मे लडकियो की शिक्षा मे प्रगति मन्द होगी, यह ख्याल करके अन्दाजा लगाया गया है कि ६ से ११ वर्ष तक की आयु के सब बच्चो मे पढनेवाले बच्चो का अनुपात ६० प्रतिशत से बढकर ८० प्रतिशत, ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चो मे २३ प्रतिशत से बढकर ३० प्रतिशत और १४ से १७ वर्ष तक की आयु के बच्चो मे १२ प्रतिशत से बढकर १५ प्रतिशत हो जाएगा। १९६०-६१ में विद्यालयो के सब बच्चो की सख्या ४ करोड १० लाख होगी, जो १९६५-६६ मे बढकर ६ करोड ५० लाख हो जाएगी।

वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा को और अधिक सहायता दी जाएगी। आशा है कि कालेजो मे विज्ञान के विषय लेनेवाले विद्यार्थियो की सख्या सब विद्यार्थियो के ३० प्रतिशत से बढ कर ४० प्रतिशत हो जाएगी। दूसरी योजना के अन्त मे इजीनियरी कालेजो तथा पालिटेक्नीको की क्षमता ३७,००० विद्यार्थियो को प्रविष्ट कर सकने की होगी। तीसरी योजना के अन्त तक उनकी यह क्षमता बढ़ कर

५२,५०० विद्यार्थियो को ले सकने की हो जाएगी। वैज्ञानिक प्रयोगशालाम्रो और इ जीनियरी सस्थाम्रों को तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाए देने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। म्राशिक समय लगाकर और पत्र व्यवहार द्वारा पढाई कर सकने की भी विशेष व्यवस्था की जाएगी।

स्वास्थ्य के क्षेत्र मे रजिस्टर्ड डाक्टरो की सख्या ८४,००० से बढा कर १,०३,२००, अस्पतालो मे रोगी शय्याम्रो की सख्या १,६०००० से बढाकर १,६०,०००, और अस्पतालो तथा औषधालयो की सख्या १२,६०० से बढा कर १४,६०० कर देने का विचार है। प्रारम्भिक स्वास्थ्य-केन्द्रो की सख्या २,८०० से बढा कर ५,००० कर दी जाएगी। परिवार नियोजन के कार्यक्रम को बहुत अधिक प्राथमिकता दी जाएगी और क्लिनिको की सख्या १,८०० से बढाकर ८,२०० कर दी जाएगी। कम आमदनी वाले लोगो और औद्योगिक श्रमिको के लिए घर बनाने, गन्दी बस्तियाँ साफ करने और सुधारने और घर बनाने के लिए जमीन लेकर उसे सुधारने के कार्यक्रमो का भी विस्तार किया जाएगा। घर बनाने के लिए वित्तीय सहायता आवास वित्त-निगमो की मार्फत दी जाएगी।

तीसरी योजना मे एक कार्यक्रम स्थानीय विकास-कार्यो का भी सम्मिलित किया जाएगा, ताकि गावो के निवासी भी कुछ न्यूनतम सुविधाम्रो का लाभ उठा सकें। ये सुविधाएँ है—(१) पीने का पानी पर्याप्त मात्रा मे मिलना, (२) प्रत्येक गाव का सडक द्वारा समीप को मुख्य सडक से अथवा समीप के रेलवे स्टशन से सम्बन्ध जोड देना, और (३) गाव के विद्यालय भवन का निर्माण। यह भवन गाव की चौपाल या गाव के पुस्तकालय का भी काम दे सकेगा।

तीसरी योजना के इस समय सोचे हुए लक्ष्य हमारी अर्थ व्यवस्था को स्वचालित प्रगति के मार्ग पर काफी आगे बढा देंगे। इस बात के लिए भी आधार तैयार किया जाएगा कि चौथी योजना मे इस प्रगति को और भी अधिक तेज किया जा सके, परन्तु पहले ही बहुत बडी मात्रा मे जो पूँजी लगाई जा चुकी है, उसका विचार करते हुए यह आवश्यक है कि उससे जो उपलब्धिया हो, उनसे अधिकतम लाभ उठा लिया जाए। स्वय विकास की प्रक्रिया भी उत्पादन और रोजगार बढाने के नए अवसर उपस्थित करेगी। बस, प्रयत्न यह रहना चाहिए कि जन शक्ति का यथासम्भव पूरा उपयोग करके और जनता की बचत को एकत्र करके इन अवसरो से लाभ उठाया जाए।

२—योजना के लिये साधन[1]

(Resources for the Plan)

सरकारी क्षेत्र में वित्त-व्यवस्था की योजना

तीसरी योजना के सरकारी क्षेत्र में अब तक के अध्ययन के फलस्वरूप प्रस्तावित व्यय की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में जो योजना तैयार कीगई है, वह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाती है। वर्तमान अनुमानों के अनुसार, दूसरी योजना में जिस-जिस सूत्र से जितना-कुछ मिलने की आशा है, उसे भी, तुलनात्मक अध्ययन के लिए, साथ में दे दिया गया है।

वित्तीय साधन

(करोड़ रुपये)

	दूसरी योजना	तीसरी योजना
१—करों की वर्तमान दरों के आधार पर, राजस्व से बची हुई राशि	१००	३५०
२—वर्तमान आधार पर, रेलों से प्राप्त भाग	१५०[2]	१५०
३—वर्तमान आधार पर, अन्य सरकारी उद्योग-व्यवसायों से होने वाली बचत	[3]	४४०
४—जनता से लिए हुए ऋण	८००	८५०
५—छोटी बचतें	३८०	५५०
६—प्राविडेण्ट-फण्ड, खुशहाली कर, इस्पात-समीकरण-कोष और पूँजी खाते में जमा विविध रकमें	२१३	५१०
७—नए कर, जिनमें सरकारी उद्योग-व्यवसायों में अधिक बचत करने के लिए किए जाने वाले उपाय शामिल हैं	१०००	१,६५०
८—विदेशी सहायता के रूप में बजट में दिखाई गई रकमें	९८२	२,२००
९—घाटे की अर्थ-व्यवस्था	१,१७५	५५०
योग	४,६००	७,२५०

ऊपर जो अनुमान दिए गए हैं, उनकी संक्षिप्त व्याख्या नीचे पैराग्राफों में की गई है।

राजस्व से बची हुई राशि : राजस्वगत आय और व्यय के वर्तमान अनुमानों के अनुसार तीसरी योजना की अवधि में, योजना के लिए राजस्व से ३५० करोड़

1. तृतीय पंच वर्षीय योजना, रूपरेखा, अध्याय ४
2. इसमें बढ़ाए हुए किराए और भाड़े भी शामिल हैं।
3. इस तालिका की प्रविष्टि-संख्या १ में शामिल है।

रुपये की राशि बचती है। यह अनुमान लगाते समय इस बात का भी खयाल रखा गया है कि तीसरी योजना की अवधि मे कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे उत्पादन बढ जाएगा और कुल मिलाकर राष्ट्रीय आय मे भी वृद्धि की प्रवृत्ति रहेगी। व्यय का हिसाब लगाते समय आगामी वर्षो मे भी पुराने ही रुख जारी रहने की कल्पना की गई है और दूसरी योजना के अन्त तक जो कार्यक्रम पूरे हो चुकगे, उनके निर्वाह-व्यय का भी हिसाब लगा लिया गया है।

रेलों से प्राप्त भाग : यह राशि, रेलो की सम्भावित चालू आय मे से, उनके प्रबन्ध का व्यय (व्यय मे बननी हुई लाइनो का खर्च नही गिना गया, क्योकि उसे विनियोग माना जाता है) ६५ ७० करोड रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से उनकी घिसाई और लाभांश घटा कर निकाली गई है।

अन्य सरकारी उद्योग व्यवसायों से होने वाली बचत : केन्द्रीय सरकार के उद्योग-व्यवसायो (लोहे तथा इस्पात, उर्वरक, तेल निकालने तथा साफ करने और डाक-तार, आदि) से ३०० करोड रुपये और राज्य-सरकारो के उद्योग-व्यवसायो (बिजली-बोर्डो, परिवहन-सस्थाओ, आदि) से १४० करोड रुपये बचने का अनुमान है। यह अनुमान लगाते समय इन सरकारी उद्योग-व्यवसायो के प्रबन्ध और घिसाई, आदि का व्यय निकाल दिया गया है। चूँकि ये अनुमान मोटे तौर पर स्वीकृत मान्यताओ के आधार पर लगाए गए है, इसलिए इन्हे मोटे ढग का ही मानना पडेगा। योजना को अन्तिम रूप देने से पूर्व, केन्द्रीय मन्त्रालयो और राज्य-सरकारो के साथ अधिक विस्तृत रूप मे विचार-विनिमय किया जायगा।

जनता से लिए हुए ऋण : दूसरी योजना में इस सूत्र से ८०० करोड रु० मिलने का अनुमान है। परन्तु इसमें अमेरिका के पी० एल० ४८० के कोष की रकम से स्टेट बैंक-द्वारा की जानेवाली सरकारी सिक्यूरिटियो की खरीद भी शामिल है। तीसरी योजना में, सभी विदेशी सहायताओ की राशिया—पी०एल० ४८० की राशि भी—विदेशी सहायता के रूप मे बजट मे दिखाई गई रकमो मे शामिल कर ली गई हैं। फिर भी, तीसरी योजना मे इस मद से ८५० करोड रुपये मिलने का जो अनुमान लगाया गया है, उसके पीछे यह मान्यता है कि जीवन-बीमा-निगम और विविध प्राविडेण्ट फण्ड सरकार को पहले की अपेक्षा अधिक ऋण देंगे। इस राशि मे इनामी बौण्डो की सम्भावित आमदनी भी शामिल है।

छोटी बचतें दूसरी योजना म इस सूत्र से जितनी राशि एकत्र हुई थी, उसकी तुलना मे प्रति वर्ष औसतन ११० करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान बेशक ऊँचा है, परन्तु यह एक ऐसा सूत्र है, जिसका विकास परिश्रम पूर्वक किया जाना चाहिये।

प्राविडेण्ट फण्ड, खुशहाली कर आदि इस मद मे २३० करोड रुपये तो प्राविडेण्ट-फण्डो में अधिक जमा होने का अनुमान है, और ७५ करोड रुपये खुशहाली करो से, १६० करोड रुपये इस्पात-समीकरण-कोश से तथा ४५ करोड रुपये अन्य विविध पूँजी-खातो से मिलेंगे।

विदेशी सहायता के रूप में बजट में दिखाई गई रकमें . जैसा कि इसी अध्याय में आगे चल कर तीसरी योजना की अवधि में भुगतान-सन्तुलन-विषयक विचार-विमर्श के क्रम में स्पष्ट होगा, इस योजना के लिये कुल ३,२०० करोड़ रुपये की विदेशी सहायता की आवश्यकता होगी। इसमें से ४५०-५०० करोड़ रुपये तो तीसरी योजना की अवधि में भुगताई जाने वाली विदेशी देनदारियां हैं। लगभग ३०० करोड़ रुपये योजना के निजी क्षेत्र में चले जायेंगे। इसमें विदेशी पूंजीपतियों द्वारा लगाई हुई निजी पूंजी और विश्व-बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम तथा अमेरिका के आयात निर्यात बैंक से प्राप्त ऋण भी शामिल हैं। अन्तिम बात यह, कि अमेरिका के साथ हाल में पी० एल० ४८० के अन्तर्गत हुए समझौते के अनुसार प्राप्त होने वाली लगभग ६०८ करोड़ रुपये की समस्त सहायता में से लगभग दो सौ करोड़ रुपये उस सकटकालीन अन्न-कोष (४० लाख टन गेहूं और १० लाख टन चावल) में लग जायेंगे, जिससे धन विषयक साधन उपलब्ध नहीं होंगे। इस प्रकार, विदेशों से प्राप्त समस्त ३,२०० करोड़ रुपये में से—यह मान कर कि इतनी राशि मिल ही जाएगी उपर्युक्त तीन रकमें घटानी होंगी, जिनका योग लगभग १,००० करोड़ रुपया होता है। फलत शेष २,२०० करोड़ रुपये की गणना सरकारी क्षेत्र के बजट-साधनों में की जा सकेगी।

घाटे की अर्थ व्यवस्था जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तीसरी योजना में घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गुंजायश बहुत कम है। घाटे की अर्थ-व्यवस्था का सुरक्षित परिमाण तय करने की कोई निश्चित विधि नहीं है। इस प्रसग में, प्रचलित मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने के दोनों तरीकों—बजट के माध्यम से और बैंकों द्वारा ऋण ग्रहण—पर एक साथ विचार करना उचित है। उत्पादन में वृद्धि के रुख का खयाल करके ऐसा सोचा जा सकता है, कि तीसरी योजना में नोटों का चलन ३३ प्रतिशत तक बढ जाने पर भी मूल्यों पर कोई विशेष दबाव नहीं पडेगा। यदि यह मानकर चलें, कि तीसरी योजना की अवधि में अतिरिक्त मुद्रा का चलन और माल का अतिरिक्त उत्पादन, दोनों में सतुलन स्थापित रहेगा, तो दूसरी योजना के अन्त में प्रचलित मुद्रा के समस्त परिमाण के आधार पर तीसरी योजना की अवधि में मुद्रा के चलन में ६५० करोड़ रुपये तक की वृद्धि की जा सकेगी। मुद्रा के चलन में कुछ वृद्धि बैंक प्रणाली द्वारा होगी। यदि उसे पृथक् कर दें, तो तीसरी योजना की अवधि में बजटों में ५५० करोड़ रुपये तक की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गुंजायश है। परन्तु यहां इस बात पर जोर दिया जाना आवश्यक है कि घाटे की अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी निर्णय समय-समय पर आर्थिक परिस्थितियों की जांच करके ही किया जाना चाहिये। यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन में वृद्धि कितनी हुई—विशेषकर कृषि के क्षेत्र में—और मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों पर कहां तक काबू पाया गया।

अतिरिक्त कराधान

योजना के पाच वर्षो म अतिरिक्त कर लगाने का लक्ष्य १,६५० करोड रु० रखा गया है और योजना की सफलता के लिए इसकी पूर्ति अत्यावश्यक है। इस समय भारत मे सरकार को करो द्वारा राष्ट्रीय आय के लगभग ८ ५ प्रतिशत भाग की आमदनी होती है। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के कारण करो की आमदनी मे होने वाली स्वाभाविक वृद्धि और तीसरी योजना की अवधि मे लगाए जानेवाले अतिरिक्त करो के द्वारा, यह अनुपात ११ प्रतिशत तक हो जायगा। सरकार के विकास-कार्यों की द्रुत प्रगति को देखते हुए करो के भार मे इतनी वृद्धि बहुत अधिक नही मानी जा सकती। फिर भी, १,६५० करोड रुपये के अतिरिक्त कर के लक्ष्य को पूरा करने के लिए केन्द्रीय और राज्य-सरकारो को विशेष प्रयत्न करना होगा और अपने करो के ढाचे को विस्तृत करना पडेगा। अब तक लगाए गए अनुमानो के अनुसार, राज्यो को अतिरिक्त कर का अपना लक्ष्य उपर्युक्त राशि का कम-से कम एक तिहाई भाग निश्चित करना पडेगा।

यह स्पष्ट है कि किसी विशेष अवधि मे कर लगाने की सीमा का निश्चय, केवल पूजी विनियोग की आवश्यकता और विकास के अन्य व्ययो के आधार पर नही किया जा सकता। दूसरी ओर, यह योजना जितनी बडी बनाई जा रही है, उसे देखते हुए कर लगाने का पर्याप्त प्रयत्न किए बिना उसे पूरा भी नही किया जा सकता। इस समस्या के दोनो ही पहलुओ को, अर्थात् आवश्यकता और व्यावहारिक सम्भावनाओ को, एक साथ अपनी नजर म रखना होगा। इस प्रसग म, कर लगाने के आर्थिक तथा अन्य पक्षो पर विचार करना और उनमे सतुलन स्थापित करना भी आवश्यक है। *राष्ट्रीय आय मे, और विशेषकर खाद्य-पदार्थों के उत्पादन मे, सम्भावित* वृद्धि को देखते हुए, १ ६५० करोड रुपये के अतिरिक्त कर लगाने का लक्ष्य व्यवहार की सीमा के भीतर ही प्रतीत होता है। और, यह देखते हुए, कि अन्य सभी वित्तीय सूत्रो का पूरा पूरा लाभ उठाया जाएगा यह लक्ष्य न्यूनतम आवश्यकता का भी सूचक है।

कर-सम्बन्धी विस्तृत विवरण का निश्चय उस समय की आर्थिक परिस्थिति को देख कर करना पडेगा। फिर भी, इतना स्पष्ट है कि तीसरी योजना की पूर्ति के लिए, सरकारी उद्योग-व्यवसायो मे अधिक बचत करने के उपायो के अतिरिक्त, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनो ही प्रकार के कर बढाने पडेंगे।

जहा तक आय कर और निगम-कर का सम्बन्ध है, उनकी आय बढाने के लिए मुख्यत कर-प्रशासन को अधिक चुस्त बनाना होगा, कम्पनियो के व्यय खातो पर निगरानी रखनी होगी और कर की अदायगी से बच निकलने के प्रयत्नो को रोकथाम करनी होगी। यह ठीक है कि अप्रत्यक्ष कर लगाने और सरकारी उद्योग-व्यवसायो मे तैयार हुए माल का मूल्य बढाने से मूल्यो और लागत, दोनो मे वृद्धि

होने लगती है, परन्तु ये सब उस बलिदान के अंग हैं, जो कि पूर्णतः स्पष्ट और आवश्यक हैं।

यहा मूल्यो पर अप्रत्यक्ष करो और घाटे की अर्थ-व्यवस्था के तुलनात्मक प्रभाव के विषय मे भी दो शब्द कह देना उचित है। इन दोनो प्रभावो मे मुख्य अन्तर यह है कि घाटे की अर्थ व्यवस्था का प्रभाव तो बाजार पर कुछ उटपटाग ढग मे और सुदृढ रूप मे पड़ता है, परन्तु अप्रत्यक्ष करो के परिणामस्वरूप लोगो की फालतू क्रय-शक्ति सिमट जाती है। अप्रत्यक्ष कर मूल्य बढा कर मुद्रास्फीति की क्षमता को कम कर देते हैं और घाटे की अर्थ-व्यवस्था उसे और बढा देती है। कुछ परिस्थितियो मे, अप्रत्यक्ष कर उन अनुचित लाभ का प्रवाह सरकारी क्षेत्र की ओर मोड देते हैं, जो सामान्यत बिचौलियों और व्यापारियो की तिजोरियो मे जाकर जमा हो जाता।

विकास मे सलग्न अर्थ-व्यवस्था मे, कराधान एक महत्वपूर्ण कार्य यह करता है कि उपभोग की मात्रा को पूजी-विनियोग-द्वारा नियन्त्रित सीमा के भीतर ही रोक रखता है। प्रत्यक्ष कर, इसी परिणाम को व्यय हो सकने योग्य आय घटाकर प्राप्त करता है। अप्रत्यक्ष कर उस माल की मात्रा घटा देता है, जो व्यय होने वाली आय द्वार खरीदा जा सकता है। कौन-सा कर कितना लगाया जाए, इसका निश्चय सामने विद्यमान परिस्थिति पर विचार करके ही किया जाना चाहिए। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के करो के प्रभाव बहुधा अस्पष्ट होते हैं, इसलिए कर लगाने का निश्चय करते समय सावधानी पूर्वक यह देखा जाना चाहिए कि अर्थ-व्यवस्था पर बहुत अधिक तनाव तो नहीं पड़ता और खिचाव अवाछित दिशा मे तो नहीं हो रहा। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि पर्याप्त कराधान न होने की अवस्था मे दो ही विकल्प बचते हैं—(१) धीमी गति से विकास और (२) ऐसी स्थिति का निर्माण, जिसमे बढी हुई क्रय-शक्ति वस्तुओ और सेवाओ की सीमित आपूर्तिक्षमता पर दबाव डालती है। कराधान उन क्षेत्रो मे से एक है, जिनम अभी किए गए बलिदान आगे चल कर मिलने वाले लाभ की तुलना मे अधिक भारी मालूम पडते हैं। फिर भी, इतना स्पष्ट है कि विकास की प्रक्रिया से जनता के सभी वर्ग लाभान्वित होते है। अधिकाश लोगो के लिए, उपर्युक्त अतिरिक्त कराधान के बावजूद, उपभोग की मात्रा बढाना सम्भव होगा। इस तरह, यह बलिदान सापेक्ष है, सम्पूर्ण नही। सरकारी क्षेत्र में पूँजी-विनियोग की वृद्धि की अवस्था में जनता द्वारा अधिक बचत और सरकारी उद्योग व्यवसायो की अधिक बचत के साथ-साथ कराधान किसी विकास योजना के महत्वपूर्ण अग बन जाते हैं।

निजी क्षेत्र का पूजी-विनियोग

योजना के निजी क्षेत्र मे पूजी-विनियोग का सम्बन्ध न केवल सगठित उद्योगो, खानो, बिजली और परिवहन से, बल्कि कृषि, ग्राम तथा लघु उद्योगो,

शहरी तथा ग्रामीण आवास, आदि से भी है। उपलब्ध तथ्यो के आधार पर इस सारे क्षेत्र के लिए पूंजी-विनियोग की कोई सार्थक योजना प्रस्तुत कर सकना सभव नही है। हा, गत वर्षो की प्रवृत्तियो के साथ तुलना करके इस बात का थोडा-बहुत निश्चय अवश्य किया जा सकता है कि इस क्षेत्र मे जितनी पूंजी लगाने की बात कही गई है, वह कहाँ तक व्यावहारिक होगी। नीचे की तालिका मे दिखलाया गया है कि दूसरी योजना के आरम्भ मे लगाए गए अनुमानो और रिजर्व बैंक-द्वारा हाल मे किए गए अध्ययन के आधार पर सशोधित अनुमानो के साथ तुलना करने पर, तीसरी योजना मे निजी क्षेत्र की प्रमुख मदो मे कितना पूंजी-विनियोग हो सकता है।

योजना के निजी क्षेत्र का पूंजी-विनियोग

(करोड रुपये)

		दूसरी योजना		तीसरी योजना
		प्रारम्भिक अनुमान	सशोधित अनुमान	अनुमान[1]
१.	कृषि (सिंचाई-सहित)	२७५	६७५	८५०
२	बिजली	४०	४०	५०
३.	परिवहन	८५	१३५	२००
४.	ग्रामीण और लघु उद्योग	१००	२२५	३२५
५.	बडे और मध्यम उद्योग तथा खनिज पदार्थ	५७५	७००[2]	१,०५०[2]
६.	आवास और अन्य इमारती काम	९२५	१,०००	१,१२५
७.	इन्वेण्टरिया	४००	५२५	६००
	योग	२,४००	३,३००	४,२००

इससे प्रकट होता है कि दूसरी योजना के सशोधित निजी पूंजी विनियोग की तुलना मे, तीसरी योजना मे कही अधिक पूंजी लगाने की बात सोची जा रही है—खास कर बडे और मध्यम उद्योगो मे, जिनका विनियोग ७०० करोड रु० से बढा कर १,०५० करोड रुपये कर दिया गया है। अन्य क्षेत्रो के विनियोग मे वृद्धि अपेक्षाकृत कम होगी, और खयाल है कि ये विनियोग सामान्य सूत्रो से ही पूंजी लेकर किए जायेंगे। उक्त सूत्रो मे किसानो, शिल्पकारो, कारीगरो और छोटे उद्योग तथा व्यापार करने वालो की बचत और सगठित तथा असगठित महाजनो से तथा

1. ये आकडे निजी क्षेत्र के सम्पूर्ण पूंजी-विनियोग के द्योतक हैं, और इनमें सरकारी क्षेत्र से हस्तान्तरित साधनों से होने वाला पूंजी-विनियोग भी शामिल है।

2 इन अंकों में यन्त्रों को आधुनिक बनाने और बदलने के लिये किया जाने वाला पूंजी-विनियोग शामिल नहीं है।

कुछ हद तक सरकार और रिजर्व बैंक से लिए हुए ऋण भी शामिल हैं। इन कामों में लगी हुई पूंजी का इतना अधिक भाग अपने पास से लगाया हुआ अथवा उक्त विविध सूत्रों से लिया हुआ है, कि उनमें से प्रत्येक सूत्र की सीमा और सम्भावना का स्पष्ट चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न तक करना एक कठिन काम है।

अब बड़े और मध्यम उद्योगों में लगाने के लिए वित्तीय आवश्यकताओं की समस्या रह गई। यहाँ भी बहुत-कुछ अनुमान पर ही निर्भर किया गया है, परन्तु उद्योगों और कारखानों से सम्बन्धित अध्याय में मोटे तौर पर कुछ अनुमान दिए गए हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, योजना के निजी क्षेत्र में लगाये जाने वाले ४,२०० करोड रु० में से २०० करोड रु० सरकारी क्षेत्र से प्राप्त किये जाएँगे। रिजर्व बैंक भी कृषि, लघु उद्योगों और निजी क्षेत्र के कुछ वित्त-निगमों की काफी मदद करेगा। इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र को ३०० करोड रु० तक की विदेशी सहायता मिल सकती है। दूसरी योजना के समय निजी क्षेत्र में पूँजी-विनियोग की जो प्रवृत्तियां दिखलाई दीं और *विकास-कार्यों-द्वारा उत्पन्न नये अवसरों से लाभ* उठाने में, निजी क्षेत्र जैसी तत्परता दिखला रहा है, उससे आशा बंधती है कि निजी क्षेत्र में जितने पूँजी-विनियोग की कल्पना की गई है, उसका पूरा होने में अलघ्य कठिनाइयां पेश नहीं होंगी।

अन्त में यह प्रश्न आता है कि पूँजी-विनियोग के लिए समाज में जो साधन उपलब्ध होंगे, वे सब मिल कर भी पर्याप्त सिद्ध होंगे, या नहीं। सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों की आवश्यकताएँ, स्वदेशी बचत और उपलब्ध विदेशी सहायता को मिला कर ही पूरी की जाएँगी। इसलिए इन दोनों क्षेत्रों से पर्याप्त मात्रा प्राप्त करने के हेतु पूरा-पूरा प्रयत्न करना पड़ेगा।

विदेशी साधन

आन्तरिक साधनों का अनुमान लगाने में तो बहुत-सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती ही हैं, योजना के लिए विदेशी साधन कितने मिल सकेंगे, इसका अनुमान लगाने के लिए आगामी पांच वर्षों में भुगतान-सन्तुलन के रुख के सम्बन्ध में पहले से कुछ कह सकना और भी कठिन है। इसके बावजूद आयात और निर्यात की हाल की प्रवृत्तियों और तीसरी योजना की अवधि में देश के आन्तरिक उत्पादन तथा माँग में सम्भावित परिवर्तनों का अध्ययन करने के उपरान्त जो चित्र सामने आता है, उसकी मोटी-मोटी बातें नीचे की तालिका में प्रस्तुत की गई है।

तीसरी योजना की अवधि मे अनुमानित भुगतान-सन्तुलन

(करोड रुपये)

	१९५६-५७ से १९५८-५९ तक का औसत	१९६१-६२	१९६१-६२ से १९६५-६६ तक के पाच वर्षो का योग	१९६१-५२ से १९६५-६६ का वार्षिक औसत
१. निर्यात	६०२	६५०	३,४५०	६९०
२. अदृश्य (शुद्ध) (सरकारी दान छोड कर)	१०१	४५	१२०	२४
३. पूंजी का व्यवहार (शुद्ध) (नए सरकारी ऋणो और निजी विदेशी विनियोग को छोड कर)	–२२[1]	–१५०	–५००	१००
४. आयात के लिए उपलब्ध विदेशी मुद्रा (प्रविष्टि १ से ३ तक का योग)	६८१	५४५	३,०७०	६१४
५. काम चालू रखने के लिए किए हुए आयात	७२८	७३०	३,५७०	७१४
६. विकास की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए होने वाले आयात के क्षेत्र मे उपलब्ध विदेशी मुद्रा (प्रविष्टि ४ और ५)	–४७	–१८५	–५००	–१००

तीसरी योजना की अवधि मे निर्यात-द्वारा होने वाली समस्त कमाई का अनुमान ३,४५० करोड रु०, अर्थात् औसतन ६९० करोड रु० प्रति वर्ष लगाया गया है। १९५८-१९५९ मे निर्यात से ५७६ करोड रु० की और १९५९ मे ६४५ करोड रु० की कमाई हुई थी। तीसरी योजना के प्रथम वर्ष मे निर्यात का अनुमान ६५० करोड रु० लगाया गया है। तीसरी योजना की अवधि मे उत्पादन मे सम्भावित वृद्धि और निर्यात बढाने के निरन्तर प्रयत्न के फलस्वरूप, सम्भव है, कि आगामी वर्षो मे

1. इस अंक में 'अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष' और 'पी० एल० ४८०' खातों से प्राप्त राशियां शामिल नहीं हैं, परन्तु निजी खाते में प्राप्त पूंजी शामिल है।

निर्यात की मात्रा बढ़े। वास्तव में, उद्देश्य तो उपर्युक्त स्तर से भी ऊंचा उठना होना चाहिए।

अदृश्य प्राप्तियों का परिमाण हाल के वर्षों में घटता चला गया है। इसका कारण कुछ तो यह है कि विदेशों में लिए हुए ऋणों पर देय ब्याज बढ़ता चला गया और कुछ यह कि ब्रिटेन से प्राप्तव्य स्टर्लिंग राशि की मात्रा घट गई। दूसरी योजना की अवधि में जो ऋण लिए गए, उन पर और तीसरी योजना की अवधि में जो ऋण लिए जाएँगे, उन पर देय ब्याज की राशियां मिल कर खासी बड़ी हो जाएँगी। *इन देनदारियों और इस खाते की अन्य प्राप्तियों तथा अदायगियों के रुख का खयाल* करते हुए, पांच वर्षों में अदृश्य प्राप्तियों की कुल बचत १२२ करोड़ रु० अथवा औसतन २४ करोड़ रु० प्रतिवर्ष मानी जा सकती है। इसके मुकाबले में १९५६-५७ से १९५८-५९ तक का वार्षिक औसत १०१ करोड़ रु० था।

दूसरी योजना के अन्त तक जो देनदारियाँ इकट्ठी हो जाएँगी, उनकी अदायगी के लिए तीसरी योजना की अवधि में लगभग ४२० करोड़ रु० देने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त तीसरी योजना की अवधि में जो ऋण लिए जाएँगे, उनमें से भी कुछ चुकाने योग्य हो जाएँगे। पूँजी खाते हुए अन्य व्यवहारों का विचार करने के बाद, इस खाते की देय राशियों का सर्वयोग ५०० करोड़ रु० माना जा सकता है। ये व्यवहार अधिकतर निजी हिसाबों में ही हुए हैं और होंगे।

निर्यात और अदृश्य प्राप्तियों द्वारा की हुई कमाई में से, पिछले पैराग्राफ में निर्दिष्ट देनदारियाँ घटा देने के बाद, आयात का मूल्य चुकाने के लिए शेष राशि ३,०७० करोड़ रु० की बच जाती हैं। इसके मुकाबले में, अनिवार्य आवश्यकतायें मंगाए जाने वाले कच्चे मालों, अधबने सामान, सामान्य व्यापार के हिसाब में आए हुए खाद्यान्नों और पुरानी मशीनों को बदलने के लिए मंगाई हुई नई मशीनों, आदि का मूल्य ३,५७० करोड़ रु० होगा।

इसका अर्थ यह है कि ५०० करोड़ रु० का घाटा रह जाता है, जो चुकानेयोग्य हो जानेवाले ऋणों की राशि के लगभग बराबर है। इसे योजना की आवश्यकताओं की चिन्ता करने से पहले पूरा करना पड़ेगा। यह कमी आरम्भ के वर्षों में और भी बड़ी रहने की सम्भावना है, क्योंकि अधिकतर पुराने ऋण इन्हीं वर्षों में देय होंगे। इन वर्षों के बाद, ज्यों ज्यों लोहे व इस्पात, मशीन निर्माण और दवाओं तथा रसायनों, आदि की परियोजनाओं से माल अधिकाधिक मात्रा में तैयार होने लगेगा, त्यों त्यों यह कमी घटती चली जाएगी। इसके साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि देश में उत्पादन की मात्रा बढ़ने के कारण विदेशों से आयात कम अथवा बन्द करके जो बचत की जाएगी, उसे अर्थ-व्यवस्था में विकास के कारण उत्पन्न हुई नई नई आवश्यकताएँ खा जाएँगी।

योजना के सरकारी और निजी क्षेत्रो के पूँजी-विनियोग में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता कितनी होगी, यह योजना की विभिन्न परियोजनाओ के सोपानो में बँटवारे पर निर्भर करेगा। अगले कुछ महीनो में इसके लिए बहुत काम करना होगा। यदि स्वदेश मे निर्मित बुनियादी सामान तथा उपकरणो का यथासम्भव अधिक उपयोग किया जाए—और यह इस बात पर निर्भर करता है कि आयात कम करनेवाली परियोजनाओ के लिए शुरू के वर्षो में कितनी विदेशी मुद्रा मिल जाती है—तो योजनाकाल मे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता अन्दाजन १,९०० करोड रु० की पडेगी। इसके अतिरिक्त, स्वदेश में बुनियादी यन्त्रो का उत्पादन बढाने के लिए लगभग २०० करोड रु० के पुर्जे और सन्तुलनमूलक उपकरण मगाने पडे गे। इस प्रकार के आयात का सीधा सम्बन्ध योजना में निहित परियोजनाओ के साथ नही जोडा जा सकता। यह आयात कुछ ऐसे पुर्जों और अधबने हिस्सो का है, जो अभी देश मे नही बनते और बुनियादी यन्त्रो का उत्पादन बढाने के लिए जिनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

३—प्रथम, द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन।[1]

(Comparative Study of the First, Second and the Third Five Year Plans)

इन तीनो आयोजनो के विषय में पूर्णरूप से तुलना करना अत्यन्त विशाल विषय होगा। इसलिए केवल मुख्य विषयो पर ही यह अध्ययन सीमित किया गया है। इन विषयो मे निम्नलिखित मुख्य हैं

हमे पहली चीजे पहले लेनी होगी और एक दिये सीमित समय मे प्राथमिकताओ का निश्चय करना होगा, यद्यपि, जैसे वर्ष के बाद वर्ष बीतते जायँगे, इन प्राथमिकताओ मे फेर-बदल होता जायगा। जैसे जैसे आरम्भ मे शुरू किये गये विकास-क्षेत्रो का काम आगे बढता है, वैसे-वैसे हमे अन्य क्षेत्रो पर जोर देना होगा और अन्य क्षेत्रो के विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार करनी होगी।

*प्रथम योजना के पाँच वर्षो में सबसे ऊँची प्राथमिकता खेती बाडी को जिसके अन्तर्गत सिचाई और बिजली आ जाते है, देनी होगी।** हम जिन योजनाओ को हाथ मे ले चुके है उनकी पूर्ति पर जोर देना कुछ हद तक इसी बात की ओर सकेत करता है। लेकिन इसके अलावा भी यह जाहिर है कि अनाज और उद्योगो के लिए जरूरी कच्चे माल का उत्पादन काफी बढाये बिना अन्य क्षेत्रो म विकास की रफ्तार को तेज रखना असम्भव होगा और अधिक विकास के लिये खाद्य और कच्चे माल

---

1. समस्त आँकडे प्रथम, द्वितीय और तृतीय पचवर्षीय योजनाओं से हैं।

* प्रथम पचवर्षीय योजना, भारत सरकार, अध्याय २

का होना बहुत जरूरी है, इसीलिये इन वस्तुओ के विषय मे आत्मनिर्भरता और बहुतायत की दशाओ का निर्माण होना बुनियादी बात है ।

खेती मे सुधार बहुत हद तक सरकार द्वारा लगाई गई पूँजी पर निर्भर करेगा और क्योकि खेती-बाडी के काम को सब से ऊँची प्राथमिकता दी गई है, इस लिए सरकार द्वारा उद्योगो मे लगाई गई पूँजी अपेक्षाकृत सीमित रहेगी । वर्तमान अवस्था मे इस क्षेत्र मे उन्नति बहुत हद तक निजी प्रयत्न और पूँजी पर निर्भर करेगी । सरकार आरम्भिक अवस्था मे बुनियादी सेवाओ और यातायात की व्यवस्था पर भी यथाशक्ति अपना ध्यान केन्द्रित करेगी । लेकिन कुछ केन्द्रीय उद्योगो, जैसे लोहा और इस्पात, भारी रासायनिक और भारी बिजली-उद्योगो के प्रति उसकी विशेष जिम्मेदारी होगी, क्योकि आज की दुनिया मे ये उद्योग औद्योगिक उन्नति के आधार है । इस प्रकार के उद्योगो के विकास के लिये आरम्भ मे इतनी पूँजी लगती है, वह बहुत बडी होगी और निर्माण का समय काफी लम्बा होगा । इसीलिये इस दिशा मे आरम्भ से ही काम शुरू करना होगा ।

जिस हद तक आरम्भिक रूप मे पैदावार बढाने पर जोर दिया जायगा उसी हद तक अनिवार्यत सामाजिक सेवाओ का विकास सीमित हो जायगा । लेकिन फिर भी यह साफ है कि कोई भी योजना तब तक सफल नही हो सकती जब तक मानव-सम्पत्ति के सुधार के लिए पूँजी न लगाई जाय । उत्पादन बढाने की दृष्टि से भी शिक्षा, टैक्नीकल शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सामाजिक सेवाओ का विस्तार विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हो सकता है । इस क्षेत्र मे प्रत्यक्ष सामाजिक प्रयत्नो के लिये बहुत गुंजायश है । इसीलिये इस क्षेत्र के लिए जो विशेष आर्थिक व्यवस्था रखी गई है, इसके बाद भी अन्य साधनो के द्वारा बहुत अधिक काम किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, देहाती क्षेत्रो मे साक्षरता का प्रसार इच्छापूर्वक सामाजिक सेवा करने वालो के द्वारा बढाया जा सकता है । सार्वजनिक स्वास्थ्य का सुधार प्राय सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रारम्भिक ज्ञान देकर किया जा सकता है । जहां तक टैक्नीकल शिक्षा का सवाल है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि समुचित आर्थिक सहायता की व्यवस्था की जाय, क्योकि यह न केवल विकास की प्रणाली के लिये आवश्यक है बल्कि वर्तमान समय मे प्रचलित विशुद्ध साहित्यिक शिक्षा के प्रति झुकाव को सही रास्ते पर जाने के लिये भी जरूरी है । इस प्रकार के झुकाव के कारण ही मध्यवर्गीय लोगो मे बेरोजगारी बढ रही है ।

क्योकि हमारे यहा जन शक्ति का बहुत बडा भाग अभी उपयोग मे नहीं आ रहा है, इसीलिये स्थानीय विकास के लिये स्थानीय श्रम-शक्ति का उपयोग करने के प्रोग्राम को उच्च प्राथमिकता देनी होगी । जीवन यापन की दशाओ मे सुधार करने के लिये इनका योगदान पहली दृष्टि मे भले ही बहुत छोटा मालूम हो, लेकिन कुल मिल कर और सामूहिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव के रूप मे, आरम्भिक अवस्था को देखते

हुये, वह अनुपात मे बहुत अधिक होगा। इस सिद्धान्त पर आधारित सामूहिक विकास के प्रोग्राम और भरपूर चहुमुखी विकास, जो कि चुने हुये क्षेत्रों मे होगा, विशेष महत्त्व के सिद्ध होगे।

ऊपर बताई गई प्राथमिकताओ की आम रूपरेखा के अन्तर्गत अधिक विस्तृत नक्शे हैं, जो देश के एक भाग से दूसरे भाग मे बदलते जायेगे। उदाहरण के लिये खेती-बाडी के क्षेत्र मे कुछ जगहो मे सिचाई विशेष महत्त्वपूर्ण हो सकती है और कुछ दूसरी जगहो मे रासायनिक खादो को विशेष महत्त्व मिल सकता है। कुछ क्षेत्रो मे खेती के विकास के लिये सडको मे सुधार एक आवश्यक शर्त हो सकती है। उद्योगो के क्षेत्र मे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से कुछ उद्योगो का विकास अन्य उद्योगो से अधिक जरूरी हो सकता है, भले ही उन उद्योगो का विकास निजी तौर पर उद्योगो का सचालन करने वालो को हमेशा अधिक आकर्षक और लाभदायक न प्रतीत हो। इन सब प्राथमिकताओ को दृष्टि मे रखना इसलिये जरूरी है, जिससे कि जो कुछ भी अनावश्यक है, या आरम्भिक अवस्था मे राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिये जो कुछ भी अपेक्षाकृत कम सहायक है उसमे साधनो का अपव्यय न हो जाय।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस ओर स्पष्ट सकेत किया गया है कि देश की साधारण जनता के जीवन-स्तर मे सुधार और राष्ट्रीय आय मे वृद्धि तीव्र गति से होनी चाहिये। किन्तु साथ ही साथ यह भी बताया गया था कि 'समाजवादी ढग की समाज व्यवस्था' को प्राप्त करने के उद्देश्य से आर्थिक विषमता को कम से कम कर दिया जायेगा। इस विषय मे द्वितीय योजना मे प्राथमिकतायें कुछ अन्य रूप से निर्धारित की गई थी। जो निम्न प्रकार है [1]

हमारे समाज के मूल उद्देश्य क्या है, इसका सार इधर समाजवादी ढग की समाज व्यवस्था' के वाक्याश द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मोटे तौर पर इसके माने यह है कि आगे बढने का रास्ता चुनते समय हम सारे समाज के हित की बात सोचेगे, किसी खास वर्ग या व्यक्ति के लाभ की नही, और विकास-पद्धति और सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धो का विधान कुछ इस तरह निर्धारित करेगे कि न सिर्फ राष्ट्रीय आय और रोजगार के अवसर मे वृद्धि हो बल्कि लोगो की आय और सम्पत्ति मे विषमता घटती ही चली जाये, आर्थिक उन्नति से समाज के वर्ग विशेष रूप से लाभान्वित हो जो अपेक्षाकृत कम सम्पन्न हैं, चारो ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य हो और निम्न से निम्न आदमी को भी अपनी जिन्दगी सफल बनाने का पर्याप्त अवसर मिले।

ऐसी परिस्थितियो की स्थापना के लिये राज्य को अपने ऊपर भारी जिम्मेदारियाँ लेनी पडती हैं। उद्योगो के सार्वजनिक क्षेत्र को तेजी से बढाना होता है।

---

1 द्वितीय पचवर्षीय योजना—भारत सरकार
(सक्षिप्त) अध्याय २—पृष्ठ १०

सार्वजनिक और निजी, दोनों ही क्षेत्रों में पूँजी कहाँ, कितनी और किस तरह लगे, इसकी देखरेख करने की जिम्मेदारी बहुत हद तक राज्य को अपनानी होती है, और विकास के ऐसे काम उठाने होते है जिन्हे निजी क्षेत्र या तो उठा नही सकता या उठाना नही चाहता। कुछ बड़े-बड़े नये उद्योग धन्धों की, जिनके लिये आधुनिक शिल्पविधि का ज्ञान, बड़े पैमाने पर उत्पादन, और साधनों के आवटन और नियत्रण का एकाधिकार अपेक्षित हो, जिम्मेदारी मुख्यरूप से राज्य को ही उठानी होगी। ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ औद्योगिक कारणों से आर्थिक सत्ता और सम्पदा का सचयन एक विशेष व्यक्ति या वर्ग के हाथ मे हो जाने की सम्भावना हो। आशिक या पूर्णरूप से सार्वजनिक स्वामित्व और प्रबन्ध पर सार्वजनिक नियत्रण या हिस्सेदारी खास तौर से आवश्यक हो जाती है। निजी क्षेत्र को भी बहुत काम करना होगा, लेकिन समूची योजना के दायरे म रह कर हम काफी तेजी से औद्योगीकरण करना है लोहा और इस्पात, लोहेतर धातुयें, कोयला, सीमेट जैसे मूल उद्योगों और मशीन तैय्यार करने वाले उद्योगों का द्रुत विकास करना पड़ेगा गृह उद्योगों और छोटे उद्योगों को भी उन्नत करना पड़ेगा।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे प्राथमिकताओं के विषय मे बताया गया है[1] कि कृषि और उद्योगों तथा निर्यात की आवश्यकताएँ पूरी कर देना तीसरी योजना का एक प्रधान लक्ष्य है। इसलिये कृषि के उत्पादन को यथासम्भव उच्चतम स्तर तक उठाना होगा ताकि ग्रामीण लोगों की आमदनी और रहन-सहन का स्तर भी अन्य क्षेत्रों के लोगों के साथ साथ ऊँचा उठे इस योजना म कृषि और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास के लिये पर्याप्त साधन मुहय्या करने का प्रयत्न किया गया है। सोचा गया है कि यदि योजना के आगे बढने पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की प्रगति और तेज करने के लिये, विशेषकर ग्रामीण जन शक्ति का पूरा पूरा उपयोग करने के लिये, और साधनों की आवश्यकता पड़े, तो वे भी जुटा दिये जाएँ . योजना मे उद्योग, बिजली और परिवहन के क्षत्रों को भी प्राथमिकता प्रदान की गई है। अर्थव्यवस्था को उच्चतर स्तर पर ले जाने और उसकी गति को तीव्र करने के लिये इन क्षेत्रों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

पहली और दूसरी योजनाओं की कल्पना, देश के एक दीर्घकालीन सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रम की दो मजिलों क रूप में की गई। पहली योजना में १९५०-५१ से १९८०-८१ तक के ३० वर्ष की आर्थिक उन्नति का चित्र प्रस्तुत करके अनुमान लगाया गया था कि देश की राष्ट्रीय आय १९७१ ७२ तक और प्रति व्यक्ति आय १९७७-७८ तक दुगनी हो जाएगी। इस अनुमान का आधार ये पूर्व कल्पनाएँ थी कि देश की आबादी किस रफ्तार स बढेगी, विकास की हरेक मजिल मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि का कितना भाग फिर पूँजी-विनियोग मे लगेगा, और जो

1 तृतीय पचवर्षीय योजना, रूपरेखा, अध्याय ३, पृष्ठ २१

पूँजी लगाई जाएगी, उससे अतिरिक्त उत्पादन के रूप मे कितना लाभ होगा । दूसरी योजना के समय, इन पहले के अनुमानो और कल्पनाओ पर पहली योजना मे प्राप्त अनुभवो से लाभ उठा कर, पुन विचार किया गया और यह मत व्यक्त किया गया कि १९५०-५१ की तुलना मे, देश की राष्ट्रीय आय १९६७-६८ मे और प्रति व्यक्ति आय १९७३ ७४ मे ही सम्भवत दुगनी हो पाएगी । उस समय एक और महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह रखा गया था कि पाँचवी योजना के समाप्ति-काल तक खेती पर आश्रित रहने वालो का अनुपात आबादी के लगभग ६९ या ७० प्रतिशत के वर्तमान स्तर से घट कर लगभग ६० प्रतिशत रह जाएगा ।

दूसरी योजना मे जिन लक्ष्यो की कल्पना की गई है, उनकी पूर्ति दो बातो पर निर्भर करेगी—पहली तो यह, कि आबादी मे वृद्धि किस हिसाब से होती है, और दूसरी यह, कि अगली तीन योजनाओ मे जो प्रयत्न किया जाएगा, उसका परिमाण और स्वरूप क्या होगा । दूसरी योजना प्रकाशित होने के बाद आबादी के क्षेत्र मे एक उल्लेखनीय परिवर्तन सामने आ चुका है । आगामी १५ वर्षों मे आबादी की सम्भावित वृद्धि के विषय मे विभिन्न कल्पनाओ के आधार पर जो अनुमान लगाए गए हैं, उनसे प्रतीत होता है कि आबादी बढने की रफ्तार दूसरी योजना मे दिखाई हुई रफ्तार से कही अधिक रहेगी । नीचे की तालिका मे आबादी की वृद्धि के विषय मे *केन्द्रीय अक-सकलन-सगठन-द्वारा* प्रस्तुत अनुमानो के साथ दूसरी योजना की रिपोर्ट मे उल्लिखित अनुमानो की तुलना की गई है

(ये आकडे करोड मे हैं)

	१९५१	१९५६	१९६१	१९६६	१९७१	१९७६
दूसरी योजना के अनुमान	३६ २	३८ ४	४०·८	४३ ४	४६ ५	५० ०
केन्द्रीय अक सकलन सगठन के अनुमान	३६ २	३९ १	४३·१	४८·०	५२ ८	५६ ८

केन्द्रीय अक सकलन सगठन के अनुमानो को तीसरी योजना तैयार करने के लिए फिलहाल मान लिया गया है । परन्तु य अनुमान भी अस्थायी ही है और इन्ह जन्म, मृत्यु और जन वृद्धि म सम्बन्धित निम्नलिखित आँकडो के आधार पर तैयार किया गया है

(प्रति वर्ष प्रति हजार वृद्धि)

	१९५१-५६	१९५६-६१	१९६१-६६	१९६६ ७१	१९७१-७६
जन्म-दर	४१·७	४० ७	३९ ६	३२·९	२७·३
मृत्यु दर	२५ ९	२१ ६	१८ २	१३ ९	१२·६
वृद्धि की दर	१५ ८	१९ १	२१ ४	१९·०	१४·७

इन अनुमानो के अनुसार, १९५१-७६ की अवधि में आबादी में कुल मिला कर २०·६ करोड की वृद्धि होगी, जबकि दूसरी योजना मे केवल १३·८ करोड की वृद्धि का ही अनुमान लगाया गया था। आबादी में वृद्धि के इस हिसाब से, श्रमिको की संख्या जो १९५१ में १४·१ करोड थी, वह १९७६ मे बढकर २२·२ करोड हो जाएगी। १९६१ से १९७६ तक के १५ वर्षो मे, श्रमिक सख्या मे कोई ६ करोड की वृद्धि होने की सम्भावना है।[1]

प्रथम योजना[2] काल मे पूँजी और उत्पादन की वृद्धि का अनुपात १·८·१ होता है, दूसरी योजना काल मे विनियोग के अनुमानो और उत्पादन की वृद्धि की आशा के आधार पर यह अनुपात २·३·१ होने की आशा है। दूसरी योजना काल मे बल अधिक औद्योगीकरण पर होगा और इसलिए यह आशा है कि पूँजी विनियोग पहली योजना की तुलना मे कुछ अधिक बढ-चढ कर होगा। वस्तुतः आगे आने वाली योजनाओ मे जैसे जैसे विभिन्न दिशाओ मे विकास की गति को केन्द्रित किया जाएगा वैसे ही अतिरिक्त उत्पादन के लिए आवश्यक पूँजी की राशि मे भी वृद्धि होती जाएगी। तीसरी, चौथी और पाँचवी योजनाओ के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि पूँजी उत्पादन क्रमश २·६,३·४ और ३·७ होगे। ये अनुपात केवल दृष्टान्त रूप मे हैं। ठीक-ठीक लेखा-जोखा स्वाभाविक तभी हो सकता है जब विकास के सुनिश्चित कार्यक्रमो, उनकी जरूरतो और उनके परिणामो के प्रकाश मे विचार किया जाय। यहाँ यह बात बता दी जाये कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए पूजी-उत्पादन अनुपात विभिन्न क्षेत्रो मे पूँजी की उत्पादकता का सकेतात्मक विवरणमात्र है। यह उत्पादकता न केवल विनियोजित पूँजी की राशि पर निर्भर करती है बल्कि कुछ अन्य बातो पर भी, जैसे पूंजी-निर्माण से सम्बन्धित प्रोद्योगिक उन्नति का स्तर, नई साज-सज्जा के सचालन की दक्षता और उत्पादन की विधियो से सम्बन्धित व्यवस्था और सगठन की कुशलता। विनियोग के रूप पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। विभिन्न देशो और विभिन्न समयो म पूंजी-उत्पादन अनुपात क अनुमान भी विभिन्न होते है। अनेक देशों के अनुपातो को देखते हुए कहा जा सकता है कि पूँजी निर्माण अनुपात प्राय· ३·१ और ४·१ के बीच रहता है। यद्यपि कभी किसी देश म अनुपात इससे न्यूनाधिक भी हो सकता है, फिर भी भारत और दूसरे देशो के अनुपात की तुलना करते हुए इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि पूंजी विनियोग का लेखा जोखा करते हुए मुद्रेतर विनियोग को अलग कर दिया जाता है। यद्यपि एक ऐसे देश मे जहाँ प्रधानत. ग्राम्य अर्थ-व्यवस्था है, ऐसे विनियोग का महत्त्व बहुत होता है।

---

1. Ibid, pp. 4—5
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (संक्षिप्त), भारत सरकार, पृष्ठ ३-५

पहली योजना सम्बन्धी रिपोर्ट मे यह मान लिया गया था कि १९५६-५७ से बचत की दर ५० प्रतिशत होगी। इस आधार पर यह अनुमान लगाया गया था कि १९६८-६९ तक अर्थ व्यवस्था म विनियोग की दर राष्ट्रीय आय का २० प्रतिशत हो जाएगी और तत्पश्चात उसी स्तर पर स्थिर हो जाएगी। अब ऐसा प्रतीत होने लगा है कि यह आशा बहुत बडी थी। जिस भविष्य की परिकल्पना अब की गई है, उसमे १९५५-५६ में विनियोग राष्ट्रीय आय का लगभग ७ प्रतिशत होगा, १९६०-६१ मे ११ प्रतिशत, १९६५-६६ मे १४ प्रतिशत और १९७०-७१ मे १३ प्रतिशत। इसके बाद विनियोग की गति प्राय स्थिर रहेगी, और १९७५-७६ तक १६ प्रतिशत हो जाएगी। राष्ट्रीय आय का १६ से १७ प्रतिशत तक वास्तविक विनियोग काफी ऊँचा है, यद्यपि उसे प्राप्त करना असम्भव नही है। पश्चिमी देशो म, जिन्होंने बहुत पहले से औद्योगीकरण का मार्ग पकडा, वास्तविक पूंजी निर्माण की गति १० से १५ प्रतिशत रही है। जापान मे १९१३ और १९३९ के बीच की पूंजी विनियोग की गति १६ से २० प्रतिशत रही है। रूस मे १५ से २० प्रतिशत ऊची दर को लगातार कायम रखा गया है। समुचित विनियोग नीति और कार्यक्रमो के द्वारा नव विकसित देशो मे विनियोग की गति को वर्तमान स्तर स अधिक ऊचा उठाया जा सकता है। उपर्युक्त दिशाओ मे विश्लेषण और अनुमान के फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि १९६७-६८ तक राष्ट्रीय आय और १९७३-७४ तक प्रति व्यक्ति आय दूनी हो सकेगी। पहली पचवर्षीय योजना मे जितनी आशा की गई थी उक्त योजना-काल मे उससे अधिक वृद्धि राष्ट्रीय आय मे हुई है। प्रथम दो योजनाओ के अन्त म राष्ट्रीय आय मे ४७ प्रतिशत वृद्धि की आशा है, जब कि पहली योजना म २५ प्रतिशत वृद्धि की बात ही कही गई थी। नीचे दी हुई तालिका म बताया गया है कि विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत विकास की गति अनुमानत क्या होगी

आय और विनियोग की वृद्धि १९५१-७६
(१९५२-५३ के मूल्यो पर आधारित)

	पहली योजना (१९५१-५६)	दूसरी योजना (१९५६-६१)	तीसरी योजना (१९६१-६६)	चौथी योजना (१९६६-७१)	पाँचवी योजना (१९७१-७६)
१. समयावधि के अन्त मे राष्ट्रीय आय (करोड रु०)	१०,८००	१३,४८०	१७,२६०	२१,६८०	२७,२७०
२. कुल वास्तविक विनियोग (करोड रु०)	३,१००	६,२००	९,९००	१ ,८००	२०,७००
३ समयावधि क अन्त म राष्ट्रीय आय क प्रतिशत के रूप म विनियोग	७ ३	१०·७	१३·७	१६·०	१०

४. समयावधि के अन्त मे आबादी (लाख)	३,८४०	४,०८०	४,३४०	४,६५०	५,०००
५. वृद्धिसूचक पूंजी विनियोग अनुपात	१ ८ १	२.३.१	२.६:१	३.४:१	३.७:१
६ समयावधि के अत मे प्रति व्यक्ति आय (रुपये)	२८१	३३१	३९६	४६६	५४६

यह द्रष्टव्य है कि दूसरी और तीसरी योजनाओ की अवधि मे विनियोग की वृद्धि बाद की योजनाओ से अपेक्षाकृत अधिक है, अत विकास के क्रम को निश्चित करने मे इन दस वर्षो का सबसे अधिक महत्व है। यही वह समय है, जिसे लाँघते हुए बाहरी सहायता द्वारा घरेलू साधनो को मजबूत बनाना होगा क्योकि यह समय ऐसा होगा जब कि जीवन-स्तर निम्न और बचत की सभावनाए अल्प होगी।

विभिन्न मुख्य विकास मदो मे योजना व्यय का वितरण[1]

मदे	प्रथम योजना		दूसरी योजना	
	कुल व्यय (करोड रु०)	%	कुल व्यय (करोड रु०)	%
१–कृषि और सामुदायिक विकास	३५७	१५ १	५३८	११ ८
२–सिंचाई और बिजली	६६१	२८ १	९१३	१९.०
३–उद्योग और खान	१७९	७.६	८९०	१८.५
४–परिवहन और सचार	५५७	२३.६	१३८५	२८.९
५–सामाजिक सेवायें	५३३	२२ ६	९४५	१९ ७
६–विविध	६९	३ ०	९९	२.१
योग	२३५६	१००	४८००	१००

1 द्वितीय (संक्षिप्त) पचवर्षीय योजना, पृष्ठ २०

तीसरी योजना में प्रस्तावित व्यय और पूँजी-विनियोग[1]

(करोड रुपये)

विकास का विभाग	सरकारी क्षेत्र			निजी क्षेत्र का पूंजी विनियोग	समस्त पूंजी विनियोग
	योजना का प्रस्तावित व्यय	चालू व्यय	पूँजी विनियोग		
१–कृषि, छोटी सिचाई और सामुदायिक विकास	१,०२५	३५०	६७५	८००	१,४७५
२–बडे और मध्यम सिचाई कार्य	६५०	१०	६४०	—	६४०
३–बिजली	६२५	—	६२५	५०	६७५
४–ग्रामीण और छोटे उद्योग	२५०	९०	१६०	२७५	४३५
५–उद्योग और खानें	१,५००	—	१,५००	१,०००	२,५००
६–परिवहन और सचार	१,४५०	—	१,४५०	२००	१,६५०
७–समाज सेवायें	१,२५०	६००	६५०	१०७५	१,७२५
८–इन्वेण्टरियाँ	२००	—	२००	६००	८००
सर्व योग	२५०	१०५०	६,२००	४,०००	१०,२००

पहली योजना के समय देश की अर्थ व्यवस्था मे वार्षिक पूँजी-विनियोग लगभग ५०० करोड रु० से बढते-बढते कोई ८५० करोड रु० तक पहुँच गया था। दूसरी योजना के अन्त तक वार्षिक पूँजी विनियोग के १,४५० करोड रु० से १,५०० करोड रु० तक पहुँच जाने की आशा है। तीसरी योजना की समाप्ति पर वार्षिक पूंजी-विनियोग का विस्तार शायद २,५०० करोड रु० के आस पास पहुँच जायेगा। पहली योजना मे सरकारी पूँजी विनियोग लगभग २०० करोड रु० प्रति वर्ष से आरम्भ होकर योजना समाप्ति तक ४५० करोड रु० होगया था। दूसरी योजना के अन्त तक इसके लगभग ८०० करोड रु० और तीसरी योजना के अन्त तक कोई १,५०० करोड रु० हो जाने की आशा है।

1 तृतीय पचवर्षीय योजना, पृष्ठ २६

उत्पादन और विकास : प्रगति और नए लक्ष्य*

वस्तु	इकाई	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१ सम्भावित	१९६५–६६ लक्ष्य	१९५०–५१ की अपेक्षा १९६०–६१ मे हुई प्रतिशत वृद्धि	१९६०–६१ की अपेक्षा १९६५–६६ मे होने वाली प्रतिशत वृद्धि
१	२	३	४	५	६	७	८
१. कृषि और सामुदायिक विकास							
(१) कृषि की उपज							
खाद्यान्न	लाख टन	५२२	६५८	७५०	१,०००–१,०५०	४४	३३–४०
कपास	लाख गाठे	२९	४०	५४	७२	८६	३३
चीनी (गुड)	लाख टन	५६	६०	७२	९०–९२	२९	२५–२८
तिलहन	लाख टन	५१	५६	७२	९२–९५	४१	२८–३२
पटसन	लाख गाठे	३३	४२	५५	६५	६७	१८
चाय (क)	लाख पौंड	६,१३०	६,७८०	७,२५०	८,५००	१८	१७
तम्बाकू	हजार टन	२५७	२९८	३००	३२५	१७	८
मछली	लाख मीट्रिक टन	७	१०	१४	१८	१००	२९
दूध	लाख मन	४,६६०	५,२८०	६,०००	६,९००	२९	१५
ऊन	लाख पौंड	६००	६५०	७२०	९००	२०	२५

*तृतीय पंचवर्षीय योजना, रूपरेखा, पृष्ठ ३८–४५.

(२) कृषि-सम्बन्धी सेवाएं							
सिंचित क्षेत्र (विशुद्ध योग)	लाख एकड	५१५	५६२	७००	९००	३६	२९
भूमि का उद्धार (अतिरिक्त क्षेत्र)	लाख एकड	—	२७	१२	१०	—	—
भूमि-सरक्षण (लाभन्वित अतिरिक्त भूमि)	लाख एकड	—	७	२०	१३०	—	—
नत्रजनवाले उर्वरक	हजार टन (नत्रजन)	५५	१०५	३६०	१,०००	५५५	१७८
फास्फेटवाले उर्वरक	हजार टन (फास्फेट)	७	१३	६७	४००-५००	८५७	४९७-६४६
बीजो के फार्म	सख्या	—	—	४,०००	४,५००	—	१३
(३) सामुदायिक विकास खण्ड	संख्या	—	१,०६४	३,११२	५,२१७	—	६८
अन्तर्गत आए गांव	हजार	—	१५०	४००	५५०	—	३८
अन्तर्गत आई-जनसख्या	लाख	—	७८०	२,०००	३,७४०	—	८७
२. बिजली							
लगे हुए कारखानो की क्षमता	लाख किलोवाट	२३	३४	५८	११८	१५२	१०३
उत्पादित बिजली	करोड किलोवाट-घंटे	६५७·५	१,१००	२,०७०	४,२२५	२१५	१०४
कस्बो और गांवो मे बिजली पहुँचाई गई	हजार	३·७	७·४	१९	३४	४१४	७९

३. खनिज पदार्थ							
कच्चा लोहा	लाख टन	३०	४७	१२०	३२०	३००	१६७
कोयला	लाख टन	३२०	३८०	५३०	९७०	६६	८३
४. बड़े उद्योग							
(१) धातु-शोधन-उद्योग							
तैयार इस्पात	लाख टन	१०	१३	२६	६६	१६०	१६५
कच्चा लोहा (बिक्री के लिए)	लाख टन	३·५	३·८	९	१५	१५७	६७
तांबा	हजार टन	—	७·३	७·९	१८४	—	१३३
अल्युमीनियम	हजार टन	३७	७·३	१७	७५	३५९	३४१
(२) मैकेनिकल और बिजली इंजीनियरी							
सीमेण्ट की मशीनें	मूल्य लाख रु० मे	—	३४	८०	४५०	—	४६३
चीनी की मशीने	मूल्य लाख रु० मे	—	१९	४४०	१,०००	—	१२७
मशीनी औजार (वर्गीकृत)	मूल्य लाख मे	२९	७२	५५०	३,०००	१,७९७	४४५
बाल और रोलर-बियरिंग	संख्या लाख रु० मे	१	९	२४	१२०	२,३००	४००
डीजेल इंजिन	हजार	५·५	१०	३३	६६	५००	१००
ट्रैक्टर	संख्या	—	—	२,०००	१०,०००	—	४००

बिजली की मोटरें (२०० हार्सपावर या उससे नीचे की)	हजार हार्सपावर	१००	२७०	८००	२,५००	७००	२१३
बिजली के ट्रान्सफार्मर (३३ किलोवाट ग्रौर उससे नीचे के)	ऐम्पीयर	१७९	६२५	१,३५०	३,५००	६५४	१५६
बिजली के तार (ए० सी० एस० ग्रार० कण्डक्टर)	हजार टन	१७	८'७	१८	४४	६५९	१४४
(३) रेलो के इंजिन							
भाप ग्रौर डीजेल तेल के	सख्या	ग्रनुपलब्ध	५००	१,२५०	१,६०९	—	२९
बिजली के	सख्या	—	—	—	२३२	—	—
(४) रसायन,							
उर्वरक नत्रजन वाले (नत्रजन के रूप मे)	हजार टन	९	७९	२१०	१,०००	२,२३३	३७६
फास्फेटवाले (फास्फेट के रूप मे)	हजार टन	९	१२	७०	४००—५००	६७८	४७१—६१४
गन्धक का तेजाब	हजार टन	९९	१६४	४००	१,२५०	३०४	२१३
सोडा ऐश	हजार टन	४५	८१	२४०	४५०	४३३	८८
कास्टिक सोडा	हजार टन	११	३५	१२५	३४०	१,०३६	१७२
सल्फा ड्रग	टन	—	८३	१५०	१,०००	—	५६७
डी०डी०टी०	टन	—	२८४	२,८००	२,८००	—	—

(४) अन्य उद्योग							
सिलाई की मशीने (केवल सगठित क्षेत्र मे निमित)	हजार	३३	१११ २	३००	४५०	८०९	५०
बाइसिकिले (केवल सगठित क्षेत्र मे निर्मित)	हजार	१०१	५१३	१,०५०	२०००	६४०	९०
मोटर गाड़िया	हजार	१६.५	२५.३	५३.५	१००	२२४	८७
सूती वस्त्र (मिलो मे निर्मित)	करोड गज	३७२	५१०.२	५००	५८०	३४	१६
चीनी	लाख टन	११	१९	२२.५	३०	१०५	३३
इस्पात का इमारती सामान	हजार टन	—	९०	२५०	१,०००	—	३००
सीमेण्ट	लाख टन	२७	४६	८८	१३०	२२६	४८
पेट्रोलियम की वस्तुएं	लाख टन	—	३६	४१	७४	—	६१
कागज और गत्ता	हजार टन	११४	१८७	३२०	७००	१८१	११९
५. ग्रामीण और छोटे उद्योग							
खादी-परम्परागत	लाख गज	७३	२८९	४८०		५५८	
अम्बर चर्खे की	लाख गज	—	—	३२०		—	
हथकरघे का वस्त्र	करोड गज	७४.२	१४७.१	२१५.५	३,५००	१८६	३४
बिजली के करघे का वस्त्र	करोड गज	१४८	२७.३	४०.५		१७४	
रेशम (कच्चा)	लाख पौण्ड	१८	३१	३७	५०	६५	३५

६. परिवहन-सेवाएँ							
(१) रेलें :							
यात्रियों ने यात्रा की	लाख मील	९५०	१,०९०	१,२४०	१,४३०	३१	१५
माल ढोया गया	लाख टन	९१०	१,१४०	१,६२०	२,३५०	७८	४५
पक्की सडकें राष्ट्रीय मार्ग शामिल करके)	हजार मील	९७·५	१२२	१४४	१६४	४८	१४
जहाजरानी	लाख ग्रोस टन	४	५	९	११	१२५	२२
(२) सचार-सेवाएँ							
डाक-घर	हजार	३६	५५	७५	९५	१०८	२७
तार-घर	हजार	३.६	५.१	६.३	८.३	७५	३२
टेलीफोनों की सख्या	हजार	१६८	२८०	४७५	६७५	१८३	४२
७. शिक्षा							
(१) सामान्य शिक्षा							
विद्यालयों मे विद्यार्थियों की सख्या लाख		२३५	३१५	४११	६४८	७५	५८
विद्यालय जाने वाले निम्नलिखित आयु-वर्गों के बच्चों का प्रतिशत							
प्राथमिक	६ से ११ वर्ष	४३	५१	६०	८०	४०	३३
माध्यमिक	११ से १४ वर्ष	१३	१६	२३	३०	७७	३०
उच्चतर माध्यमिक	१४ से १७ वर्ष	५	८	१२	१५	१४०	२५

संस्थाएँ							
प्राथमिक जूनियर बुनियादी विद्यालय	हजार	२०६.७	२७८.१	३५४.९	५००	९९	४१
माध्यमिक सीनियर बुनियादी विद्यालय	हजार	१३.६	२१.७	३०	४५	१२१	५०
उच्च-उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	हजार	७.३	१०.८	१४	१८	९२	२९
बहुद्देश्यीय विद्यालय	हजार	—	०.४	१.६	१.८	—	१३
(२) तकनीकी शिक्षा							
इजीनियरी और टेक्नोलाजी डिग्री देने वाली सस्थाओ की दाखिले की क्षमता		४,११९	५,८८८	१३,१६५	१८,५००	२२०	४१
डिप्लोमा देनेवाली सस्थाओ की दाखिले की क्षमता		५,९०३	१०,४८४	२४,०२०	३४,०००	३०७	४२
कृषि-डिग्री (स्तर)	सख्या	१,०६०	१,९८९	४,५००	६,०००	३२५	३३
पशु-चिकित्सा (डिग्री स्तर)	सख्या	४३४	१,२९९	१,३००	१,५५०	२००	१९

८. स्वास्थ्य							
(१) संस्थाएं							
अस्पताल और औषधालय	हजार	८·६	१०	१२·६	१४·६	४७	१६
अस्पतालो मे रोगी-शय्याएं	हजार	११३	१२५	१६०	१९०	४२	१९
प्राथमिक स्वास्थ्य इकाइयां	संख्या	—	७२५	२,८००	५,०००	—	७९
परिवार-नियोजन-केन्द्र	संख्या	—	१४७	१,७९७	८,१९७	—	२५६
(२) कर्मचारी							
मेडिकल कालेजो की दाखिले की क्षमता	संख्या	२,८५४	३,६५५	४,७९०	अनुपलब्ध	६८	—
डाक्टर (रजिस्टर्ड)	हजार	५९	७०	८४	१०३	४२	२३
नर्स (रजिस्टर्ड)	हजार	१७	२२	३२·५	५२·५	९१	६२
मिडवाइफ (रजिस्टर्ड)	हजार	१८	२७	४०	७०	१२२	७५
नर्स-दाइयां और दाइयां रजिस्टर्ड	हजार	२·२	६·८	१२	४२	४४५	२५०
हेल्थ असिस्टेंट और सैनीटरी इन्सपेक्टर	हजार	३·५	४	७	१४	१००	१००

प्रमुख संगठित उद्योगों और खनिज पदार्थों का उत्पादन, प्रगति और लक्ष्य[1]

क्रम संख्या	उद्योग का नाम	इकाई	१९५०–५१ का उत्पादन	१९५५–५६ का उत्पादन	१९६०–६१ अनुमानित क्षमता	१९६०–६१ अनुमानित उत्पादन	१९६५–६६ के लक्ष्य क्षमता	१९६५–६६ के लक्ष्य उत्पादन
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
	(अ) धातुकर्म-उद्योग							
१.	लोहा और इस्पात							
	(१) इस्पात की सिल्लियां	दस लाख टन	१·४	१·७	६	३·५	१०·२	९·५
	(२) तैयार इस्पात	दस लाख टन	०·९८	१·३	४ ५	२·६	७·५	६·९
	(३) बिक्री के लिये कच्चा लोहा	दस लाख टन	०·३५	० ३८	०·९	०·९	—	१·५
	(४) मिश्र धातु, औजारों का और विशेष इस्पात (तैयार)	हजार टन	—	—	४०	४०	२००	२००
	(५) धूसर लोहे की ढलाई	दस लाख टन	—	—	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	१·२	१·२
	(६) इस्पात की ढलाई	दस लाख टन	—	—	०·१	०·०५	० २	०·२
	(७) इस्पात की गढाई	हजार टन	—	—	६०	३५	२००	२००
२.	लौह मैंगनीज	हजार टन	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	१५०	१००	२२०	२००
३.	लौह सिलिकन	हजार टन		—	५	६	४०	४०
४.	अल्युमीनियम	हजार टन	३·६८	७ ३	१७·५	१७	८२·५	७५
५.	ताबा आग मे शोधा हुआ और विद्युद्विश्लेपित	हजार टन	—	७·३	७·२	७·९	१८·४	१८·४

1. Ibid, p. 220 229

६. सीसा	हजार टन	—	२·२	६	३·५	८·५	८
७. जस्ता	हजार टन	—	—	—	—	१५	१५
(आ) यान्त्रिक इंजीनियरी उद्योग							
८. औद्योगिक यंत्र							
(१) सूती कपडा	करोड़ रुपये	अनुपलब्ध	४	१०	६	२२	२०
(२) सीमेंट	करोड़ रुपये	—	० ३४	१·१	०·८	४ ५	४ ५ से ५
(३) चीनी	करोड़ रुपये	—	०·१९	१०·५	४·४	११ से १२	१०
(४) कागज	करोड़ रुपये	—	—	०·७	—	८·५	६·५ से ७
(५) डेरी	करोड़ रुपये	—	—	० २५	—	२ ५	२·५
(६) औद्योगिक बायलर	करोड़ रुपये	—	—	३ ७	० ६	२९	२५
(७) क्रेन	हजार टन	—	—	२·५	१·५	६०	६०
(८) मशीनी औजार	करोड़ रुपये	० २९	०.७२	७	५ ५	३०	३०
(९) भारी मशीन-निर्माण (इस्पात और रासायनिक यंत्र)	हजार टन	—	—	—	—	८०	—
(१०) कोयला-खनन यंत्र	हजार टन	—	—	—	—	४५	३०
(११) भारी प्लेट और वेसल (प्रेसर-वेसेल, ताप-विनि-मायक और दूसरे प्रकार के रासायनिक संयंत्र तथा उपकरण)	हजार टन	—	—	—	—	३० से ४०	३०

मद	इकाई						
९. ढांचा-विषयक सामान (जिस मे भारी ढाचा-सबधी उद्योगशालाए भी शामिल है)	हजार टन	—	९०	५००	२५०	१,१००	१,०००
१०. सूक्ष्म औजार–औद्योगिक और वैज्ञानिक	करोड रुपये	—	—	० ७	० ७	२३	१२
११. शल्य-क्रिया के औजार	दस लाख अदद	—	—	—	—	२५	२५
१२. घडियाँ	हजार अदद	—	—	—	—	३६०	२४०
१३. रेलों के डिब्बे व इजिन							
(१) इजिन							
वाष्पचालित	अदद	अनुपलब्ध	५००	३००	२९५	३००	१,१७५
डीजेल-चालित	अदद	—	—	—	—	१००	४३४
बिजली-चालित	अदद	—	—	—	—	६०	२३२
(२) माल-डिब्बे (चौपहिए)	अदद	२,९२४	४१,९६६	२६,०००	२०,०००	३३,५००	१,०९,८६६
(३) सवारी-डिब्बे	अदद	४७९	४,३८४	१,३००	१,२१०	१,४२०	७,८३७
१४. मोटर तथा सहायक उद्योग							
(१) सवारी कारे	हजार अदद	—	—	२०	२०	३०	३०
(२) व्यवसायिक गाडिया (बसे, भारवाहन)	हजार अदद	१६·५	२५	२८	२८	६०	६०
(३) जीपे और स्टेशन-वैगन	हजार अदद	—	—	५ ५	५·५	१०	१०

(४) सहायक वाहन (जिसमे ट्रेलर भी शामिल है)	हजार अदद	—	—	०.७	अनुपलब्ध	२५	२.५
•(५) मोटर साइकिलें और स्कूटर	हजार अदद	—	१.५	२४	१६	४८ से ६०	५०
१५. वाल और रोलर बेयरिंग	दस लाख अदद	०.०८	०.९	१.६	२४	८	१२
१६. मिट्टी हटाने के उपकरण							
(१) रेंगनेवाले ट्रैक्टर	अदद	—	—	—	—	६००	५००
(२) डम्पर और खुरपा	अदद	—	—	—	—	६००	५००
(३) फावडा	अदद	—	—	—	—	१२५	१००
१७ सडक रोलर	अदद	—	—	८००	३५०	८००	७००
१८ कृषि उपकरण और यत्र							
(१) बिजली चालित	हजार अदद	३४	३७	१८४	८६	१८४	१५०
(२) डीजेल-इंजिन	हजार अदद	५.५	१०	६२	३३	७२	६६
(३) ट्रैक्टर	हजार अदद	—	—	७५	२	१२	१०
१९ वाइसिकिलें	दस लाख अदद	०.१	०.५१	२.२	१.०५	२.२	२
२० सिलाई-मशीनें	हजार अदद	३३	१११	२८८	३००	५००	४५०
२१. वेल्डिंग इलेक्ट्रोड	दस लाख आर-एफ-टी	—	—	६००	३५०	१,०८०	९००

२२. जहाज-निर्माण (हिन्दुस्तान शिल्पयार्ड, सूखी गोदी और दूसरे शिपयार्ड का विस्तार)	हजार जी-आर-टी	—	५०	२०	२०	५० से ६० (डी० डब्ल्यू० टी०)	५० से ६० (डी० डब्ल्यू० टी०)
(इ) बिजली इंजीनियरी उद्योग							
२३. बिजली ट्रांसफार्मर (२३ किलोवाट से नीचे)	दस लाख किलोवाट	०·१८	०·६३	२·२	१·३५	४	३·५
२४. बिजली के मोटर (२० हार्स पावर और उससे कम)	दस लाख हार्स-पावर	०·१	०·२७	१·२५	०·८	३	२·५
२५. बिजली के केबल और तार							
(१) ए० सी० एस० आर०	हजार टन	१·७	८·७	२८	१८	५५	४४
(२) वी० आई० आर० और प्लास्टिक की पर्त चढ़े हुए	दस लाख कोर गज	३९·४	८६·९	५००	२५०	८००	६००
(३) पेपर इंसुलेटेड	मील	—	—	१,०००	७५०	४,५००	४,०००

(४) सूखी कोर के केवल	मील	—	५२५	४७०	४७०	२,००० से २,५००	२,०००
(५) कोविसियल केवल	मील	—	—	३००	३००	३००	३००
२६ बिजली के पंखे	दस लाख अदद	०·१९	०·२९	२·२	०·९	२·८	२·५
२७ हाउस-सर्विस मोटर	दस लाख अदद	—	०·२५	०·६	०·४५	२·५	२·१
(ई) रासायनिक और सम्बद्ध उद्योग							
२८ उर्वरक							
(१) नत्रजनयुक्त (नत्रजन की मात्रा के अनुसार)	हजार टन	९	७९	२३४	२१०	१,०००	१,०००
(२) फास्फेटयुक्त (फास्फेट की मात्रा के अनुसार)	हजार टन	९	१२	८२	७०	५००	४००
२९ भारी रसायन							
(१) गन्धक अम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड)	हजार टन	९९	१६४	५२१	४००	१५००	१,२५०
(२) सोडा ऐश	हजार टन	४५	८१	३०४	२४०	५३०	४५०
(३) कास्टिक सोडा	हजार टन	११	३५	१५०	१२५	४००	३४०
(४) कैल्शियम कारबाइड	हजार टन	—	३	२८	२०	६७	६०
(५) सोडियम हाइड्रोसल्फाइट	हजार टन	—	—	४	३·५	१२	१०
(६) हाइड्रो पैरोक्साइड	हजार टन	—	—	३	२	९·५	८
३० विविध रासायनिक उत्पादन							
(१) कार्बन ब्लैक	हजार टन	—	—	—	—	३०	३०

(२) औद्योगिक विस्फोटक							
(अ) वात विस्फोटक	हजार टन	—	—	५	५	२०	२०
(आ) सेफ्टी फ्यूज	दस लाख क्वायल	—	—	८·६	७	२५	२५
(इ) डिटोनेटर	दस लाख अदद	—	—	—	—	८०	८०
रबड़-रसायन	हजार टन	—	—	२	अनुपलब्ध	२	३
३१. रजक	दस लाख पौंड	—	४	१९·२	११५		
३२. औषध						२२·४	१८
(१) सल्फा-औषध	टन	—	८३	३९३	१५०	१,०००	१,०००
(२) पेनिसिलिन	दस लाख मेगायूनिट	—	६६	४५	४०	२०५	१२०
(३) स्ट्रेप्टोमाइसिन	टन	—	—	—	—	१५०	१५०
(४) पी० ए० एस०	टन	—	४०	१२६	१००	४००	४००
(५) पेचिश रोकने वाली औषध	टन	—	६	७४	३०	७५	७५
(६) आई० एन० एच०	टन	—	१	३३	३०	१००	१००
(७) कार्बनिक अन्तरायक	टन	—	—	—	—	२४,०००	२४,०००
(८) फायटो केमिकल्ज	टन	—	—	—	—	७६४	७६४
(९) कीटनाशक औषध, डी०डी०टी०	टन	—	२८४	२,८००	२,८००	२,८००	२,८००
३३. प्लास्टिक (पोलीथाइलीन, पी०वी०सी० पोली स्टेरीन और अन्य)	हजार टन	—	०.७	१९२	११५	८५	७४
३४. (१) साबुन	हजार टन	१०६	१०२ (केवल संगठित क्षेत्र)	२५४ (केवल संगठित क्षेत्र)	३८०	२५४ (केवल संगठित क्षेत्र)	५००
(२) संश्लेषित स्वच्छक	हजार टन						१०

३५. कच्ची फिल्में सिनेमाटोग्राफिक	दस लाख वग मीटर	—	—	—	—	१०	१०
३६. रबड़ की चीजें							
(१) मोटर, वगैरह के टायर	दस लाख अदद	—	०.६	१.७६	१.५	३·७	३
(२) बाइसिकिल के टायर	दस लाख अदद	—	५ ७८	१६.६	१४	३८·६	३१
३७ नकली रबड	हजार टन	—	—	—	—	३०	३०
३८. (१) कागज और गत्ता	हजार टन	११४	१८७	३६३	३२०	८२०	७००
(२) अखबारी कागज	हजार टन	—	४.२	३०	२८	१२०	१२०
(३) सिक्यूरिटी-कागज	टन	—	—	—	—	१,५००	१,५००
३६. सीमेंट	दस लाख टन	२·७	४.६	१०	८.८	१५	१३
४०. रिफ्रेक्टरियां	दस लाख टन	—	०,२८	०.८७	०.६	२	१·६
४१. विद्युत-पोर्सिलेन (उच्च तनाव और निम्न तनाव के पृथक्कारी)	हजार टन	—	४.३	—	८.४	३०	२४
४२. कांच और कांच का सामान (जिसमें चश्मों का कांच भी शामिल है)	हजार टन	६२	१२५	४५७	२४०	६१५	४४०
४३. पेट्रोलियम की चीजें	दस लाख टन	—	३.६	५.३ (कच्चा तेल)	४.६	८ (कच्चा तेल)	७·४

४४. मोटरों और उद्योगों में व्यवहृत अल्कोहल	दस लाख गैलन	८.५	१५.६	४५	२५	६०	५०
४५. औद्योगिक गैसें							
(१) आक्सीजन	दस लाख घन फुट	—	—	१,०००	७००	२,३००	१,६५०
(२) एसिटिलीन	दस लाख घन फुट	—	—	१५६	१०० से १००	२५०	२००
(उ) कपड़ा-उद्योग							
४६. कपास							
(१) सूत	दस लाख पौंड	१,१७९	१,६४०	२,१००	१,९००	२,२५०	२,२५०
(२) कपड़ा (मिल)	दस लाख गज	३,७२०	५,१०२	५,३००	५,०००	५,८००	५,८००
४७. पटसन	हजार टन	८९२	१,१५०	१,२००	१,१००	१,२००	१,१००
४८. रेयन और रेशेवाला कपड़ा							
(१) रेयन का तार	दस लाख पौंड	०४	१६	५२.३	४७	१४०	१४०
(२) रेशेवाला कपड़ा	दस लाख पौंड	—	१४	४८	४२	७५	७५
(३) रासायनिक लुगदी	हजार टन	—	—	—	—	१००	९०
४९. ऊन का सामान	दस लाख पौंड	१८	—	—	—	—	—
(१) ऊनी और बटा हुआ तार	दस लाख पौंड	—	२१.७	६७	३४	६७	५२
(२) ऊनी कपड़ा	दस लाख गज	—	१५	४८	२३	४८	३५
(३) ऊनी टाप	दस लाख पौंड	—	—	१०	अनुपलब्ध	३१.५	३१.५
(ऊ) खाद्य-उद्योग							
५०. नमक	दस लाख टन	२.७	३	३.९	३.५५	६.५	५.४
५१. चीनी	दस लाख टन	१.१२	१.८६	२.२८	२.२५	३	३

५२.	वनस्पति-तेल							
	(अ) खली का विलायक-तत्व निकालना	हजार टन	—	—	९३६ (खली)	३६ (तेल)	२,००० (खली)	१६० (तेल)
	(आ) बिनौले का तेल	हजार टन	—	—	४१५ (बीज)	३७ (तेल)	८५० (बीज)	१०० (तेल)
५३.	वनस्पति	हजार टन	१५३	२७६	४३४	३५०	५५०	५००
			(ए) खनिज पदार्थ					
५४.	कोयला	दस लाख टन	३२	३८	—	५३	—	९७
५५.	कच्चा लोहा	दस लाख टन	३	४·७	—	१२	—	३२

४—तृतीय पंचवर्षीय योजना की विशेषतायें
(Characteristics of the Third Five Year Plan)

तृतीय पच वर्षीय योजना की अपनी कुछ विशेषताएँ है। यों तो प्रत्येक योजना मे ही कुछ न कुछ विशेषताएँ होती है, जैसे, प्रथम योजना भारत के लिए आर्थिक विकास प्राप्त करने का सबसे पहला कदम था, द्वितीय योजना मे उद्योगों के विकास पर विशेष महत्त्व प्रदान किया गया तथा, इसी योजना काल से 'समाजवादी अर्थ व्यवस्था' तथा 'समाजवादी ढग के समाज' की स्थापना का लक्ष्य स्थिर किया गया। इसी प्रकार तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी कुछ विशेषताएँ है, जैसे, इसके आकार का विशालत्व, Take off stage, सन्तुलित आर्थिक विकास, बेरोजगारी दूर करने के लिये 'अत्यधिक' रोजगार की सुविधाओं का निर्माण, ग्रामीण जनता के लिये रोजगार का निर्माण, आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास एव कीमतो को बढने से रोकने की व्यवस्था। इनमे से कुछ विशेषताओं पर पहले ही विवेचना किया जा चुका है, और कुछ निम्न प्रकार है

विशाल-आकार (Large Size)—

तीसरी योजना मे सब मिला कर १०,२०० करोड रु० पूँजी-विनियोग करने का विचार है। इसमे से ६,२०० करोड रु० सरकारी क्षेत्र मे और ४,००० करोड रु० निजी क्षेत्र मे लगाए जाए गे। सरकारी क्षेत्र मे अन्दाजन १,०५० करोड रु० का चालू व्यय होगा। उसे मिला कर इस क्षेत्र का समस्त व्यय ७,२५० करोड रु० हो जायगा। निजी क्षेत्र मे पूँजी-विनियोग में २०० करोड रु० की वह राशि भी शामिल है, जो पूँजी-सग्रह प्रयोजन से सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र मे ले जाई जाएगी। नीचे की तालिका मे तीसरी और दूसरी योजनाओ के व्यय और पूँजी-विनियोग की तुलना की गई है।

दूसरी और तीसरी योजनाओं का व्यय और पूँजी-विनियोग

(करोड रुपये)

	सरकारी क्षेत्र			निजी क्षेत्र	समस्त पूँजी-विनियोग
	योजना का व्यय	चालू व्यय	पूँजी-विनियोग		
दूसरी योजना	४,६००	६५०	३,६५०	३,१००	६,७५०
तीसरी योजना	७,२५०	१,०५०	६ २००	४,०००	१०,२००

इससे प्रकट है कि तीसरी योजना का समस्त पूँजी-विनियोग दूसरी योजना के पूँजी-विनियोग से लगभग ५१ प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार, सरकारी क्षेत्र के पूँजी-विनियोग और प्रस्तावित व्यय म क्रमश: लगभग ७० प्रतिशत और ५८ प्रतिशत की, और निजी पूँजी-विनियोग मे लगभग २९ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है।

पहली योजना के समय देश की अर्थ-व्यवस्था मे वार्षिक पू जी-विनियोग लगभग ५०० करोड रु० से बढते बढते कोई ८५० करोड रु० तक पहुँच गया था। दूसरी योजना के अन्त तक वार्षिक पू जी विनियोग के १,४५० करोड रु० से १,५०० करोड रु० तक पहुँच जाने की आशा है। तीसरी योजना की समाप्ति पर वार्षिक पू जी-विनियोग का विस्तार शायद २,५०० करोड रु० के आसपास पहुँच जाएगा। पहली योजना मे सरकारी पू जी-विनियोग लगभग २०० करोड रु० प्रतिवर्ष से आरम्भ होकर योजना समाप्ति तक ४५० करोड रु० हो गया था। दूसरी योजना के अन्त तक इसके लगभग ८०० करोड रु० और तीसरी योजना के अन्त तक कोई १,५०० करोड रु० हो जाने की आशा है।

विषमता का निवारण[1]

आय और सम्पत्ति की विषमता का निवारण करने की समस्या, किसी अश तक वर्तमान विषमताओ को दूर कर देने की समस्या है, परन्तु इसके अधिक महत्व-पूर्ण पहलू का सम्बन्ध ऐसी अवस्थाए उत्पन्न करने से है, जिनमे आर्थिक विकास शीघ्र होने के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक असमानताओ मे भी स्पष्टत कमी आए। पहले भी कई क्षेत्रो मे ऐसे कुछ उपाय किए जा चुके हैं, जिनका प्रत्यक्ष परिणाम आर्थिक और सामाजिक विषमताए घटने के रूप मे प्रकट हुआ है। इनमे से कुछ को तीसरी योजना में और आगे बढाया जाएगा। उदाहरणार्थ, ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में भूमि-सुधारो की प्रगति से विषमता कम करने मे बडी सहायता मिली है। काश्त की सुरक्षा और लगान मे कमी करने के काम तो काफी हद तक पूरे हो चुके हैं। अगले दो-तीन वर्षों मे, आराजी की अधिकतम सीमा तय करने के कानूनो पर भी अमल हो जाएगा। तब बहुतेरे किसान अपनी जमीन के मालिक बन जाएँगे। सिंचाई का विस्तार होने से गाँवो के विशेषकर उन इलाको के, जो पानी की कमी से प्रताडित थे—बहुत से गरीब लोगों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाने मे मदद मिलेगी। अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो जैसे पिछडे वर्गों के हितार्थ बनाए गए कार्यक्रमो का प्रयोजन ही जनता के उन वर्गों को लाभ पहुचाना है, जो वर्तमान परिस्थितियो मे विकास की सामान्य योजनाओ से पूरा-पूरा लाभ नही उठा पाते है। प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार (इसे तीसरी योजना म ६ से ११ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो के लिए नि शुल्क और अनिवार्य कर दिया जाएगा), छात्रवृत्तियो की सख्या मे वृद्धि और अन्य प्रकार की सहायता, प्रारम्भिक स्वास्थ्य-केन्द्रो की स्थापना प्राय सभी गाँवों मे पीने के पानी की व्यवस्था, मलेरिया-जैसे रोगो का उन्मूलन, और स्वयमेवा-सगठनो का—खास कर स्त्रियो और वालको के सेवा-सगठनो का—विस्तार, ऐसे काम हैं जिनसे जनता को समान अवसर मिलने के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होने मे बडी सहायता मिल सकती है। सामुदायिक विकास-आन्दोलन का काम करने वालो से भी बार-बार तकाजा किया जा रहा है कि वे लोगो का रहन सहन का स्तर ऊँचा उठाने और निम्न वर्गों को रोजगार दिलाने के उपायो पर अधिक ध्यान

1 तृतीय पचवर्षीय योजना, (रूपरेखा), पृष्ठ ११—१३।

इस क्षेत्र मे वित्तीय कार्रवाइयो की भी एक प्रमुख भूमिका है। अतः उनका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि आय और सम्पत्ति की विषमता कम करने मे वे सहायक सिद्ध हो। पूर्ववर्णित उद्देश्यो की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि कम्पनी-कानून का पालन कराने वाली, कारखानो को लाइसेन्स देने वाली, नई कम्पनी खोलने के लिए पूजी एकत्र करने की इजाजत देने वाली और विदेशो से आयात का नियन्त्रण करने वाली, आदि-जैसी शासन की विभिन्न शाखाएँ अपना-अपना काम अधिक समन्वयपूर्वक करें। कम्पनियो का नियमन करते समय कम्पनियो द्वारा कई कम्पनियो में पूजी लगाए जाने और कई-कई कम्पनियो के एक ही डाइरेक्टर होने जैसी अनेक समस्याओ का सामना करना पडता है। इन समस्याओ को हल करने के लिए कानून मौजूद हैं, परन्तु ये कानून अमल मे कहाँ तक आ रहे है, यह देखने की जरूरत है। देखने की एक और बात यह है कि निजी पूँजी लगाने की लिए करो की जो रियायत दी जाती है अथवा बढावा देने के लिए इसी प्रकार की अन्य कार्रवाइयाँ की जाती हैं, उन पर किस प्रकार अमल होता है। इन रियायतो और कार्रवाइयो का निश्चय ही महत्व है, परन्तु देखना यह है कि अमल मे इनका नतीजा, योजना मे शामिल विभिन्न उद्योगो के विकास-कार्यक्रमो की पूर्ति के रूप मे निकलता है, या नहीं। आय और सम्पत्ति की विषमता कम करने और आर्थिक क्षमता का केन्द्रीयकरण रोकने की समस्याएँ बडी पेचीदा हैं और द्रुत प्रगति की समस्याओ के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध है।

स्वय स्फूर्ति विकास अवस्था (The Take off Stage)—

नियोजन द्वारा जहाँ भी आर्थिक उन्नति का प्रयास किया जाता है वहाँ इस बात की चेष्टा की जाती है कि नियोजन को एक दीर्घकालीन तत्त्व मान कर चला जाये। इसका खास कारण यह होता है कि जब तक 'दीर्घकाल' को दृष्टिकोण में रख कर नियोजन पद्धति को अपनाई नही जाती, तब तक वह अपूर्ण समझा जाता है। हमारे नियोजनो ने भी स्पष्ट शब्दो मे कहा है

"हमारे विकास मे जो परिस्थितियाँ बाधक सिद्ध हो रही है और जिन पर योजना-निर्माताओ को ध्यान देना है, वे ये हैं लोगो की कम आमदनी और रहन-सहन का नीचा स्तर, अधिकाश लोगो का खेती मे लगा होना, बडे पैमाने पर अर्द्ध-रोजगारी, उपकरणो और तकनीकी जानकारी के लिए अधिक उन्नत देशो पर निर्भर करना और आर्थिक उन्नति की धीमी चाल। इन सब आर्थिक और सामाजिक समस्याओ की जडें बडी गहरी हैं और इन्हे हल करने के लिए विकास की एक दीर्घकालीन योजना बनानी पडेगी। जो राष्ट्र गरीबी से निकल कर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होना चाहे, उसे बहुत समय तक और लगातार प्रयत्न करना पडता है। यही कारण है कि पहली योजना मे विकास की समस्या को २५ या ३० वर्ष-व्यापी कार्य की दृष्टि से देखा गया था, और प्रारम्भिक पाँच वर्षों के लिए उसी हिसाब से कार्यक्रम निर्धारित किए गए थे।"

यद्यपि कतिपय कारणवश विकास का कार्य अपेक्षाकृत छोटे भागो मे बाट कर करने मे आसानी होती है, तथापि वस्तुत: वह एक ही लम्बी और निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होती है, और उसमे प्रत्येक भाग के लक्ष्य और प्राथमिकताए एक दूसरे के साथ एक बड़े उद्देश्य द्वारा जुड़ी रहती हैं। इसी कारण, पहली और दूसरी योजनाओ की कल्पना, देश के एक दीर्घकालीन सामाजिक और आर्थिक विकास-कार्यक्रम की दो मजिलो के रूप म की गई। पहली योजना मे १९५०-५१ से १९८०-८१ तक के ३० वर्ष की आर्थिक उन्नति का चित्र प्रस्तुत करके अनुमान लगाया था कि देश की राष्ट्रीय आय १९७१-७२ तक और प्रति व्यक्ति आय १९७७-७८ तक दुगुनी हो जाएगी। इस अनुमान का आधार ये पूर्व-कल्पनाएँ थी कि देश की आबादी किस रफ्तार से बढेगी, विकास की हरेक मजिल मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि का कितना भाग फिर पूँजी-विनियोग मे लगेगा, और जो पूँजी लगाई जाएगी, उससे अतिरिक्त उत्पादन के रूप मे कितना लाभ होगा। दूसरी योजना के समय, इन पहले के अनुमानो और कल्पनाओ पर पहली योजना मे प्राप्त अनुभवो से लाभ उठा कर, पुन: विचार किया गया और यह मत व्यक्त किया गया कि १९५०-५१ की तुलना मे, देश की राष्ट्रीय आय १९६७-६८ मे और प्रति व्यक्ति आय १९७३-७४ मे ही सम्भवत: दुगनी हो पाएगी। उस समय एक और महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह रखा गया था कि पाचवी योजना के समाप्ति-काल तक खेती पर आश्रित रहने वालो का अनुपात आबादी के लगभग ६९ या ७० प्रतिशत के वर्तमान स्तर से घट कर लगभग ६० प्रतिशत रह जाएगा। दूसरी योजना मे जिन लक्ष्यो की कल्पना की गई है, उनकी पूर्ति दो बातो पर निर्भर करेगी—पहली तो यह, कि आबादी मे वृद्धि किस हिसाब से होती है, और दूसरी यह कि अगली तीन योजनाओ मे जो प्रयत्न किया जाएगा, उसका परिणाम और स्वरूप क्या होगा ?

केवल भारतीय नियोजन मे ही नही, बल्कि ससार के उन सभी राष्ट्रो ने, जिन्होंने नियोजन द्वारा आर्थिक विकास को प्राप्त करने का प्रयास किया है अथवा कर रहे हैं, नियोजन को एक दीर्घकालीन विकास का तत्त्व समझा है। इस प्रकार, नियोजन द्वारा एक सुनियोजित, सुव्यवस्थित और सन्तुलित आर्थिक विकास के दृष्टिकोण को पूरा करने के लिये नियोजन पद्धति मुख्य रूप से निम्नलिखित पाँच भागो मे बाँटा जाता है .

१—परम्परागत समाज (The Traditional Society),

२—स्वय स्फूर्ति अवस्था के पूर्व की आर्थिक स्थिति (Pre-Take off Economic Stage) ;

३—स्वय स्फूर्त आर्थिक अवस्था (The Take-off stage or The Self-sustained Growth Stage) ;

४—आर्थिक 'परिपक्वता' की ओर अग्रसर की स्थिति (Drive to Economic Maturity), एव

५—अधिक उपभोग की अवस्था (Stage of extensive mass consumption)

प्रथम पचवर्षीय योजना का जब भारत मे निर्माण किया गया था तो उससे पहले देश की दशा अत्यन्त दयनीय थी। सैकडो वर्षों के विदेशी शासन के कारण, द्वितीय महायुद्ध के कारण, देश मे किसी प्रकार के सन्तुलित या सुव्यवस्थित आर्थिक या व्यापारिक नीति के अभाव से, देश मे फैली हुई बेकारी तथा अत्यधिक जनसख्या के दबाव के कारण देश का आर्थिक स्तर दिन-प्रति-दिन अवनति की ओर जा रहा था। यही कारण था कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जब देश मे योजना को अपनाने के विषय मे विचार विमर्श हुआ, और अन्त मे, प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया तो इस बात की चेष्टा की गई कि इस योजना काल मे इस बात का पूरा प्रयास किया जाए कि इस काल म भविष्य नियोजनो के लिए एक सुदृढ पृष्ठ भूमि तैयार की जा सके। इसी के साथ-साथ, क्योकि भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है, इस बात की चेष्टा की गई कि इस काल मे कृषि उत्पत्ति मे अत्यधिक विकास सम्भव हो सके। साथ ही साथ कृषि से सम्बन्धित अन्य विषयो पर भी समान महत्त्व दिया गया था। नियोजन की प्रथम सोपान (परम्परागत समाज) की विशेषताओ के आधार पर ही प्रथम पचवर्षीय योजना का निर्माण किया गया था। प्रथम योजना म इस बात की पूरी चेष्टा की गई थी कि 'विद्यमान' आर्थिक और सामाजिक स्थितियो के अन्तर्गत ही योजना कार्य चले।

द्वितीय पचवर्षीय योजना का जब निर्माण किया गया था तब तक 'सफल नियोजन' बनाने योग्य पृष्ठ भूमि देश म उत्पन्न हो चुकी थी। यही कारण था कि द्वितीय पचवर्षीय योजना म 'विद्यमान' आर्थिक और सामाजिक स्थितियो के अन्तर्गत ही नियोजन नही किया गया था। राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त, समाजवादी ढग के समाज की स्थापना का सिद्धान्त, तीव्रगति से औद्योगिक विकास के सिद्धान्तो का अपनाना इस बात की पुष्टि करता है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना म 'स्वय-स्फूर्ति आर्थिक अवस्था के पूर्व की आर्थिक स्थिति' की प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया था। इसी उद्देश्य से द्वितीय पचवर्षीय योजना के उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित किये गये थे। उद्योगो के तीव्र विकास और 'सम्पूर्ण रोजगार' का उद्देश्य इसलिये रखा गया था कि इस काल मे प्रत्येक नागरिक की द्राव्यिक और वास्तविक आमदनी मे अत्यन्त वृद्धि हो सके। क्योकि जब तक देश के समस्त नागरिको के प्रतिवर्ष आमदनी मे वृद्धि न हो, तब तक देश म बचत, विनियोग और पूजीगत उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि नही हो सकती। स्वय-स्फूर्ति आर्थिक स्थिति की भित्ति (Foundation) इसी पर निर्भर होती है कि देश की तीव्र आर्थिक विकास के लिये बचत, विनियोग और

पूँजीगत उत्पादन म इतनी वृद्धि हो जाये कि भविष्य मे आर्थिक विकास के लिये किसी का सहारा लेना न पडे। द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे राष्ट्रीय आय, व्यक्तिगत आय, बचत, विनियोग एव पूँजीगत उत्पादन की वृद्धि के लिय पर्याप्त प्रयास हुए, एव इस ओर कुछ सफलताएँ भी प्राप्त हुई।

स्वय-स्फूर्त स्थिति (Take off Stage) के विषय में यह बताया जाता है कि स्वय स्फूर्त आर्थिक अवस्था की प्राप्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का कम से कम १०% भाग का विनियोग हो। इसी के साथ साथ यह भी आवश्यक समझा जाता है कि कृषि, उद्योग और अन्य 'क्षेत्रो' का सन्तुलित विकास हो। इस विषय म एक बात ध्यान रखना आवश्यक है, वह यह कि अविकसित या अर्द्ध-विकसित देशो के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का १०% से अधिक भाग का विनियोजन राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिये अवश्य हो। इस स्थिति को प्राप्त करने के विषय मे यह भी कहा जाता है कि देश की आर्थिक स्थिति ऐसी हो जानी चाहिए जिससे 'विदेशी विनिमय' पर देश को सम्पूर्ण रूप स आश्रित न रहना पडे। विदेशी व्यापार म अनुकूल स्थिति को प्राप्त करने से भी यह स्थिति काफी हद तक दूर हो जाती है।

तृतीय पचवर्षीय योजना का निर्माण स्वय-स्फूर्त आर्थिक स्थिति के अनुसार की गई है। इसी कारण योजना म इस बात का पूरा प्रयास किया गया है कि कृषि और उद्योग एव अन्य क्षेत्रो का द्रुत किन्तु सतुलित विकास हो। इस बात की भी चेष्टा की गई है कि इस बात की ओर दृष्टि रखी जाय कि विदेशी विनिमय के कारण योजना कार्य म किसी प्रकार की बाधा न पडे। साथ ही साथ योजना मे इस ओर भी सकेत किया गया है कि इस योजना का लक्ष्य विनियोजन दर मे वृद्धि करना है जिससे योजना काल मे ही भारत की आर्थिक स्थिति ऐसी हो जाये कि हम उसे स्वय-स्फूर्ति आर्थिक स्थिति मान सकें।

तीसरी योजना के उद्देश्यो, प्राथमिकताओ और लक्ष्यों का निश्चय करते समय इन बातो को ध्यान मे रखा गया है पूर्ववर्णित सामाजिक आदर्श, योजना-काल मे अर्थव्यवस्था की आवश्यकताए, दीघकालीन विकास का वह रूप, जिसके साथ योजना जुडी है, और गत दो योजनाओ की अवधि म हुई वास्तविक प्रगति। आशा है कि पहली दो योजनाओ की अवधि मे राष्ट्रीय आय मे लगभग ४२ प्रतिशत की वृद्धि हो चुकेगी। तीसरी योजना का लक्ष्य, राष्ट्रीय आय मे प्रतिवर्ष लगभग ५ प्रतिशत वृद्धि करना है। इस प्रकार, १९५१ से १९६६ तक के पन्द्रह वर्षों मे, राष्ट्रीय आय म समस्त वृद्धि लगभग ८० प्रतिशत हो सकेगी। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि पूँजी विनियोग की दर, जो दूसरी योजना के अन्त मे राष्ट्रीय आय का लगभग ११ प्रतिशत होगी, तीसरी योजना के अन्त तक लगभग १४ प्रतिशत हो जाय।

तीसरी योजना का एक मुख्य लक्ष्य यह है कि देश आत्मचालित ढग से प्रगति करने के क्षेत्र मे काफी आगे बढ जाए। मूलतः प्रगति को आत्मचालित बनाने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था मे बचत और पूँजी-विनियोग की मात्रा इतनी बढ जाए कि राष्ट्र की आय मे निरन्तर और अधिकाधिक वृद्धि होती चली जाए। इस समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू देश मे पूजीगत तथा अन्य सामग्रिया स्वय बना सकने की इतनी क्षमता उत्पन्न करना है कि जितनी मात्रा मे पूजी लगाने की बात सोची जा रही है, वह सार्थक सिद्ध हो जाए। साथ ही, उन यन्त्रो के डिजाइन बनाने और उन्हे चला सकने की योग्यता का सम्पादन करना भी आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक अल्प-विकसित अर्थ-व्यवस्था मे, निर्यात के द्वारा अल्पकाल मे इतनी बचत कर लेना बहुत कठिन होता है कि विदेशो से मगाए गए अपनी आवश्यकता के सभी उपकरणो का मूल्य उसी से चुकाया जा सके। इसलिए अपनी निर्यात की कमाई को बढाने का अधिकतम प्रयत्न करना होगा—विदेशो के साथ लेन-देन का हिसाब बराबर करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। फिर भी, भुगतान-सन्तुलन के एक बडे भाग की पूर्ति, पूजीगत सामान विदेशो से मगाने के स्थान पर उसका बडे परिमाण मे स्वदेश मे निर्माण करके ही करनी होगी। इसीलिए, तीसरी योजना मे पूजी-विनियोग के स्वरूप और परिमाण का निश्चय करते समय विदेशो के हिसाब को दस वर्ष की अवधि मे बराबर तथा स्थिर कर देने के लक्ष्य को उच्च प्राथमिकता दी गई है।

५—तृतीय पचवर्षीय योजना की आलोचना
(Criticism of the Third Five Year Plan)

तृतीय पचवर्षीय योजना की अभी केवल रूपरेखा ही प्रकाशित हुई है। इस कारण इसकी पूर्णरूप से आलोचना करना या समर्थन करना अभी सरल नही है। वास्तव मे, प्रारम्भिक रूपरेखा और वास्तविक 'योजना' मे काफी प्रभेद रहता है। फिर भी, रूपरेखा मे जो विशेष कमियाँ दिखाई देती है, उनमे से कुछ निम्न प्रकार हैं

तृतीय पचवर्षीय योजना का आकार अत्यन्त विशाल रखा गया है। १०,२०० करोड रुपया भारतवर्ष जैसे अविकसित देश के लिए एक विशाल रकम है। द्वितीय योजना मे इस राशि के मुकाबले काफी कम रुपया नियोजन कार्य के लिए उल्लेख किया गया था, किन्तु उस रकम की व्यवस्था भी पूरी तरह से न हो पाई थी। यही कारण था कि द्वितीय योजना काल मे (Plan outlay) को पुनः निर्धारण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। भारत की जनता के जीवन स्तर मे कोई विशेष उन्नति द्वितीय काल मे सम्भव न हो सकी। फिर भी यह आशा करना कि तृतीय योजना काल मे १०,२०० करोड रु० की व्यवस्था सम्भव हो सकेगी एक 'कल्पना'

मात्र है। (अब तो इस बात की आशा व्यक्त की जा रही है कि यह रकम बढ कर १२,००० करोड रु० होने जा रहा है।) योजनाधिकारियो की यह एक बडी भूल है, जिसमे विशेष सुधार की आवश्यकता है। यह कहा गया है कि रूस मे जब प्रारम्भिक रूप से नियोजन का कार्य शुरू किया गया था तो Plan outlay इस रकम से कई गुनी अधिक थी जब कि आज के भारत से उस समय के रूस की आर्थिक स्थिति अधिक दयनीय थी। किन्तु हमारे नियोजक इस बात को भूल जाते है कि इस समय भारत मे जितनी मुद्रा प्रसार एव ऊँची कीमतें हैं, वैसी स्थिति रूस के प्रारम्भिक नियोजन काल मे नही था। वास्तविक सत्यता तो इस बात की है कि चाहे किसी भी रूप मे हम देखें, यह तत्व सत्य है कि तृतीय पचवर्षीय योजना का जो Plan outlay है वह अत्यन्त विशाल है, एव उसकी पूर्ति की सम्भावनाएँ अत्यन्त कम है।

यद्यपि नियोजन कार्य को प्रारम्भ हुए भारतवर्ष मे प्राय. १० वर्ष हो गये, तथापि भारत सरकार अभी जनता मे यह विश्वास उत्पन्न न कर सकी कि नियोजन का कार्य जनता की भलाई के लिये ही है। समस्त जनता—विशेषतौर से ग्रामीण जनता—यह सोचती है कि नियोजन से उन्हे किसी भी रूप से लाभ न है और न रहेगा। उनका मत है कि नियोजन का केवल उद्देश्य 'सरकारी फायदे' है। सरकार की ओर से योजनाओ को सफल रूप देने के लिये जितना प्रचार होना आवश्यक था उतना प्रचार नही हो पाया। इसका परिणाम यह रहा कि ग्रामीण एवं साधारण जनता अभी योजना का अर्थ, लक्ष्य, उद्देश्य, प्राथमिकता, स्वरूप, आकार एव लाभ आदि के विषय मे अनजान है। उन्हे ठीक तरह से समझाने की व्यवस्था करनी चाहिए कि 'नियोजन उन्ही के लिये, उन्ही की भलाई के लिए है" कोरी 'सरकारी योजना' नही है। देशी तथा विदेशी प्रेक्षकों ने यह सही ही कहा है कि भारत की पचवर्षीय योजना मे जो विकास कार्यक्रम तैयार किए गए, वे लोगो के मन मे योजनाओ के प्रति श्रद्धा और उल्लास उत्पन्न करने मे असमर्थ रहे है। योजना आयोग के 'मूल्याकन कार्यक्रम सगठन' ने अप्रैल सन् १९६० मे अपनी वार्षिक रिपोर्ट मे कहा था कि लोग हर एक विकास कार्यक्रम को 'सरकारी फायदे' की स्कीम समझते है। यही कारण है कि अधिकाश ब्लाकों मे सब साधारण का रवैया विकास कार्यक्रम की सफलता के पक्ष मे नही है इसमे अधिकाँश दोष अधिकारियो का है। साथ ही राज्य-विधानसभाओ और ससद मे जनता के प्रतिनिधियो का भी दोष है। उन्हे विकास के कार्यो मे जनता का नेतृत्व करना चाहिए। इसके साथ ही बहुत कुछ दोष उन राज्य सरकारो का है, जो शासन के विकेन्द्रीकरण के लिए तत्पर नही। प्रजातन्त्र मे विकास योजनाओ के प्रति जनता मे विश्वास पैदा करने के लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। केवल आध्र और राजस्थान मे ही इस दिशा मे कदम उठाए गए हैं। यद्यपि वहाँ पर कुछ दिक्कतें आई है किन्तु इस बात के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए है कि लोगो मे जिम्मेदारी की भावना बढ रही है। उत्तर प्रदेश सरकार भी अपने जिला-

परिपद् और क्षेत्र समिति बिल के द्वारा जिला परिषदो और क्षेत्रीय समितियो को कुछ अधिकार देने जा रही है, पर शासन का तत्व अपने पास ही रखेगी—इसका नाम जनतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण होगा। यह सभी बात अभी केवल 'योजना स्तर' पर ही हैं। इनमें हमारी सरकार को कितनी सफलता मिलेगी इसको शायद कोई नहीं जानता (!)

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programmes)—सामुदायिक विकास कायक्रम को प्रारम्भ किए ६ वर्ष हो चुके है, लेकिन यह अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने मे असमर्थ रहा है। कार्यक्रम की रूपरेखा देहाती क्षत्रो के लिये विकास एव कल्याण कार्यों के हेतु बनायी गई थी—और आकाक्षाओ का पूरा ध्यान रखा गया था। इस बात की आशा की गई थी कि यह ग्रामो मे आर्थिक क्रान्ति लाने मे सफल होगा और इस प्रकार सारा देश लाभान्वित होगा। इस बात की आशा की गई थी कि एक विशद कार्यक्रम तैयार करने से ग्रामवासियो की आर्थिक स्थिति मे सुधार होगा और बेरोजगारी तथा अर्ध-बेरोजगारी के कारण जो अपार मानव शक्ति का उपयोग नही हो पा रहा है उसका उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकेगा। इससे आर्थिक क्रान्ति का सूत्रपात होगा। कृषि उत्पादन मे वृद्धि इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य रहा। किन्तु वह उद्देश्य सफल न हो सका।

यह आशा व्यक्त की जा रही है कि तीसरी योजना के अन्त तक लगभग २ १०० खण्ड अपने पहले सोपान मे होंगे, लगभग २,००० खण्ड दूसरे सोपान मे होगे और १,००० से अधिक खण्ड अपने विकास-कायक्रम के दस वर्ष पूरे कर चुकेंगे। सामुदायिक विकास और सहकारिता के अन्तर्गत विभिन्न कायक्रमो पर तीसरी योजना मे कुल मिलाकर ४०० करोड रुपये की व्यय की व्यवस्था है।

परन्तु, हमे देखना तो यह है कि इन उद्देश्यो की पूर्ति कहाँ तक सम्भव हो पाती है ? प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे सामुदायिक विकास, सहकारिता आदि के लक्ष्य तीसरी योजना के मुकाबले मे कम था, परन्तु उनकी पूर्ति भी सम्भव नही हो पाई थी। उस रूप म यह आशा करना कि तृतीय पचवर्षीय योजना के सभी लक्ष्यो की प्राप्ति सम्भव होगी, शायद 'आशा' से भी अधिक होगी।

भारतीय नियोजन की सफलता का सबसे बडा बाधक प्रबन्ध और प्रशासन की त्रुटियाँ है। प्रथम पचवर्षीय योजना काल से सभी वर्गो द्वारा इस ओर सकेत किया जा रहा है कि हमारे प्रशासन व्यवस्था म सुधार की अत्य त आवश्यकता है। किन्तु खेद का विषय है कि अब तक प्रशासन सम्बन्धी कोई ठोस कार्यवाही नही की गई है। प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजना म, जब कि विनियोजन कम मात्रा म हुआ था, प्रशासन की अव्यवस्था के कारण बहुत से प्रयासो मे कोई

विशेष सुविधा प्राप्त न हो सकी। उसी सदर्भ मे यह कहा जा सकता है कि तृतीय पञ्चवर्षीय योजना मे जब Total Outlay इतना विशाल है, एव जब सभी कार्य विशाल रूप से करने की आवश्यकता होगी, हमारे प्रबन्धक एव प्रशासन सम्बन्धी कार्यकर्ता समय एव आवश्यकतानुसार कार्य नही कर सकेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि नियोजन के सभी उद्देश्य तथा लक्ष्य अधूरे रह जायेंगे। तृतीय पचवर्षीय योजना मे यदि सफलता प्राप्त करनी है तो प्रशासन सम्बन्धी सभी विषयो मे गुरुत्वपूर्ण सुधार करने पड़ेंगे।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भी, प्रथम और द्वितीय योजनाओ की तरह सामाजिक सेवाओ के विकास पर विशेष ध्यान नही दिया गया है। यह अत्यन्त दुखद है। सच तो यह है कि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सामाजिक सेवायें ऐसे है जिन पर अधिकतम महत्त्व प्रदान करना चाहिए। इसका कारण यह है कि लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र ठीक प्रकार से तभी कार्य कर सकता है कि जबकि देश के सभी नागरिक शिक्षित, बुद्धिमान एव स्वस्थ हो, इनके अभाव मे देश का आर्थिक विकास ठीक प्रकार से एव सन्तुलित रूप से नही हो पाता है। तृतीय पचवर्षीय योजना के बारे मे यह आशा प्रगट की गई थी कि इसमें सामाजिक सेवाओ पर अधिक बल दिया जायेगा। किन्तु तृतीय पचवर्षीय योजना की रूपरेखा ने इस आशा को समूल नष्ट कर दिया है।

देश से-आवास (housing) सम्बन्धी कठिनाइया अत्यन्त विशाल रूप मे विद्यमान हैं। विशेषकर शहरी क्षत्रो मे आवास सम्बन्धी कठिनाइयो के विषय मे सभी ज्ञात है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि हमारे नियोजको ने तृतीय पचवर्षीय योजना के निर्माण मे इस ओर कोई ध्यान नही दिया। आवास सम्बन्धी कठिनाइया जब तक पूर्ण रूप से दूर नही हो जाती तब तक देश के समस्त नागरिको के जीवन-स्तर एव 'जीवन सुख की मात्रा मे वृद्धि एक कल्पना मात्र रह जाएगा। तृतीय पचवर्षीय योजना काल मे सरकार को इस बात का भरसक प्रयास करना चाहिए कि विभिन्न स्तर और क्षेत्रो के नागरिको की आवास सम्बन्धी समस्त कठिनाइया पूरी तरह से दूर कर सकें।

"विदेशी विनिमय की कठिनाई भी एक बडी समस्या है   किन्तु इससे भी अधिक विकट समस्या आतरिक वित्त (internal finance) की है। जब तक देश म द्रव्य के आन्तरिक साधनो की उपलब्धि न होगी, तब तक बडो मात्रा मे मिलने वाली विदेशी विनिमय की धनराशि किसी काम की नही होगी। जब हम किसी कारखाने मे १ करोड रुपये का विनियोग करते हैं तो उसका ५० प्रतिशत दश के आन्तरिक साधनो पर व्यय करना पडता है और बाकी का ५० प्रतिशत बाहरी मशीनरी तथा अन्य कल-पुर्जो मे व्यय करते हैं जिसके लिए हमे पूर्ण रूप से देश के बैंक द्रव्य की सहायता नही मिलती, जबकि किसी भी नये उत्पादन कार्य को शुरू

करने के लिये हमे ६० प्रतिशत से लेकर ६५ प्रतिशत तक आन्तरिक पूँजी व द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए जब तक देश के आतरिक साधनो का विकास नही किया जायेगा, तब तक हमारे लिये योजना मे निर्धारित, निजी क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लक्ष्यो को, पूरा करना कठिन होगा। और जब निजी क्षेत्र योजना के लक्ष्यो को पूरा करने मे असमर्थ रहता है तो सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य भी प्राप्त नही हो पाते, क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र की आय का मुख्य स्रोत निजी क्षेत्र ही है।"

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था मे बैंकिंग व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण कार्य करती है : लेकिन धन सम्बन्धी जरूरतो की अन्तिम पूर्ति बचत द्वारा होती है। कर की वृद्धि के कारण निजी बचत का क्षेत्र एकदम सकुचित हो गया है। द्रव्यपूर्ति का दूसरा साधन सामूहिक बचत (Corporate Saving) है, किन्तु सरकारी गलत कदमों के फलस्वरूप यह स्रोत समाप्त हो रहा है। सन् १९६० के बजट पर बोलते हुए वित्तमन्त्री ने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया था।

"विदेशी विनियोग के द्वारा भी द्रव्य की पूर्ति मे सहायता मिलती है, लेकिन विदेशी पूँजी तब तक प्राप्त नही की जा सकती जब तक कि देश के अन्दर उसके लिए उपयुक्त वातावरण न बनाया जाय। जिन लोगों ने चीन का भ्रमण किया है वे जानते है कि योजनाओ की सफलता के लिए चीन मे विदेशी पूँजी किस तरह प्राप्त करते हैं। वहाँ पर ७०% पूँजी की आवश्यकता को दीर्घकालीन आधार पर पूँजीगत वस्तुओ के रूप मे प्राप्त करते हैं। लेकिन पश्चिमी देशों मे हम इस तरह का सम्पर्क स्थापित नही कर सकते। जब तक हमारे देश मे विदेशी पूँजी को आकर्षित तथा प्रोत्साहित करने के लिए उचित वातावरण पैदा नही किया जाएगा तब तक विदेशी पूँजी से प्राप्त सहायता की धनराशि मे कमी होती जायगी।"

"ऐसा सुझाव दिया गया है कि द्रव्य बाजार को सरल बनाने के लिए मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाय। कभी-कभी लोगो की क्रयशक्ति पर रोक लगाने और द्रव्य पर आवश्यक नियन्त्रण करने का भी सुझाव दिया गया है, जिसके फलस्वरूप उपभोग मे कमी हो और कृत्रिम रूप से वस्तुओ की पूर्ति बढ़ जाय। किन्तु ये कार्य योजना के उद्देश्य के विपरीत है। सब कुछ होते हुए हमारे नियोजन का उद्देश्य रोजगार की अधिक से अधिक सुविधाएँ उत्पन्न करना तथा लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। हम कीमतों को कम करने की कोशिश करते हैं, जिससे बेरोज-गारी फैलती है और लोगो का जीवन स्तर गिरता है। इतने सब कार्यों के होते हुए भी, हम देखते हैं कि कृषि पदार्थों की कीमतें बढ़ती है। इस प्रकार एक ओर तो औद्योगिक उत्पादन की वस्तुओ जैसे, कपड़े की कीमतें गिरती हैं, मिलो के पास स्टॉक समाप्त हो जाता है, उपभोग कम होता जाता है, और दूसरी ओर कृषि उत्पादन की वस्तुओ की कीमत ऊँची दर पर स्थिर हो जाती है। इसलिए यह

स्पष्ट है कि मुद्रा-सकुचन अथवा साख नियन्त्रण का कृषि वस्तुओ पर कोई प्रभाव नही पडता। इन वस्तुओ की कीमतो की वृद्धि को रोकने के लिए सर्वोत्तम ढग यह है कि कृषि उत्पादन मे वृद्धि की जाय।"

"सरकार विभिन्न स्थानो द्वारा 'द्रव्य-बाजार' से द्रव्य को वापस ले लेती है—उत्पादन कर के रूप मे, कर्ज के द्वारा तथा 'अतिरेक बजट' (Surplus budgets) के द्वारा। इस तरह से इकट्ठा किया हुआ धन बैंको के पास शीघ्र नही लौटता। अन्य देशो मे एक रुपये के नोट ६ बार बाजार मे चलने को आते है जबकि हमारे देश मे ऐसा नही होता। अधिकतर सरकारी व्यय या तो विदेशो से माल खरीदने मे व्यय किया जाता है या देहाती क्षेत्र के उन लोगो पर व्यय किया जाता है जो बैंको से कोई सम्बन्ध नही रखते अथवा जिनमे विनियोग करने की प्रवृत्ति नही होती। हमारी बैंकिग व्यवस्था भी इतनी सगठित नही है कि वह देहाती क्षेत्र से धन आकर्षित कर सके।"[1]

तृतीय पचवर्षीय योजना की एक और बडी कमी यह है कि इसमे 'पूँजीगत उत्पादन' की उत्पत्ति म उतनी प्रमुखता प्रदान नही की गई है जितनी कि आशा की जाती थी। किसी भी देश की नियोजन व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि जैसे-जैसे दिन गुजरते जाय, वैसे ही वैसे देश मे भारी उद्योग की मात्रा मे वृद्धि होनी चाहिए, देश मे 'उत्पादन वस्तुयें' और 'उपभोग की वस्तुयें' अधिकतम मात्रा मे उत्पन्न होनी चाहिए, ताकि कुछ वर्षो के पश्चात् देश सभी प्रकार की वस्तुओ, मशीनो, यन्त्रो और भारी मशीन आदि के विषय मे आत्म-निर्भर हो सके। द्वितीय योजना मे भी 'उपभोग की वस्तुओ' के निर्माण पर अधिक बल प्रदान किया गया था, जिससे देश के औद्योगीकरण मे बाधायें उत्पन्न हो गई थी। तृतीय पचवर्षीय योजना मे इस्पात, सीमेन्ट, लोहा, मशीन, यन्त्र आदि के निर्माण मे जितना अधिक बल प्रदान करना चाहिए था, उतना बल प्रदान नही किया गया है। इस ओर सरकार तथा योजना आयोग को अधिक ध्यान देना चाहिए।

कृषि और खाद्यान्न के विषय मे भारत अभी आत्मनिर्भर नही हो पाया है जो वास्तव मे दुख की बात है। कृषि-प्रधान देश होने के कारण प्राय ७० प्रतिशत जनता कृषि-आय पर ही आधारित है। उस परिस्थिति मे कृषि मे उन्नति न होने का या खाद्य पदार्थ के विषय म आत्म-निर्भर न होने का एक सहज परिणाम यह है कि देश अभी तक दरिद्र बना हुआ है। भारत के पास इतना अधिक प्राकृतिक सम्पत्ति के होते हुए भी भारतीय जनता दरिद्र है, क्या यह दुख और लज्जा की बात नही है ? योजना आयोग को अब से कई वर्ष पहले ही यह देख लेना चाहिए था कि कृषि पद्धति म, भूमि सस्करण मे और कृषि उपज के मामले म देश सम्पूर्ण रूप से आत्म-

1 L N Birla's speech in the Annual Meeting (1957) of Indian Chamber of Commerce and Industry.

निर्भर हो पाया है। अब तक प्रतिवर्ष लाखो रुपये का अनाज और कृषि उपज विदेशों से मँगाना पडता है; फिर भी देश की जनता को अधिक दाम देकर जीवन-रक्षक वस्तुओ को प्राप्त करना पडता है।

"बेरोजगारी फैलाने के लिये नियोजन करो" एक कहावत सी हो गई है। प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण से पहले देश मे जितनी बेरोजगारी थी, प्रथम योजना की समाप्ति पर उससे अधिक बेरोजगारी देश मे फैल गई थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना ने यह दावा किया था कि इस नियोजन काल मे (१९५६-६१) देश से बेरोजगारी समाप्त हो जायेगी। परन्तु, फल इसका विपरीत ही रहा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्माण काल मे देश मे जितनी बेरोजगारी थी उससे अधिक इस समय देश मे बेरोजगारी विद्यमान है। तृतीय पचवर्षीय योजना के विषय मे यह आशा करना कि इस काल मे देश की बेरोजगारी की अवस्था मे किसी प्रकार का सुधार होगा, सम्पूर्ण रूप से भ्रमात्मक होगा। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि हमारे नियोजक देश से बेरोजगारी दूर करने में पूर्णत. असमर्थ रहे हैं। उन्हे इस बात के लिये पूरी तरह से प्रयास करना चाहिये कि देश से बेरोजगारी सम्पूर्ण रूप से दूर हो जाये।

नियोजन का प्रमुख उद्देश्य नागरिको के जीवन-स्तर और उपभोग के स्तर मे वृद्धि करना, विषमता का निवारण और राष्ट्रीय आय मे द्रुत वृद्धि करना होता है। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि नियोजन सन्तुलित एव सुव्यवस्थित हो। नियोजन को भारत मे प्रारम्भ हुए १० वर्ष हो गये हैं, किन्तु जनता के वास्तविक आय मे कोई विशेष वृद्धि नही हो पाई है। बेरोजगारी अभी विद्यमान है। मनुष्यों के *जीवन स्तर मे कोई विशेष अन्तर नही आया है। प्रायः सभी वस्तुओं के कीमतो मे* अत्यन्त वृद्धि हो गई है। आवास की कठिनाई, वस्तुओ की कीमतो मे वृद्धि, आय मे वृद्धि न होना आदि कुछ ऐसे कारण हैं जिनके द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हमारे नियोजक उद्देश्यो की प्राप्ति मे असफल रहे हैं।

तृतीय पचवर्षीय योजना का कार्यान्वित होना काफी हद तक देश के आभ्यतरिक बचत और विनियोग एव विदेशी सहायता पर निर्भर है। यह एक जटिल समस्या है। आन्तरिक बचत की मात्रा मे वृद्धि न होने का कारण यह है कि नागरिको की वास्तविक आय मे वृद्धि नही हो पा रही है, देश मे सभी वस्तुओं के दाम बढ गये हैं, बेरोजगारी की मात्रा मे वृद्धि हो गई है। इनके साथ देश की औद्योगिक, बैंकिग एव व्यवसाय सम्बन्धी नीति दोषपूर्ण है। इन सब बातो का प्रभाव यह है कि आन्तरिक बचत एव विनियोग उस स्तर पर पहुँच नही पायेगा जिसकी आशा व्यक्त की गई है। साथ ही साथ विदेशी सहायता के विषय मे भी दृढता से यह कहना कि वह ठीक समय पर प्राप्त हो सकेगा सम्भव नही है क्योंकि वह बहुत सी बातो पर—जिनमे राजनैतिक वातावरण भी है—पर निर्भर करता है। इस प्रकार, इस

बात का पूरा डर है कि तृतीय पचवर्षीय योजना मे जिन "साधनो" का उल्लेख किया गया है, वह उपलब्ध नही हो सकेंगे, एव उसी कारण, नियोजन भी सफल न हो पायेगा।

कीमतो मे वृद्धि औद्योगिक नीति की त्रुटियाँ, मुद्रा प्रसार आदि कुछ और कारण हैं जिनके फलस्वरूप तृतीय पचवर्षीय योजना के सफल होने की आशा कम है। यद्यपि तृतीय पचवर्षीय योजना मे इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि 'कीमतो की वृद्धि' एव 'मुद्रा-प्रसार' पर नियन्त्रण किया जायेगा, किन्तु उनकी सफलता के विषय मे हमे सन्देह है। इस 'विशाल' योजना को कार्यान्वित करने के लिये मुद्रा प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता पडेगी एव इसका प्रत्यक्ष परिणाम वस्तुओ और सेवाओ की कीमतो मे वृद्धि होगा। इससे देश के नागरिको का जीवन तथा उपभोग का स्तर ऊँचा न हो पायेगा, बचत नही हो पायेगी, बचत के अभाव मे विनियोग नही हो पायेगा। इस प्रकार, योजना के लक्ष्य प्राप्त न हो सकेंगे। औद्योगिक एव व्यवसायिक नीति मे त्रुटि के कारण तथा 'राष्ट्रीयकरण' के भय से निजी क्षेत्र मे उद्योगो का विस्तार आशानुरूप न हो पायेगा।

केन्द्रीय नियोजन और राज्यो के नियोजनो मे कोई सामजस्य रखने की चेष्टा नही की गई है। समस्त देश मे नियोजन का लक्ष्य, उद्देश्य, तरीके, प्राथमिकतायें आदि एकसी होनी चाहिये। किन्तु भारत मे जो योजनायें निर्माण की गई है उनमे यह बात नहीं पाई जाती। प्रत्येक राज्य ने अपनी इच्छानुसार, आवश्यकतानुसार एव जनता के 'दबाव' के अनुसार अपने अपने राज्य के लिये नियोजन तैयार किये है। उनके आदर्शो एव लक्ष्यो मे एव केन्द्रीय नियोजन मे अत्यन्त असामजस्य है। इसका परिणाम यह होगा कि न तो समस्त राष्ट्र मे और न विभिन्न राज्यो मे ठीक तरह से आर्थिक विकास हो पायगा। हमारे नि जको को इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिये कि केन्द्रीय नियोजन और राज्यो के नियोजनो मे सामजस्य बनाये रखें, क्योकि उसी रूप मे नियोजन के पूरे लाभ प्राप्त हो सकेंगे।

तृतीय पचवर्षीय योजना के विषय मे यह कहा गया है कि यह Take off Stage है। यह भी, वास्तविक परिभाषा के अनुसार, गलत है। इसका कारण यह है कि नियोजन की Take off stage होने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय का कम से कम १०% भाग विनियोजित हो। भारत जैसे अविकसित देश के लिये तो यह प्रतिशत और अधिक होना चाहिये। परन्तु भारत मे अभी राष्ट्रीय आय का १०% भाग भी विनियोजित नही होता है। यह सब कुछ कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण तृतीय योजना के सफल होने मे सन्देह है।

तृतीय भाग

विदेशों में नियोजन एवं आर्थिक व्यवस्था

अध्याय २१

अमेरीका का पूंजीवाद[1]

(American Capitalism)

१—प्रारम्भिक तथ्य

(Preliminary Concepts)

जिस प्रकार सोवियत रूस केन्द्रीय नियोजन का आदर्श है, उसी प्रकार सयुक्त राष्ट्र अमेरिका स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था का। सयुक्तराज्य मे आर्थिक क्षेत्र मे अत्यधिक उन्नति का होना इस बात का स्वय प्रमाण है कि यह सोचना कि देश की आर्थिक उन्नति केवल केन्द्रीय नियोजन द्वारा ही हो सकता है, गलत है। आर्थिक उत्थान के लिए, प्राकृतिक साधनो की प्राप्ति के साथ साथ सबसे अधिक आवश्यक यह है कि जनता एव सरकार दोनो ही अग्रसर होने को इच्छुक हो। सरकार तो इस प्रयास में जनता की सहायता ही कर सकती है। यह बात सयुक्त राज्य अमेरिका की आर्थिक नीति के विषय म सत्य है। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था अपनाने के उपरान्त भी अमेरिका सब ओर से खुशहाल है।

"सयुक्त राज्य अमेरिका मे सामान्य जनता का सम्पन्न होना सर्व विदित हैं।[2] यह सत्य है कि ससार की छ प्रतिशत जनता तथा ७ प्रतिशत भूखण्ड से हम ससार

---

1 **(Courtesy · The U S Embassy and U S I S in New Delhi)** This chapter is based on the Literature, mentioned at relevent places, kindly sent by the Director of Information, U S I S, New Delhi He also very kindly granted permission to reprint

2 '*The general prosperity of the United States is well known* The fact that with six per cent of the world's people and seven per cent of the world's land area we produce one-third of the world's goods like other similar statistics about our economy are common knowledge They need no elaboration here"

Life in America—A Progressive Economy—W G Brown, Charge d' Affairs, American Embassy, New Delhi, at the Inauguration of Life in America, A Progressive Economy' Exhibition, Delhi 'Varsity, Sept 1959.

की एक तिहाई वस्तुओ को उत्पन्न करते हैं। यह हमारे अर्थव्यवस्था सम्बन्धी अन्य आंकडो की तरह से सामान्य ज्ञान की बात है। उन पर यहाँ अधिक मानसिक श्रम की आवश्यकता नही।"

श्री रिचार्ड ने अपनी सोवियत सघ की यात्रा करते समय कहा था, "स०रा० अमरीका ससार का सबसे बडा पूँजीपति देश है। धन वितरण के आधार बिन्दु को लेकर वर्ग-विहीन समाज की भावना के निकट है एव सर्व साधारण के कल्याण तथा वैभव की भावना का महत्व समझने लगा है।"[1]

सयुक्त राज्य अमेरिका मे पहले जो धन की अधिक विषमता (आर्थिक विषमता तथा निर्धनता पाई जाती थी, वह बहुत अधिक मात्रा मे मालिक अथवा प्रबन्धक को अपने कर्मचारियो के ऊपर एकाधिकार जो अतीत मे शोषण के लिए अवसर प्रदान करता था अब पूर्णतया समाप्त हो गया है। बेकारी एव वृद्धावस्था की अपगुता (Distitution in old age) की तीव्रता से जड काट डाली गई हैं। एकाधिकार अथवा बाजार पर नियत्रण होने से उत्पन्न अवगुण को गैर कानूनी ठहरा दिया गया है।

सयुक्त राज्य अमेरिका की सम्पन्नता का निर्माण, स्वतन्त्र मनुष्य का स्वतन्त्र प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने के परिणाम स्वरूप हुआ है, इसके साथ ही साथ एक साथ कार्य करने एव स्पर्द्धा के कारण, अपनी इच्छानुसार सरकार को चुनने (बनाने) के कारण ताकि उच्च स्तर के सिद्धान्तो का निर्माण हो सकने तथा इन सिद्धान्तो को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए प्रयोग मे लाकर और जहाँ व्यक्ति अथवा समूह के लिए अधिक कार्य है वहाँ सरकार योग देकर देश को सम्पन्न बनाने मे सफल हुई है।

अमेरिका की इस प्रणाली ने बडे-बडे उद्योगो को ही जन्म नही दिया है— जिन्हे बहुत से व्यक्ति अमरीकी उद्योगो के नाम से पुकारते हैं, बल्कि असख्य छोटे-छोटे उद्योगो को भी उत्पन्न किया है। अमेरिका के सम्पूर्ण कर्मचारियो का ६५ प्रतिशत भाग व्यापारिक उद्योगो मे लगा हुआ है फिर भी प्रत्येक उद्योग मे कर्मचारियो की सख्या ५० से कम ही है। इस प्रकार के ४ मिलियन लघु उद्योग धन्धे है जो कि अमेरिका द्वारा निर्मित माल का एक तिहाई भाग उत्पन्न करते है जो अमेरिका के थोक विक्रय तथा फुटकर विक्रय का आधा एव सेवा उद्योगो का तीन चौथाई भाग है।

---

1 "The United States is the world's largest Capitalist country; has, from the stand point of the distribution of wealth, come closest to the idea of prosperity for all in a claseless society."
Vice President, Nixon (U. S. A)

इन लघु उद्योगो का बहुत अधिक भाग व्यक्तिगत अथवा साझेदारी के अधिकार मे है। इसके विपरीत, बडे उद्योगो के स्वामित्व मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया है।

गत शताब्दी के पिछले भाग में, बडे उद्योगो के स्वामी अधिकाश परिवार अथवा व्यक्तियो के छोटे समूह थे। अब हजारो साझीदार, अपने बहुत से कर्मचारियो सहित बहुत सी औद्योगिक सस्थाओ के स्वामी है। उनका प्रबन्ध अब परिवारो के हाथो से छिन कर उन व्यक्तियो के हाथो मे आ गया है जो प्रबन्ध का कार्य करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका के बहुत से आर्थिक विकासो में से प्रबन्ध के व्यवसाय को अल्पकाल मे ही विकसित होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

सयुक्त राज्य अमेरिका म क्रान्ति भी हो चुकी है जो वास्तव मे एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति थी। तब से धनी और निर्धन की विशाल विषमता लुप्त सी हो गई है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जिन वस्तुओ का उपभोग प्रारम्भ मे केवल धनी लोग करते थे अब उनका अधिकतर भाग कर्मधारियो द्वारा उपभोग किया जाता है।

आर्थिक दृष्टि से कर्मचारी वर्ग बहुत आगे बढ चुका है। पिछली शताब्दी के समाप्त होने से ही औसत कर्मचारी के वेतन मे—द्रव्य की क्रय शक्ति और बढते हुए मूल्य को ध्यान मे रखते हुए—२२५ प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। कुछ विशेष उद्योगो मे इससे भी अधिक वृद्धि हुई है।

सप्ताह मे कार्य करने के समय का औसत केवल ४० घन्टे ही रह गया है। फिर भी अमरीकी कर्मचारी इन्ही ४० घण्टो मे अपने पूर्वजो के डेढ सप्ताह की उत्पत्ति से तिगुना उत्पन्न करता है। इन प्रगतियो के फलस्वरूप अमेरिका के कर्मचारियो के अवकाश के समय मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की अर्थव्यवस्था तीव्रगति से आगे बढ रही है (U. S Economy Continues Upward Momentum)[1]। सयुक्त राष्ट्र के व्यापार विभाग के कथनानुसार सयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था तीव्र गति से उन्नति कर रही है। उस विभाग के बडे बडे निर्देशको से ज्ञात हुआ है कि, आय, उत्पादन एव रोजगार मे सन् १९५९ के द्वितीय खण्ड मे वृद्धि हुई है। मई मे रोजगार मे जो सराहनीय प्रगति हुई थी उससे प्रतीत होता है कि टिकाऊ माल की माँगो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय आय, जिसका वार्षिक दर ३७६,००० मिलियन डालर था, मई मे ७ प्रतिशत अधिक हो गई जबकि फुटकर विक्रय तथा किस्तो पर क्रय मे भी वृद्धि हुई। मोटरकारो की बिक्री अप्रैल एव मई मे गतवर्ष के मूल्य से १६० प्रतिशत अधिक थी।

1 Major facts in American Economic Growth, Carl, F. Occhsle (*American Economy*, U. S I. S., New Delhi, July 16, 1959, pp 6—7)

व्यक्तिगत भवन-निर्माण के लिए व्यय इस वर्ष के प्रथम ६ माह में ही १७५०० मिलियन डालर तक पहुँच गया। इसका मुख्य कारण यह है कि रहने के मकानो मे ३२ प्रतिशत वृद्धि हुई। पिछले वर्ष भी लगभग इतने ही समय मे १०,२०० मिलियन डालर व्यय हुआ। सार्वजनिक निर्माण का ६ माह का व्यय ७,४०० मिलियन डालर था जो गतवर्ष के उतने ही समय के व्यय से १४ प्रतिशत अधिक था।

उन महीनो मे सम्पूर्ण औद्योगिक उत्पादन पूर्ण तीव्रता से तथा पहले से अधिक हुआ। मई १९५६ मे यह सन् १९४७-४९ की औसत का १५ प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्र के कारखाने तथा खाने इस समय, गतवर्ष की अपेक्षा, २० प्रतिशत अधिक उत्पन्न कर रहे हैं तथा गत दो वर्षों के उत्पादन क्षेत्र मे उद्योग दिन प्रतिदिन अधिक उन्नति कर रहे है। बहुतो ने अपनी उच्चतम सीमा को पार कर भी लिया है, दूसरे उसके निकट हैं। ये सभी टिकाऊ माल की सूची (Index) मे दी गई मात्रा जोडते है।

इसका तात्पर्य यह नही है कि कोमल वस्तुओ (Soft goods) के उद्योग पिछड रहे हैं। वे भी उन्नति कर रहे है, लेकिन १९५७-५८ मे उनकी उन्नति अपेक्षाकृत कम थी। अत १९५८ की गर्मियो के प्रारम्भ मे ही उन्होने शीघ्रता से, पहली कमी को पूरा कर लिया तथा और प्रगति करने लगे। इसलिये उनका वर्तमान लाभ इतना चमत्कार पूर्ण प्रतीत नही होता है जितना कि टिकाऊ उद्योगो का। कुछ उद्योगो का, सभी प्रकार के उत्पादन का प्रयत्न, इस दृष्टि से भ्रमात्मक है कि वे उद्योग चल सम्पत्ति की सूची बनाने का प्रयत्न करके विक्रय के स्तर से उत्पादन को अधिक करना चाहते हैं। किन्तु चल सम्पत्ति की सूची बनाना (Inventry) आर्थिक उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण है। १९५७-५८ से चल वस्तुओ की सूचियो (Inventories) का ८,००० डालर प्रतिवर्ष के हिसाब से भुगतान किया जा रहा था। अब वे लगभग उसी दर पर एकत्र की जा रही हैं। व्यापार विभाग का कथन है कि "वास्तव मे देखा जाय तो अमेरिका के व्यापारी 'परम्परागत सूची बनाने की स्थिति' (Conservative) के आदी हो गये है।"

२—अमेरिका का पूँजीवाद योरुप के पूँजीवाद के समान नहीं है[1]

(American Capitalism is not the same as European Capitalism)

स्वतन्त्र विचार धारा आर्थिक स्वतन्त्रता पर बल देती है। (Liberalism stresses Economic freedom)—स्वतन्त्र विचार धारा के अनुयाइयो (Liberals)

---

1. *American Capitalism*—Massimo Salvadori, American Reporter Book Supp., Feb. 27, 1957, (Ch. II, pp. 5 15).

ने १६ वी सदी मे तथा स्वतन्त्र विचारधारा के अग्रदूतो ने (fore-runners of liberalism) ने १७ वीं और १८ वी सदी मे, आर्थिक स्वतन्त्रता को राजनैतिक तथा आर्थिक (Economic) आधार पर न्यायसगत ठहराया। वे कहते थे कि (क) सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व अच्छी बात है तथा प्राचीन युगो की वैयक्तिक एव सार्वजनिक सग्रहवादी प्रवृत्ति मे हुए निश्चित सुधारो का प्रतिनिधित्व करती है। (ख) वे नागरिक जो साहसी हैं या अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से मालिक के प्रतिनिधि हैं उन पर उनके सचालन का अधिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। (ग) यदि स्वतन्त्र बाजार मे—जहाँ तक स्वतन्त्र बाजार सम्भव हो—आर्थिक शक्तियाँ प्रचलित होनी है तो सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं। उनकी सुसचालित कार्य पद्धति, सार्वजनिक और व्यक्तिगत एकाधिकारो के विपरीत तथा नियमो और व्यवसायो के उस जाल के विपरीत जो कि आर्थिक प्रयास करने मे जनता का गला घोटते थे—सफल सिद्ध हुई। उन सीमाओ के अन्तर्गत जो राज्य अथवा सघ ने निर्धारित नही की अपितु बाजार की परिस्थितियो ने निर्धारित की है, नागरिक उत्पत्ति के साधनो तथा श्रम की गतिशीलता का एव पूँजी अथवा वस्तुओ और सेवाओ का जो उन्होंने उत्पन्न की—स्वतन्त्र उपभोग कर सके तथा एक समुचित सीमा तक स्वतन्त्र हो गये।

स्वतन्त्र विचारधारा के बहुत से अनुयायियो ने, कई पीढियो तक अनिच्छा पूर्वक उन परिस्थितियो के विनाश करने की भूल की जो जनता के बहुत बडे भाग को सम्पत्ति का स्वामी होने से वचित करती है। सन् १६८८ से पूर्व इगलैण्ड मे तथा १७८९ से पूर्व महाद्वीप मे, सम्पत्ति एक विशेषाधिकार (Privilege) के रूप मे रही है। विशेषाधिकार होने के कारण यह स्वतन्त्रता से पूर्णतः भिन्न था। लेकिन उसने समर्थकों को शक्तिशाली बनाया तथा इसने बहुत सी स्वतन्त्र सस्थाओ को जन्म दिया और सम्पत्ति के स्वामी होने की प्रवृत्ति को बढावा दिया।

उत्तरी अमेरिका मे सयुक्त राज्यो तथा कनाडा दोनो मे ही—एक भिन्न परिस्थिति रही, पूँजीवाद विशेषाधिकार के रूप मे कम से कम रह गया तथा लाभ मे से हिस्सा बटाने वालो की सख्या मे वृद्धि हुई है। सर्वहारी वर्ग (Proleterian class) की वृद्धि को रोक दिया गया है तथा यह वर्ग समाप्त हो रहा है।

कुछ विभिन्नतायें (Some differences)—वास्तव मे समय के कारण बडा अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ यह कहना न्याय सगत होगा कि सन् १८८६ ई० मे अमेरिका तथा योरुप की आर्थिक प्रणालियाँ लगभग समान थी। आज के योरुप का पूँजीवाद ७० वर्ष पूर्व के योरुप के पूँजीवाद से बिल्कुल भिन्न है। अमेरिका के पूँजीवाद के विषय मे भी यही बात बिल्कुल सत्य है। यही नही, इन दोनो ने ऐसी विभिन्न पद्धतियो मे उन्नति की है कि इनमें सन् १९५६ ई० मे बिल्कुल समानता नही थी। अमेरिका का 'आर्थिक मिश्रण का सिद्धान्त' अग्रेजो, जर्मनो अथवा फ्रासीसियो के सिद्धान्त से भिन्न है। वहाँ ऐसे निषेधात्मक (Restrictive) एकाधिकृत

(Monopolistic) पूँजीवाद का अभाव रहा है जिसे २० वर्ष पहले अर्थशास्त्रियों ने नई संज्ञा (Oligopoly) के नाम से विभूषित किया, उन्होंने यह सोचा था कि पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हो जायगा, लेकिन फिर भी एकाधिकार (Monopoly) नहीं हो सका, कर्मचारी (Employees) व्यापार (enterprise) के शत्रु नहीं हैं अंग हैं, मजदूर संघों (Labour unions) ने व्यापार से लक्षण (Attitude) एवं कला (Technique) उधार ली है; समाजवादी आन्दोलन (Socialist movement) नगण्य है तथा लाभ की अपेक्षा इसे हानि हुई है, स्वदेशी समूहवाद (Indigenous Collectivist) के प्रोत्साहन को मुख्य तत्त्व मानकर निरंकुश परिस्थितियों (Dictatorial tendencies) को बढ़ावा देना, (यदि समूहवाद (Collectivism) का बोलबाला होता है तो साम्यवाद (Communism), यदि समूहवादी विरोधी तत्त्वों का बोलबाला होता है तो Fascism का प्रादुर्भाव होता है) इन बातों का कनाडा के जीवन की अपेक्षा अमेरिका के जीवन में प्रभाव है।

अमेरिका एवं योरुप के पूँजीवाद का अन्तर बहुत सीमा तक आर्थिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारधारा से भी उत्पन्न होता है। योरुप में, आर्थिक स्वतन्त्रता में कानून (Legislation) का अभाव रहा है; हस्तक्षेप न करने की रीति (Laissez faire) अपने सही अर्थ में प्रचलित रही है तथा उसने जगत व्यापी सिद्धान्त बनने की विशेषतायें प्राप्त करली हैं। हायक्स (Hayek) के शब्दों में[1] "स्वतन्त्र विचारधारा के लिए किसी ने भी इतनी हानि नहीं पहुँचाई है जितनी कि कुछ स्वतन्त्र विचारकों के अशिष्ट सिद्धान्तों ने। इसके द्वारा सबसे अधिक हानि हस्तक्षेप न करने वाले सिद्धान्त को पहुँची। बीसवीं सदी में समूहवादी तथा संघवादियों (Collectivist and Corporatist) ने सरकारी कानूनों (Governmental legislation) के साथ पूँजीवाद के 'गुण' को स्वीकार किया, अथवा आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने के सिद्धान्त को माना।"

अमेरिका की आर्थिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का निर्धारण पुस्तकों की अपेक्षा अनुभव के आधार पर अधिक सही रूप में किया जा सकता है, क्योंकि उसके बारे में जो कुछ भी कहा गया अथवा लिखा गया है, वहाँ उससे अधिक कार्य हुआ है। यह साधारण बात है।

आर्थिक स्वतन्त्रता राजनैतिक स्वतन्त्रता से भिन्न नहीं है, यह कानूनों का परिणाम है जिनका कि लक्ष्य आर्थिक स्वतन्त्रता को स्थापित करना, उसे बनाये

1. "Nothing has done so much harm to the liberal cause as the wooden insistence of some liberals on certain rough rules of thumb, above all, on the Principles of Laissez faire." Hayek.

रखना, अथवा शक्तिशाली बनाना है।"[1] योरुप की आर्थिक स्वतन्त्रता म इच्छा (Will) का अभाव रहता है, जबकि अमेरिका की आर्थिक स्वतन्त्रता इच्छा को कार्यान्वित करती है।

३—प्रणाली[2]
(The System)

प्राकृतिक साधन ही पर्याप्त नहीं हैं (Natural resources only are not enough)—यह सामान्य मत है—(केवल विदेशियो मे ही नही) कि अमेरिका की वर्तमान आर्थिक प्रणाली की सम्पन्नता दूसरे देशो की प्रणालियो से पूर्णतया नही तो मुख्यतया वहाँ की जनसख्या की तुलना मे प्राकृतिक साधनो का बाहुल्य होने के कारण है। विशेषकर सयुक्त राज्य के विषय मे यह कहा जा सकता है कि अमेरिका की मम्पन्नता केवल मिट्टी तथा मिट्टियो के प्रकार तथा मनुष्यो के परिणाम स्वरूप नही है, परन्तु मुख्यतया राष्ट्रीय जागृति की आकाक्षाओ (aspirations) तथा उसके महत्व की गहरी जडो के कारण है, एव उस ढंग के कारण है जिस पर अमेरिकावासियों न अपन आर्थिक प्रयत्नो का सगठन किया है।

स्वतन्त्र साहस (Free enterprise)—अमेरिका के स्वतन्त्र साहस की मुख्य विशेषताय, जो पिछले ७० वर्षो मे विकसित हुई हैं, निम्नलिखित है —

(१) उत्पत्ति के साधनो क स्वामी कई मिलियन व्यक्ति कृषि न्तर पूँजी (Non-agricultural Capital) के स्वामी, मिलियन-मिलियन भूमिधर कृषक तथा शारीरिक श्रम एव मानसिक कुशलता रखने वाले जैसे ठीक समझ अपनी सम्पत्ति का प्रयोग कर सकते है। इसके लिये उन्ह कानून के द्वारा जो सीमा निर्धारित की है उसके अन्तगत व्यापक क्षेत्र प्राप्त है।

(२) स्पर्धा ही आर्थिक क्रिया का सिद्धान्त है। इसका यह तात्पय नही है कि हर स्थान पर हर समय स्पर्धा होती है। स्पर्धा सीमित है। 'अर्थ व्यवस्था' के विस्तृत क्षत्र है जो स्थिर हैं लेकिन यदि सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली को लिया जाय तो प्रणाली मे स्वय को गतिशील बनाने के लिए तथा मौलिक कार्य करन के लिए पर्याप्त स्पर्धा है।

(३) काग्रस का लक्ष्य, आर्थिक एव अनार्थिक बहुत से वर्गों की इच्छा को रखत हुए, आर्थिक कानूनो का निर्धारण करते हुए स्वतन्त्र साहस को बनाये रखना है। तथा जैसा कि अन्य आर्थिक प्रणालियो म व्याप्त है, पूँजीवाद भी उन प्रवृत्तियो को रोकता है जिनका कि विकास आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए घातक है। मनुष्यकृत नियम अगणित है। वे स्वतन्त्र रहने की इच्छा के प्रगट रूप हैं।

---

1 "Economic freedom is not different from political freedom, it is the outcome of laws the aim of which is to establish, maintain or strengthen Economic freedom"

2 Ibid, Ch III, pp 16—44

(४) योरप के किसी भी बडे राष्ट्र मे बहुमत का पूँजीवाद के पक्ष मे होना सन्देहजनक है। कई देशों मे कई बार पूँजीवाद को स्वीकार तो कर लिया जाता है लेकिन उसे पसन्द नही किया जाता। अमेरिका वाले दूसरी तरह सोचते हैं। हर वर्ग, कृषक, श्रमिक, व्यापारी तथा उपभोक्तागण के पास आलोचनार्थ कुछ होता है किन्तु यह कहने वाले बहुत थोडे हैं कि "स्वतन्त्र साहस बुरा है, हमे कोई दूसरी प्रणाली ग्रहण करनी चाहिए।"

लगभग सभी अमरिकी अपनी प्रणाली को जिससे उन्हे निम्नलिखित चार लाभ प्राप्त हैं, छोडने की बात पर कांपते हैं :

(१) यह सभी को रहन-सहन का उच्च स्तर प्रदान करती है। (२) यह कुशल है। (३) यह व्यक्ति को तथा उसके परिवार को अपनी इच्छानुसार जीवन यापन करने की क्षमता प्रदान करती है। (४) यह अनवरत सामाजिक एव सास्कृतिक प्रगति के पक्ष मे है।

सम्पत्ति (Property)—समाजवादी विद्वान आर्थिक अथवा नैतिकता के आधार पर, सम्पत्ति पर निजी अधिकार रखने की प्रणाली की जो कटु आलोचना करते है उसका आजकल सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे बिल्कुल भी प्रभाव नही है।

अमेरिका के प्रत्येक नागरिक का यह विश्वास है कि सम्पत्ति अच्छी वस्तु है। यह महत्त्वपूर्ण है क्योकि यह स्वतन्त्रता तथा आर्थिक सुरक्षा दोनो ही प्रदान करती है। सम्पत्ति हर जगह सम्मान प्रदान करती है, जहाँ तक हमे ज्ञात है सोवियत रूस मे भी ऐसा ही है परन्तु सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे यह विशेष सम्मान प्रदान करती है यदि यह व्यक्ति के निजी प्रयत्नो तथा श्रम का परिणाम हो। सन् १६५० ई० के निरीक्षण के अनुसार लगभग ५० मिलियन पारिवारिक इकाइयो मे से ८ प्रतिशत ही ऐसी थी जिन पर 'वास्तविक सम्पत्ति' औद्योगिक सामिग्री (Industrial stock) अथवा अन्य रूप मे नही थी। 'सयुक्त राज्य मे जनता का पूँजीवाद' (Peoples' Capitalism in U. S. A.) नामक पुस्तक जो फरवरी १६५६ मे प्रकाशित हुई थी, उसके हिसाब से ७० मिलियन अमरीकी बचत का हिसाब रखते है, ११५ मिलियन व्यक्तियो ने बीमा करा रक्खा है, ७ मिलियन के पास काफी 'बचत का भण्डार' है। सम्पत्ति-हीन परिवारो की प्रतिशत कई दशाब्दियो (Decades) से धीरे-धीरे घटती जा रही है।

सभी के लिए पूँजीवाद (Capitalism for all)—यह सत्य है कि बहुत से मामलो मे, विशेषकर एक दर्जन बडे उद्योगो मे, उत्पादन के साधनो का प्रबन्ध का अत्यधिक केन्द्रीयकरण है। फिर उन्ही साधनो का स्वामित्व बहुत फैला हुआ है, यद्यपि सस्थाओ मे भिन्नता है, फिर भी सभवतया ७ मिलियन से भी अधिक व्यक्ति आधे मिलियन से अधिक सघो पर स्वामित्व किये हुए हैं। आजकल सयुक्त राज्य अमेरीका मे ३½ मिलियन असगठित फर्म मे असम्बन्ध व्यापार होता है जो एक अथवा अधिक व्यक्तियों से सम्बन्धित है। ४ मिलियन किसान (सभी किसानो का ६८

प्रतिशत) अपनी जोतने वाली भूमि के स्वामी है। आधे मिलियन से अधिक स्वतन्त्र कार्य करने वाले व्यक्ति है, जिनके उत्पादन के साधन केवल दक्षता तथा प्रशिक्षण है।

पूँजी तथा श्रम का विस्तृत मेल (Integration of Capital and Labour)

Lincoln न एक बार लिखा था, "जनता की एक बहुत बडी सख्या अपने निजी श्रम को पूँजी से सयुक्त करती है।"[1] यह आज भी स य है क्योकि अधिकाश अमरीकी पूँजी के स्वामी भी हैं तथा साथ ही कार्य भी करते हैं, सयुक्त राज्य अमेरिका मे पश्चिम यारुप की भाति पू जीवादी वर्ग तथा श्रमिक वर्ग का काई स्पष्ट विभाजन नही है। कमचारी पूँजी के स्वामी है तथा पूँजीपति स्वय काय करते हैं। स्वामित्व की विस्तृत व्यापकता ने फर्म से असम्बद्ध कार्यो को पूरी तौर से प्रभावित किया है। बहुत सीमा तक, स्वामित्व तथा प्रबन्ध दोनो एक दूसरे से अलग अलग हो गये है। यह कहने म अतिशयोक्ति न होगी कि अमरीका के उद्योगो म प्रबन्ध ने एक ऐसा महत्त्वपूण स्थान प्राप्त कर लिया है, जो अन्यत्र अज्ञात हैं, जहाँ कि सम्पत्ति का निजी अधिकार मान्य है। अमेरिका की आर्थिक प्रणाली म उपभोक्ता की स्थिति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

'फॉरच्यून' (Fortune) के सम्पादक ने लिखा था "Main Street का प्रभाव Wall Street के नियन्त्रण की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होगया है।"[2] उसने आगे लिखा था, "प्रबन्ध माहूमी के कार्यो को इस ढग से सचालित करे जिसस माहूमियो, उपभोक्ताओ एव जनता म बहुत ही साम्य तथा कार्य करने का सन्तुलन बना रहे।"[3]

स्पर्धा (Competition) —

स्पर्धा, अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था (Economy) का सबसे अधिक आलोचित एव बहुचर्चित विषय है। अमेरिका वाले इस बात पर सहमत प्रतीत हाते हैं कि स्पर्धा महत्त्वपूर्ण है। फिर भी इसका बहुत बडा भाग अमेरिका की अथ व्यवस्था मे नही है। और यह अब तो अतीत की अपेक्षा कम है। बहुत स तो इसके अन्त का आभास पाकर निराश होरहे है। इसका भविष्य इङ्गलैण्ड तथा जमनी के पूँजीवाद

---

1 'A considerabe number of persons mingle their own labour with Capital," Lincoln

2 "The influence of Main Street has become vastly more important than the control of Wall Street'

3 "Management must conduct the affairs of the enterprise in such a way as to maintain on equitable and working balance, among stock holders, customers and the public at large"

—*Editor of Fortune*

से भिन्न नही है जो शताब्दी के समाप्त होते ही एकाधिकार की प्रणाली (monopolistic) का होगया था। इसलिए वे वणिकवाद के विरोधी तत्वो (Neo-mercantilism) एव सघवाद (Corporation) को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यदि कोई अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था की पूरक इकाइयो को अकेले सोचता है, तो वह अच्छी तरह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि वहाँ स्पर्धा बहुत कम है अथवा है ही नही।

साधारण तथ्य यह है कि यह प्रणाली अपनी इकाइयो का केवल जोड ही नही है, परन्तु इकाइयो और उनके सम्बन्ध का जोड है। स्पर्धा किसी भी दी हुई इकाई मे परम्परानुसार (Inherent) नही प्राप्त की जा सकती है किन्तु सम्बन्ध की प्रणाली से अनुभव की जाती है।

Prof. Galbraith ने अपनी पुस्तक 'American Capitalism, The Concept of Countervailing Power' के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है, 'अमेरिका की अर्थ व्यवस्था का वर्तमान सगठन तथा प्रबन्ध नियमो के विरुद्ध है। तथा न यह कार्य करता है"[1] सम्पूर्ण प्रणाली मे स्पर्धा को बिना मुख्य अग समझे, व्यापार की सर्वमान्यता बहुत ही कम हो जायेगी।

नियोजन (Planning) —

बहुत प्रकार के नियोजकों, जैसे समूहवाद (Collectivism), सघवाद (Corporatism), वणिकवाद (Mercantilism) इत्यादि के उपासको का कहना है कि अमेरिका की अर्थ व्यवस्था की बुराइयाँ नियोजन के अभाव के कारण है। यही कमी सयुक्त राज्य का निर्माण करती है तथा अत्यधिक आर्थिक अस्थिरता ससार की स्थिरता के लिए खतरा बन जाता है। इस आलोचना के उत्तर म दो बात कही जा सकती है। यदि नियोजन का राष्ट्रीय स्तर पर यह अर्थ समझ कि यह कानून के माध्यम से एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढने के लिए एक निश्चित अर्थ व्यवस्था की दिशा प्रशस्त करता है तो स्पष्ट है कि अमेरिका की अर्थ व्यवस्था तथा अन्य आर्थिक प्रणालियो का अन्तर नियोजन के अभाव के कारण नही है। बल्कि विभिन्न प्रकार के नियोजनो को ग्रहण करने के कारण है।

आर्थिक स्वतन्त्रता का नियोजन उतनी ही बुद्धिमत्ता, विचारशीलता एव दूरदर्शिता चाहता है जितना कि वणिकवादियों की हितकारी अर्थ व्यवस्था का नियोजन समूहवाद अथवा सघवाद चाहता है। आर्थिक स्वतन्त्रता के नियोजन का अर्थ है आर्थिक प्रणाली को एक गति देना जो प्रत्येक इकाई को अपना स्थान निर्धारण करने मे सहायता करता है। आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic freedom) के नियो-

1 "The present organisation and management of the American Economy are in defiance of the Rules nevertheless in works"

—Prof Galbraith.

जन का अर्थ है कि प्रत्येक इकाई का स्थान सरकार निर्धारित करे। टरगॉट (Turgot) तथा एडमस्मिथ (Adam Smith) की भाँति अमेरिका निवासी भी इस विचार से सहमत हैं कि, 'सर्वोत्तम परिणाम उस प्रणाली द्वारा प्राप्त किए जाते हैं जो प्रत्येक इकाई को अपना स्थान निर्धारित करने में सहायता करती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कर्मचारियों के साथ-साथ भू स्वामियों एवं पूँजीपतियों से भी अपने प्रयत्न के बदले अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की आशा की जाती है।" विद्वानों एवं अन्य राष्ट्रों में से किसी ने भी टरगॉट तथा स्मिथ एवं अमरीकियों को गलत ठहराने के लिए पूर्ण सन्तोषजनक प्रमाण उपस्थित नहीं किए हैं।

संयुक्त राज्य में भी, जहाँ आर्थिक क्रियायें होती हैं, वहाँ नियोजन पर पूर्ण बल दिया जाता है। प्रबन्धक वर्ग का मुख्य कार्य नियोजन को अगले दिन, अगले सप्ताह, अगले माह अथवा आगामी पाँच वर्षों में कार्यान्वित करना है। आगामी वर्ष के नियोजन के लिए प्रति वर्ष व्यापारियों द्वारा काफी समय, शक्ति एवं विचार किया जाता है। ध्यान पूर्वक योजनाओं की रूपरेखा तैयार की जाती है। सम्भवतया अन्य प्रणाली की अपेक्षा सोवियत रूस को भी मिलाकर-अधिक ध्यान पूर्वक तैयार की जाती है। अमरीकियों का विश्वास है कि समग्र राज्य नियोजन (State Planning) आर्थिक प्रारम्भ को अपंगु बनाती है, लेकिन सही नियोजन प्रत्येक दूकान अथवा कारखाने का मुख्य लक्ष्य है। अमरीका की आर्थिक प्रणाली सीमित संघात्मक (Limited Federal Planning) के आधार पर कार्य करती है जो मुख्यतया वित्तीय ढाँचे (Financial Trade work) को प्रभावित करता है तथा स्वतन्त्र नागरिकों की उन असंख्य योजनाओं को प्रभावित करता है जो उनके द्वारा निर्मित हुई हैं तथा कार्यान्वित की गई हैं। सावधानी से योजन निर्माण करने के लिए अधिक से अधिक प्रशिक्षण आवश्यक होता है। अतः आज व्यापार जगत में शिक्षा का महत्त्व बढ़ गया है। प्रबन्धक के लिए विश्व विद्यालय अथवा महा विद्यालय का प्रमाण-पत्र (Degree) का होना अधिक से अधिक आवश्यक होगया है। जो उद्योग (Firm) वहन कर सकते हैं वे प्रशिक्षित अर्थ शास्त्री, आकड़ों के विशेषज्ञ (Statisticians) तथा अन्य सामाजिक विज्ञान विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग करते हैं जिनको कि संयुक्त राज्य अमेरिका में निजी उद्योग, सरकारी सेवाओं से कहीं अधिक सुविधायें प्रदान करते हैं।

श्रमिक संघ (Labour Unions)

व्यापारियों की एक प्रभावशाली संगठन के अस्तित्व ने जो उस स्तर तक पहुँच गया है जहाँ वे स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था की प्रकृति को जानते हैं—तथा अनार्थिक तत्त्वों (Non-Economic elements) से इसके समर्थन ने, अमरीकी स्वधा (Free enterprise) की वृद्धि में योग दिया है। अमरिका के श्रमिक का दृष्टिकोण योरप के श्रमिक के दृष्टिकोण से उतना ही भिन्न है जितना सम्भवतः Atlantic महासागर के दोनों पार के व्यापार के दृष्टिकोण में अन्तर है। संयुक्त राज्य में संगठित श्रम का

योग उतना ही मौलिक है जितना कि योरुप मे बहुत समय तक रह चुका है। इस समय देश मे लगभग १२ मिलियन सगठित कर्मचारी हैं। श्रमिक सघ शक्ति तथा प्रभाव (Power and influence) मे N. A. M. के औद्योगिकों (Industrialists) बैंक वालो (Bankers) तथा किसानो के व्यापार सघ (Chambers) से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। अध्यक्ष मीने (Meany) ने तीन बातो पर बल दिया था जिन्हें केवल कुछ ही योरुपियन नेता (यदि कोई स्वीकार कर सकेगा तो) स्वीकार करेंगे। (क) श्रमिक तथा प्रबन्धक का हित एक दूसरे पर निर्भर है। (ख) स्वतन्त्र श्रम, स्वतन्त्र साहस के रूप मे केवल स्वतन्त्र सरकार म ही विद्यमान रह सकता है। (ग) अमरीकी श्रम, सरकारी नियन्त्रण के विस्तार का समर्थन नही करता है, बल्कि केवल सामूहिक लेन देन (bargaining) द्वारा ही अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये प्रयास करता है।

राज्य का कार्य (Role of The State)

सयुक्त राज्य अमरीका मे व्यापार एव श्रम योरुपीय व्यापार एव श्रम से भिन्न प्रकार के है। ऐसा ही सरकार के कर्तव्य के बारे मे है, ऐसा ही आर्थिक प्रणाली के क्षेत्र मे है। आर्थिक स्वतन्त्रता, इच्छा का कार्य था इसके अस्तित्व की पुनर्स्थापना की ही आवश्यकता नही थी, बल्कि व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यो—जो इस प्रणाली की कुंजी है—के माध्यम से पुन व्याख्या की आवश्यकता थी। सर्व प्रथम, सरकार का कार्य वाह्य आर्थिक दबाव के विरुद्ध अमरीका के बाजार की रक्षा करनी थी। दूसरे, सरकार का कार्य आन्तरिक एकाधिकारो के विरुद्ध सघर्ष से सम्बन्धित था। सयुक्त राज्य म एकाधिकारो के विरुद्ध लडने का कार्य, व्यवस्थापिका के विरोधी तत्वो, जनता के उपभोगो के नियमो एव बैंको के माध्यम् से, Wagner Act के उपायो के माध्यम से समान शक्ति के विकास के लिए सुविधा प्रदान करके तथा अनुपातिक आय एव मृत्युकर द्वारा जो कुछ व्यक्तियो के हाथ मे अत्यधिक सम्पत्ति एकत्र होने को रोकते है, प्रोफेसर गैलब्रथ के अनुसार, समानता प्राप्त हो सकती है।

श्रमिक एव प्रबन्धक, उत्पादक एव उपभोक्ता विनियोगिता एव उधार लेने वाले, कृषि तथा उद्योग ये सभी आर्थिक प्रणाली के तत्व है। इनमे से किसी एक के साथ अनुचित पक्षपात करने से अर्थ व्यवस्था मे असन्तुलन उत्पन्न होता है। अत आर्थिक प्रणाली को गतिशील रखने के लिए अधिकारात्मक उपायो का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। अमरीकी कांग्रेस व्यवस्थापन द्वारा विभिन्न तत्वो म सतुलन के सिद्धान्त को अपनाती है। इस कार्य मे, अमेरिका की कांग्रेस, सम्भवतय योरुपीय अर्थ-व्यवस्था (पूंजीवादी क्षत्रो मे) किसी भी योरुपीय ससद स अधिक सफल हुई है। यदि गैलब्रथ की 'दुबल लेन-देन की स्थिति को आश्रय देना' उदार आर्थिक नीति की कसौटी है तो अमरीकी सरकार, सदैव समाजवादी तत्वो के घोर विरोधी होने के साथ साथ परम्परावादियो की अपेक्षा अधिक उदार है।

४—क्या सयुक्त राज्य अमेरीका की आर्थिक प्रणाली में 'आमदनी स्तरो में' विशाल अन्तर नही है ?

(Does not the Economic system of the United States Lead to the concentration of wealth at one Pole of Society while Poverty grows at the other Pole ?[1])

(क) इस विवाद के भ्रम की पुष्टि गत तीन दशको मे हुए सयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था के विकास द्वारा सिद्ध होती है।

धनिको का भाग (जनसख्या का सर्वोच्च पाँच प्रतिशत), कुल व्यय करने योग्य आय मे गिरता जा रहा है

प्रति॰व्यक्ति की कुल व्यय करने का (Percentage of total Disposal Income of Individuals) प्रतिशत

१९२८	२६ १
१९३६	२४ ८
१९४८	१७ ६

(ख) कम आय वाले वर्ग के भाग मे वृद्धि इस प्रकार हुई है —

आय की दृष्टि से गृह प्रबन्ध का क्रम (Households Arrayed by income)	राष्ट्रीय आय का प्रतिशत वितरण (Percentage Distribution of National income)		औसत आय (Average income) १९४८ डौलस		औसत आय म प्रतिशत वृद्धि (Percentage Increase in Average)
	१९३५-३६	१९४८	१९३५-३६	१९४८	
सबसे निम्न पांचवां (Lowest fifth)	४ ०	४·२	५३४	८९३	६७
द्वितीय पाचवां (Second fifth)	८ ७	१० ५	१,१५९	२,२३२	९३
तृतीय पांचवां (Third fifth)	१३ ६	१६ १	१,८१०	३,४ ०	८८
चतुर्थ पांचवां (Fourth fifth)	२० ५	२२ ३	२,७३४	४,७११	७२

---

1 Questions and Answers about the American Economic System · W S and E S Woytinsky, *'American Economy'*, U. S I S , New Delhi Aug 23, 19๖7

सर्वोच्च पाँचवाँ (Highest fifth)	५३.२	४६.६	९,०८३	६,६११	४०

(ग) हाल ही के वर्षों में द्रव्य आय (Money income) के वितरण में प्रगतिशील आयकर ने अधिक समानता लाने में योग दिया है :

द्रव्य आय की दृष्टि से गृह-प्रबन्ध का क्रम (Households Arrayed by Money Income)	द्रव्य आय का प्रतिशत वितरण (Percentage distribution of Money Income)			
	करों से पूर्व (Before Taxes)		करों के पश्चात् (After Taxes)	
	१९४७	१९५४	१९४७	१९५४
निम्नतम पाँचवाँ (Lowest fifth)	४	४	४	५
द्वितीय पाँचवाँ (Second fifth)	१०	१०	११	१२
तृतीय पाँचवाँ (Third fifth)	१६	१७	१७	१७
चतुर्थ पाँचवाँ (Fourth fifth)	२२	२४	१२	२४
सर्वोच्च पाँचवाँ (Highest fifth)	४८	४४	४६	४२

(घ) सबसे अधिक सम्पन्न तथा अपेक्षाकृत निर्धन भौगोलिक प्रदेशों एवं राज्यों के आय के स्तर में जो अन्तर है उसमें ह्रास हुआ है :

प्रति व्यक्ति आय (Per Capita income)	१९२९	१९५४	१९५४ सन् १९२९ के प्रतिशत रूप में
धनी राज्य (Rich States)			
न्यूयार्क (New York)	$१,१५६	$२,१६३	१८७
कनेक्टीकट (Connecticut)	१,०२६	२,३६१	२३०
डीलेवेर (Delaware)	१,०१७	२,३७२	२३३
कैलीफोर्निया (California)	६६५	२,१६२	२१७
इलीनॉइस (Illinois)	६५७	२,१५५	२६५
निर्धन राज्य (Poor States)			
उत्तरी कैरोलिना (North Carolina)	३३४	१,१६०	३५६
अलाबामा (Alabama)	३२४	१,०६१	३२३
अरकान्सास (Arkansas)	३०५	६७६	३२१
मिसिसिपी (Mississipi)	२८५	८७३	३०६
दक्षिणी कैरोलिना (South Carolina)	२७०	१,०६३	३६०

सन् १९२९ में पाँच धनी राज्यों का अभारित (Unweighed) औसत पाँच निर्धन राज्यों के औसत से ३.४ गुना था। सन् १९५४ में २.२ का अनुपात था। दोनों वर्षों का अन्तर आधा कर दिया गया है।

(ड) श्वेत (White) तथा अश्वेत (Non white) कर्मचारियों की आय के भेद को मिटाने का एक लक्ष्य रहा है :—

	Mediam Annual Earnings		1954 as percentage of 1939
	१६३६	१६५४	
श्वेत पुरुष (Male White)	डौलर ११११	डौलर ३७५४	३३८
श्वेत स्त्रियाँ (Female White)	६७६	२०४६	३०३
अश्वेत पुरुष (Male Non-White)	४६०	२१३१	४६३
अश्वेत स्त्रियाँ (Female Non-White)	२४६	६१४	३७१

सन् १६३६ मे श्वेत पुरुषो का औसत वेतन अश्वेत पुरुषो के औसत वेतन से १४२ प्रतिशत अधिक था। १६५४ मे ७६ प्रतिशत का अन्तर था। स्त्रियो के वेतन मे सन् १६३६ मे १७५ प्रतिशत का अन्तर था तथा सन् १६५४ मे १२४ प्रतिशत का।

सामाजिक कल्याण तथा हितकारी कार्यक्रम के विषय मे स० राज्य अमेरिका मे क्या प्रबन्ध है ?

(What About Social Security and Welfare Programmes in the United States ?)

(क) सयुक्त राज्य सामान्यत. लगभग ३०,००० मिलियन डालर (कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति का लगभग ८ प्रतिशत) सामाजिक कल्याण पर व्यय करता है। सन् १६५४ मे ये व्यय इस प्रकार थे :—

योग	डालरो की सख्या हजार मिलियनो मे (Thousand Millions of Dollars)
सामाजिक बीमा	८·२
जनता की सहायता	२·८
स्वास्थ्य एव औषधि सम्बन्धी सेवाएँ	२ ६
अन्य कल्याण के कार्य	०·७
शिक्षा	६ ६
अनुभवी एव वृद्धो की सहायता (Veterans' aid)	४·१

सघात्मक व्ययो (Federal expenditures) ने कुल का ४० प्रतिशत सामाजिक कल्याण तथा सामाजिक कार्यक्रमो एव लगभग ८० प्रतिशत राज्य एव स्थानीय कार्यक्रमो को प्रदान किया।

(ख) सघात्मक व्ययो मे वृद्धावस्था एव उत्तरजीवी बीमा (Old age and Survivors), राज्य को वित्तीय (Financial) तथा अन्य आवश्यकता वाले कार्यों के लिए, अन्धे एव बच्चो के लिए, रेल के कर्मचारियो की सुरक्षा एव युद्ध से अवकाश प्राप्त वृद्ध लोगो की मदद के लिए सहायता मे स्वीकृति देना, सम्मिलित है।

राज्य मुख्यतया, रोजगार की सुरक्षा, कर्मचारियो का मुआवजा, आवश्यकता वालो को सरकारी सहायता, स्वास्थ्य एव औषधि सम्बन्धी सेवाओ (अवकाश प्राप्त वृद्ध कर्मचारियो के अतिरिक्त) एव शिक्षा के लिए उत्तरदायी है।

(ग) अवकाश के कार्यक्रम (Retirement Programmes), सभी असैनिक वेतनो (Wages and Salaries) के ६४'४ प्रतिशत, बेरोजगारों का बीमा ७६'१ प्रतिशत, कर्मचारियो का मुआवजा ७८'३ प्रतिशत, को सम्मिलित कर लेते है।

(घ) सन् १९५४ मे ५'४ मिलियन व्यक्तियो को अवकाश की सुविधायें (Retirement benefits) प्रदान किया गया था :

वृद्धावस्था मे अवकाश (Old age retirement)	४'६	मिलियन
रेल कर्मचारियो का अवकाश	०'३	,, ,,
सघात्मक राज्य एव स्थानीय अवकाश प्राप्त वृद्धो सहित (Federal, State and local retirement including Veterans) अवकाश की सुविधायें	०'५	,, ,,

इसके अतिरिक्त, उत्तरजीवियो (Survivors) का मासिक लाभ (Benefits) लगभग ३'३ लाख व्यक्तियो को दिया जाता है, जिसमे वृद्ध विधवायें अथवा बीमा वाले मृतक कर्मचारियो के माँ बाप, उनके १८ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे तथा किसी भी उम्र के ऐसे बच्चो की देखभाल करने वाली विधवाये है, असमर्थता की सुविधायें (Disability benefits) लगभग ३'१ मिलियन व्यक्तियो को दिया जाता है, जिसमे युद्ध के अवकाश प्राप्त व्यक्ति सम्मिलित हैं। बेरोजगार का मुआवजा प्राप्त करने वालो की संख्या का औसत प्रति वर्ष १'५ मिलियन के लगभग है।

लगभग ५.५ मिलियन व्यक्तियो ने (राज्य के सघात्मक कार्यक्रम के अतर्गत) दिसम्बर १९५४ मे तथा दिसम्बर १९५५ मे सहकारी सहायता प्राप्त की।

सबको मिलाकर, सघात्मक एव राज्य के सभी कार्यक्रमों के अन्तर्गत (Under all Federal and State Programmes) सन् १९५४ ई० मे १७ तथा १८ मिलियन व्यक्तियों को सुविधायें (Benefits) दी गई।

(ङ) संघात्मक वृद्धावस्था के कार्यक्रम (Federal old age Programmes) के अनुसार मनुष्य के लिए अवकाश (Retirement) प्राप्त करने की अवस्था ५५ वर्ष एव स्त्रियो के लिय ५२ से ५५ वर्ष है। ७२ वर्ष की अवस्था मे अथवा उसके

पश्चात, कार्यक्रम के अन्तर्गत बीमा किए हुए पुरुष सुविधाओं (Benefits) के अधिकारी हो जाते हैं चाहे ये अवकाश ग्रहण कर चुके हों अथवा नहीं।

अकुशल कर्मचारी की मासिक आय ८१.५० डालर है। उद्योग के एक औसत कर्मचारी की प्रति सप्ताह आय ८० डॉलर है। कुशल कर्मचारी साधारण रूप से प्रति सप्ताह १०७ ५० डालर प्राप्त करता है। एक प्रशिक्षित कर्मचारी की पत्नी इस सुविधा का आधा भाग प्राप्त करती है जबकि विधवा इसका तीन चौथाई भाग।

(च) राज्य मे बेरोजगार की परिस्थितियों के बीमा का विधान हर राज्य मे भिन्न-भिन्न प्रकार का है। औद्योगिक राज्यों में साप्ताहिक सुविधाएँ साधारण साप्ताहिक आय का ४५-५० प्रतिशत के लगभग है, जो कि लगभग ४५ या ५० डालर है। अधिकतर राज्यों मे सुविधाओं का समय २० से २५ सप्ताह रक्खा गया है।

बहुत सी निजी व्यापारिक संस्थाओं ने भी अपने कर्मचारियों के लिए अवकाश के पश्चात् पेंशन देने का सिद्धान्त बना लिया है। ये संघात्मक वृद्धावस्था कार्यक्रम (Federal old age Programme) द्वारा प्रदत्त वेतन के अतिरिक्त कुछ सुविधायें भी प्रदान करते हैं। सन् १९५६ के अन्त मे लगभग २३ हजार अमरीकी फर्मों ने पेंशन की योजनायें बनाईं जिनसे १४ लाख व्यक्ति लाभान्वित हुए। इन योजनाओं के अन्तर्गत, सन् १९५५ मे लगभग ५२५ मिलियन डालर सुविधाओं, ९२००० वार्षिक वेतन पाने वालो को भुगतान किया गया जिनमे से अधिकतर राष्ट्रीय-सामाजिक-बीमा प्रणाली के अन्तर्गत अवकाश प्राप्त करने की पेंशन भी प्राप्त कर रहे थे। व्यक्तिगत पेंशनों की योजनाओं को विशेष व्यवस्थापन द्वारा, विशेष स्तर की पूर्ति करने वाले उद्योगों की पूर्ति के लिए कर-ऋण स्वीकृत करके प्रोत्साहित किया।

क्या संयुक्त राज्य अमरीका की 'सम्पन्नता' बनावटी नहीं है ?
(Is not 'Prosperity' in the U S. due to an artificial boom ?)

(क) इन हाल ही के वर्षों मे संयुक्त अमरीका मे कोई विशेष व्यापारिक तेजी नहीं हुई है।

विस्तार (Boom) की विशेषता अर्थव्यवस्था का तीव्र तथा असमान विस्तार होना, एव लम्बी श्रेणी वाली स्थितियों का अतिक्रमण करते हुए विकासों की एक सूची है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे आर्थिक-विकास ने द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सामान्य गति से धीरे-धीरे विकास वाली विशेषता को ग्रहण कर लिया है।

सन् १९५५ की कीमतों के आधार पर व्यक्तिगत आय का विवरण
(Disposable Personal Income at 1955 Prices)

वर्ष	डोलर हजार मिलियनो मे	प्रतिशत वृद्धि	प्रति व्यक्ति आय डालरो मे	प्रतिशत वृद्धि
१९४७	२०२·६		१,४०६	...
१९४८	२०८·९	३·१	१,४२४	१·३
१९४९	२११·७	१·४	१,४१८	—०·४
१९५०	२२९·५	८·०	१,५१३	७·०
१९५१	२३३·३	१·८	१,५१२	—०·१
१९५२	२३८·८	२·४	१,५२२	०·७
१९५३	२५०·७	५·०	१,५७०	३·१
१९५४	२५४·८	१·३	१,५६४	—०·४
१९५५	२६९·४	५·७	१,६३०	४·१

जनसख्या की वृद्धि को ध्यान मे रखते हुए, कहा जा सकता है कि आर्थिक प्रणाली के विस्तार के अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय लगभग २ प्रतिशत वार्षिक औसत की दर से बढ रही है। राष्ट्र मे तीव्र विकास की भावना सन् १९४७ मे यानी इस समय के प्रारम्भ मे, खुशहाली के बहुत ऊँचे स्तर पर लाभो (gains) को एकत्र करके, बनाए रखी है।

(ख) सन् १९५१ की द्रुत वृद्धि के अतिरिक्त (कोरिया की लडाई) कीमतो मे इस समय तक बडे सुन्दर ढग से स्थायित्व (stable) बना रहा है।

वार्षिक औसत	औद्योगिक उत्पादन का सूचनाक	थोक कीमतों का 'कीमत सूचनाक'	जीवन-निर्वाह-व्यय (cost of living)
१९४७	१००	९६·४	९५·८
१९४८	१०४	१०४·४	१०२·८
१९४९	९७	९९·२	१०१·८
१९५०	११२	१०३·१	१०२·८
१९५१	१२०	११४·८	१११·०
१९५२	१२४	१११·६	११३·५
१९५३	१३४	११०·१	११४·४
१९५४	१२५	११०·३	११४·८
१९५५	१३९	११०·७	११४·५
१९५६	१४३	११४·३	११६·२
१९५७	१४६ (फरवरी)	११७·४ (जून)	१२०·२ (जून)

(ग) औद्योगिक उत्पादन (Industrial Production)

अमेरिका औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र मे सामान्य गति से, छोटे-छोटे सुधारो

एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तनों के साथ अग्रसर हो रहा है । ऊपर की तालिका के द्वितीय column से ज्ञात होता है कि औद्योगिक उत्पादन में निरन्तर उन्नति हो रही है । सन् १९४७-४८ से ९ वर्ष की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में ४३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है । चूंकि जनसंख्या में उसी समय में १७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है इसलिए यह अनुमान लगाया गया है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में २२ प्रतिशत की वृद्धि हुई है । इस प्रकार, वार्षिक लाभ का औसत २ प्रतिशत से तनिक अधिक ठहराया गया है ।

लाभ को विभिन्न उद्योगों में और आय के रूपों में कर दिया गया है (कर्मचारियों का मुआवजा, व्यवसायों, लघु व्यापार, संघों) । केवल कृषि ही पिछड़ी हुई है । किसानों की आय में सन् १९५१ से ह्रास हो रहा है तथा यह परिस्थिति सन् १९५६ ई० तक विपरीत नहीं हुई थी । यह सिद्धान्त कुछ-कुछ इस तथ्य के कारण कम हो गया था कि कृषि में ह्रास उसके पश्चात् आरम्भ हुआ था जब कि वह आर्थिक प्रणाली में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थी ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि १९४० से ५६ तक का आर्थिक विस्तार प्रदर्शन की कार्य प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है बल्कि वह सुसन्तुलित विकास को सिद्ध करता है ।

क्या संयुक्त राज्य में सम्पन्नता विदेशों के शोषण पर निर्भर नहीं है ?

(Does Not Prosperity in the United States depend on the exploitation of Foreign Countries ?)

संयुक्त राज्य अमरीका अन्य देशों से वस्तुएँ विनिमय (exchange) करने में बहुत ही दिलचस्पी लेता है, क्योंकि यह मुख्यतया बहुत से आवश्यक खाद्यान्नों तथा कच्चे माल जैसे कॉफी, कोको, चीनी, दक्षिणी गोलार्द्ध के फल, लकड़ी, लुग्दी (Pulp) ऊन, कच्चा लोहा (ore), बिना लोहे की धातुएँ (Non-ferrous metals), कुछ रसायनिक पदार्थ (chemicals) को उत्पन्न नहीं करता है । लकड़ी की सीमित पूर्ति के कारण संयुक्तराज्य समाचार छपने वाले कागज के लिए आयात पर निर्भर रहता है । यह सभी प्रकार धागे वाली वस्तुओं, जो ऊँची किस्म की होती हैं, का आयात इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड तथा अन्य औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों से करता है । जैसे जैसे समय बीतता जा रहा है उसके आयात की परतन्त्रता सम्भवतः बढ़ती जा रही है । नए कच्चे माल के स्रोतों की खोज, संयुक्त राज्य अमेरिका को विदेशों में विनियोग करने के लिए निर्देशित करती है ।

विदेशी बाजार, घरेलू उपयोग के उत्पादन (Domestic Products) के निर्यात एवं पूँजी के विनियोग (capital investment) के लिए मार्ग प्रस्तुत करते हैं जो अमरीका के लिए गौण है (कृषि के आधिक्य तथा कुछ अन्य वस्तुओं को छोड़ कर ।)

सयुक्त राज्य अमेरिका के निर्यात (exports) का मूल्य कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति (Gross National Product) का ४ प्रतिशत है, जब कि ६६ प्रतिशत उत्पन्न वस्तुओ तथा सेवाओ का उपभोग घर ही कर लिया जाता है । यह निर्यात अनुपात ससार मे सबसे कम है । आधुनिकतम विकसित देश इङ्गलैण्ड, फ्रास, बेल्जियम, नौर्वे, डेनमार्क, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रिया, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा अन्य, अपने उत्पन्न किए हुए माल को २० से लेकर ३० प्रतिशत तक निर्यात करते है । भारत तथा यूथोपिया भी, सयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा अधिक निर्यात करते है ।

सयुक्त राज्य अमेरिका की कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति (G. N. P) की तुलना मे निर्यात एव आयात (हजार मिलियन डौलरो म) .

(United States exports and imports as compared with G. N. P.
(Thousand Millions of Dollars)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति (G.N.P.)
१६२६	४ ४	५'२-	१०४'४
१६३५	२'०	२'३	७२ ५
१६४०	२ ६	४'०	१००'६
१६४५	४'२	६ ८	२१३'६
१६५०	८'६	१० ३	२८५'१
१६५१	११'०	१५'०	३२८'२
१६५२	१०'७	१५'२	३४५ ४
१६५३	१० ६	१५'८	३६३'०
१६५४	१०'२	१५'१	३६१'२
१६५५	११'४	१५'५	३६१'७
१६५६	१२'५	१८ ८	४१४ ७

सयुक्त राज्य अमेरिका आयात की अपेक्षा निर्यात मे कम दिलचस्पी लेता है। क्योकि यह विदेशी बाजारो को जीतने की कोई इच्छा नही रखता है। इसका (प्रथम) मुख्य कारण यह है कि उसका स्वय का घरेलू बाजार विस्तृत है, तथा (द्वितीय) उसके आयात किये हुए माल को उठा लेने की सामर्थ सीमित है ।

ऋण लेने वाले एव ऋण देने वाले के रूप मे सयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति, जैसी कि सयुक्त राज्य की पूँजी विदेशो मे लगी हुई (Invested) एव विदेशो की पूँजी सयुक्त राज्य मे लगी हुई है, जो उसके अन्तर से निर्धारित हुई है—बदल रही है । द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक, सयुक्त राज्य अमेरिका पर विदेशो का ऋण उसके विदेशो मे लगी हुई सम्पत्ति से अधिक था । इन वर्षो मे, सयुक्त राज्य का अन्य देशो को ऋण देने के परिणाम स्वरूप, विदेशो को ऋण चुकाने के उत्तरदायित्व बढ गये हैं ।

सयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग की स्थिति डॉलर हजार मिलियन में

	१९४०	१९४५	१९५०	१९५४ (Prel.)
सयुक्त राज्य का विदेशों में विनियोग				
योग	१२.३	१६.८	३२ ८	४२.४
निजी क्षेत्र	१२.२	१४.७	१९.०	२६.६
सरकारी	०.१	२.१	१३.८	१५.६
सं० राज्य मे विदेशी सम्पत्ति तथा विनियोग				
योग	१३.५	१७.६	१९.५	२६.८
निजी क्षेत्र	१3.२	१३.३	१४.३	१९.५
सरकारी	०.३	४.३	५.२	७.३
कुल मिला कर ऋणी (Debtor) (—) अथवा ऋणदाता (Creditor) (+) की स्थिति :	—१.२	—०.८	+१३·४	+१५·५

महायुद्ध के पश्चात सयुक्त राज्य ने विदेशो को व्यापारिक विनियोग की अपेक्षा विदेशी सहायता के रूप मे ही ऋण दिया है। जब ये ऋण विदेशो मे लगी हुई सम्पत्ति अथवा भुगतान करने वाली सम्पति (Assets) एव हिसाब के उत्तरदायित्व (Liability accounts) से अलग कर लिये जाते हैं तो प्रतीत होता है कि विदेशो को भुगतान करने वाली सम्पति (Assets) उसके उत्तरदायित्वो (Liabilities) के साथ सयुक्त राज्य अमेरिका मे (Balance) मे रह जाती है।

सयुक्त राज्य मे विदेशो के विनियोगो की महत्वहीन आय की तुलना मे राष्ट्रीय आय के आँकडे निम्नलिखित तालिका मे प्रदर्शित किये जाते हैं :

डौलर हजार मिलयन मे

	१९४०	१९४५	१९५०	१९५५
विदेशो के विनियोग से सयुक्त राज्य की आय (+)	+०.६	+०.६	+१.६	+२.५
सयुक्त राज्य का विदेशी विनियोगों पर भुगतान करना (—)	—०.२	—०.२	—०.४	—०.५
कुल लाभ (+) अथवा हानि (—)	+०.४	+०.४	+१.२	+२ ०
अन्ततः सयुक्त राज्य मे होने वाले हस्तान्तरण की तुलना	+०.२	—०.६	—.५	—०.५
धन की सरकारी स्वीकृतिया, सैनिक एव आर्थिक सहायता इत्यादि	—०.१	—१.०	—४.१	—४.१

समग्रत:, सयुक्त राज्य की विदेशो को सहायता एव अमरीकियो का विदेशो मे रहने वाले सम्बन्धियो को दिया हुआ ऋण उसके विदेशी विनियोग की आय से अधिक होता है।

५—परिणाम
(The Results)[1]

(क) पूँजीवाद के अपने निजी बहुत से अवगुण होते हुए भी, अमेरिका मे बहुत अच्छे परिणाम निकले है। (ख) अतीत तथा वर्तमान के अनुभवो मे कोई ऐसा प्रमाण नही है कि किसी भिन्न प्रकार की प्रणाली स इससे अधिक अच्छे परिणाम निकल सकेगे। (ग) एक उच्च विकसित अर्थ व्यवस्था वाले सयुक्त राज्य अमरीका का क्षत्रफल ससार की भूमि का ६ ३ प्रतिशत है। अमरीकियो की जनसख्या ससार की जनसख्या का लगभग ६ ६ प्रतिशत है। सयुक्त राज्य की 'वार्षिक पुस्तक' मे वर्णित राष्ट्रीय आय के आंकडो के अनुसार, अमेरिका की राष्ट्रीय आय सम्पूर्ण मानव जाति की आधी आय का प्रतिनिधित्व करती है—सन् १९५५ मे कुल ८००-९०० बिलियन डालर मे से ८०० डौलर थी (इन आकडो मे राष्ट्रीय आय के गुप्त विषयो को सम्मिलित नही किया गया है जाकि अमेरिका के योग म कम से कम १० प्रतिशत की और वृद्धि करेंगे, तथा ससार के योग मे पाँचवे भाग की वृद्धि करेंगे)। अमरीकी जनता ससार की वस्तुओ एव सेवाओ का ⅓ भाग उत्पन्न करती है, तथा सम्पूर्ण उत्पादित वस्तुओ का ½ और ⅓ भाग के बीच म उत्पादन करते है।

उपभोग्य शक्ति का परिमाण तथा फौलाद औद्योगिक विकास के लिय सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तुयें है। सयुक्त राज्य म सब साधनो से उपभोग की हुई शक्ति सन् १९५१ म, जो कोयले के टनो मे परिवर्तित कर दी गई थी, १.२ बिलियन टन थी। सन् १९५३ मे सयुक्त राज्य अमेरिका न १०० मिलयन टन से अधिक इस्पात उत्पन्न की। सन् १९५५ मे इस्पात का उत्पादन ११५ मिलियन टन तक पहुँच गया।

अनाज की उत्पत्ति कृषि विकास का एक महत्वपूर्ण सूचक है। सन् १९५२ मे, सयुक्त राज्य अमेरिका ने, ससार की अनाज की पाच मुख्य फसलो का २६ प्रतिशत भाग पैदा किया था।

सयुक्त राज्य की सडक यातायात के विषय मे सभी भली प्रकार से जानते हैं। अमेरिका के मोटर गाडी उत्पन्न करने के उद्योग आगामी कुछ वर्षो मे, ३० मिलियन यात्री गाडियो की और वृद्धि करेंगे, जोकि आजकल प्राय ५० मिलियन हैं। सन् १९५५ मे, सयुक्त राज्य अमेरिका का वायुयान यातायात ससार के समस्त वायुयान यातायात का आधे स अधिक था।

यात्रियो के लिए प्रयुक्त होने वाले सम्पूर्ण ससार के ८० प्रतिशत वायुयानो का निर्माण अमेरिका म हुआ। सयुक्त राज्य अमेरिका मे व्यापारिक उद्देश्यो में

---
1 *American Capitalism*—Massimo Salvadori. (American Reporter Book Supplement, Feb 27, 1957, Ch IV, pp. 45—56)

प्रयुक्त होने वाले वायुयानो की सख्या १२,००० है तथा इनकी सख्या में बडी द्रुत गति से वृद्धि हो रही है। ससार के लगभग ⅓ व्यापारिक जलयानो (Merchant shipping) का निर्माण अमेरिका के व्यापारिक जहाजी बेडे (Fleet) में निर्माण हुआ है।

(ख) परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था (Dynamic Economy), जो जॉर्ज सोल (George Soule) के अनुसार, "वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति में सन् १८४१-१८५० के दशक मे एव १८९१-१९०० के दशक की अपेक्षा पाच गुने से भी अधिक वृद्धि हुई जबकि जनसख्या केवल दूनी ही हुई पचगुने उत्पादन मे केवल ८१ प्रतिशत श्रमिको की आवश्यकता पडी।...प्रति व्यक्ति फी घण्टे का उत्पादन १८४१-१८५० मे सन् १८९१-१९०० मे १८१ प्रतिशत अधिक था, क्योंकि १९५० से पूर्व ८० वर्ष तक सयुक्त राज्य के प्रति व्यक्ति की आय में १.९ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई। प्रति परिवार की औसत आय १,००० डौलर से लेकर ५,००० डौलर प्रतिवर्ष बढी। (समान क्रय शक्ति के डौलर म)।

कृषि उत्पादन मे, युद्ध से पूर्व के औसत एव १९५२-५३ के औसत मे, ३८ प्रतिशत की वृद्धि हुई (सयुक्त राज्य की 'आँकडे सम्बन्धी वार्षिक पुस्तक' के आधार पर निकाला हुआ प्रतिशत) आज कल अमेरिका की अर्थव्यवस्था ४ से ६ प्रतिशत वार्षिक दर से विस्तृत हो रही है। (७ प्रतिशत १९५५ मे विस्तृत हुई थी)।

(ग) रहन-सहन का स्तर (Standard of Living)

सयुक्त राज्य अमेरिका मे लगभग ५० मिलियन पारिवारिक इकाइयाँ हैं। ४० मिलियन से अधिक परिवारो म २ या अधिक व्यक्ति है। शेष म मुख्यतया वे व्यक्ति हैं जो बहुत ही छोटे अथवा वृद्ध है। अमेरिका के आधे म अधिक परिवार अपने निजी मकानो म रहते है। वहाँ एक मकान मे अधिक व्यक्ति नही रहते। ८३ प्रतिशत घरा मे परिवार के हर सदस्य के लिय एक कमरा है, और कही कही इससे भी अधिक हैं। जनसख्या की तुलना मे, सन् १९५३ मे अमरीकियो ने अग्रेजो से ६० प्रतिशत एव रूसियो से १२० प्रतिशत अधिक नए घरो का निर्माण किया। अमरीकी परिवारो के पास ५० मिलियन से अधिक मोटर, ३० मिलियन टैलिविजन सेट, १२५ मिलियन रेडियो सैट है। देश मे ५० मिलियन से भी अधिक टेलीफोन हैं। गोश्त, रोटी, मक्खन, आलू तथा चीनी का एक एक किलो (kilo) खरीदने के लिये सन् १९५१ की सर्दियों मे, सयुक्त राज्य मे, औसत औद्योगिक मजदूरी के अनुसार, कार्य करने का समय २ घन्टा ४० मिनट था; जबकि इसी के लिये ब्रिटेन मे ३ घन्टा कार्य करना आवश्यक था एव सोवियत सघ मे इसकी प्राप्ति के लिये २० घन्टा कार्य करना आवश्यक था। एक सूनी पोशाक, एक मर्दाना सूट, एक जोडी जूता खरीदने के लिये सयुक्त राज्य म, औसत मजदूरी (या वेतन) के अनुसार, काय करने का समय ५० घन्टा, ब्रिटेन म ९६ घटा तथा

सोवियत संघ में २५८ घन्टा था। किन्तु, इतना होने पर भी, अमरीकी यह नहीं सोचते हैं कि वे जीवन-स्तर के "आदर्श" तक पहुँच पाये हैं। वे जीवन-स्तर में और उन्नति प्राप्त करने के लिये उत्साह से कार्य करते चले जा रहे हैं।

(घ) आय (Income)

सन् १९५५ में अमरीकियों की व्यक्तिगत आय ३०० बिलियन (Billion) डौलर थी। उसमें से ८० प्रतिशत श्रमिकों के मुआवजे को प्रकट करता है। केवल वेतन इत्यादि ही इस मद के अन्दर अक्सर रखे जाते हैं, जैसे किसान की आय खेत को जोतकर होती है, छोटे छोटे व्यापारियों की आय अपनी दूकान से, जिसमें वह कार्य करता है, होती है, व्यवसायी व्यक्ति अपनी कुशलता से, श्रमिकों का इसमें मुआवजा सम्मिलित नहीं है। सन् १९५० में, जबकि कुल व्यक्तिगत आय २२३ बिलियन डौलर थी १४५ बिलियन (सामाजिक बीमे एवं उपहारों को निकालकर) वेतनों एवं दावों से पैदा किया जाता था, जो ३,२०० डौलर वार्षिक औसत की दर से प्राप्त करते थे। ३५ बिलियन अपने स्वयं के कार्य द्वारा पैदा किया जाता था (किसानों, व्यापारी तथा व्यवसायी लोगों द्वारा) जो ४,००० डौलर औसत के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति के वार्षिक हिसाब से प्राप्त करते थे। 'भूमि-पूँजी' में किराये ब्याज तथा वितरित लाभों के रूप में) २२ बिलियन अथवा कुल योग का दसवां भाग आय थी, जो लगभग १५ मिलियन व्यक्तियों के बीच विभाजित की जाती थी (१५०० डौलर्स प्रति व्यक्ति की औसत से) जो कि अधिकांश में व्यवसाय में लगा हुआ अथवा स्वयं व्यवसाय वाले थे। १४५,३५ तथा २२ बिलियन और २२३ बिलियन के मध्यमान हिसाब मुख्यतया हस्तान्तरण भुगतान के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) समूहवादी (Collectivists) अमेरिका के व्यापार के लाभ से भयभीत हो गये हैं। वे एक ओर कुछ सैकड़े अथवा हजार भ्रष्ट पूँजीपतियों को अधिक मात्रा में खाकर कार चलाते हुए तथा बड़ा आलसपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए देखते हैं जबकि दूसरी ओर 'लाखों कर्मचारी भूखों मरते हैं।' इस विचारधारा को ठीक करने के लिए व्यक्ति को सोचना चाहिए कि (१) पूँजीपति कुछ सौ अथवा हजार नहीं है बल्कि कई मिलियन है। (२) पूँजीपति के धन का परिमाण अमेरिका में बहुत विशाल है। सन् १९५० में अमरीकी व्यापार को ४३ बिलियन डालर का लाभ हुआ, उसमें से २२ बिलियन करों के रूप में दे दिया गया, १२ बिलियन का फिर से विनियोग किया गया एवं व्यक्तिगत आय के रूप में उत्पादकों को केवल ९ बिलियन डालर ही प्राप्त हुआ।

(iii) अमेरिका की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग, जो कि अर्द्ध-कुशल एवं औद्योगिक कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करता है, लगभग ६५ मिलियन है—वह समस्त श्रमिकों का प्रायः ¾ भाग है। अर्द्ध-कुशल कर्मचारियों के अधिकतर

परिवारो की वर्तमान आय ४,५००—५,००० डालर वार्षिक है ; कुशल कर्मचारियो के अधिकतर परिवारो की आय ५,०००—६००० डालर तक वार्षिक है।

(iv) सन् १९५३ मे, लगभग ¼ जनसख्या की आय २,००० डालर अथवा उससे कम थी, जो एक औसत अमरीकी की दृष्टि मे, उपयुक्त एव उचित आय से पर्याप्त कम थी।

आर्थिक श्रेणियां (Economic Classes) :

सयुक्त राज्य मे आय के भेद का स्तर गिरता जा रहा है। जनसख्या के उच्चतम ५ प्रतिशत भाग ने, सन् १९२८ मे, कुल आय का ३४ प्रतिशत तथा सन् १९४८ मे १८ प्रतिशत से भी कम प्राप्त किया। अमेरिका की जनसख्या का सबसे कम वेतन पाने वाला वर्ग, अकुशल श्रमिको तथा कर्मचारियो का है, जो सन् १९३० मे सम्पूर्ण श्रम शक्ति के ¼ का प्रतिनिधित्व करता था तथा सन् १९५० मे केवल $\frac{1}{10}$ का प्रतिनिधित्व करता था। आय के नीचे गिरने का उदाहरण, अक्तूबर, १९५५ के 'न्यूयार्क टाइम्स' (New York Times) मे प्रकाशित आकडो की सख्या से प्राप्त होता है जो सन् १९०४ एव सन् १९५४ के पाँच विभिन्न वर्गो (सभी कर्मचारी जो उद्योगो मे काम कर रहे हैं, मोटर गाडियो के कर्मचारी, रेलवे के इन्जीनियर्स, महाविद्यालयो के अध्यापक, रेलव सघ के कार्यकर्ता) से सम्बन्ध रखता है। निर्माण करने वाले सभी उद्योगो के कर्मचारियो की आय को '१ मान लिया जाय तो, १९०४ मे अन्य वर्गों की आय १'२, २ ७, ४'२, ५ ८ था सन् जो १९५४ मे १'२, १'६, १'३, २'६ थी। दो अत्यधिक भेद रखने वाले वर्गों के मध्य का अन्तर आधा हो गया है।

यह देखने के लिए कि अमरीका की आर्थिक प्रणाली का क्या स्थान है, यह सबसे अच्छा होगा कि इसकी सोवियत रूस के समूहवाद से तुलना की जाय. प्रत्येक व्यक्ति दोनो राष्ट्रों मे तीन मुख्य आर्थिक वर्गों को स्पष्टत देखेगा (१) सोवियत सघ के किसान एव सयुक्त राज्य के किसान (२) उद्योग कर्मचारी तथा श्वेत जातियो के व्यवसायो मे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ व्यक्ति (३) प्रबन्धक वर्ग।

(घ) आर्थिक सुरक्षा (Economic Security) :

रूजवेल्ट के सामाजिक सुरक्षा कानून (Social Security Act) मे सुधार होने के परिणाम स्वरूप जो सन् १९५० तथा १९५४ मे कार्य रूप मे परिणत किये गये थे, लगभग सभी लाभ पर प्रयुक्त कर्मचारी (Gainfully employed) तथा आत्म-नियुक्त (Self-Employed), सघात्मक वृद्धावस्था एव उत्तरजीवी बीमा (Fedral old age and Survivors' Insurance) द्वारा लाभान्वित होते हैं। जो व्यक्ति ३५० डोलर मासिक अथवा इससे अधिक का अर्जन करते हैं, वे ६५ वर्ष की आयु मे यदि अकेले हैं तो, १०८'५० डालर मासिक प्राप्त करते हैं, यदि विवाहित हैं तो १६२'८० डोलर मिलता है। विधवा अथवा मृतक कर्मचारी पर आश्रित एक प्राणी—जिस कर्मचारी की मासिक आय ३५० डोलर थी—८१'४० डोलर मासिक

प्राप्त करते हैं और दो आश्रित प्राणी १६२'८० डौलर प्राप्त करते है। एक व्यक्ति के लिए अवकाश लाभ (Retirement Benefits) और उत्तरजीवी लाभ ३० डौलर्स मासिक से कम नही हो सकता।

संगठित कर्मचारियो की सभी श्रेणियो मे संघात्मक बीमा (Federal Insurance) के अतिरिक्त पैशन्स की भी योजनायें हैं। खानें, फौलाद, मोटर, तेल, वस्त्र-उद्योग—केवल कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगो का ही उल्लेख किया गया है—अपने सभी श्रेणी के अवकाश प्राप्त कर्मचारियो को १०० डौलर से १२० डौलर मासिक पैन्शन देते है। अध्यापक, चिकित्सक तथा अन्य व्यावसायिक व्यक्ति अपनी स्वयं की पैन्शन योजना के अन्तर्गत आते है। अस्वस्थता एवं दुर्घटना के लाभ (Sickness and accident benefits) अधिकतर उद्योगो द्वारा भुगतान किये जाते है। सन् १९५५ तक संघात्मक मजदूरी कम से कम ७५ सेन्ट (cents) प्रति घण्टा थी। उस साल वह एक डौलर तक हो गई।

बेरोजगार कर्मचारी (हाल की ३-४% श्रम-शक्ति) भी वेतन प्राप्त करते हैं जो हर राज्य मे भिन्न-भिन्न है, अधिक सम्पन्न राज्यो मे साधारण पैदा का आधे के लगभग भुगतान किया जाता है। सन् १९५५ मे अमरीकी परिवारो की बचत २०० बिलियन डौलर के लगभग थी। बचत मे ४ प्रतिशत सालाना से भी अधिक की दर से वृद्धि हुई। बिना बचत वाले परिवारो की संख्या घट रही है।

अध्याय २२

ग्रेट ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था[1]

(Economy of Great Britain)

१—राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था

(National Economy)[2]

ग्रेट ब्रिटेन का संसार के देशो मे, आकार की दृष्टि से लगभग ७५ वाँ स्थान है, समार की भूमि का लगभग ०·१८ प्रतिशत है। जन-संख्या मे इसका नवाँ स्थान है, जहा ससार के २ प्रतिशत निवासी हैं तथा जनसख्या के घनत्व मे इसका चौथा स्थान है, मुख्य देशो मे केवल जापान, बेल्जियम तथा नीदरलैण्ड्स ही अधिक सघन हैं, ग्रेट ब्रिटेन मे सयुक्त राज्य अमेरिका से प्रति वर्ग मील ११ गुना व्यक्ति रहते हैं। ससार के व्यापार मे इसका दूसरा स्थान है, जिसका योग, कुल योग का १० प्रतिशत से भी अधिक है। निर्मित माल का निर्यात करने मे, ससार के निर्यात मे, इसका पाँचवाँ स्थान है।

ग्रेट ब्रिटेन, अपनी स्वयम् की भूमि से, अपनी आवश्यकता का आधा ही खाद्य पदार्थ उत्पन्न कर पाता है, तथा कोयले एव निम्न श्रेणी के कच्चे लोहे को छोडकर इसके प्राकृतिक साधन बहुत कम हैं। इस प्रकार यह ससार की ऐसी वस्तुओ जैसे, गेहूँ, गोश्त, मक्खन, चारा, अनाज, फल, चाय, तम्बाकू, ऊन तथा कडी इमारती लकडी का सर्वाधिक आयात करने वाला देश है। इसके बदले मे यह ससार का एक बडा समुद्री जहाज, हवाई जहाज, रेल के इञ्जन, मोटर गाड़िया, बिजली का सामान, रसायन, सूती वस्त्र तथा सब प्रकार की मशीनो का निर्यात करने वाला देश है।

---

1. Courtesy : U. K. High Commission in India, New Delhi, and British Information Services, New Delhi.

2. 'Britain, an Official Handbook, 1959, Ch. VIII, pp. 226—236 (Courtesy): The Director of British Information Services, New Delhi.

२—उद्योग

(Industry[1])

इङ्गलैण्ड मे सर्व प्रथम सर्वाधिक औद्योगीकरण किया गया। एक आदमी कृषि का कार्य करता है तो ११ आदमी खानो तथा कारखानो मे काम करते हैं। जन-सख्या के प्रतिशत की दृष्टि मे, निर्मित माल का निर्यात करने मे इङ्गलैण्ड ससार मे सबसे प्रमुख देश है। औद्योगिक उत्पादन के विस्तार के कारण यह ससार की अद्वितीय कर्मशाला (Workshop of the World) की स्थिति को प्रकट करता है।

उद्योग का स्वरूप (Structure of industry) :

यहा स्वामित्व की प्रणाली (The pattern of ownership) तथा उद्योग का सगठन कई प्रकार का है। निजी, सघ, सहकारी तथा सार्वजनिक जोखम आदि बहुत सी भिन्न प्रकार की प्रणालियाँ हैं, तथा अर्थव्यवस्था मे सभी महत्त्वपूर्ण हैं। औद्योगिक जोखिम, बहुत सी छोटी कर्मशालाओ (Small workshops) से लेकर बड़े सगठन, जैसे राष्ट्रीय कोयला परिषद (Coal Board), एक सरकारी सस्था, जिसमे ७००,००० कर्मचारी कार्य करते हैं, इम्पीरीयल कैमीकल इन्डस्ट्री (Imperial Chemical Industries Ltd.), एक सीमित उत्तरदायित्व सस्था (a limited liability company) जो अपने सहायको सहित ११५,००० व्यक्तियो को रोजगार देती है, तथा सीमित सहकारी थोक विक्रेता समिति (Co-operative Wholesale Society Ltd), एक सहकारी समिति जिसमे लगभग ५०,००० कमचारी कार्य करते है, तक इससे भिन्न हैं।

सार्वजनिक जोखिम का सहयोग (Role of the public enterprise) :

बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे, सामाजिक सेवाओ की उन्नति, विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास ने, अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र को धीरे-धीरे अधिक प्रभावित किया। उत्पादक आर्थिक क्रियाओ मे राज्य ने प्रत्यक्ष रूप से अधिक भाग लिया, विशेष रूप से, १९४०—५० के दशक मे। सन् १९५१ से फौलाद उद्योग का अधिकाँश तथा ब्रिटिश यातायात आयोग (British Transport Commission) की सेवाये सार्वजनिक स्वामित्व से व्यक्तिगत स्वामित्व मे आगई है। राज्य का हस्तक्षेप, विशेष व्यवस्था से स्थापित की हुई सस्थाओ—जो किसी विशेष कार्य को सुलझाने के लिए स्थापित की जाती है—के माध्यम से प्रभावित करता है। ऐसी सस्थायें, यद्यपि किसी सरकारी विभाग का अग नही होती हैं और पर्याप्त सीमा तक सरकारी नियन्त्रण मे होती है, फिर भी सरकारी नियन्त्रण से भिन्न होती है। इस व्यवस्था से स्थापित की हुई सस्थाओ मे सर्व प्रमुख सार्वजनिक निगम

1. *Ibid*, P. 237

(Public Corporations) हैं जो जनता के हित मे बडे उद्योगों और सेवाग्रो का सचालन करते है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रीयकरण कानून के अन्तर्गत सार्वजनिक निगमो का कुछ बडे उद्योगो, सेवाओ, कोयले की खानो, आन्तरिक यातायात, गैस की पूर्ति, विद्युत बनाने एव उसकी पूर्ति करने तथा नागरिक वायु यातायात (Civil Air Transport) का सचालन करने के हेतु निमाण हुआ।

उत्पत्ति एव उत्पादनक्षमता ((Production and Productivity) :

औद्योगिक उन्नति—इसमे युद्ध के बाद तीव्र वृद्धि हुई, क्योकि उद्योगो मे युद्ध की सामग्री का उत्पादन न होकर अन्य जीवनोपयोगी पदार्थ बनने लग गये थे तथा मानव शक्ति सेना से छुटकारा पाकर निर्माण कार्य मे लग गई थी। सन् १९४६ तक युद्ध से पूर्व के स्तर को पुन प्राप्त कर लिया गया तथा सन् १९४८ म यह निर्माण १५ प्रतिशत अधिक हो गया। सन् १९४८ से १९५६ तक की उत्पत्ति, रोजगार तथा उत्पादन क्षमता को निम्न तालिका मे प्रदर्शित किया जा रहा है

वर्ष	औद्योगिक उत्पत्ति	उद्योग म रोजगार	उद्योग मे प्रतिव्यक्ति प्रतिवष उत्पादन
१९४८	१००	१००	१००
१९४९	१०६	१०२	१०५
१९५०	११४	१०३	११०
१९५१	११७	१०६	१११
१९५२	११४	१०५	१०८
१९५३	१२१	१०६	११४
१९५४	१३०	१०८	१२०
१९५५	१३७	१११	१२३
१९५६	१३६	११२	१२२
१९५७	१३८	११२	१२४

सन् १९४८ से १९५७ तक औद्योगिक उत्पत्ति ३८ प्रतिशत बढ गई। उद्योग में लगे हुए कमचारियो की सख्या केवल १२ प्रतिशत ही बढी, जिससे कि प्रति व्यक्ति के उत्पादन मे २४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। उत्पत्ति की यह वृद्धि, उन्नत पद्धतियों को कुशलतापूर्वक अपनाने के परिणामस्वरूप हुई। सन् १९५५-५८ मे उत्पत्ति म बहुत थोडा अन्तर प्रकट हुआ है। इसका मुख्य कारण मुद्रा प्रसार की प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण करना था।

युद्ध के पश्चात् सबसे अधिक वृद्धि सन् १९४८ ५७ की वृद्धि सहित-इजीनियरिंग, जहाज बनाने और विद्युत के सामान के वर्ग, मोटरगाडियो के वर्ग,

रासायनिक वर्ग ; कागज तथा छपाई के वर्ग ; और गैस, विद्युत एवं जल के कार्यो मे क्रमशः ५५% ; ६५% ; ६२% ; ६६% तथा ६३% वृद्धि हुई। सन् १९४८-५७ में कारखानों तथा अन्य औद्योगिक सस्थाओं मे विद्युत शक्ति का उपयोग दूना हो गया।

प्रबध (Management).

ब्रिटिश उद्योग मे उत्पादन क्षमता की वृद्धि मे योग देने वाला प्रमुख साधन प्रबध की नवीन पद्धतियों के विकास का होना रहा है। वर्तमान सदी मे, विशेषकर द्वितीय युद्ध में तथा युद्ध के पश्चात् से ब्रिटेन मे–अन्य देशों के समान ही—प्रबध के महत्त्व की बढती हुई जाग्रति मे, विशेष कुशलता तथा ज्ञान का विषय अवश्य समझा जाने लगा।

यह कुछ सीमा तक ससार के बाजारो की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, उत्पत्ति को बढाने की आवश्यकता द्वारा प्रोत्साहित किया गया है तथा आशिक रूप से यह पूर्ण रोजगार की परिस्थितियों तथा मुख्य वस्तुओं, जैसे फौलाद की पूर्ति के दबाव से प्रोत्साहित किया गया है। समग्रत: मनुष्य के सबसे प्रभावशाली रोजगार, सामान तथा मशीनरी के सगठन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, उद्योग मे मानवीय सम्बन्धो पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है तथा प्रबन्ध और श्रम के मध्य की बातचीत को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। बहुत सी विशेष प्रबध वाली सस्थायें अस्तित्व में आ गई है, जो सहायता के लिए शैक्षणिक तथा अन्य गुणो की माग करती हैं। प्रथम युद्ध के समय से व्यवसायिक एव इजीनियरिंग सस्थाओं ने अपनी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम मे औद्योगिक प्रशासन (Industrial Administration) को भी जोड लिया है।

कुल उत्पादन (Net output) के रूप मे, विभिन्न वर्गो के तुलनात्मक महत्त्व का विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है, जो सन् १९५४ की उत्पत्ति की गणना के परिणामो एव सन् १९५६ की निर्धारित सुविधाओं पर आधारित है।

उद्योग वर्गो का सन् १९५४ एव १९५६ का कुल उत्पादन
(Net Output of Inudstry groups in 1954 and 1956)

	१९५४ पौण्ड दस लाखों मे	१९५६* पौण्ड दस लाखों मे	योग का प्रतिशत
धातु सम्बन्धी निर्माण (Metal Manufacture)	५१९·४	६५५·१	९·१

* Provisional figures, (Britain, An Oficial Handbook, 1959, P. 309)

जहाज निर्माण, इञ्जीनियरिंग तथा विद्युत का सामान (Ship building, Engineering and Electrical goods)	१४६७·७	१,७३७ ६	२४ २
मोटर गाडियां (Vehicles)	७०७ ७	८०४ ७	११ २
विभिन्न धातुओं सम्बन्धी उत्पत्ति (Miscellaneous Metal Products)	३३७·३	४०५ ७	५ ७
रासायनिक एवं अन्य सहायक व्यापार (Chemical and allied Trades)	५२८ ६	६१२ ५	८·५
सूत एवं कपडे का काय (Textile and Clothing)	६१५ ७	६३५ ४	१३·०
भोजन, पेय तथा तम्बाकू (Food, Drink and Tobacco)	५६४ ४	६६८ ८	६ ४
अन्य निर्माण करने वाले उद्योग (Other Manufacturing Industries)	१२०५ १	१,३५१ १	१८ ६
योग	६२७६ २	७,१७१ २	१००

Source Board to Trade Journal

३—कृषि
(Agriculture)[1]

यद्यपि ग्रट ब्रिटेन सघन बसा हुआ है तथा औद्योगिक देश है, जो अपने आधे खाद्य-पदार्थ की पूर्ति आयात करके करता है, फिर भी कृषि वहाँ का सबसे बडा एवं महत्वपूर्ण उद्योग है। इसमें लगभग १० लाख व्यक्ति काय करते है अथवा नागरिक-रोजगार (Civil Employment) के ४ प्रतिशत सलग्न है। राष्ट्र की कुल उत्पत्ति का ४ प्रतिशत प्रदान करता है, जिसमे ६०० लाख एकड भूमि म से ४८० लाख एकड भूमि का प्रयोग किया जाता है।

(१) खेत सख्या एवं स्वामित्व (Farms Numbers & ownership) :

सम्पूर्ण बजर चरागाहो को छोड कर ब्रिटेन में लगभग ५२३,००० कृषि चक (Agricultural holdings) हैं। ३१६,००० इगलैण्ड म, ५५,००० वेल्स म, ७१,००० स्कॉटलैंड म तथा ८१,००० उत्तरी आयरलैण्ड में हैं। कुल योग का ३/५ चक आकार म ५० एकड से भी कम है। जो दस लाख व्यक्ति कृषि में कार्य करते हैं उनम स १/३ किसान है, शेष वेतन पाने वाले कर्मचारी अथवा किसानो के परिवारों के सदस्य है। बहुत से किसानो के पास स्वतन्त्र रूप से अपने खेत हैं, लेकिन अधिक-

1 Ibid, p. 252

तर प्रचलित प्रबन्ध मे किरायेदार (Tenant) हैं जिससे वे अपनी खेती कर सकें तथा पशुओं, फसल एव चल सामग्री को अपने स्वामित्व मे रख सके जबकि जमीदार जमीन, मकान तथा अचल सामग्री के स्वामी होते हैं तथा उनकी सुरक्षा एव उन्नति के लिए उत्तरदायी होते हैं। सन् १९५० म सयुक्त राज्य के खाद्य एव कृषि सगठन के लिए की गई गणना के अङ्को से ज्ञात हुआ था कि इगलैण्ड तथा वेल्स क ३६ प्रतिशत चको के स्वामी वे ही लोग थे जिनके कि वे अधिकार म थे, ४९ प्रतिशत पूर्णरूप से किराये पर उठाये जाते थे, १५ प्रतिशत का कुछ अश स्वामित्व मे था तथा कुछ अश किराये पर उठाया जाता था।

कृषि के प्रकार (Types of farming)

इगलैण्ड और वेल्स की कुल कृषि योग्य भूमि जो २९ ६ मिलियन एकड है, म से २४ ५ मिलियन एकड भूमि फसल तथा घास के लिए है। अधिकतर खेत मिश्रित खेत हैं, लेकिन सामान्य रूप से इगलैण्ड का पूर्व का आधा भाग विशेषरूप से जोतने बोने के लिए है, तथा पश्चिमी अध भाग वेल्स सहित डेरी फार्मिंग के लिए सुरक्षित है। कृषि योग्य भूमि के ३७ प्रतिशत चरागाह है, २२ प्रतिशत जोतने एव बोने योग्य भूमि तथा २६ प्रतिशत मिश्रित है। शेष अवर्गीकृत (un classified) हैं अथवा कृषि की दृष्टि स बहुत कम महत्त्व की है। मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, आलू, चुकन्दर तथा चारा हैं। स्कॉटलैण्ड मे कुल १५० लाख एकड कृषि योग्य भूमि म से ४०½ लाख एकड फसलो तथा घास के लिए हैं तथा शेष पहाडी चरागाह हैं।

सन् १९३७ ५७ (जून) मे ब्रिटन मे पशु समुदाय (दस लाखो मे)

	१९३९	१९४४	१९५३	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७
दुग्धशाला के पशु	३९	४४	४५	४६	४५	४७	४७
अन्य पशु	५०	५१	५९	६२	६२	६२	६२
भेड	२६ ९	२० १	२२ ५	२२ ९	२२ ९	२३ ६	२४ ८
सुअर	४४	१९	५२	६३	५८	५५	६०
मुर्गी	७४ ४	५५ १	९२ १	८३ ६	८६ ६	९२ ५	९४ ९

Source Monthly Digest of Statistics

३ उत्पत्ति (Production)

द्वितीय महायुद्ध से पूव ब्रिटेन ने खाद्य पदार्थ की पूर्ति का लगभग ३१ प्रतिशत मनुष्य के उपभोग के लिए कैलोरीज के रूप म उत्पन्न किया। यह सन् १९५७ तक ४० प्रतिशत के लगभग हो गया।

४ यातायात एव सचार प्रोत्साहन (Transport and Communication Propulsion)

* कोयले (coal fired) का परिमाण इन्ही कुछ वर्षों म १० लाख टन से भी P 309) । भाप द्वारा चालित जहाजो म कोयले का स्थान तेल ने ले लिया है

जबकि भाप ने अपना स्थान डीजल इजन को दे दिया है। सन् १९५७ मे लगभग, सभी टनेज (Tonnage) का ४५ प्रतिशत कार्य डीजल से लिया गया। हाल ही मे, जहाजो मे, भाप से चलने वाले यन्त्रो (*gas turbines*) का उपयोग करने के प्रयोग किये गये हैं।

ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारिक जहाजों (Merchant fleet) का सन् १९५७ के आकार का वितरण

टनेज वर्ग (Tonnage group)	सभी जहाज		ब्रिटेन के जहाज	
	जहाजो की सख्या	ग्रास टन	जहाजो की सख्या	ग्रास टन
१०० तथा ५०० ग्रास टन से कम	१,८५२	४,६२,७७६	१६६	४३,५४४
५०० ,, २,००० ,, ,,	१,२६८	१२,२५,३९६	८०	७७,६७७
२,००० ,, ६,००० ,, ,,	६८२	२,७६२,६०६	४०	१२७,४११
६,००० ,, १०,००० , ,,	१ १६७	८,९४६,९४३	२४६	१९,९९,७४५
१०,००० , १५,००० ,, ,,	३४२	३९,०९,६११	२१३	२४,३४,६६८
१५,००० ,, २५,००० ,, ,,	९४	१८,२२ ३४४	४६	८७,८३,१५
२५,००० ,, ३०,००० ,, ,,	१८	४,९०,०५६	१	२५,०००
३०,००० ग्रास टन तथा अधिक	४	२,३४,७५६		
	५ ४२७	१९८५७४९१	७९२	५५८५८६०

सन् १९५२ का ब्रिटिश धरेलू माल यातायात (British Domestic freight Transport, 1952)

(Source : Llyod's Register of Shipping)

	टन carred लाखो म	दस टन माईलेज हजार मिलियन मे	टन carred का प्रतिशत	टन माईलेज का प्रतिशत
रेल	३००[1]	२२	२४	४३
सडकें	९००	१९	७२	३७
समुद्र तटवर्ती जहाज	४०	१०[2]	३	२०
अन्तर्देशीय जलमार्ग	१०	०·२	१	
योग	१२५०	५१ २	१००	१००

Source Paper by K.F Glover and D N Milles, Read before the Royal Statistics Society, 28 th April, 1954.

---

1. Tons originating, Including, Free hauled traffic.
2. The 'Inland' Equivalent, that is ton milage by inland transport that would result of the coastwise traffic passed by inland means of carriage.

५—श्रम
(Labour)

जून १९५२ के अन्त में ग्रेट ब्रिटेन की काम करने वाली कुल जनसख्या लेक २४० लाख थी, जो कुल जनसख्या की ४२ प्रतिशत के लगभग थी, तथा सामान्य रूप से काम करने वाले उम्र के लोगो की जनसख्या लगभग ७३ प्रतिशत थी (स्त्रियो के लिए १५ वर्ष से ५९ वर्ष तक तथा पुरुषो की १५ से ६४ वर्ष)। वास्तव मे, काम करने की उम्र के ९६ प्रतिशत अग्रेज आजकल लाभ के कार्य करते है अथवा खोज मे रहते हैं। शेप ४ प्रतिशत म मुख्यत वे लोग हैं जो अपनी शिक्षा को जारी रखते है, अथवा सर्वथा काम के अयोग्य हैं तथा कुछ व्यक्ति अपना व्यक्तिगत व्यापार करते है। काम करने की उम्र वाली स्त्रियो का लाभ के काम की खोज करने का अनुपात बहुत कम है, ४६ प्रतिशत घर की स्त्रियो की इच्छा घर से बाहर जाने की होनी ही नही है, और यदि वे ऐसा करना चाहती हैं तो घरेलू कार्य उनके पैरो म जजीर डाल देत है। सामान्य रूप से काम के उपयुक्त आय के व्यक्तियो के अतिरिक्त दस लाख वृद्ध पुरुष एव स्त्रिया अब भी काम करती है। काम करने वाली जनसख्या का अधिकाश मजदूरी या वेतन के लिए काम करता है, लेकिन १५ तथा १७ लाख नियोक्ता (Employers) तथा आत्म नियुक्त (Self-Employed) है।

ग्रेट ब्रिटेन मे सामान्य मानव शक्ति की स्थिति (हजार मे)

	जून १९४८ के अत मे	जून १९५७ के अन्त मे	जून १९५८ के अन्त मे
कुल कार्य योग्य जन सख्या [1]			
पुरुष	१५,६५७	१६ २२५	१६ १६६
स्त्रियाँ	७,१२३	७,९६३	७,९०४
योग	२२ ७८०	२४,१८८	२४,०७०
H M शक्तियाँ स्त्रियों की सेवाओं सहित			
पुरुष	२०७	६८ ७	६००
स्त्रिया	३९	१५	१४
योग	८४६	७०८	६१४

1. Ibid, P 376.

रोजगार के दफ्तरो मे लिखित बेरोजगार (Registered Unemployed)[1]

	जून १६४२ के अन्त मे	जून १६५७ के अन्त मे	जून १६५२ के अन्त में
पूर्ण रूप से बेरोजगार	२७३	२३५	३७०
अस्थाई रूप से कार्य मे सलग्न[2]	६	१५	६२

(Source Ministry of Labour and National Employment)

नागरिक रोजगार वालों की सख्या	जून १६४८ के अन्त मे	जून १६५७ के अन्त मे	जून १६५८ के अन्त मे
पुरुष	१४,५४६	१५,३६७	१५२६५
स्त्रियाँ	७,०२०	७,८७८	७,७८६
योग	२१,५६६	२३,२४५	२३,०८१

Source • Ministry of Labour and National Service

श्रम का रोजगार (Employment of Labour)

नागरिक रोजगार (Civil employment) की विस्तृत औद्योगिक वर्ग द्वारा की गई कुल सख्या की व्याख्या निम्न तालिका मे दी जा रही है। सन् १६५८ के मध्य के आकडे (Figures) सामयिक (Provisional) है :

---

1 The total working population represents the estimated total number of persons aged 15 and over who work for pay or gain, or register themselves as available for such work The total comprises the armed forces, men and women or on release leave not yet in employment all persons, employers and workers on their own account as well as employees in civil employment (including persons temporarily laid off but still on the employers, and wholly unemployed persons registered for employment part-time workers are counted as full units Owing to the small numbers now involved (6,000 at end-June, 1953) men and women on release leave are not shown separately in the lower half of the table

2 The unemployment figures are end-month estimates

3 The figures for the temporarily stopped have been excluded from the computation of the total working population as they are already included in civil employment

ब्रिटेन मे नागरिक रोजगार की व्याख्या (हजार मे)
Analysis of Civil Employment in Great Britain (Thousands)

उद्योग अथवा सेवा	जून १९४८ के अन्त म	जून १९५७ के अन्त में	जून १९५८ के अन्त में
कृषि एव मत्स्य विभाग	१,१७८	१,०२५	१,००२
खानें	८७८	८६२	८५४
उत्पादन करने वाले उद्योग, रासायनिक एव सहायक व्यापार	४४१	५३४	५२६
धातुएँ, इजीनियरिंग एव गाडिया	३,६४४	४,६१८	४,५८४
सूत बुनन का काम	९३१	९३४	८६४
कपडो का काम	६४६	६७८	६४८
खाद्य, पय एव तम्बाकू	७५०	९१६	९२६
अन्य उत्पादन	१,४२२	१,५९१	१,५६५
उत्पादन करने वाले उद्योगो का योग	८,१३७	९,२७१	९,११६
मकान बनाने एव ठेके का काम	१,४५०	१,५१९	१,४९५
गैस, विद्युत एव जल	३२१	३७९	३७८
यातायात एव सवाहन	१,७८७	१,७०३	१,७१५
वितरित किए हुए व्यापार	२,४८४	२,९४५	२,९७९
व्यावसायिक, वित्तीय तथा विभिन्न सेवायें	३,९५४	४,२१७	४,२४७
केन्द्रीय सरकार की सेवाएँ	६२२	५४३	५३०
स्थानीय निकायो की सेवायें	७००	७५५	७६१
नागरिक रोजगार का कुल योग	२१,५६६	२३,२४५	२३,०८०

व्यावहारिक काम करने की परिस्थितियाँ (उपार्जन)

Working Conditions & Practical (Earnings) :

अंग्रेज मजदूरो के लिए कम से कम अथवा आदर्श कार्य करने के घन्टो की दरें, जैसी कि स्वीकार पत्रो (Agreements) अथवा वेतन के क्रमो (Wages orders) द्वारा निर्धारित हुई हैं, पुरुषो के लिए १ घण्टे में ३s एव ४s *Id* के बीच मे तथा स्त्रियो के लिए २s एव २s ११ d के मध्य मे है। साधारणत वास्तविक अर्जन (Earnings) बहुत अधिक हैं।

ग्रेट ब्रिटेन में श्रम एव राष्ट्रीय सेवा मत्रालय (Ministry of Labour and National Service) श्रमिको की आय एव काम करने के घटो का उत्पादक उद्योगो एव कुछ अन्य उद्योगो में छ माही निरीक्षण करते हैं।

अक्टूबर सन् १९५७ मे किए हुए निरीक्षण से ७० लाख कर्मचारी प्रभावित हुए तथा सभी उद्योगो के प्रति घंटे की औसत आय निम्न प्रकार है :

पुरुष २१ वर्ष तथा अधिक आय के	५ s. २६ d.
युवक एव २१ वर्ष से कम आयु के लडके	२ s. ५२ d.
स्त्रियाँ १८ वर्ष की तथा अधिक आयु की	३ s. १७ d.
१८ वर्ष से कम आयु की लडकियाँ	२ s ०·३ d.
सभी कर्मचारी	४ s, ६·९ d.

औसत साप्ताहिक आय (Average weekly earnings) इस प्रकार थी :

नव-युवक	१०२ s. ४ d.
स्त्रियाँ	१२९ s. ६ d.
लडकियाँ	८५ s २ d.
सभी कर्मचारी	११२ s. ५ d.

६—सामाजिक कल्याण[1]
(Social Welfare)

राज्य एव स्वेच्छा से की गई सेवाएँ ब्रिटेन मे अब राज्य, केन्द्रिय अथवा स्थानीय सरकारी अधिकारियों के माध्यम से या साधारण जनता द्वारा होता है। वृद्ध अथवा अपगो की देखभाल रखने के लिए, माताओ एव बच्चो का पालन-पोषण करने के लिए, बीमारी, जच्चा और औद्योगिक दुर्घटना-ग्रस्तों को सुविधा प्रदान करने के लिए, विधवाओ अथवा अवकाश प्राप्त व्यक्तियो की पेंशन तथा पारिवारिक भत्तो के लिए ये सस्थायें प्रयत्नशील होती हैं। ब्रिटेन मे सार्वजनिक कल्याण के लिए प्रतिवर्ष ३० हजार मिलियन पौण्ड से अधिक खर्च होता है, अर्थात् प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति के लिए इस पर प्राय ५० पौण्ड खर्च होता है।

स्वेच्छा से बने हुए सगठन, विशेषकर गिर्जाघर लगभग सभी सामाजिक सेवाओ का नेतृत्व करने वाले थे। सरकार द्वारा सामाजिक कल्याण की व्यवस्था करने से पूर्व वे स्कूल, विभिन्न प्रकार के चिकित्सालयो तथा मनोरजनात्मक सस्थाओ का प्रबन्ध करते थे, उन्होने स्वयम् विघ्नो को दूर किया, इससे पूर्व सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता था कि सम्पूर्ण समाज ही जरूरतमद व्यक्तियो के लिए उत्तरदायी है। जहाँ पर इनकी सेवाएँ एव प्रदत्त सुविधायें समुचित एव उपयुक्त थी वहाँ उन्हे भविष्य मे भी क्रियाशील रहने को प्रोत्साहित किया गया है। आजकल ब्रिटेन मे इन स्वेच्छा से की गई सेवाओ का पूरक (Supplementary) राज्य है।

स्वेच्छा मे की गई बहुत-सी सामाजिक सेवाएँ राज्य की कल्याणकारी सेवाओ का कार्य करती हैं एव उनको पूरा करती हैं। यह दोनो—स्वेच्छा से बने सगठन एव राज्य-पारस्परिक सहयोग से सामाजिक कल्याण का कार्य करते हैं।

---

1. Ibid, P. 127

७—गृह निर्माण समस्या एवं नियोजन[1]
(The Housing Problem and Planning)

ग्रेट ब्रिटेन में कुल मिलाकर १५५ लाख घर हैं, जिनमें से १३५ लाख England एवं वेल्स में, १५ लाख Scotland में तथा लगभग ५ लाख उत्तरी आयरलैण्ड में हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सन् १९४५ में गृह निर्माण कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ। सन् १९५८ के मध्य तक, ब्रिटेन में, ३० लाख नवीन एवं स्थायी गृहों का निर्माण हो चुका था। इसके अतिरिक्त लगभग १६०,००० अस्थायी घरों का निर्माण भी हुआ था (जिनमें से कुछ अब बदल दिये गये हैं)। सन् १९५६ तथा सन् १९५७ में, १००,००० से अधिक निवास-स्थानों, जो रहने के योग्य न थे, नष्ट कर दिये गये अथवा नष्ट करने के लिये छोड़ दिये गये। सन् १९५६ के अन्त में उत्तरी आयरलैण्ड में इसी प्रकार का एक आन्दोलन प्रारम्भ किया गया।

ब्रिटेन में नियोजन (Planning in Great Britain)

सन् १९४७ का नगर तथा देहात का नियोजन कानून एवं स्काटलैण्ड का सन् १९४७ का नगर एवं देहात नियोजन कानून व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास है, जो सम्पूर्ण बर्तानिया की भूमि के प्रयोग के लिये रचनात्मक कार्य अथवा प्रणाली प्रदान करते हैं। उनके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं —

१—विकास योजनाओं के माध्यम से सम्पूर्ण बर्तानिया में नियोजन का एकीकरण, जिसमें कि भविष्य के विकास के बारे में पूरी तरह से विचार किया जा सके।

२—स्थानीय नियोजनाधिकारी अथवा केन्द्रीय सरकार की आज्ञा से तथा उनके नियन्त्रण में, कुछ अपवादों के साथ, विकास करना।

३—नियोजन कार्य को सफल बनाने के लिये, भूमि प्राप्त करने के लिये तथा भूमि का विकास करने के लिये और केन्द्रीय धन राशि से स्थानीय अधिकारियों को भूमि की प्राप्ति एवं भूमि को साफ करने के लिये अनुदान की दर तथा क्षेत्र को विस्तृत करने के लिये, सार्वजनिक अधिकारियों के अधिकारों का विस्तार करना है।

४—इसके अतिरिक्त इस के अनुसार जंगल, पुरातत्त्व विभाग, भूमि की सुरक्षा आदि के विषय में सुधार करना है।

सन् १९४७ के कानूनों में, मुआवजा को बेहतर बनाने की समस्या—जिसने पहले प्रभावशाली नियोजन में बाधा डाली थी—को हल करने के लिये बहुत से वित्तीय साधन बनाये गये, लेकिन इसके लिये अपनाई गई प्रणाली व्यवहार में सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई।

---

1. Ibid, P. 170

चीनी जनवादी जनतन्त्र में नियोजित आर्थिक विकास[1]

(Planned Economic Growth In People's Republic of China)

१—सन् १९५९ में आर्थिक स्थिति[2]

चीन मे, सन् १९५८ की तीव्रगति के आधार पर, सन् १९५९ के प्रथम अर्द्ध-भाग मे, द्रुत विकास हुआ।

उद्योग

इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग मे उद्योगो के उत्पादन का कुल मूल्य ७२६०० मिलियन yuan था। यह गत वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग के ४४३०० मिलियन yuan से ६५ प्रतिशत अधिक था। इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक उत्पादन, पिछली साल के प्रथम अर्द्ध भाग के उत्पादनो की तुलना मे, इस प्रकार है लोहा (आधुनिक यन्त्रो द्वारा उत्पन्न किया हुआ) ६·५ मि० टन, १६० प्रतिशत, इस्पात (आधुनिक यन्त्रो द्वारा उत्पन्न किया हुआ) ५·३ मिलियन टन, ६६ प्रतिशत, कोयला १७४ मिलियन टन, १०० प्रतिशत से अधिक, विद्युत शक्ति १८४०० मिलियन Kilowatt-hours, ५५ प्रतिशत, धातु काटने वाली मशीन के उपकरण ४५,००० यूनिट, १०० प्रतिशत से अधिक, सूती कपडा ४,१४७,००० Bales, ४६ प्रतिशत तथा चीनी ७८०,००० टन, ४३ प्रतिशत। अन्य सभी उत्पादनो का परिमाण पिछली साल की तुलना मे अधिक हो गया। उनमे से बहुत कम मे २० प्रतिशत मे कम वृद्धि हुई।

---

1 Courtesy Embassy of People's Republic of China in India, New Delhi

2. Chou En-Lai Report on adjusting the major targets of the 1959. National Economic Plan and further developing the campaign for increasing production and practising Economy. (Courtesy: Director of Information, Embassy of the People's Repulic of China in India, New Delhi).

कृषि (Agriculture) :

यद्यपि ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए बोया हुआ क्षेत्रफल कम हो गया था एवं इस वर्ष को बसन्त ऋतु मे कुछ प्राकृतिक प्रकोप भी हुए, फिर भी कृषकों के विस्तृत जन समूह के साहस एव सरकारी प्रयत्नों के कारण काफी प्रगति हुई।

गेहूँ, मोटे अनाज एव चावल का कुल उत्पादन १३६,००० मिलियन catties[1] तक पहुँच गया, जो पिछले वर्ष के १३६,५०० मिलियन catties उत्पादन से—जो ग्रीष्म ऋतु की फसल के विशेष रूप से अच्छे होने के कारण था—२,५०० मिलियन catties अधिक था।

यातायात .

इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग मे रेलो द्वारा ढोने वाले माल का परिमाण २४७ मिलियन टन था, गत वर्ष के इसी समय की तुलना मे ४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। जहाजों एव नावो द्वारा ढोये गये माल का परिमाण ५५ मिलियन टन था अर्थात् ७५ प्रतिशत की वृद्धि की, मोटरो द्वारा ढोये गये माल का परिमाण १४० मिलियन टन था अर्थात् ६४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

पूँजी निर्माण :

इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग मे कुल विनियोग १०,७०० मिलियन yuan था, जो गत वर्ष के इसी समय के विनियोग से ५४ प्रतिशत अधिक था। पूँजी के इस निर्माण के फलस्वरूप कई योजनाओ मे—पूर्णतया अथवा आशिक रूप से उत्पादन आरम्भ होगये तथा उद्योगो की उत्पादन-क्षमता मे बहुत वृद्धि हुई।

व्यापार :

इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग मे फुटकर विक्रय कुल २६,६०० मिलियन yuan का हुआ जो गत वर्ष से—इसी समय के विक्रय से—२३ प्रतिशत अधिक हुआ।

उपर्युक्त तथ्यो से यह देखा जा सकता है कि इस वर्ष के प्रथम अर्द्ध भाग मे उद्योग, कृषि, यातायात, पूँजी-निर्माण तथा व्यापार सबमे बडी द्रुत गति से विकास हुआ। सबको मिलाकर चीन की आर्थिक दशा ठीक है, उपलब्धियाँ अधिक रही हैं तथा सम्पूर्ण प्रगति के पथ पर अग्रसर होने को प्रकट करता है। अधिकाँश जनता इस प्रकार के कार्यों से सन्तुष्ट है तथा उन्हे अपने उज्ज्वल भविष्य का पूर्ण विश्वास है। लेकिन जनता के बहुत अधिक बहुमत—जिसे अपनी शक्ति पर विश्वास है—के विपरीत जनता की एक बहुत थोडी सख्या ऐसी है, जो देश के समाजवादी निर्माण की बडी उपलब्धियो के प्रति उदासीन हैं। वे वर्तमान आर्थिक स्थिति के विषय मे बडे निराशावादी हैं तथा वे अपने भ्रातिमूलक विचारो को फैलाने का दुस्तर प्रयास करते है।

1. Catty—0 5 kg or 1·1023 Lb.

२—लोहा एवं फौलाद बनाने में जनता का प्रयत्न
(The Mass Campaign to make iron and steel)

सन् १९५८ मे चीन मे १३.३६ मिलियन टन कच्चा लोहा उत्पन्न किया (या ५ मिलियन टन कोयले को निकाल कर जो इस्पात बनाने योग्य नही था, बल्कि कृषि के साधारण यन्त्र एव उपकरण बनाने के लिए ठीक था) जो १९५७ मे उत्पन्न किये हुये कोयले से दो या तीन गुना अधिक था तथा ११.०८ मिलियन टन इस्पात उत्पन्न किया, जो सन् १९५७ से दुगुना था। ··· इस्पात के उद्योग की उन्नति होने से अन्य उद्योगो मे काफी प्रगति हुई। बहुत से महत्वपूर्ण औद्योगिक उत्पादन दूने हो गये या कई गुने हो गये। कुल औद्योगिक उत्पादन मे, सन् १९५७ ई० की अपेक्षा सन् १९५८ मे ६६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुछ भी सही, लोहे एव इस्पात बनाने के लिए जनता के प्रयत्न ने लोहे एव इस्पात उद्योग के विकास के लिये पथ प्रदर्शन किया। जहाँ तक स्वदेशी लोहा पिघलाने की भट्टी एव अन्य सम्बन्धित भट्टियो का प्रश्न है उनका भी विकास किया गया है, तथा उनके द्वारा कच्चे लोहे के उत्पादन एव गुण मे वृद्धि हुई है। Small Blast furnaces की कुल क्षमता, (प्रत्येक मे ६५ एव १०० Cubic Meters के मध्य मे) जो आजकल चालू हैं, उसमे ४३,००० Cubic Meters तक उत्पादन होने लगा है। कुल (Large Blast Furnaces) जो कि देश मे हैं लगभग दूनी हो गई। वे दस मिलियन टन कच्चे लोहे को शुद्ध करने के योग्य होगई हैं। द्वितीय पचवर्षीय योजना काल म, ये small blast furnaces लगभग ५५ मिलियन टन कच्चे लोहे को शुद्ध करेंगी। सन् १९६३ से आरम्भ होकर ये १५ मिलियन टन लोहा प्रति वर्ष शुद्ध किया करेंगी।

Small blast furnaces द्वारा उत्पन्न कोयले की किस्म एव कोयले के उपभोग की दर मे, पिछले कुछ महीनो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। जुलाई तक कच्चे लोहे का अनुपात ७५ प्रतिशत बढ गया। प्रति टन कच्चे लोहे पर कोयले के उपभोग की दर ४ टन के लगभग रह गई तथा प्रतिदिन कच्चे लोहे का उत्पादन भट्टी के प्रति Cubic Meters के प्रयोग की क्षमता से ०.७ टन तक पहुँच गया। यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य मे इससे अधिक उन्नति होगी एव उत्पत्ति के गुण तथा मात्रा मे वृद्धि होगी तथा कोयले के उपभोग की दर कम हो जायगी।

तथ्यो से सिद्ध होता है कि वृहद्, लघु तथा मध्यम श्रेणी के औद्योगिक प्लान्ट्स का, तथा आधुनिक एव स्वदेशी पद्धतियो के प्रयोग से निम्नलिखित लाभ हैं

साहस विस्तृत रूप से वितरित कर दिया जाता है, यह उनके निर्माण मे कम समय लेता है, वे कच्चे एव अन्य आयुक्त मालो की कम माँग करते हैं, तथा उनकी पूर्ति करना बहुत आसान है। यह स्रोतो के विस्तृत परीक्षण मे, उत्पत्ति के साधनो को अधिक उपयुक्त ढग से प्रयोग करने मे, उनका समुचित रूप से पूर्ण प्रयोग करन मे, पर्याप्त सहायता देगा। कुछ भी हो, स्वदेशी पद्धतियो का प्रयोग

करने मे अथवा आधुनिक एव स्वदेशी पद्धतियो को मिलाकर, लघु उद्योगो के निर्माण की अवहेलना नही करनी चाहिए 'दोनो ही पैरो से चलना चाहिए' केवल एक टाग से ही नही।

३—बाजार का प्रश्न

इस वर्ष के (१९५९) प्रथम अर्द्ध भाग मे बहुत आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति गत वर्ष की—इसी समय की—तुलना मे पर्याप्त बढ गई। आंकडो से ज्ञात होता है कि अनाज, कोयला, सिल्क, शराब तथा दियासलाई की पूर्ति मे १० से ३० प्रतिशत वृद्धि हुई, सूती कपडा, नमक, साबुन, साइकिल तथा सिगरेटो मे ३० से ५० प्रतिशत वृद्धि हुई, बुने हुये वस्त्र, बुनने की ऊन, ऊनी वस्तुओ, रबड के जूते तथा फाउन्टेनपैन मे ५० से लेकर १०० प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई, खाद्य तेलो, कागज, मिट्टी का तेल, तथा चाय मे १० प्रतिशत से भी कम वृद्धि हुई। १९५९ के प्रथम अर्द्धभाग मे, केवल एक दर्जन वस्तुओ की पूर्ति गिर गई, इसमे सूअर का गोश्त, गाय का गोश्त, भेड का गोश्त, अण्डे की वस्तुओ, जल-जीवो से बनी हुई वस्तुओ, चीनी, घरेलू उपयोग के लिए सूती कपडे, चमडे के जूते, बिजली के वल्व तथा हाथ की घडियां सम्मिलित हैं।

इन वस्तुओ की पूर्ति मे कमी होने का कारण उत्पत्ति का गिरना नही है। गोश्त, अण्डो से उत्पन्न वस्तुयें, जल जीवो से बनी हुई वस्तुओ, घरेलू उपयोग के लिए सूती कपडो जैसी वस्तुओं की पूर्ति इसलिये कम हो गई कि इन वस्तुओ का उपभोग देहाती क्षेत्रो मे—जहाँ ये उत्पन्न होती थीं बहुत बढ गया।

सबको मिलाकर, वस्त्रो, दैनिक प्रयोग की वस्तुओ, अन्य खाद्य पदार्थों की कोई कमी नही रही। दैनिक प्रयोग की वस्तुओ की पूर्ति मे, अन्य वस्तुओ की तुलना मे, कुछ कमी अनुभव की गई। कुछ भी हो, इस वर्ष के (१९५९) प्रथम अर्द्ध भाग मे, बहुत सी दैनिक प्रयोग की वस्तुओ एव खाद्य पदार्थों की पूर्ति मे जो कमी थी वह जून तथा जुलाई मे सुधरने लगी। कुछ लोगो का कथन है कि बाजार मे सब ओर से खीचतान थी। लेकिन यह कहना जानबूझ कर तथ्यो का भुठलाना है। कुछ लोगो ने फिर भी कहा कि 'मुक्ति से पूर्व' व्यक्ति को हर वस्तु बाजार मे मिल सकती थी, लेकिन अब कुछ भी प्राप्य नही। सभी जानते हैं कि इसमे तनिक भी सत्य नहीं है। कर्मचारियो के लिए, जो देश की जनसख्या का ८० या ९० प्रतिशत है, ये बातें बिल्कुल विरोधी हैं। कर्मचारी मुक्ति से पूव जो वस्तु चाहते थे, नही प्राप्त कर पाते थे, परन्तु अब हर आवश्यक वस्तु प्राप्य है। जो ऐसी बातें कहते है वे या तो इसको देख नही पाते हैं अथवा कर्मचारियो के रहन सहन के स्तर को ऊँचा देखकर सन्तुष्ट नही हैं। वे अब भी फिजूल खर्ची, तथा प्राचीन समाज के सडे हुए जीवन—जो बहुत थोडे लोग जैसे रईस, उच्च नौकरी वाले, जमीदार, धनिक एव पूँजीपति

आदि व्यतीत करते थे—की अभिलाषा करते है। क्या इससे यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है कि आखिर ये लोग क्या चाहते हैं ?

अन्य व्यवसायो को छोड़कर आए हुए व्यक्तियो के अतिरिक्त, १९५८ के नये कर्मचारियो तथा स्टाफ के प्रवेश से, इस वर्ष प्रतिमास ४०० मिलियन yuan से भी अधिक क्रय शक्ति मे वृद्धि हुई। इस प्रकार, १९५९ के प्रथम अर्द्ध-भाग मे सामूहिक क्रय शक्ति को मिलाकर नगरो की क्रय शक्ति का मूल्य १४३०० मिलियन yuan या जो गत वर्ष के इसी समय की ११०० मिलियन yuan की तुलना मे ३० प्रतिशत अधिक था।

कुछ लोगो का सन्देह है कि कुछ वस्तुओ की पूर्ति मे अभाव आने का कारण निर्यात मे अत्यधिक वृद्धि होना था। यह अब भी तथ्यो के अनुरूप नही है। १९५९ के निर्यात का कुल परिमाण गत वर्ष के कुल निर्यात के परिमाण से १७.८ प्रतिशत अधिक था। इसके अतिरिक्त, गत वर्ष की तुलना मे अनाज तथा बहुत सी अखाद्य पदार्थों—जिनकी कि घर पर आवश्यकता थी—मे तनिक भी वृद्धि नही हुई अथवा हुई भी तो बहुत कम हुई। उदाहरणार्थ, इस वर्ष १५ अगस्त तक, चावलो के निर्यात का कुल योग केवल ७९२,००० टन था जबकि सूअर के गोश्त का निर्यात केवल १४००,००० सूअरो के बराबर था, यह १९५८ के चावल के उत्पादन तथा इसी तरह जीवित सूअरो की कुल सख्या का—वर्ष के अन्त मे—१ प्रतिशत से भी कम था। समाजवादी निर्माण को आगे बढाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि कृषि उत्पादन से देश को आवश्यक सामग्री का विनिमय किया जाय। यह उद्योग के विकास के हित मे ही नही है, बल्कि कृषि के विकास के हित मे भी है।

४—प्रथम पचवर्षीय योजना की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ[1] एव सन् १९५८ की द्वितीय पचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष :

सन् १९५४ मे, जबकि जनता की राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ, समाजवादी क्षेत्र ने चीन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे पहले से ही अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर लिया, लेकिन फिर भी पूँजीवादी उद्योग तथा व्यापार व्यक्तिगत कृषि एव दस्तकारी बडे परिमाण मे बनी रही। श्रम मे पारस्परिक सहायता का आदोलन देहाती क्षेत्रो मे व्यापक रूप से विकसित हुआ, ५० प्रतिशत से लगभग कृषक गृहस्थो ने, 'कृषि श्रम पारस्परिक सहायता की टोलियों' मे भाग लिया, लेकिन दो प्रतिशत कृषक-गृहस्थो ने तब भी 'कृषि उत्पादको की सहकार समितियों' की स्थापना की। उस समय तक चीन ने पुन आर्थिक स्थापना के समय के, कार्य को पूरा कर लिया था, तथा

1 Chou-En lai—Report on the work of the Govt Delivered at the First Session of the Second National People's Congress on April 18, 1959 (Foreign Language Press, Peking, Govt of China).

बडे स्तर पर नियोजित आर्थिक निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया, लेकिन यह सोचना शेष रह गया था कि इतने बडे देश मे—जिसकी कि आबादी ६०० मिलियन है—इतने थोडे समय मे समाजवादी औद्योगीकरण की नीव डालने के योग्य हो सकेंगे कि नही। अब वहाँ की क्या दशा है ? यह स्पष्टतया देखा जा सकता है कि ठीक चार वर्ष मे, चीन के साम्यवादी दल तथा माओत्सेतुंग के नेतृत्व में समाजवादी क्रान्ति तथा समाजवादी निर्माण मे बडी सफल उपलब्धियाँ मिली।

सन् १६५५ तथा १६५६ मे चीन ने पूँजी प्रधान उद्योग एव व्यापार, कृषि एव दस्तकारी और इस प्रकार से समाजवादी आन्दोलन के मुख्य लक्ष्य, उत्पत्ति के साधनो के स्वामित्व को प्राप्त किया। अब कुछ राष्ट्रीय अल्प सख्यको के सिवाय, चीन मे उत्पत्ति के साधनो पर मुख्यतया दो प्रकार का स्वामित्व है, प्रथम, समाजवादी स्वामित्व जो पूर्णतया जनता का है, द्वितीय, सामूहिक समाजवादी स्वामित्व।

चीन मे समाजवादी निर्माण एव समाजवादी क्रान्ति एक दूसरे का उत्थान करते हुए साथ-साथ चलते रहते हैं। सन् १६५३ से १६५७ तक चीन ने राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए अपनी प्रथम पचवर्षीय योजना को पूरा किया। लेकिन वास्तविक बात यह है कि उन्होंने १६५७ मे अपनी प्रथम पचवर्षीय योजना को पूरा किया तथा उसी के आधार पर सन् १६५८ म द्वितीय पचवर्षीय योजना को अधिक गौरव से प्रारम्भ किया।

प्रथम पचवर्षीय योजना की पूर्ति के परिणाम स्वरुप सन् १६५७ मे औद्योगिक एव कृषि सम्बन्धी उत्पादन का कुल मूल्य १२८,७४० मिलियन Yuan तक पहुँच गया, यानी १६५२ की तुलना मे—जब ८२,७१० मिलियन Yuan था—६८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। औद्योगिक उत्पादन का कुल मूल्य ६५,०२० मिलियन Yuan तक पहुँच गया, १६५२ की तुलना मे—जब २७,०१० मिलियन Yuan था—१४१ प्रतिशत बढ गया, दस्तकारी की उत्पत्ति १३,३७० मिलियन Yuan तक पहुँच गई ; सन १६५२ की तुलना मे—जब ७,३१० मिलियन Yuan था—१३ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई और कृषि का मूल्य ६०,३५० मिलियन Yuan तक पहुँच गया, यानी १६५२ की तुलना मे—जब यह ४८,३६० मिलियन Yuan था—२५ प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई।

प्रथम पचवर्षीय योजना काल मे, आर्थिक एव सास्कृतिक क्षेत्रो मे, राज्य द्वारा किय हुये विनियोग का योग ४६,३०० मिलियन Yuan था, यानी नियोजित अको से, जो कि ४२,७४० मिलियन Yuan थे, १५ प्रतिशत अधिक था। पाँच वर्षों के देख रेख के निर्माण कार्य मे १००० से अधिक औद्योगिक एव खनिज सम्बन्धी कार्य-क्रम प्रारम्भ हुए जिनमे से ६२१ असाधारण (above norm) थे। २२७ से अधिक पर योजना मे विचार हुआ। सन् १६५७ के अन्त तक ५३७ 'असाधारण' औद्योगिक कार्य-क्रम पूरे किये जा चुके थे अथवा आशिक रूप से पूरे हो चुके थे तथा वे उत्पत्ति करने लगे थे।

सन् १९५७ मे सम्पूर्ण देश के उद्योगो ने, १७५,००० अभियन्ताओ (Engineeres) तथा प्राविधिक कर्मचारियो (Technicians) को रोजगार दिया, यानी १९५२ की तुलना मे—जबकि इनकी सख्या ५८,००० थी—तिगुने लोगो को रोजगार दिया, उद्योगों तथा पूँजी-निर्माण कार्य-क्रमो ने १०,१९०,००० कर्मचारियो को, सन् १९५२ की तुलना मे—जब यह सख्या ६,१५०,००० थी--६६ प्रतिशत अधिक लोगो को रोजगार दिया। औद्योगिक उत्पादन तथा औद्योगिक उत्पादन की विविधता, दोनो ही की वृद्धि के परिणाम स्वरूप, औद्योगिक आत्म-निर्भरता (वस्तु एव यान्त्रिक उपकरण दोनो ही मे) बढ गई। उदाहरणार्थ, इस्पात के उत्पादन मे ८६ प्रतिशत तथा कलो एव यान्त्रिक उपकरणो मे ६० प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई।

साथ ही साथ उद्योग एव कृषि के अनुपात तथा भारी एव हल्के उद्योगो के अनुपात म भी परिवर्तन हुआ। उद्योग एव दस्तकारी के, सन् १९५२ के उद्योग एव कृषि के उत्पादन मूल्य मे ४१ ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई ; जबकि १९५७ मे उनके मूल्य म ५६ ७ प्रतिशत वृद्धि हुई। सन १९५२ मे, पूँजी प्रधान वस्तुयें, उद्योग के उत्पादन-मूल्य म ३९ ७ प्रतिशत वृद्धि हुई जबकि सन् १९५७ मे यह अनुपात ५२ ८ तक पहुँच गया। सन १९५८ मे, द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष मे, चीन की अर्थ-व्यवस्था मे, चीन के इतिहास की एक अद्वितीय घटना घटी—वह थी अत्यधिक प्रगति। जब उद्योग एव कृषि के उत्पादन का मूल्य २०५,००० मिलियन Yuan हुआ तो यह सन १९५७ के १२४,१०० मिलियन Yuan से ६५ प्रतिशत अधिक था।

उद्योग एव दस्तकारी के उत्पादन का कुल मूल्य ११७,००० मिलियन Yuan तक हो गया, यानी सन् १९५७ के ७०,४०० मिलियन Yuan से ६६ प्रतिशत अधिक हो गया। सन् १९५७ मे, पहले की तुलना मे कच्चे लोहे, इस्पात, कोयला, शक्ति उत्पन्न करने वाले औजार, रेलवे इजिन, मोटर गाडियाँ तथा इजन आदि के उत्पादन म दुगुनी वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन का कुल मूल्य ८८,००० मिलियन Yuan हो गया, यानी सन् १९५७ के ५३,७०० मिलियन Yuan से ६६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। अनाज, रूई, तथा तम्बाकू के उत्पादन मे भी दुगुने से अधिक वृद्धि हुई। पूँजी विनियोग भी राज्य के बजट के माध्यम से २१,४०० मिलिलन Yuan तक हो गया, यानी सन् १९५७ के १२,६०० मिलियन Yuan से ७० प्रतिशत की वृद्धि हुई।

बहुत से औद्योगिक तथा कृषि-उत्पादनो में, अकेले सन् १९५८ मे ही इतनी वृद्धि हुई कि सन् १९५७ एव १९५८ दोनो के ही उत्पादनो को मात दे दी। उदाहरणार्थ, सन् १९५२ की तुलना मे सन् १९५७ मे इस्पात के उत्पादन मे ४ मिलियन टन, कोयला मे ६४ मिलियन टन, कल तथा औजारो मे १४,३०० की, अनाज की फसलो में ६१,२०० मिलियन Catties तथा रुई मे ६·७३ मिलियन टन की वृद्धि हुई। सन् १९५७ की तुलना मे, सन् १९५८ मे इस्पात के उत्पादन मे ५·७३ मिलियन टन

की, कोयले के उत्पादन मे १४६ मिलियन टन की, कल एव औजारो मे २२,००० की, अनाज की फसलो मे ३८०,००० Catties तथा रुई मे ३३'५८ मिलियन टन की वृद्धि हुई। उद्योग एव कृषि की उन्नति के साथ-साथ, यातायात, डाक तथा सवाहन, व्यापार तथा सस्कृति एव शिक्षा सभी मे विशेष प्रगति हुई।

चीन ने औद्योगिक क्षेत्र मे इस्पात को मुख्य कडी मान कर तथा भारी उद्योगो और बडे इजिनो को प्राथमिकता देकर, सर्वतोमुखी विकास किया। औद्योगिक उत्पत्ति तथा पूँजी-निर्माण के लिए आधुनिक युग मे इस्पात बहुत ही आवश्यक धातु है, इसका अपर्याप्त उत्पादन सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विकास मे बाधक है। इसलिए सन् १९५८ मे, समूचे राष्ट्र को लोहा एव इस्पात का उत्पादन बढाने मे लगा दिया तथा परिणामस्वरूप सन् १९५७ के इस्पात के ५,३५०,००० टन उत्पादन से सन् १९५८ मे ११,०८०,००० टन हो गया। इस्पात के उत्पादन से कोयले के उद्योग के साथ-साथ कल निर्माण तथा अन्य उद्योगो मे भी विशेष उन्नति हुई।

सन् १९५८ मे कृषि-क्षेत्र की बडी उपलब्धियो ने भी, समाजवाद के निर्माण की शक्ति की परीक्षा की, उन्होने सिद्ध कर दिया कि उद्योग एव कृषि को साथ-साथ विकास करना चाहिए तथा यह विकास साथ-साथ किया भी जा सकता है, कृषि तथा उद्योग द्रुत गति से विकास कर सकते हैं। वास्तव मे, उद्योग एव कृषि की प्रगति देर से, सन् १९५८ मे प्रारम्भ हुई। चीनी कृषि के लिए कलो एव रासायनिक खादो का उत्पादन अब भी बहुत कम है लेकिन एक बार किसानो के प्रारम्भिक प्रयत्न को चरम सीमा तक पहुँचाया है। क्षेत्र की प्रति इकाई के हिसाब से कृषि-उत्पादन अब भी तीव्र गति से बढाया जा सकता है। कृषि के विकास के लिए राष्ट्रीय कार्य-क्रम से जो कि १९५७ मे सशोधित हुआ था, स्पष्ट है कि देश के तीन प्रदेशो मे—जिनमे कि देश विभक्त है—सन् १९५७ मे प्रति Mov[1] अनाज की उत्पत्ति क्रमश ४००; ५०० तथा ८०० Catties तक होनी थी तथा रुई क्रमश ६०, ८० एव १०० Catties होनी थी। वास्तव मे, सन् १९५८ तक सम्पूर्ण देश की Counties एव Municipalities ने अनाज के उत्पादन के लक्ष्य को, जोकि उनके लिए राष्ट्रीय कार्य-क्रम मे कृषि के विकास के लिए निर्धारित किये थे, प्राप्त कर लिया, जबकि अधिकतर देश के कई उत्पादन करने वाले क्षेत्रो ने भी रुई के उत्पादन मे कार्य-क्रम मे निर्धारित लक्ष्यों को पूर्णत प्राप्त किया।

---

1. A 'Mov' is equivalent to 0 06 hectare or 0·1647 Acre.

५—सन् १९५९ में—द्वितीय पंचवर्षीय योजना[1] की द्वितीय वर्ष में—चीन का आर्थिक क्षेत्र में कार्य

सन् १९५९ द्वितीय वर्ष है जिसमे चीनी समाजवाद के निर्माण के लिए अपनी द्वितीय पचवर्षीय योजना को पूरा कर रहे हैं। चीनी साम्यवादी दल की आठवी केन्द्रीय समिति के छठव पूर्ण अधिवेशन मे, जो नवम्बर सन् १९५८ मे हुआ था, सन् १९५९ में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को विकसित करने के मुख्य कार्य एव नीतियो पर विवाद हुआ तथा चार लक्ष्य रखे १८ मिलियन टन इस्पात, ३८० मिलियन टन कोयला १,०५०,००० मिलियन Catties अनाज तथा १०० मिलियन टन रूई। इन उद्देश्यो एव उत्पत्ति तथा निर्माण की परिस्थितियो के आधार पर सन् १९५९ की प्रथम तिमाही अप्रैल सन् १९५९ में—चीनी साम्यवादी दल की आठवी केन्द्रीय समिति के सातवें मुख्य अधिवेशन मे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए सन् १९५९ की 'प्रारूप योजना' को ग्रहण किया।

सन् १९५९ की राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की विकास योजना, महान् उन्नति के प्रयास को अनवरत रखने को बल देती है। जैसा कि प्रारूप योजना से विदित है कि सन् १९५९ में औद्योगिक एव कृषि के उत्पादन का कुल मूल्य ४० प्रतिशत बढ जायगा अर्थात् १९५८ मे जो २०५,००० मिलियन *yuan* था २८७,००० मिलियन *yuan* हो जायगा, इस परिमाण मे से १६५,००० मिलियन *yuan* उद्योग तथा दस्तकारी का होगा। ३२ मे से १७ मुख्य उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि होगी। कच्चा लोहा, इस्पात, मिट्टी का तेल, सल्फ्यूरिक एसिड, रासायनिक खाद, एन्टीबायोटिक शक्ति उत्पन्न करने वाले यन्त्र, रेल के इंजिन, माल ढोने वाले वैगन, ट्रैक्टर्स आदि कुछ अपवादो के अतिरिक्त, अन्य मुख्य औद्योगिक उत्पादनो मे ३० प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि होगी। अन्य कुछ उत्पादनो मे दूनी तथा किन्ही मे कई गुनी वृद्धि होगी।

बडे एव छोटे उद्योगो की साथ साथ विकास की आवश्यकतानुसार, सन् १९५९ मे 'पूँजीगत वस्तुओ' के उत्पादन मे ४६ प्रतिशत तथा उपभोक्ता की वस्तुओ के उत्पादन मे ३४ प्रतिशत वृद्धि होने का आयोजन है। कुछ औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन मे, जो कि जनता के दैनिक जीवन के प्रयोग की वस्तुएँ हैं—विशेषकर वे वस्तुएँ जो पहले पर्याप्त सख्या मे उत्पन्न नही की गई है—उनके उत्पादन की वृद्धि के लिए योजना मे स्थान दिया गया है। योजना मे उद्योग एव कृषि के साथ-साथ विकास की आवश्यकतानुसार, सन् १९५९ मे, औद्योगिक एव दस्तकारी के उत्पादन का मूल्य सन् १९५८ के उत्पादन मूल्य से ४१ प्रतिशत बढ जायगा जबकि कृषि के उत्पादन का मूल्य सन् १९५८ के कुल उत्पादन मूल्य से ३९ प्रतिशत बढ जायगा। छोटे उद्योगो के विकास एव लोगो के उच्च रहन-सहन के स्तर के साथ,

1. *Ibid*, pp 16 34.

कृषि तथा पशुओं सम्बन्धी उत्पादन में वृद्धि करने, अच्छे कपडे के उत्पादन, गन्ना, सूअर तथा घोडो की वृद्धि की दर, रुई एव अनाज के उत्पादन मे लगातार वृद्धि की जायगी। कृषि के लिए औद्योगिक सहायता, अधिक सिंचाई तथा सिचाई की कले, ट्रेक्टर्स, अनाज एव कृषि सम्बन्धी अन्य यन्त्र, रवड के टायरो वाली दो पहियो की ठेला गाडी, रासायनिक खाद एव कृषि के घातक कीटाणुओ को मारने वाली औषध प्रदान करके उत्पादन बढाया जायगा।

सन् १९५७ एव १९५८ की तुलना मे, बहुत से उत्पादनो मे सन् १९५९ की योजना मे वृद्धि होगी। यह औद्योगिक उत्पत्तियों, शक्ति, सल्फ्यूरिक एसिड, रासायनिक खाद, माल ढोने की गाडी, रुई कातने की कले, कपडा बुनने का तागा, सूती कपडा, कागज, वनस्पति तेलो एव गन्ना, जूट, वन्य पशु तथा सूअर आदि के विषय मे सत्य है।

औद्योगिक मोर्चे पर विशेषकर केन्द्रित नेतृत्व को शक्तिशाली बनाना आवश्यक है, जिससे कि स्थानीय अधिकारियो एव जन समूह के साथ राज्य के साधनो को केन्द्रीय अधिकारियो के साधनो के साथ पूर्ण रूप से मिला दिया जाय तथा देश की एकीकृत योजना को दृष्टि मे रख कर, सभी क्षेत्रो मे पूर्ण प्रबन्ध किया जाय। इसमें मुख्य निर्माण का कार्य-क्रम पहले पूरा होना चाहिए, तथा सभी क्षेत्रो के कार्यों की पूर्ति का आश्वासन देना चाहिए।

योजना लक्ष्यात्मक सम्भावनाओ पर आधारित होनी चाहिए। जब उनकी भौतिक, वित्तीय एव मानवीय शक्ति के साधन कुछ निश्चित मुख्य योजनाओ की पूर्ति करते हैं तो ये अन्य कार्य-क्रमो की आवश्यकताओ को उतने सन्तोषप्रद ढग से पूरा नही कर सकते। इस विरोध को दूर करने के लिए छोटे भागो के लाभ को सम्पूर्ण त्याग देना चाहिए, तथा मुख्य योजनाओ की पूर्ति के आश्वासन का प्रथम स्थान होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार, सन् १९५९ की औद्योगिक उत्पत्ति एव निर्माण योजना की रचना हुई थी। उत्पत्ति एव पूँजी-निर्माण, वितरण तथा महत्त्वपूर्ण कच्चे माल एव औजार पर प्रशासकीय कर्मचारियो की वृद्धि करके एव स्थानान्तरण करके तथा जोखिम के कार्यो पर कर्मचारी बढा कर तथा स्थानान्तरण करके, श्रम एव वेतन की प्रणालियो म परिवतन करके, प्राविधिक शक्तियो के कार्यों मे पुन सुधार होना चाहिए तथा इनको केन्द्रीय अधिकारियो, राज्य के अधिकारियो, नगर पालिका तथा प्रभुसत्ता सम्पन्न प्रदेशो के अधिकारियो की पूर्ण आधीनता मे रख देना चाहिए। विशेष उत्पत्ति एव निर्माण कार्यो की प्राथमिकता की सूची की रचना ऊँचे से लेकर नीचे वर्ग के महत्व, आवश्यकता तथा कच्चे माल एव औजारो की प्राप्ति को दृष्टि मे रख कर होनी चाहिए।

सगठनात्मक कार्य मे भी नेतृत्व को शक्तिशाली बनाना एव उत्पत्ति तथा निर्माण के बहुत से सम्बन्धो को लगातार नियन्त्रित रखना आवश्यक है, जिससे सन् १९५९ मे पूरा होने वाला महान् कार्य, औद्योगिक उत्पत्ति तथा पूँजी निर्माण,

निश्चित नियमो के अनुसार पूरा होगा तथा सभी सख्यात्मक तथा गुणात्मक आवश्यकताओ को सन्तुष्ट किया जायेगा और अधिक महत्त्वपूर्ण उत्पादन तथा निर्माण कार्य-क्रमो के लिए यह आवश्यक है कि १० दिन का मासिक अथवा तिमाही 'टाइम टेबिल' बनाना चाहिए तथा केन्द्र एव प्रान्तो के अधीन जो अग हैं अथवा नगरपालिकाओ या प्रभुसत्ता सम्पन्न प्रदेशो को अपने निरीक्षक कर्मशालाओ तथा निर्माण कार्यो की प्रगति तथा गुण का निरीक्षण करने निजी दौरे भेजने चाहिए तथा इस प्रकार नियोजित लक्ष्यो की समुचित पूर्ति का आश्वासन दिलाना चाहिए ।

१९५८ की कृषि की प्रगति से, उत्पत्ति बढाने के आठ प्राविधिक सिद्धान्तो से सम्बन्धित चीनियो को जो अनुभव हुए वे इस प्रकार हैं :—मिट्टी की उन्नति, खाद का प्रयोग, सिचाई की सुविधा, बीज का चुनाव, घने पौधे लगाना, पौधो की सुरक्षा, खेत का प्रबन्ध, तथा कृषि के औजारो का सुधार । इस अनुभव ने चीनियो को बोध करा दिया कि विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियो एव फसलो के अनुसार विभिन्न पद्धतियो का उपयोग करना चाहिए तथा इन पद्धतियो का अविवेक पूर्वक उपयोग नही करना चाहिए तथा विभिन्न पद्धतियाँ जो एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे पर निर्भर हैं उन्हे अकेले तथा बहुतो को एक साथ प्रयुक्त नही करना चाहिए ।

देहात मे मानव शक्ति की कमी का अन्त करने के ये मौलिक उपाय हैं—कृषि मे श्रम के उत्पादन को बढाना, तथा कृषि मे प्राविधिक नवीन पद्धति एव प्राविधिक क्रान्ति लाना, कृषि धीरे-धीरे अर्द्ध यन्त्रवत् एव पूर्ण यन्त्रवत कृषि के औजारो का प्रयोग करना, क्रमश- सीढी दर सीढी आगे बढना चाहिए । कृषि औजारो मे सुधार आन्दोलन जो सन् १९५८ मे प्रारम्भ हुआ उसे जारी रखना चाहिए तथा उन स्वीकृत औजारो को जो व्यवहार मे उपयोगी सिद्ध हो चुके हैं आवेश से तथा शक्ति से उनको उन्नत तथा सर्व प्रिय बनाया जाय।

यातायात के क्षेत्र मे सन् १९५९ की योजना का अनुभव करने मे सर्व प्रथम हमे रेल यातायात को देखना चाहिए, हमे सगठनात्मक कार्य को शक्तिशाली बनाना चाहिए, प्रचलित यातायात की सुविधाओ को पूरी तरह मे प्रोत्साहन देना चाहिए तथा योजनानुसार पूँजी-निर्माण के कार्य को पूरा करना चाहिए । यातायात विभागो को अपने कार्य की बहुतर योजनायें बनानी चाहिए, माल लादने तथा उतारने के समय में कमी करनी चाहिए, मालगाडियो तथा जहाजो की गति बढानी चाहिए तथा ईंधन के उपभोग मे मितव्ययिता होनी चाहिए, जिससे वर्तमान सुविधाओ मे अधिक माल ले जाया जा सके । यातायात मे माल के महत्त्व तथा आवश्यकतानुसार उसे ले जाने का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे पहिले ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुओ जैसे 'पूँजी गत वस्तुओ—लोहा, इस्पात, कोयला, तथा उपभोक्ता वस्तुओ—अनाज आदि का समय से पहुँचाने का प्रबन्ध होना चाहिए । अधिक दूरी तथा कम दूरी के यातायात के मिश्रित करने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए । कम दूरी के यातायात को सहारा देने, उन्हे गाड़ियो के प्रयोग तथा देहाती साधनो के यातायात म जहाजो

का प्रयोग करने का प्रबन्ध करना चाहिए। सभी ओर के औद्योगिक एव व्यापारिक विभागो के यातायात के कार्य को नियन्त्रित करने, कम करने तथा सम्भव हो सके तो ऐसे अनुचित कार्यो जैसे, उसी माल को विपरीत दशा में जहाज द्वारा भेजना, अत्यन्त दूरी पर माल को जहाज द्वारा भेजना अथवा उनके लक्ष्यों में बाधाओ की स्थितियो को, दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति का आश्वासन देने तथा बाजार के स्वामित्व को जारी रखने के लिए व्यापार विभागो को एक विशेष समस्या का सामना करना पडेगा। जैसा कि पहिले कहा था कि सन् १९५९ मे वस्तुओ का कुल फुटकर विक्रय ६५, ००० मिलियन yuan तक हो जायगा तथा सन् १९५८ से १९ प्रतिशत अधिक हो जायगा। यह वृद्धि यानी सन् १९५० का कुल फुटकर विक्रय १७,००० मिलियन yuan से तीन गुनी अधिक है। सन् १९५३ की यानी प्रथम योजना की प्रथम वर्ष के ३४,८०० मिलियम yuan की तुलना मे यह ८७ प्रतिशत अधिक है। चीन देश की जनसख्या बहुत होन के कारण प्रति व्यक्ति के उपभोग में थोडी सी वृद्धि का अर्थ होता है, अतिरिक्त उपभोग के योग में एक महत्वपूर्ण वृद्धि। इस स्थिति में जहाँ कि उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन भोग के साथ नही चल सकता है तो वहाँ जहाँ कि एक वस्तु अथवा अन्य वस्तुओ की पूर्ति अस्थायी रूप से कम है, वहाँ इस स्थिति की अवहेलना करना कठिन हो जाता है। आज कल व्यापार विभागो का महत्वपूर्ण कार्य यह है कि देश भर में बाजार का सुप्रबन्ध किया जाय तथा अपनी क्षमतानुसार उपभोक्ता की वस्तुओ की पूर्ति का काय किया जाय तथा यदि सम्भव हो सके भोग एव पूर्ति के बीच के अन्तर को दूर करने का प्रयास किया जाय।

व्यापार विभागो को कई स्तर पर, कृषि के उत्पादन के क्रम कार्य को उन्नत करने तथा देहाती सहकारिता एव दैनिक उपभोग की औद्योगिक वस्तुओ को उन्नत करने का प्रयास करना चाहिए। उनको इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि कच्चे माल की तरह प्रयोग से अवशिष्ट माल का क्रय ठीक प्रकार से होता है या नही। साथ ही साथ कृषि उत्पत्ति तथा सहायक व्यवसायो को उन्नत किया जाय तथा नगरो एव देहातो के मध्य क्रय एव बाजार की ठेके देने की वस्तुओ की पारस्परिक गति को विस्तृत किया जाय, निर्यात व्यापार के प्रशासन को उन्नत किया जाय जिससे कि राज्य निर्यात् योजना—सख्या एव गुण को दृष्टि में रखकर—समय पर पूरी हो सके।

औद्योगिक, कृषि, यातायात अथवा व्यापार कोई भी क्षेत्र क्यो न हो, जन आन्दोलन का केन्द्रीय लक्ष्य, सदैव श्रम की उत्पत्ति, उत्पत्ति की वृद्धि, मितव्ययिता तथा बर्बादी का विरोध होना चाहिए। सन् १९५९ की राष्ट्रीय आर्थिक योजना का क्षेत्र विस्तृत है तथा होने वाले कार्य कठिन है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमे प्रोत्साहन देने की कोई सम्भावना नही है अथवा उनकी योजना के लक्ष्य पूरे नहीं किए जा सकते। उत्पत्ति तथा निर्माण दोनो में ही नई 'प्राविधिक पद्धतियों' एव प्राविधिक आन्दोलन की सम्भावनायें असीमित है। ओजारो तथा वस्तुओ की उन्नति

उन्नत-वस्तुओ का उपभोग, उत्पत्ति के तथा योजनाओं के उद्देश्यो से उन्नति, इमारतो के सिद्धान्तो का अस्तित्व मे आना, मानव शक्ति, कच्चे माल तथा अन्य वस्तुओ में मितव्ययता, बहुत सी स्थानापन्न वस्तुओ का प्रयोग, उत्पत्ति एव कार्यक्रमो के गुण मे उन्नत करना—ये सभी सिद्धान्त श्रम की उत्पत्ति को बढाने तथा कीमत मे कमी करने मे सहायता करेगे। जब तक वे नीतियाँ निर्धारित करने मे सामर्थ्यवान हैं, वर्गों तथा जन समूह की राजनैतिक चेतना को उन्नति करना चहिए तथा जनता को सन् १९५९ की योजना के बडे राजनैतिक महत्त्व का अनुभव करना चाहिए और उन समस्याओ से अवगत कराना चाहिए जो आगे आने वाली हैं, तथा जनता को चरम सीमा तक प्रोत्साहित करना चाहिए, उन्हे नवीन पद्धतियो तथा साधनो का अनुसधान करना चाहिए, जिससे कि उत्पत्ति बढेगी तथा मितव्ययिता मे भी वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, देश भर की सभी खानो मे कोयले का औसत दैनिक उत्पादन, सन १९५९ की जनवरी तथा फरवरी मे ९९०,००० टन था लेकिन नवीन प्रावधिक पद्धतियो पर केन्द्रीत प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रावधिक क्रान्ति—जो कर्मचारियो मे मार्च मे आरम्भ हुई—के फलस्वरूप इस महीने मे औसत दैनिक उत्पादन १,१३०,००० टन तक पहुँच गया। इस प्रकार इस वर्ष की प्रथम तिमाही का जो कार्य निर्धारित हुआ था वह पूरा हो गया। इसी प्रकार का जन आन्दोलन कोयला तथा अन्य उद्योगो, कृषि तथा यातायात मे भी आरम्भ हो रहा है। अब वे वर्ष की दूसरी तिमाही के प्रारम्भिक भाग मे है जो कि वार्षिक योजना की पूर्ति का निश्चित समय है। उन्हे आदर्श एव राजनैतिक दोनो ही दृष्टियो से हर कर्मचारी, कृषक, बुद्धिजीवी व देश भक्त नागरिको की शक्ति को, देश के प्रत्येक भाग मे, तुरन्त देश व्यापी आन्दोलन शुरू करने के लिए तथा मितव्ययिता को व्यवहार मे लाने के लिए, प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हे विश्वास है कि यदि वे ऐसा आन्दोलन छेड़ते हैं तथा उसे अन्त तक जारी रखते हैं तो वे निश्चय ही सन् १९५९ की योजना को, राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए, सामर्थ्यवान हो सकेंगे।

अध्याय २४

आदर्श नियोजन : सोवियत संघ[1]
(Planning Model : U. S. S. R)

१—रूस की सप्तवर्षीय योजना की मौलिक विशेषतायें[2]
(Basic Features of the Soviet Seven Year Plan)

समाजवादी निर्माण के प्रत्येक पहलू पर, सोवियत सघ के प्रभावशाली विकास, सोवियत राज्यो का एकीकरण (Consolidation of Soviet State) का कार्य एव उसकी अर्थव्यवस्था सदैव सफलतापूर्वक सुलझाई गई है, क्योंकि साम्यवादी दल समाज के विकास के लिए मार्क्सवाद, लेनिनवाद के सिद्धान्तो को मौलिक सिद्धान्त मानता है, जिससे कर्मचारियो के वृहत समूह के रचनात्मक कार्यो एव प्रारम्भिक (Initiative) कार्यों म सहायता मिलती है तथा राजकीय आर्थिक योजनाओ म, समाजवादी तथा साम्यवादी निर्माण के मुख्य प्रश्न एव उन्हे हल करने के उपाय तथा साधनो का ठीक तरह से निर्धारित करना है।

सोवियत सघ के समाजवादी निर्माण ने यह निश्चयपूर्वक सिद्ध कर दिया है कि समाजवादी पद्धतियो पर आधारित अर्थव्यवस्था को सफल बनाने के लिए दीर्घकालीन तथा सगठित राजकीय योजनाओ की आवश्यकता है। लेनिन ने—जिसकी, प्रतिभा ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजन के विचारो को जन्म दिया था, जिसने समाजवादी नियोजन के मौलिक सिद्धान्तो को ढूढ निकाला तथा आर्थिक विकास के लिए प्रथम दीर्घ श्रेणी वाली योजना (Long Range Plan) को प्रेरित एव सगठित किया—गम्भीरता पूर्वक वैज्ञानिक ढग से रूस के विद्युतीकरण (Electri-

---

1 [Courtesy the Embassy of the U S S R in India, and the Information Department of U S S R in India, New Delhi]

2 New Soviet Seven Year Plan Thesis of N S Khrushchov's Report to 21st C P S V Congress Published by the Information Dept of U S S R Embassy in India, New Delhi

fication) के लिए प्रसिद्ध (GOERO) योजना को सगठित किया। लेनिन द्वारा ही प्रसिद्ध सहकारी योजना के अन्तर्गत कृषि का समाजवादी रूप म परिवर्तन किया गया। साम्यवादी दल ने लेनिन के आर्थिक नियोजन के विचारो को पचवर्षीय योजनाओ की आधारशिला माना। उनकी सफल अनुभूति ने आर्थिक प्रगति मे द्रुत गति से बढने का आश्वासन दिया एव रूस को शक्तिशाली समाजवादी औद्योगिक देश बना दिया, तथा उसे सामूहिक कृषि-शक्ति मे परिवर्तित कर दिया। सोवियत सघ के द्रुत आर्थिक उत्थान के बहुमूल्य अनुभव ने—जो राजकीय योजनाओं पर आधारित है—अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति एव मान्यता प्राप्त कर ली है।

वर्तमान परिस्थितियो मे, जब सोवियत सघ की अर्थव्यवस्था एक नवीन विकास के शिखर पर पहुँची, तो साम्यवादी दल ने अपने २० वें अधिवेशन मे दीर्घ श्रेणी (Long Range) की योजनाओ की अवधि को और बढाने के लिए बल दिया।

इस योजना के मुख्य उद्देश्य एव विचारधारा सोवियत सघ की उच्च सोवियत (Supreme Soviet) के अधिवेशन मे निर्धारित किये गये थे, जो कि अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति (Great October Socialist Revolution) की ४० वी वर्षगांठ को समर्पित किये गये।

यह अनुमान किया जाता है कि सोवियत सघ के आर्थिक विकास के आगामी १५ वर्षो मे देश के उद्योग धन्धे दूने हो जायेंगे तथा उत्पादन तिगुना हो जायेगा। इसके अतिरिक्त सन १९५७ ई० की तुलना मे खनिज लोहे (Iron ore) का उत्पादन ३ ५ गुना, तेल का चार गुना, गैस का १३ से १५ गुना तर्क, कच्चे लोहे एव फौलाद (Pig Iron & steel) का २·३ गुना, विद्युत का ४ ३ गुना तथा सीमेंट आदि का ४ गुने से भी अधिक, बढ जायेगा। कृषि के सभी क्षेत्रो मे तीव्र विकास का आश्वासन दिया गया है ताकि उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि हो सके, एव सोवियत सघ के लोगो की आवश्यक आवश्यकताओ को पूर्णरूपेण सन्तुष्ट किया जा सके। आगामी १५ वर्षों मे आर्थिक विकास का कार्यक्रम सोवियत सघ मे साम्यवाद के निर्माण का आर्थिक कार्यक्रम है।

१९५९-६५ आर्थिक विकास के उद्देश्य जो इस दीर्घकालीन योजना के अभिन्न अग हैं सोवियत सघ के साम्यवादी दल (C.P S U) के २१ वें अधिवेशन मे उसके समक्ष रक्खे जा रहे हैं। कार्यक्रम का एक बडा भाग, जो १५ वर्षों के कार्यक्रम मे आता है, सन् १९५९ से १९६६ तक के समय मे ही कर लिया जायगा।

आगामी ७ वर्षों की मुख्य समस्या, आर्थिक प्रगति को समाजवाद तथा पूँजीवाद के बीच शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता म अधिक से अधिक प्राप्ति करके साम्यवाद की ओर जोडना है अर्थात् पूँजीवाद पर विजय प्राप्त करके पूर्ण साम्यवाद का प्रसार करना है।

विकास के कार्यो मे समाजवादी अर्थव्यवस्था को सदैव उच्च स्थान दिया गया है और दिया जाता है। जब सन् १९१३ के औद्योगिक उत्पादन के स्तर को पुन. प्राप्त करके अर्थव्यवस्था के पुन निर्माण के मौलिक तत्वो की ओर अग्रसर हुए, तथा उनको पचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्रारम्भ किया तो सोवियत सघ ससार' के अत्यधिक विकसित पूँजीवादी देशो से ५० से १०० वर्ष तक पीछे था। १० से १२ वर्षो मे रूस अपने एक सदी पिछड़ेपन को दूर कर, आगे बढ गया तथा एक महान् समाजवादी शक्ति बन गया और अपनी महान् उपलब्धियो, स्वतन्त्रता एव आत्मनिर्भरता की रक्षा करने के योग्य हो गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध मे सोवियत सघ की अर्थव्यवस्था को महान् क्षति पहुँचने के पश्चात भी—'देशभक्ति के युद्ध' के समाप्त होने के २ या २॥ वर्ष पश्चात्—सोवियत सघ के औद्योगिक उत्पादन का स्तर फिर १९४० अर्थात् युद्ध के पूर्व के स्तर पर आ गया, तथा अगले दस वर्षों मे चार गुने से भी अधिक बढ गया।

अगले ७ वर्षो मे, सोवियत सघ की अर्थव्यवस्था तथा उसके सभी अग, मुख्य रूप से, भारी उद्योग जारी रहेगे, ताकि अमेरिका सहित सभी पूँजीवादी देशो के समान बहुमुखी आर्थिक विकास हो सके। उनका ध्येय, समाजवाद के वर्तमान स्तर से भी श्रेष्ठ समाजवाद का निर्माण करके उसकी प्रगति को साम्यवाद की ओर अग्रसर करने तथा अन्त मे सोवियत सघ की जनता के हित के लिए आर्थिक शक्तियो मे वृद्धि करना है।

सप्तवर्षीय योजना, प्रगतिशील अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे अत्यधिक परिवर्तन लाने पर आधारित है। यह केवल आर्थिक उत्थान को पहले से तीव्र गति देने का ही आश्वासन नही देती है, बल्कि सबसे अधिक विकसित पूँजीवादी देशो की तुलना मे, उत्पादन—जो उद्योगो की कुँजी है—के परिमाण एव कृषि मे बहुत वृद्धि का परिचायक है। उत्पत्ति की शक्तियो के सात वर्ष के द्रुत विकास का ही यह परिणाम है कि देशवासियों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने वाली समस्या का कार्य पर्याप्त सीमा तक हल हो जायेगा तथा वह आवश्यक भौतिक सुविधाओ को उत्पन्न करने मे सफल हो सकेगा—"तथा जो समाज के सभी सदस्यो के सर्वतोन्मुखी विकास एव सभी दृष्टियो से समृद्ध होने का आश्वासन देगी।"[1]

आगामी १५ वर्षो मे सोवियत सघ सम्पूर्ण उत्पत्ति की मात्रा मे ही नही, अपितु प्रति व्यक्ति आय मे भी प्रथम स्थान प्राप्त करेगा तथा वहाँ साम्यवाद के भौतिक एव प्राविधिक आधार भी स्थापित हो चुके होगे।

---

1 For ensuring the full well being and free all round development of all members of Society V I Lenin, Collected Works, Vol. VI, p 37.

२—समाजवादी उद्योग का विकास
(Development of Socialist Industry)

कुल औद्योगिक उत्पादन—सन् १९५८ की तुलना मे १९६५ ई० मे लगभग ८० प्रतिशत बढेगा। इस वृद्धि मे यह उत्पादन भी सम्मिलित है

(क) उत्पत्ति के साधनो का उत्पादन ८५ से ८८ प्रतिशत बढेगा तथा,

(ख) उपभोक्ता की वस्तुओ का उत्पादन ६२ से ६५ प्रतिशत तक बढेगा। सन् १९५९-६५ मे सम्पूर्ण उद्योग के कुल उत्पादन की वार्षिक औसत वृद्धि ८६ प्रतिशत के लगभग होगी, जबकि पहले की सात वर्षों मे वृद्धि केवल ९०,००० मिलियन रूबल्स ही हुई।

(क) भारी उद्योग

(१) **लोहा एव इस्पात उद्योग**—योजना मे यह कहा गया है कि सन् १९६५ मे ६५ ७० मिलियन टन कच्चा कोयला उत्पन्न किया जायेगा, अर्थात् १९५८ से ६५·७७ प्रतिशत अधिक, इस्पात ८६ ९१ मिलियन टन, यानी ५६ ६५ प्रतिशत अधिक, धातु ६५·७० मिलियन टन अथवा १९५८ से ५२·६४ प्रतिशत अधिक, खनिज लोहा (Dressed iron ore) १५०-१६० मिलियन टन (२३०-२४५ मिलियन टन अशुद्ध खनिज लोहा) सन् १९५९-६५ मे वार्षिक औसत वृद्धि, कच्चे लोहे (Pig iron) मे, सन् १९५२-१९५८ के २ ५ मिलियन टन के स्थान पर ३ ६-४ ४ मिलियन टन होगी, इस्पात मे १९५२-५८ की ३ ४ मिलियन टन वृद्धि के स्थान पर ४·४-५·१ मिलियन टन होगी, Rolled Metals की १९५२-५८ की २·७ मिलियन टन वृद्धि के स्थान पर ३ २-३ ६ मिलियन टन वृद्धि हुई, तथा खनिज लोहे की वृद्धि १९५२ ५८ की ६·२ मिलियन टन की वृद्धि के स्थान पर ९-१०·३ मिलियन टन हुई। 'विद्युत स्पात' का उत्पादन १ ७२ गुना अधिक हो जायगा, चद्दर का स्पात लगभग दुगुना हो जायेगा।

ऐसा विचार है कि सन् १९५९-६५ मे १९५१-१९५८ के १६·१ मिलियन अधिकार दिये हुए कच्चे लोहे के उत्पादन के स्थान पर २४ ३० मिलियन टन कच्चा लोहा उत्पन्न करने की आज्ञा दे दी जायगी, इस्पात सन् १९५२-५८ के १२·४ मिलियन टन की अपेक्षा २८ ३६ मिलियन टन, Rolled Metal सन् १९५२-५८ के ६ ६ मिलियन टन के स्थान पर २३-२८ मिलियन टन उत्पन्न होगा।

२—लोहेतर धातुओं का उद्योग (Non-ferrous Metals Industry)

सन् १९५८ की तुलना मे, लक्ष्याङ्क इस प्रकार हैं, एलमोनियम के उत्पादन मे २·८ गुनी वृद्धि, शुद्ध ताँबे के उत्पादन मे १ ९ गुनी वृद्धि तथा कलई, मैगनेशियम, टिटेनियम, जर्मेनियम और सिलीकान के उत्पादन म भी वृद्धि होगी। लोहतर (Non ferrous) सम्बन्धी, विशेषकर अन्य धातुओ मे भी औरो की तरह वृद्धि होगी। एलमोनियम के उद्योग मे बडी तेजी से विकास होगा।

अन्य खुले साधनो द्वारा लोहेतर (Non-ferrous) खनिज धातुओ का उत्पादन, सात वर्षो मे २·८ गुने से अधिक बढ जायगा तथा १९६५ में कुल खनिज धातु का उत्पादन ६५ प्रतिशत होगा। सोवियत सघ मे हीरो का उत्पादन, सन् १९६५ मे १९५८ की अपेक्षा, लगभग १४ गुने से भी अधिक बढ जायेगा।

(३) रसायनिक उद्योग (Chemical Industry) रसायनो का उत्पादन लगभग ३ गुना बढ जायगा। मिलावट (Synthetic) की वस्तुओ की उत्पत्ति मे भी वृद्धि होनी है, रासायनिक तन्तुओ की उत्पत्ति मे ३·८-४ गुनी वृद्धि होगी। मिलावट के मूल्यवान तन्तुओ को मिलाकर १२-१४ गुनी वृद्धि होनी है, प्लास्टिक तथा मिलावट की रेजिन्श (Synthetic resins) मे ६·७ गुनी वृद्धि होगी।

(४) ईधन उद्योग (Fuel Industry)

सन् १९६५ मे तेल एव गैस का भाग, कुल ईधन के उत्पादन मे, वर्तमान उत्पादन के ३१ प्रतिशत भाग के स्थान पर ५१ प्रतिशत हो जायगा, तथा कोयले का भाग ५६ प्रतिशत रह जायेगा। तेल के उद्योग मे योजनानुसार सन् १९६५ मे २२०-२४० मिलियन टन, अर्थात् १९५८ की अपेक्षा दूने से भी अधिक हो जायगा। तेल की वार्षिक औसत वृद्धि मे सन् १९५१-५५ के ६ ६ मिलियन टन तथा सन् १९५६-५८ के १४ २ मिलियम टन के स्थान पर १६·७ मिलियन टन एव १७·८ मिलियन टन की क्षमता वृद्धि होगी। तेल को शुद्ध करने की क्षमता मे सन् १९५९-१९६५ मे २ १-२ २ गुनी वृद्धि होगी। गैस उद्योग मे गैस का उत्पादन सन् १९५८ के ३०,००० मिलियन क्यूबिक मीटर के स्थान पर सन् १९६५ मे १५०,००० मिलियन क्यूबिक मीटर हो जायगा अथवा ५ गुने के लगभग हो जायगा। कोयला उद्योग मे सन् १९६५ मे, सन् १९५८ की अपेक्षा २०-२३ प्रतिशत यानी ५९६-६०९ मिलियन टन तक वृद्धि हो जायगी तथा सबसे अधिक, 'कम खर्च होने वाले कोयले' के उत्पादन मे, (यूराल को छोडकर) देश के पूर्वी भागो मे ४२-४५ प्रतिशत की वृद्धि होगी, 'खाना बनाने वाले कोयले' के उत्पादन मे ६० से ६६ प्रतिशत वृद्धि होनी है अर्थात् १९६५ मे १५०-१५६ मिलियन टन हो जायेगा।

(५) विद्युतीकरण (Electrification) :

सन् १९६५ मे, विद्युत शक्ति का उत्पादन देश मे ५००,००० मिलियन किलोवाट यानी दुगुना हो जायगा तथा विद्युत शक्ति के 'प्लाट्स' की क्षमता मे दुगुनी वृद्धि होगी। थर्मल टरबाइन्स की क्षमता मे, सप्तवर्षीय योजना काल के अन्त तक, २ ३-२ ४ गुनी वृद्धि हो जायगी। विद्युत ग्रिड्स के विस्तार को भी लगभग ३५'५०० किलोवाल्ट टेन्शन यानी २ ५-३ गुना बढाने का विचार किया गया है।

(६) कलों का निर्माण (Machine Building) :

बडी कलों और औजारो (Major type of Machines and Instruments) की योजना निम्न प्रकार है

	१९६५ मे वृद्धि	१९५८ की तुलना मे
धातु काटने की कल व औजार (हजारो मे)	१६० २००	१ ४-१ ५ गुना
विशेष प्रकार के तथा कुल कल औजारो का योग (हजारो मे)	३८	२ गुना
दबाने एव छापने की कल (हजारो मे)	३६ २	१ ५ गुना
स्वतः तथा अर्द्ध-स्वत चलने वाली कलो का पूर्ण सैट	२५०-२७१	१ ९ २ १ गुना
सूक्ष्म औजार (मिलियन रुबल्स)	१८,५००-१६,२००	२ ५-२ ६ गुना
गणना करने वाली एव आँकडे करने वाली कलें (मिलयन रुबल्स)	२०,००-२,१००	४ ५-४ ७ गुना
वायु चालित यन्त्र मिलयन किलोवाट)	१८७ २० ४	२ ८-३ गुना
वायु चालित यन्त्रो के उत्पन्न करने वाले यन्त्र (मिलियन किलोवाट मे)	१७ ५-१८ ४	३-३ २ गुना
वर्तमान विद्युत यन्त्रो के बदलने के यन्त्र (मिलियन किलोवाट म)	३२-३४	२ २-२ ४ गुना
कारखानो के घूमने वाले औजार (हजार टन म)	३,५००-३,७००	३ ३-३ ५ गुना
रासायनिक औजार (मिलियन रुबल्स)	२,५००	२ २ गुना
खाद्य, एव खाद्य कारखानो के उद्योगो के प्राविधिक औजार (मिलियन रुबल्स)	३,८००-४ १००	२ १ २ ३ गुना
मोटर गाडियाँ (हजारो मे)	७५० ८५६	१ ५ १'७ गुना
ट्रैक, लादन, तथा डीजल के कारखान की इकाइयाँ (मिलियन अश्वशक्ति)	२,५००-२,७००	२'३-२ ५ गुना
	८ ४-९'०	२ ८ ३ गुना

सीमेन्ट उद्योग के लिए प्राविधिक औजार (हजारों में)	१८०-२२०	२·१-२·६ गुना
ढलाई करने के उत्पादन के लिए प्राविधिक औजार (मिलियन रूबल्स)	३६०-४१०	२·३ गुना

(७) टिम्बर, कागज एवं लकड़ी का उद्योग .

छोटे उत्पादकों को न गिनते हुए, कुल लकडी (Timber) का चीरना सन् १९५८ की तुलना में १९६५ में ३२२ मिलियन क्यूबिक मीटर से ३७२-३७८ मिलियन क्यूबिक मीटर हो जायगा ।

व्यापारिक लकडी का चीरना सन् १९६५ में २७५-२८० मिलियन क्यूबिक मीटर हो जायगा ।

कारखानों में चिरी हुई लकड़ी की उत्पत्ति, सन् १९५८ को ६८ ६ मिलियन क्यूबिक मीटर से बढ़ कर सन् १९६५ में ९२·९५ मिलियन क्यूबिक मीटर हो जायगी । उत्तर एवं साइबेरिया के लकड़ी वाले क्षेत्र में लकड़ी का चीरना १·८ गुना अधिक हो जायगा । सन् १९६५ में फर्नीचर का निर्माण १८,००० मिलियन रूबल्स हो जायगा अथवा सन् १९५८ की अपेक्षा २ ४ गुना अधिक हो जायगा । ऐसी योजना बनाई गई है कि सन् १९६५ में सैल्यूलोज की उत्पत्ति लगभग ४ ८ मिलियन टन होगी अथवा सन् १९६२ की उत्पत्ति से २·३ गुनी अधिक होगी, बनावटी रेशे (Artificial fabrics) की उत्पत्ति मे, उद्योग की आवश्यकता की पूर्ति का आश्वासन दिलाने के लिए विस्कोस सैल्यूलोज की उत्पत्ति, सन् १९६५ मे ५८०,००० टन करनी पड़ेगी यानी सन् १९५८ से ४ ५ गुनी अधिक हो जायगी । सन् १९६५ मे कागज की उत्पत्ति ३·५ मिलियन टन होगी यानी सन् १९५८ की अपेक्षा १·६ गुनी अधिक, कार्डबोर्ड लगभग २·८ मि० टन उत्पन्न किया जायगा अर्थात् सन् १९५८ की अपेक्षा ४ गुना अधिक उत्पादन होगा । बाँधने के लिए प्रयोग मे आने वाले कार्डबोर्ड का उत्पादन सन् १९५८ के ७०,००० टन के स्थान पर १९६५ में १,५००,००० टन हो जायगा । अखबारी कागज की उत्पत्ति सन् १९५८ से १ ८ गुनी अधिक हो जायगी ।

उपभोक्ता वस्तुओं की उत्पत्ति

(८) हल्के उद्योग—हल्के उद्योग का कुल उत्पादन ७ वर्षों म लगभग १·५ गुना अधिक हो जायगा । हल्के उद्योग की प्रमुख वस्तुओं की उत्पत्ति की योजना निम्न प्रकार बनाई गई है :

		१९५८	१९६५ प्रत्याशित पूर्ति	१९६५ १९५८ के प्रतिशत मे
सूती कपडा	(मिलियन मीटर)	५,८००	७,७००-८,०००	१३३-१३८
ऊनी कपडा	(मिलियन मीटर)	३००	५००	१६७
लिनन कपडा	(मिलियन मीटर)	४८०	६३५	१३२
रेशमी कपडा	(मिलियन मीटर)	८१४	१,४८५	१८२
बनियान व मोजे आदि	(मिलियन मीटर)	८८२	१,२५०	१४२
बिन हुए अण्डरवीअर	(मिलियन)	३९२	७८०	१९९
बिने हुए वस्त्र	(मिलियन)	९५	१६०	१६८
चमडे के जूते	(मिलियन जोडे)	३५५	५१५	१४५

(९) खाद्य-उद्योग—लक्ष्याङ्क, खाद्य उद्योग की प्रमुख पैदावार के निम्नलिखित उत्पादन को प्रकट करते है .

	१९५८	१९६५ प्रत्याशित पूर्ति	१९६५, १९५८ के प्रतिशत मे
गोश्त, राज्य के कच्चे माल के स्रोतो की प्रथम कोटि की सहायक उत्पत्ति सहित (हजार टन) ।	२,८३०	६,१३०	२१७
मक्खन, राज्य के कच्चे माल के स्रोतो मे (हजार टन) ।	६२७	१,००६	१६०
दूध के रूप मे डेरी-उत्पादन (हजार टन) ।	६,०१७	१३,५४६	२२५
चुकन्दर से उत्पन्न दानदार चीनी (हजार टन) ।	५,१५०	९,२५०-१०,०००	१८०-१९४
वनस्पति तेल, राज्य के कच्चे माल के स्रोतो से (हजार टन) ।	१,२२१	१,९७५	१६२
मछली पकडना (हजार टन) ।	२,८५०	४,६२६	१६२
इथाईल एल्कोहल (मिलियन डिकेलीटर्स) ।	१५८ ८	२०२ ८	१२८
खाने योग्य पदार्थों सहित कच्चे माल से उत्पन्न मादक पदार्थ (मिलियन डिकेलीटर्स)।	१११ ७	१००	९०

(१०) घरेलू वस्तुओं की उत्पत्ति—घरेलू वस्तुओ तथा मशीनो एव औजारो का उत्पादन, जो गृहणियो के कार्य को हलका करेगा, दूना हो जायगा तथा सन् १९६५ मे ८८,००० मिलियन रूबल्स हो जायगा । फर्नीचर के उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि होगी, सिलाइ की मशीनें, रैफ्रीजिरेटर, कपडे धोने की मशीनें, डिश वाशर्स, रेडियो, तथा वेनार के तार, घडियो, साइकिलो, मोटर साइकिलो, टैलीविजन तथा

मोटरो, स्कूटरो एव बिजली के घरेलू औजारो, इन सभी के उत्पादन मे समुचित रूप से वृद्धि होगी।

३—समाजवादी कृषि का विकास
(Developement of Socialist Agriculture)

सोवियत सघ की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के सन् १९५९–१९६५ के लक्ष्याङ्क का प्रारूप निम्नलिखित विषयो पर प्रकाश डालता है —

अनाज के उत्पादन को और अधिक विस्तृत करना, जिससे सात वर्ष के अन्त तक अनाज की फसल १०,००० मिलियन पौण्ड प्रति वर्ष तक हो सके।

सन् १९६५ में प्रमुख औद्योगिक फसल की उत्पत्ति में निम्न प्रकार से वृद्धि की जा सके—रुई ५·७ से ६·७ मिलियन टन अथवा सन् १९५७ से ३५–४५ प्रतिशत अधिक, तेल प्रदान करने वाले बीज लगभग ५·५ मिलियन टन अथवा ७० प्रतिशत अधिक, चुकन्दर ७०-७८ मिलियन टन अथवा सन् १९५७ से १·८ या २ गुना अधिक, सन् की वस्तुए ५८०,००० टन यानी सन् १९५७ स ३२ प्रतिशत अधिक।

सन् १९६५ म आलू की कुल फसल म सन् १९५७ के लगभग ८८ मिलियन टन के स्थान पर १४७ मिलियन टन तथा सब्जियो की उत्पादित मात्रा मे जनसख्या की आवश्यकताओ को पूर्णत सन्तुष्ट करने के लिए वृद्धि होगी।

फलो तथा कन्दमूल फल इत्यादि की उत्पत्ति में ७ वर्ष मे कम से कम दुगुनी वृद्धि, अगूर में कम से कम चार गुनी वृद्धि होगी।

सन् १९५८ की तुलना म, सन् १९६५ म मुख्य पशु-उत्पत्ति के उत्पादन मे वृद्धि इस प्रकार होगी गोश्त (कटे हुए की तौल) ६,०००,००० टन अथवा सन् १९५८ का दुगुना, दूध १००–१०५ मिलियन टन यानी सन् १९५८ का १·७–१·८ गुना, ऊन लगभग ५४८,००० टन अथवा १·७ गुना तथा अण्डे ३७००० मिलियन अथवा सन् १९५८ का १·६ गुना है।

सन् १९६५ मे, कृषि का कुल उत्पादन सन् १९५८ की तुलना म—जैसा कि निम्नलिखित अको म प्रदर्शित किया गया है—१·७ गुना अधिक हो जायगा।

खेती के प्रति सौ हैक्टर्स (Hectors)

(Metric Centuners)

	सोवियत सघ सन् १९६५	सयुक्त राष्ट्र अमेरिका सन् १९५७
अनाज	३२९–३६०	२८०
आलू	२९४	१९
चीनी	१८·५-२०	४१
गोश्त (कटे हुए की वजन)	३२	२६

दूध	२००–२१०	१०१
ऊन	१·१	०·२

(२) फसलों की उत्पत्ति—आगामी सात वर्षों के समय मे फसल की उत्पत्ति का द्रुत गति से विस्तार करना है। आगामी वर्षों मे भी फसल की उत्पत्ति के विकास के लिए, अनाज के उत्पादन को सबसे अधिक बढाना, कृषि उत्पत्ति का मुख्य आधार होगा। सोवियत सघ की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लक्ष्यांक, कृषि के लिए खाद की पूर्ति सन् १९५८ की १०·३ मिलियन टन के स्थान पर सन् १९६५ मे ३१,०००,००० टन प्रकट करते है।

(३) पशु-पालन—आगामी सात वर्षो मे पशु-पालन द्वारा गोश्त, दूध, अण्डे तथा ऊन मे वृद्धि करनी है। सन् १९५२-१९५८ मे गोश्त की उत्पत्ति के वार्षिक औसत का परिमाण लगभग ५००,००० टन (कट हुए गोश्त का वजन) था। सन् १९५९ से ६५ मे यह १,१००,००० टन से भी अधिक हो जायगा, दूध ३,१००,००० से ५,९००,०००–६,६००,००० टन एव ऊन १८,००० टन से ३३,००० टन हो जायगी। सामूहिक कृषि मे प्रति गाय के दूध मे कम से कम २,६०० किलोग्राम की वृद्धि होनी है। सन् १९५२-१९५८ की पशुओ की औसत वार्षिक वृद्धि की अपेक्षा सन् १९५९-६५ मे ३·२ गुनी हो जायगी जिसमे गायो की ३ २ गुनी तथा भेडो की लगभग दुगुनी वृद्धि सम्मिलित है।

अनाज की उत्पत्ति की नियोजित वृद्धि के फलस्वरूप सन् १९६५ मे, पशुओ के लिए ८५–९० मिलियन टन चारा प्राप्त हो सकेगा। साथ ही साथ घास की उत्पत्ति मे भी कम से कम दुगुनी वृद्धि तथा साइलेज (Silage) मे कम से कम चार गुनी वृद्धि होनी चाहिए और आलुओ के उत्पादन मे सन् १९५७ की अपेक्षा लगभग दुगुनी वृद्धि होनी चाहिए।

(४) कृषि की पैदावार की प्राप्ति (Procurement of Agricultural products)

लक्ष्यांक प्रदर्शित करते हैं कि मौलिक कृषि की पैदावार की प्राप्ति मे सन् १९६५ मे निम्न प्रकार से वृद्धि होगी

	१९६५ (हजार टनो मे)	१९६५ १९५७ का प्रतिशत
रुई	५,७००—६,१००	१३५–१४५
चुकन्दर	७०,०००–७८,०००	१८०–२००
तेल वाले बीज	३,५६०	१८०
आलू	११,७२०	१४८
सन की वस्तुयें	५३०	१३७
गोश्त	११,०५०	२·२

दूध	४०,६१०	२ गुना
ऊन	५४०	१'६ गुना
अण्डे (मिलियन)	१०,०००	२'३ गुना

(५) राजकीय कृषि का विकास (Developement of State farms)—

अगले सात वर्षों मे राजकीय कृषि क्षेत्रो, विशेषकर बंजर भूमि के विकास क्षेत्रो मे, गृह निर्माण तथा फार्मो से लगे हुए घर बनवाने की योजना बनाई गई है। सन् १६६५ में सन् १६५७ की तुलना मे, अनाज उत्पन्न करने की कीमत को कम से कम ३० प्रतिशत, तथा गोश्त मे १६ प्रतिशत, दूध मे २३ प्रतिशत, ऊन मे ८ प्रतिशत, रुई में २० प्रतिशत कीमत घटायी जाय। राजकीय कृषि का विकास करने तथा राजकीय कृषि मे उच्च लाभ का आश्वासन देने के लिए ऐसी योजना बनाई गई है कि मशीनों की पूर्ति तथा उनके सामान एवं खाद सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति मे समुचित रूप से वृद्धि की जा सके। राजकीय कृषि मे विशेष अनुसन्धान, कुछ निश्चित पैदावारो को प्रभावित करेगा।

(६) कृषि का यन्त्रीकरण तथा विद्युतीकरण (Mechanisation and Electrification of Agriculture)—उत्पत्ति के विस्तार के लिए अधिकतम यन्त्रीकरण एवं विद्युतीकरण, सामूहिक कृषि का आधुनिकतम उपकरण का प्रबन्ध, सन् १६५६-६५ के कृषि के विकास की पूर्ति के लिए निर्णायक परिस्थिति है।

सात वर्षो मे कृषि के लिए एक मिलियन ट्रैक्टर, लगभग ४००,००० अनाज की मिश्रित फसल काटने वाली मशीन तथा अन्य कल एवं उपकरण और देश के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रयुक्त किये जाने वाले कृषि के मिश्रित यन्त्रो की बड़ी सख्या मे उपलब्ध करने की योजना बनाई है।

कृषि के विद्युतीकरण के लिए सन् १६५६-१६६५ मे विस्तृत क्षेत्र होगा। सात वर्ष के अन्त तक देश के सभी सामूहिक कृषि क्षेत्रों में विद्युतीकरण की व्यवस्था पूरा करने की कल्पना की गई है जबकि राजकीय कृषि क्षेत्रो का विद्युतीकरण, मरम्मत एवं प्राविधिक सेवा केन्द्रो की व्यवस्था की पूर्ति और शीघ्र हो जायगी। सामूहिक कृषि क्षेत्रो मे विद्युतीकरण की व्यवस्था करने से कार्य का परिमाण सन् १६५२-५८ के कार्य से इन सात वर्षो मे यानी १६६५ मे २५ गुना अधिक होगा। सात वर्षो म कृषि क्षेत्रो मे विद्युतशक्ति का उपभोग लगभग ४ गुना बढ जायेगा। राजकीय कृषि क्षेत्रो तथा सामूहिक कृषि क्षेत्रो को राजकीय विद्युत शक्ति प्रणाली एवं विद्युत केन्द्रो से बिजली देने का प्रबन्ध किया गया है। सामूहिक कृषि क्षेत्र तथा राजकीय कृषि क्षेत्र, उत्पत्ति मे, विद्युत शक्ति का प्रयोग अधिक विस्तृत रूप से करेंगे।

(७) वन (Forests)—इमारती लकडी के स्रोतो को इस प्रकार प्रयोग करने की योजना बनाई गई है कि वह केवल देश की वर्तमान आवश्यकताओ को ही पूर्णत: सन्तुष्ट नही करें, बल्कि बचत हो एव वन प्रदेशो को पुनः सुसज्जित किया जा सके।

४—यातायात तथा सवादवाहन का विकास

आगामी सात वर्षो मे, प्रमुख यातायात, विशेषकर रेल गाडी तथा वायुयान यातायात के प्राविधिक क्षेत्र मे मौलिक सुधार होंगे।

(१) आगामी सात वर्षो के समय मे, १८००–१८५० हजार मिलियन टन किलोमीटर अथवा ४० से ४५ प्रतिशत माल गाडियो मे वृद्धि होगी। सन् १९६५ मे, माल गाडियाँ ८५ तथा ८७ प्रतिशत के बीच मे बिजली एव डीजल इजन मे चला करेंगी जबकि सन् १९५८ मे केवल २६ प्रतिशत ही बिजली तथा इजन से चलती थी। बिजली तथा डीजल से चलने वाले इजन लगभग १००,००० किलोमीटर की दूरी तक चलेंगे। मुख्य आर्थिक क्षेत्रो के मध्य यातायात एव सचार को ६,००० किलोमीटर लम्बी लाइनें बिछाने एव द्वितीय श्रेणी के मार्गो मे ८,००० किलोमीटर लम्बी प्रधान लाइन बिछाने की योजना बनाई गई है।

(१) आगामी ७ वर्षो मे, रेल यातायात, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की क्षमता के वर्तमान स्तर को मात करने के लिए, ३४–३७ प्रतिशत बढ जायगा। रेल से माल ढोने के भाडे मे, ७ वर्षो मे, लगभग २२ प्रतिशत की कमी हो जायगी।

(२) आगामी ७ वर्षो मे, सामुद्रिक यातायात मे, जहाज से भाडा–निर्यात एव आयात के द्वारा—लगभग दूना हो जायगा एव सोवियत सघ के व्यापारियों के लिए समुद्री जहाजो मे समुचित वृद्धि होगी। बन्दरगाहो के प्रबन्ध की क्षमता मे ७ वर्ष तक ६० से ७० प्रतिशत तक की वृद्धि होगी। कुल चढाने-उतारने के कार्य मे ७५ प्रतिशत यन्त्रीकरण सम्मिलित है।

(३) नदी–यातायात —अर्थव्यवस्था को सम्पन्न बनाने मे नदी यातायात का बडा ही महत्वपूर्ण भाग होगा। सात वर्ष मे, इससे प्राप्त होने वाला भाडा लगभग १·६ गुना अधिक हो जायगा।

(४) आगामी सात वर्षो मे, 'ट्रक पाइप लाइन' की लम्बाई लगभग तिगुनी हो जायगी, जबकि 'पाइप लाइन' द्वारा किये गये यातायात के परिमाण मे लगभग ५·६ गुनी वृद्धि होगी।

(५) आगामी सात वर्षो मे, मोटर यातायात के भाडे में अनुमानत १·६ गुनी वृद्धि होगी जबकि मोटरो द्वारा ले जाये गये यात्रियो की सख्या तिगुनी से भी अधिक हो जायगी। मोटरो की सम्पूर्ण क्षमता मे ४० प्रतिशत वृद्धि होगी तथा नई तरह की मोटर गाडियो के साथ मोटर सेवा मे वृद्धि की जायगी। बसो की गतिशीलता मे ४·४ गुनी वृद्धि होगी। इन सात वर्षो का प्रधान कार्य, मोटर यातायात

के लिए सडको का वृहत् निर्माण होगा। गत सात वर्षो से १९५९–६५ मे राज्य-व्यापी महत्व की सडको का २·८ गुना अधिक निर्माण करने की योजना बनाई गई है।

(६) द्रुत एव बडे टर्बो जैट तथा टर्बो-प्रोप जहाजो के बनने से, सवारी-यातायात की श्रेणियो मे, वायु-यातायात एक प्रधान अग होगया। इन सात वर्षो मे, वायुयान द्वारा यात्रियो का आवागमन लगभग ६ गुना बढ जायगा। परिवहन का विकास कार्य भविष्य मे भी जारी रहेगा।

५—अर्थ-व्यवस्था में पूंजी-विनियोग तथा पूंजी-निर्माण

आगामी ७ वर्षो मे सम्पूर्ण देश मे, विशेषकर पूर्वी भागो मे, अद्वितीय ढग से निर्माण कार्य होगा। सन् १९५९–६५ मे, पिछले सात वर्षो की तुलना मे, राज्य द्वारा किया गया, पूंजी-विनियोग १·८ गुना अधिक होगा तथा अर्थव्यवस्था में पूंजी विनियोग की लगभग कुल मात्रा —जो सोवियत सघ मे अब तक विद्यमान रही है—के बराबर होगी।

निम्न तालिका पूंजी विनियोग के परिमाण की विशेषताएं स्पष्ट करती है :—

(हजार मिलियन रूबल म और कीमतो की तुलना मे)

	१९५२–५८	१९५९–६५	प्रतिशत मे वृद्धि
अर्थव्यवस्था के लिए योग	१०७२	१,९४०–१,९७०	१८१–१८४
औद्योगिक वस्तुओ का निर्माण	८२१	१,४८८–१,५१३	१८१–१८४
मकानो तथा जनता की सुविधा के लिए निर्माण	२०८	३७५–३८०	१८०–१८३
शैक्षणिक, सास्कृतिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधा की वस्तुओ का निर्माण	४३	७७	१७९

जब सन् १९५९–६५ मे राज्य द्वारा किया गया सामान्य पूंजी-विनियोग, अर्थव्यवस्था मे, १·८ गुना होगा, तो उद्योगो मे किया गया पूंजी-विनियोग, गत ७ वर्षो के पूंजी विनियोग की अपेक्षा दुगुना होगा। लोहा एव इस्पात उद्योग के लिए लगभग १००,००० मिलियन रूबल निश्चित किया गया है। रसायन उद्योग के विकास के लिए १००,०००–१०५,००० मिलियन रूबल रखा गया है। तेल तथा गैस के उद्योग मे १७०,०००–१७३,००० मिलियन रूबल का विनियोग किया जायगा। कोयला-उद्योग के विकास के लिए ७५,०००–७८,००० मिलियन रूबल निश्चित किया गया है। विद्युत शक्ति के 'प्लाण्ट्स', विद्युत ग्रिड्स तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के लिए १२५,०००–१२९,००० मिलियन रूबल निश्चित किया गया है। इमारती लकडी, कागज तथा लकडी के उद्योगो मे कुल ५८,०००–६०,०००

मिलियन रूबल का विनियोग होना है एव ८०,०००--८५ मिलियन हल्के एव खाद्य-उद्योगो मे विनियोग होना है । मकान एव जनता की सुविधाओं के लिए ३७५,०००-३८०,००० मिलियन रूबल व्यय होना है । शिक्षा सस्थाओ, विशेषकर छात्रावास एव शिशु हितकारी सस्थाओं तथा अन्य सास्कृतिक एव सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओ में वृहत् धन राशि व्यय होनी है । राज्य के पूँजी विनियोग का लगभग १५०,००० मिलियन रूबल कृषि पर व्यय होना है ।

प्रारम्भिक अनुमानो के अनुसार सामूहिक कृषि-क्षेत्र, सन् १९५९-६५ मे, २५०,००० मिलियन रूबल, मकानो की निर्माण सुविधाओ, साम्कृतिक तथा सामान्य विकास एव देहात के विकास पर व्यय करने योग्य हो जायेंगे तथा सम्बन्धित उपकरणो के क्रय मे ९५ ००० मिलियन रूबल व्यय होगा । इस प्रकार कृषि मे कुल पूँजी विनियोग, सन् १९५९-६५ मे—राज्य द्वारा एव सामूहिक कृषि क्षत्रो द्वारा—लगभग ५००,००० मि० रूबल होगा । रेल यातायात के विकास के लिए ११०,०००—११५,००० मि० रूबल व्यय करने का अनुमान लगाया गया है ।

निर्माण-उद्योग एव निर्माण सामग्री-उद्योग के विकास पर ११०,०००—११२,००० मिलियन रूबल पूँजी का विनियोग होना है ।

निर्माण के इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए निर्माण-सामग्री-उद्योग का विकास करना होगा । इन उद्देश्यो के लिए लक्ष्यो का प्रारूप (Draft), सन् १९६५ मे ७५-८१ मिलियन टन सीमेन्ट की उत्पत्ति की वृद्धि की ओर सकेत करता है यानी सन् १९५८ के उत्पादन से २ २—२'४ गुना अधिक होगा ।

६—सोवियत संघ के लोगों की समृद्धि में वृद्धि

राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लक्ष्याङ्क, सोवियत सघ की जनसख्या की भौतिक समृद्धि एव सास्कृतिक-स्तर की द्रुत वृद्धि को प्रकट करते हैं, सोवियत सघ की जनता के हित के लिए, सोवियत सरकार एव साम्यवादी दल के अथक परिश्रम तथा सेवा कार्य का स्पष्टीकरण करते है ।

१—राष्ट्रीय आय

सन् १९५८-६५ मे राष्ट्रीय आय मे ६२-६५ प्रतिशत की वृद्धि होगी, तथा इसकी वृद्धि मे सार्वजनिक उपभोग पर भी प्रभाव पडेगा । सात वर्षो मे उपभोग की धनराशि म ६०-६३ प्रतिशत की वृद्धि होगी ।

२—कारखानों एव कार्यालयों के कर्मचारियों की सख्या

राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की सभी शाखाओ मे ११ ५ मिलियन व्यक्तियो की अथवा २१ प्रतिशत की वृद्धि होगी । सात वर्षो के अन्त मे कारखानों एव कार्यालयो के कर्मचारियो की कुल सख्या, राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था मे, ६६० मिलियन व्यक्ति तक पहुँच जायेगी ।

३—कारखानों एव कार्यालयों के कर्मचारियों की वास्तविक आय

कर्मचारियो की मजदूरी, पेन्शन मे वृद्धि, अनुदान एव भविष्य मे कीमतो मे कमी होने के परिणाम स्वरूप, ७ वर्षों मे, उनकी औसतन ४० प्रतिशत का लाभ होगा।

कृषि-उत्पत्ति मे वृद्धि एव उच्च श्रम की उत्पत्ति के आधार पर, कृषको की सामूहिक आय मे भी, सात वर्षों मे, कम से कम ४० प्रतिशत वृद्धि होगी। यह, विशेषकर सामूहिक कृषि क्षेत्रो म, सामान्य कृषि मे विकास होने के कारण होगा।

४—मजदूरी सम्बन्धी नियम

आगामी सात वर्षो मे, उद्योग एव कार्यालयो के कर्मचारियो की मजदूरी के नियमो मे सुधार-कार्य, राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की सभी शाखाओ मे, उद्योग एव कार्यालय कर्मचारियो की मजदूरी मे सामान्य वृद्धि के साथ साथ, पूरा होना चाहिये। उद्योग एव कार्यालय के कम मजदूरी पाने वाले कर्मचारियो की मजदूरी मे सात वर्षो मे, २७०-३५० रूबल से ५००-६०० रूबल प्रति मास हो जायगी।

सन् १९५९-६५ के लक्ष्याङ्को मे प्रदर्शित मापदण्ड कार्य की उन्नत-स्थिति का, औद्योगिक स्वच्छता एव सुरक्षा का, श्रम की परिस्थितियो को साधारण स्तर पर लाने मे नवीनतम वैज्ञानिक एव इजीनियरिंग सम्बन्धी उपलब्धियो के प्रयोग के माध्यम स जोखिम तथा निर्माण-कार्य के कार्यक्रमो का, आश्वासन देते हैं। महिलाओ एव लडको के कार्य की परिस्थितियो मे पर्याप्त उन्नति की जाएगी।

५—शिक्षा एव अन्य सुविधाओ का विस्तार करने के लिए, समुचित धन राशि निश्चित करने का आयोजन किया गया है। उपर्युक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए राज्य का व्यय, सन् १९५८ के २१५,००० मिलियन रूबल की अपेक्षा सन् १९६५ म ३४५,००० मिलियन रूबल के लगभग होगा।

६—लक्ष्याङ्क, पेन्शन प्रणाली को भी और उन्नत करने की पूर्व कल्पना को प्रकट करते हैं। सन् १९६३ तक, कम से कम वेतन को ४००-५०० रूबल प्रतिमास तक बढा देने के साथ ही साथ पेन्शन म वृद्धि करने की आवश्यकता भी उठ खडी होती है। सन् १९६३ तक वृद्धावस्था की कम से कम पेन्शन नगरो म ३०० रूबल से बढकर ४०० रूबल मासिक हो जायगी तथा देहाती क्षेत्रो म २५५ से ३४० रूबल प्रतिमास हो जायगी।

७—सोवियत-सघ के साम्यवादी दल के बीसवें अधिवेशन के निर्णयो को दृष्टि मे रखकर, सन् १९६० तक, कारखानो एव कार्यालयो के कर्मचारियो का दैनिक कार्य करने का समय ७ घण्टे तथा कोयला एव खानो के महत्त्वपूर्ण उद्योगो के कर्मचारियो का—जो भूमि के गर्भ म कार्य करते हैं—दैनिक कार्य करन का समय ६ घण्टे कर दिया जायगा। सन् १९६२ तक, कारखानो एव कार्यालयो के कर्मचारियो का कार्य करने का समय ७ घण्टे प्रतिदिन से घटाकर ४० घण्टे साप्ताहिक कर दिया जायगा। इस प्रकार सोवियत सघ मे बहुमुखी उन्नति प्राप्त होगी।

Appendix I

Percentage Distribution, by Sector, of Planned Public Expenditures in Selected ECAFE Countries[1]

Country	Duration of the Plan	Agriculture and Irrigation	Transport and Communication	Power	Industry and Mining	Social Services	Others
Burma	1952–60	10·8	42 4	23 0	8 2	15 5	—
Ceylon	1954/55–1959/60	36 5	33 1[a]	—	4 4	16 0	10 0[b]
China : Taiwan	1955–56	47 3	8 7	10 4	27 5	—	—
Mainland	1955–57	8 0	11 7	2 8	40 9	18 6	18 0
India	1956/54–1960/61	21 0[b]	29 0	9 0	19 0	20 0	2·0
Nepal	1956–60	22 0	30 0	14 0	8 0	4 0	22 0[b]
Pakistan	1956–60	11 1[c]	20·5	32 5[d]	13 4	23 8	1 7

1 Figures shown for different Countries are not fully comparable because of differences in definition

(a) Public utilities including power

(b) Includes Community development

(c) Excludes expenditures on irrigation

(d) Includes expenditures on irrigation.

[Source *Economic Development and Planning in Asia and the Far East* (United Nations Publication), Nov 1956

Re-quoted from : *New Horizons in Planning*—A Ghosh, p 194]

Appendix II

सरकारी क्षेत्र मे उद्योग और खनिज पदार्थ-सम्बन्धी परियोजनाएं

अ. वे परियोजनाएं जिन पर अमल होरहा है और जो दूसरी योजना की अवधि से आगे लाई गई हैं :

(१) उद्योग :

तीनो इस्पात-सयत्रो (भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर) को पूरा करना।
राउरकेला का उर्वरक-कारखाना।
हतिया, राची मे भारी मशीनो का कारखाना।
हतिया, रांची मे ढलाई और गढ़ाई की उद्योगशाला।
दुर्गापुर मे खनन-मशीनो का कारखाना।
भोपाल म भारो बिजली-उपकरण-परियोजना।
औषध परियोजनाए सनतनगर मे सांश्लेषिक औषध सयत्र, ऋषिकेश के पास ऐंटीबायोटिक्स का कारखाना, केरल मे फाइटो-केमिकल्स, पिंडी के निकट शल्य-क्रिया के औजारों का कारखाना।
पानवल के निकट कार्बनिक अन्तरायक-सयत्र।
हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स का विस्तार।
ट्राम्बे उर्वरक परियोजना।
नहरकटिया उर्वरक-परियोजना।
कोठागुडियम के पास आन्ध्र उवरक परियोजना।

(२) कोयला

राष्ट्रीय कोयला-विकास निगम के कोयला-कार्यक्रम।
भोजूडीह और पाथरडीह म कोयला धोने के केन्द्र।

(३) खनिज पदार्थ

नइवेली लिग्नाइट परियोजना

(अ) उर्वरक-सयत्र।
(आ) ब्रिकेटिंग और कार्बनीकरण सयत्र।
(इ) तापीय बिजली सयत्र।

किरिबुरू खनिज लोहा परियोजना

(४) तेल :

आयल इंडिया—बिना साफ किए तेल के पाइप बिछाना ।

नूनमती और बरौनी के तेल-शोधक कारखाने

आ. नई परियोजनाएँ जिनके लिए विदेशी ऋण का वचन मिल चुका है :

भारी मशीनो के सयत्र का विस्तार ।

खनन-मशीनो के सयत्र का विस्तार ।

दूसरी और तीसरी भारी बिजली-उपकरण-परियोजनाए ।

हतिया मे ढलाई-गढाई उद्योगशाला का विस्तार ।

भिलाई इस्पात-कारखाने का विस्तार ।

भारी मशीनी औजार-परियोजना ।

सूक्ष्म औज़ार-परियोजना ।

चश्मे के कांच की परियाजना ।

कच्ची फिल्म-परियोजना, नीलगिरि ।

घड़ियाँ बनाने की परियोजना ।

इ. योजना मे शामिल नई परियोजनाएँ जिनके लिए अभी तक विदेशों से ऋण का प्रबन्ध नहीं हुआ है .

(१) इस्पात :

(अ) राउरकेला इस्पात-सयन्त्र का विस्तार ।

(आ) दुर्गापुर इस्पात सयत्र का विस्तार ।

(इ) मिश्रधातु और औजारो के इस्पात का सयत्र ।

(ई) बोकारो इस्पात सयत्र ।

(उ) ऊपर (ई) से सम्बन्धित आनुषगिक सुविधाएँ (कोयला, दूसरे खनिज पदार्थ; बिजली और परिवहन) ।

(२) दूसरे उद्योग

भारी ढांचा-विषयक परियोजना ।

हेवी प्लेट एण्ड वेसेल वर्क्स ।

हिन्दुस्तान मशीन टूल्ज, जलाहल्ली का विस्तार ।

भोपाल की भारी बिजली-उपकरण-परियोजना का विस्तार—दूसरा और तीसरा सोपान ।

विशाखापत्तनम के शिपयार्ड का विस्तार और सूखी गोदी का निर्माण ।

होशगाबाद मे सिक्यूरिटी पेपर मिल ।

हिन्दुस्तान केबिल्स, रूपनारायणपुर का विस्तार ।

कोचीन मे दूसरा शिपयार्ड ।

(३) कोयला :

राष्ट्रीय कोयला-विकास-निगम के नए कार्यक्रम ।
सिंगरेनी कोयला-खानों का विस्तार ।
मरम्मत और संरक्षण के लिए केन्द्रीय वर्कशाप ।
केन्द्रीय रोपवे-योजनाएँ ।
कोकिंग कोयले धोने की अतिरिक्त क्षमता ।
नइवेली-खान के उत्पादन का विस्तार ।

(४) दूसरे खनिज पदार्थ .

पाइराइट से गन्धक प्राप्त करने की परियोजना ।
बेलाडिला खनिज लोहा परियोजना ।
सिक्किम में ताँबे के भंडारों का उपयोग ।
खेतरी और दरीबे के ताँबे के भंडारों का उपयोग ।
पन्ना के हीरों का उपयोग ।
कच्चे मैंगनीज के उपयोग के कार्यक्रम ।
भारतीय भूगर्भ-सर्वेक्षण-संस्थान का विस्तार ।
भारतीय खनिज प्रतिष्ठान का विस्तार ।

(५) तेल :

तेल के अन्वेषण और वितरण के कार्यक्रम ।

(६) दूसरे कार्यक्रम .

राज्य सरकारों की परियोजनायें—जैसे, मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स, प्राग टूल्स, नेपा मिल्स, दुर्गापुर कोक ओवन्स का विस्तार तथा कोलार गोल्ड माइनिंग अण्डरटेकिंग का विस्तार ।
बागान-उद्योगों को ऋण के रूप में सहायता ।
दाशमिक प्रणाली की शुरूआत ।
राष्ट्रीय उद्योग-विकास-निगम, राष्ट्रीय उत्पादकता-परिषद् तथा भारतीय मानक-संस्थान के कार्यक्रम ।
पूँजी-विनियोग-निगमों के रूप में काम करने वाली संस्थाओं को ऋण ।
औद्योगिक बस्तियाँ ।

ई. ऐसी परियोजनाएँ, जिन पर आरम्भिक काम चलते रहना चाहिए, ताकि यथा-समय निर्णय किए जा सकें :

(१) उद्योग :

भारी कम्प्रेशर और पम्प-परियोजना ।
बुनियादी उष्मसह-परियोजना ।

वाल और रालर-बेयरिंग की परियोजना।
मशीनी औजारों की अतिरिक्त क्षमता।
दूसरी भारी ढांचा-परियोजना।
दूसरा प्लेट ऐण्ड वेसेल वर्क्स।
समुद्री डीजेल इंजिन-परियोजना।

(२) खनिज पदार्थ .

खनिज तेलों के लिए पाइप लाइनें।
स्नहक तेल-परियोजना।
गैर-कोकिंग कोयला धोने के केन्द्र।
पत्थर के कोयले के लिए कम ताप के कार्बनीकरण-सयन्त्र।
नइवेली लिग्नाइट उच्चताप-कार्बनीकरण-सयन्त्र तथा कच्चे लोहे के उत्पादन के लिए सम्बद्ध सुविधाएँ।

ङ. ऐसी परियोजनाएँ, जिनका स्वरूप आनुषगिक है :

नए खोजे गए तेल के लिए नया शोधन-केन्द्र।
बिना साफ किए हुए तेल के पाइप-लाइन।
तेल-अन्वेषण की भारत-स्टैनवेक-परियोजना मे तथा तेल-उत्पादन के बढाने के लिए आयल इण्डिया के कार्यक्रम मे सरकारी योगदान।
नहरकटिया की प्राकृतिक गैस के लिए पाइप बिछाना।[1]

---

1. तृतीय पचवर्षीय योजना (रूपरेखा), भारत सरकार।

APPENDIX III

भारत में राज्य-उद्योगों की अनुसूची

(A) Banks

(i) The Reserve Bank of India (ii) The State Bank of India

(B) Statutory Corporations

(a) The Life Insurance Corporation (b) Damodar Valley Corporation (c) Central Warehousing Corporation (d) Industrial Finance Corporation (e) Rehabilitation Finance Corporation. (f) Indian Airlines Corporation (g) Air India International

(C) Control Boards

(i) Bhakra Nangal Project (ii) Chambal Valley Project (iii) Nagarjun Sagar Project

(D) Commodity Boards

(a) Coffee Board (b) Tea Board (c) Coir Board (d) Central Silk Board (e) Rubber Board

(E) Boards with Commercial Functions

(i) All India Handicrafts Board (ii) All India Handloom Board

(F) Limited Companies (Private)

I Central Government Undertakings

(1) Ashoka Hotels Ltd (2) Bharat Electronics (P) Ltd. (3) Eastern Shipping Corporation Ltd (4) Export Risks Insurance Corporation (P) Ltd (5) Govt Telephones Board (P) Ltd (6) Heavy Electricals (P) Ltd (7) Hindustan Aircraft (P) Ltd (8) Hindustan Anti Biotics (P) Ltd (9) Hindustan Cables (P) Ltd (10) Hindustan Housing Factory (P) Ltd (11) Hindustan Insecticides (P) Ltd (12) Hindustan Machine Tools (P) Ltd

(13) Hindustan Shipyard (P) Ltd (14) Hindustan Steel (P) Ltd (15) Indian Handicraft Development Corporation (16) Indian Refineries (17) Indian Telephone Industries (P) Ltd (18) Nahan Foundry (P) Ltd (19) Nangal Fertilisers and Chemicals (P) Ltd (20) National Coal Development Corporation (P) Ltd (21) National Industrial Development Corporation (P) Ltd (22) National Instruments (P) Ltd (23) National Research Development Corporation (24) National Small Industries Corporation (P) Ltd (25) *Neyveli Lignite Corporation (P) Ltd (26) Rehabilitation* Housing Corporation Ltd (27) Sindri Fertiliser and Chemicals (P) Ltd (28) State Trading Corporation of India (P) Ltd (29) Sultania Cotton Manufacturing Co (30) Western Shipping Corporation (P) Ltd

II Combined Undertakings (Centre & States)

(a)	Indian Rare Earths (P) Ltd	Centre & Kerala
(b)	Kulu Valley Transport (P) Ltd	Centre & Punjab
(c)	National Projects Construction Corporation (P) Ltd	Centre M P Rajasthan, *Bihar*, J & K, Kerala.
(d)	Orissa Mining Corporation (P) Ltd	Centre & Orissa
(e)	Travancore Minerals (P) Ltd	*Centre & Kerala*

tion appears in *the table as an output or sale and simultaneously* as an input or purchase, and when factor incomes are included as inputs, then the sum of the outputs from each industry is observed to balance , in an accounting sense, with the sum of inputs ”

“For ease of presentation the outputs are set out in rows, the inputs in columns, so that each industry has attributed to it a row and a column making a balanced account ” (p 442)

“To ‘elevate’ the plan view of the economy s structure into a model, the following working assumptions have usually been made:

(a) “that there are constant returns to scale and,

(b) ‘ *that the combination of inputs, observed accounting wise* in input output table will remain in constant proportions whatever the level of output *i e* , there can be no substitution between different materials or fuels, and no technological progress within the context of any single table ’ (p 443)

“There are two types of model In the earlier ‘*closed* version, the proportional relationships just mentioned were assumed to extend beyond the purely industrial sectors of the economy so that what we normally term final consumption, by households, by government *or by foreign countries became inputs to those sectors,* giving rise to labour services *administration*’ and imports in a proportionally related manner These ‘*outputs* then became in their turn ‘*inputs* to industrial sectors, giving the system a completely circular and independent structure of input output relationships ”

“Since each output, in this version, is made by of an unique combination of inputs then the only dimension that is free to alter is the scale or level of activity at which the system is to be in equilibrium Some writers have pointed the analogy between this feature of the Leontief model and the possibility of equilibrium at levels below full employment which is so distinctive a part of the Keynesian theory

“If we represent Leontief model in symbolic but familiar terms, then the matrix of co efficients usually denoted by A and the Column Vector of n total outputs y, are related by the equation

$$y = Ay$$

every industry’s’ output, in this system, being the sum of its inputs into all the other ‘industries’ It follows that

$$y - Ay = 0$$

or

$$(I - A)y = 0$$

which is soluble when A and any single element in the vector, y, are known ”

"The version which is used in this exercise is much less rigid and naive in form, and consequently offers more hope of becoming useful practice "

"Instead of regarding the activities of households, government, capital formation and foreign trade as 'processes' for which there are proportionally related inputs and outputs, these expenditures are regarded as taking place outside the system, while labour and other factor incomes are looked upon as 'primary' or original inputs in common with goods and services imported from outside the system The model is thus '*open ended*' "

' If the final demands—*i e*, private and public current consumption, export and additions to capital—are calculated or estimated in advance, then the theory of production permits the estimation of output levels necessary to satisfy all the demands, final and intermediate. In algebraic language, if the set of final demands, x, and the matrix A are given, then

$$Ay+x=y$$

Therefore, the vector of outputs

$$y=(1-A)^{-1}x$$
$$=(1+A+A^2+A^3 \quad)x$$

and so, by means of this inversion or expansion, we can obtain industry by industry the outputs which will satisfy the assumed or estimated demands from outside the system and, simultaneously, the indirect or intermediate requirements arising within the interdepended set of industries ' (p 444)

"In our equations y, the output by industries is shown as a function of x the final demands In more familiar Keynesian terms this is showing O as a function of C+I, but with this difference that O is expanded, as it were, to show the inter industry transactions which are hidden from view in the consolidation of aggregative national income analysis It is in fact from these intermediate sales and purchases between industrial sectors that the input output coefficients are derived

' If one is interested in predicting future levels of output then it is important to remember that the successful use of an open ended ' input-output model puts a special premium on being able to prepare consistent and accurate estimates of final demands' (p 4.4)

The study of input output analysis is of great importance as it represents a true picture of interdependence Economic dynamism depends on various factor's interdependence Say, the volume of output will depend, besides other things, on the volume

of raw material taxable capacity depends on income and the possibility of saving, introduction of new railway pre supposes the possibility of their economic operation Unless the Planning Authority makes detailed study of all these interdependence it can never achieve the desired result in matters of the fixation of targets, adjustments of priorities calculations of allotments and allocations

In our First Five Year Plan too much emphasis was laid on agriculture and irrigation Basic idea behind it was besides increasing the food supply to arrange for a rapid and steady *flow of raw materials to the industry* That was based on a study ef inter industry interdependence Hence we can easily mention that the application of this planning technique was made in our First Five Year Plan This adjustment between raw material and the requirement of finished good is not always final Though tha main reason of planning is to have balanced economic growth and the removal of waste but due to miscalculations the results are sometimes ineffective in planned attempt also

Prof J R Hicks has defined Input as something which is bought for the enterprise and an Output as something which is sold by it This taken in its raw form may be said that input is the flow of raw materials into the factory and output is the outflow of finished goods of the same factory Their volumes (not value) must be equal—leaving aside the proportion of 'factory consumption. This however is not the case with their values—there is a tremendous difference between the values of inputs and outputs

For a Planning Authority the study of this interdependence is not important from the point of view of production alone They are important in other spheres as well say in the fields of Capital Formation Income Expenditure Ratio Capital Output Ratio Employment Living Standard Ratio Savings Capital Ratio etc To a considerable extent this study of interdependence has been made by the drafters of our Second and Third Five Year Plans in almost all fields It is expected that with the availability of more accurate and reliable statistical data in the country this study of *interdependence will be more in common use* They will be easy to calculate and apply in our fourthcoming economic plans

The basis of an Input Output analysis is the system which is technically called a *Matrix* *Matrix may* be defined as A system of mn numbers arranged in the form of an ordered set of m rows each row consisting of an ordered set of n numbers is called an $m \times n$ matrix—to be read as m by n matrix * Prof

---

* Matrices' by Shanti Narayan 1953 Ch I p 12

Shanti Narayan has further indicated the mathematical use of this linear programme as follows

"To locate any particular element of a matrix, we have to employ two suffixes which will respectively specify the row and the column in which it appears Numbering the rows from top to bottom and columns from left to right the element in the i th row and the j th column will usually be referred to as the $(i\ j)$ th element so that of the two suffixes i and j th first one, i, to the left will always denote the number of rows and the second one, j, the number of columns For an $m \times n$ matrix which, of course, has m rows and n columns suffixes i and j respectively range from 1 to m and 1 to n

"Also it will be usual to denote a matrix by a capital letter such as A B P etc and then the $(i\ j)$ th element will be denoted by a_{ij} b_{ij} P_{ij} etc Thus we shall usually write .

$$A = \begin{vmatrix} a_{11} & a_{12} & a_{1j} & a_{1n} \\ a_{21} & a_{22} & a_{2j} & a_{2n} \\ & & & \\ a_{i1} & a_{i2} & a_{ij} & a_{in} \\ & & & \\ a_{m1} & a_{m2} & a_{mj} & a_{mn} \end{vmatrix} = [a_{ij}]$$

'The first suffix is invariant for each row and the second is invariant for each column

An $m \times n$ matrix is said to be a *Type* $m \times n$ In relation to matrices the numbers are usually called *scalars* ' †

Others have represented this Martrix system in other ways as well A rectangular arrangement of numbers or symbols, showing in the best possible manner, the transactions of an economy can be called a matrix A set of rows and columns of figures make up a particular matrix The receipts of one sector of the economy or the receipts by a class of transactors are indicated in each row of the matrix and each column contains the payments of one sector to the another ‡ This type of matrix may be simple as well as of complex model Simple model consists of single line columns and rows Complex models on the contrary consists of ' multiple lines columns and rows In U K and U S A matrices consisting of over 500 rows and columns have been calculated out. Here, we are producing a model of simplest type of matrix

---

† (1) Ibid pp 13—14 (2) Please also read for an advanced mathematical interpretation Introduction to Linear Algebra and the Theory of Matrices by Hans Schwerdtfeger

‡ New Horizons in Planning—Alak Ghosh 1956 p 6

Model of 'Simplest Type' Matrix

Receipts→ / Payments↓	Firms	Households	Total
Firms		500	500
Households	500		500
Total	500	500	1000

Mostly, as has already been indicated, these Matrices models are used in the study of interdependence In the above example, if we replace 'firms and 'households' by 'raw materials and finished goods or by 'agricultural' and manufacturing', our study will be somewhat correct of the system of interdependence. Complicated and complex matrices are usually used in this type of study because the present day economic structure is, itself complex †

Matrix system, again according to its nature, is divided into two categories dynamic and static models For a detailed analysis, these two models of 'flow coefficient" and "capital coefficient' is to be studied In the Planning process the Planning Authority is faced with the problem of applying these models in preparing the Plan frame' Both these systems can be applied, in both 'advance' and 'backward' economics provided sufficient and accurate statistical data are available in the country, particularly of those directly or indirectly connected with industry, trade, commerce, manufacture agriculture etc Drafters of our First, Second and Third Five Year Plans experienced acute defficulty in fixing targets, priorities etc due to the non availability of required statistical material in the country It is expected that all these advanced techniques will be utilised, in more details, in our forthcoming plans—while sufficient reliable statistical data will be available in the country

† For details please read the sources quoted in the first paragraph above Alak Ghosh has made a good study of it in his book 'New Horizons in Planning'